BAHL - 301

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

मानविकी विद्याशाखा

हिंदी साहित्य का इतिहास एवं काव्यशास्त्र

विशेषज्ञ समिति

प्रो0 एच0पी0 शुक्ला निदेशक, मानविकी विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्तविश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल	प्रो0 सत्यकाम हिन्दी विभाग इग्नू, नई दिल्ली
प्रो.आर.सी.शर्मा हिन्दी विभाग अलीगढ़ विश्वविद्यालय,अलीगढ़	
डा0 शशांक शुक्ला असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल	डा0 राजेन्द्र कैड़ा एकेडेमिक एसोसिएट हिन्दी विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल

पाठ्यक्रम समन्वयक, संयोजन एवं संपादन

डा0 शशांक शुक्ला असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,हल्द्वानी, नैनीताल	डा0 राजेन्द्र कैड़ा एकेडेमिक एसोसिएट हिन्दी विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल

इकाई लेखक	**इकाई संख्या**
डॉ. राजेन्द्र कैड़ा अकादमिक एसोसिएट,हिंदी विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,हल्द्वानी, नैनीताल,	1, 2
प्रो.विजय कुलश्रेष्ठ 22, मोतीमगरी, उदयपुर , राजस्थान	3, 4
डा.पुनीत कुमार राय असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, शासकीय नवीन महाविद्यालय, बलरामपुर, छत्तीसगढ़	5, 6, 7
डा0 शशांक शुक्ला असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,हल्द्वानी, नैनीताल,	8, 10, 11,12,13
डा. नन्द किशोर ढ़ौढियाल, पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल,स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोटद्वार	9
प्रो0 चन्द्रकला त्रिपाठी, हिंदी विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी	14
प्रो0 नीरजा टंडन, हिन्दी विभाग, डी.एस.बी.परिसर , नैनीताल	15,16
डा. विक्रम राठौर , हिन्दी विभाग, रा.स्ना.महा. गंगोलीहाट	17
प्रो0 किरण टंडन, संस्कृत विभाग, डी.एस.बी.परिसर , नैनीताल	18, 19
प्रो0 दिवा भट्ट , हिन्दी विभाग, एस.एस.जे.परिसर , अल्मोड़ा	20

कापीराइट@उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

संस्करण: 2015 सीमित वितरण हेतु पूर्व प्रकाशन प्रति

प्रकाशकः उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी ,नैनीताल -263139

मुद्रक : प्रीमियर प्रिंटिंग प्रेस, जयपुर

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी ,नैनीताल -263139

ISBN ***978-93-84813-62-8***

खण्ड 1 हिंदी साहित्य का इतिहास : आदिकाल	पृष्ठ संख्या
इकाई 1 इतिहास एवं साहित्येतिहास का सम्बन्ध	1-17
इकाई 2 हिन्दी साहित्येतिहास लेखन की परम्परा	18-38
इकाई 3 हिन्दी साहित्य के आदिकाल का उद्भव एवं विकास	39-49
इकाई 4 हिन्दी साहित्य के आदिकाल का स्वरूप एवं प्रक्रिया	50-67
खण्ड 2 – हिंदी साहित्य का इतिहास : मध्यकाल	**पृष्ठ संख्या**
इकाई 5 भक्तिकालीन कविता का उदय	68-88
इकाई 6 भक्तिकालीन कविता : प्रक्रिया एवं विकास	89-110
इकाई 7 भक्तिकालीन कविता : विविध शाखाए	111-133
इकाई 8 रीतिकाल : परिचय एवं आलोचना	134-148
खण्ड 3 – हिंदी साहित्य का इतिहास : आधुनिककाल	**पृष्ठ संख्या**
इकाई 9 हिन्दी गद्य का उद्भव एवं विकास	149-169
इकाई 10 हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल : पद्य	170-193
इकाई 11 आधुनिक हिन्दी कविता : भारतेंदु युग	194-215
इकाई 12 हिन्दी कविता का द्विवेदी युग : परिचय एवं आलोचना	216-232
इकाई 13 स्वातंत्र्योत्तर काल और हिन्दी कविता का विकास	233-247
इकाई 14 नई कविता संदर्भ एवं प्रकृति	248-279
खण्ड 4 – काव्यशास्त्र	**पृष्ठ संख्या**
इकाई 15 काव्य का लक्षण एवं स्वरूप	280-299
इकाई 16 काव्य की प्रेरणा एवं काव्य-हेतु	300-315
इकाई 17 अलंकार सम्प्रदाय	316-332
इकाई 18 ध्वनि सम्प्रदाय	333-350
इकाई 19 रीति सम्प्रदाय	351-367
इकाई 20 पाश्चात्य साहित्यशास्त्र की परम्परा	368-382

इकाई 1 इतिहास एवं साहित्येतिहास का संबंध

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 इतिहास: अर्थ एवं स्वरूप
  1.3.1 इतिहास : परिभाषा
  1.3.2 इतिहास : विज्ञान अथवा कला
1.4 इतिहास लेखन की पाश्चात्य परम्परा
1.5 इतिहास लेखन की भारतीय परम्परा
1.6 साहित्येतिहास : अर्थ एवं स्वरूप
  1.6.1 साहित्येतिहास : अवधारणा एवं परिभाषा
1.7 सारांश
1.8 शब्दावली
1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.10 संदर्भ ग्रंथ सूची
1.11 सहायक पाठ्य सामग्री
1.12 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

हिंदी साहित्य की संपूर्ण प्रक्रिया को समझने के लिए यह जानना बहुत जरूरी है कि हिंदी साहित्य के समग्र इतिहास की पृष्ठभूमि को समझने के उद्देश्य को पूर्ण करने वाली पहली इकाई है। प्रस्तुत इकाई के पूर्वार्द्ध में इतिहास की प्रक्रिया एवं उसके स्वरूप का विश्लेषण किया गया तथा साथ ही इतिहास की पाश्चात्य एवं भारतीय परम्परा का संक्षिप्त परिचय भी दिया गया है।

इकाई के उत्तरार्द्ध में साहित्येतिहास के स्वरूप एवं उसकी प्रक्रिया का विवेचन प्रस्तुत किया गया है । साथ साहित्येतिहास की पाश्चात्य एवं भारतीय परंपरा का परिचय देते हुए इतिहास एवं साहित्येतिहास के अन्तर्संबंधों पर भी प्रकाश डाला गया है।

इस इकाई के अध्ययन के पाश्चात् आप इतिहास एवं साहित्येतिहास के स्वरूप, उसकी प्रक्रिया एवं दोनों ही की लेखन परम्परा से परिचित होंगे आप इतिहास एवं साहित्येतिहास के जटिल अन्तर्संबधों को जान सकेंगे।

1.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- बता सकेंगे कि साहित्य के इतिहास का क्या महत्व है।
- बता सकेंगे कि इतिहास एवं साहित्येतिहास के परिप्रेक्ष्य में पश्चिमी तथा भारतीय विचारकों का क्या योगदान है।
- हिंदी साहित्येतिहास की सम्पूर्ण परम्परा की प्रक्रिया, पृष्ठभूमि एवं महत्ता को समझा सकेंगे।
- इतिहास एवं साहित्येतिहास के अन्तर्संबंध को समझा सकेंगे।

1.3 इतिहास: अर्थ एवं स्वरूप

'इतिहास' शब्द का अर्थ है - 'ऐसा ही था' अथवा 'ऐसा ही हुआ' इस दृष्टि से देखा जाए तो कहा जा सकता है कि अतीत के किसी भी वास्तविक घटनाक्रम का लिपिबद्ध रूप 'इतिहास' कहा जा सकता है। प्रश्न यह है कि क्या अतीत का कोई भी विवरण इतिहास कहा जा सकता है अथवा नहीं ? इस संदर्भ में यह कह देना श्रेयस्कर होगा कि ''अतीत के गर्भ में इतना कुछ छिपा हुआ है कि उसे समग्र रूप में प्रस्तुत करना किसी भी इतिहासकार के वश की बात नहीं है। इसलिए विभिन्न इतिहासकार अपनी-अपनी रूचि एवं दृष्टि के अनुसार अतीत के कुछ पक्षों को अपने-अपने शब्दों में प्रस्तुत करते प्रत्येक व्यक्ति जो कुछ देखता है, उसमें उसकी वैयक्तिक रूचि

के साथ-साथ उसके युग की सामूहिक चेतना, उसके बौद्धिक विकास एवं उसकी भावात्मक प्रवृत्तियों का प्रभाव भी मिश्रित होता है'' इस प्रकार हम देखते हैं कि इतिहास लेखन के विभिन्न दृष्टिकोण हो सकते है तथा इसी आधार पर इतिहास के वास्तविक, अर्थ को जानना दुश्कर हो जाता है। इस समस्या के समाधान के लिए सर्वप्रथम हमें यह जानना आवश्यक है कि 'इतिहास क्या है ? इतिहास के वास्तविक अर्थ को जाने बिना हम इतिहास की प्रक्रिया, उसके स्वरूप एवं उसकी विभिन्न लेखन परम्पराओं को ठीक से नहीं समझ सकते। इसलिए आइए सर्वप्रथम हम इतिहास की कुछ मान्य परिभाषाओं के विश्लेषण से यह जानने का प्रयत्न करें कि 'इतिहास' क्या है?

1.3.1 इतिहास: परिभाषा

ग्रीक विद्वान हीरोद्योत्तस (484-425 ई.पू0) को इतिहास का संबंध खोज एवं अनुसंधान से माना है तथा इस संबंध में उसकी पांच विशेषताएं बताई हैं -

1. ये वैज्ञानिक विद्या है -क्योंकि इसकी पद्धति आलोचनात्मक होती है।
2. मानव जाति से संबंधित होने के कारण यह मानवीय विद्या है।
3. यह तर्क संगत विद्या है - क्योंकि इसमें तथ्य एवं निष्कर्ष प्रमाण पर आधारित होते हैं।
4. यह अतीत के आलोक में भविष्य पर प्रकाश डालता है, अतः शिक्षाप्रद विद्या है।
5. इतिहास का लक्ष्य प्राकृतिक या भौतिक लक्ष्य की प्रक्रिया का परिवर्तन करना है।''

महाभारत में कहा गया है इतिहास अतीत का एक ऐसा वृत्त होता है जिस के माध्यम से धर्म अर्थ, काम एवं मोक्ष का उपदेश दिया जा सकता है। ''धर्मार्थकाम मोक्षाणामुपदेशसमन्वितम्। पूर्ववृत्तं कथायुक्तमिनतिहासं प्रचक्षते।।''

हीरोद्योतस का मानना था कि ''इतिहास परिवर्तन की प्रक्रिया है, उससे यह सिद्ध होता है कि प्रत्येक सत्ता अपने चरम उत्कर्ष पर पहुँच कर अन्त में अपकर्ष की ओर अग्रसर हो जाती है।''

हेनरी जॉनसन के अनुसार अतीत की प्रत्येक घटना इतिहास की कोटी में आती है। उनके अनुसार ''इतिहास विस्तृत रूप में वह प्रत्येक घटना है जो कि कभी धटित हुई।'' परन्तु क्योंकि अतीत की कुछ घटनाओं का संबंध पशु जगत से होता है अतः जॉनसन की यह परिभाषा अतिवादी कोटी की परिभाषा कही जाती है।

सर चार्ल्स फर्थ - ''इतिहास मनुष्य के समाज में जीवन का, समाज में हुए परिवर्तनों का समाज के कार्यों को निश्चित करने वाले विचारों का तथा उन भौतिक दशाओं का, जिन्होंने उसकी प्रगति में सहायता की, का लेखा जोखा है।''

इम्यूनल काण्ट (1724-1804) ''प्रत्यक्ष जगत में वस्तुओं का विकास उसके प्राकृतिक इतिहास के समकक्ष रहता है। बाह्य प्रगति उन आंतरिक शक्तियों की कलेवर मात्र होती है, जो एक निश्चित नियम के अनुसार मानव जगत में कार्यशील रहती है।'' काण्ट की परिभाषा में गहन दार्शनिकता का भाव मिलता है। दरअसल काण्ट के अनुसार जिस प्रकार समस्त मानव जीवन का बाह्य विधान नियमों से बद्ध रहता है वैसे ही मनुष्य का ऐतिहासिक जीवन (इतिहास) भी आंतरिक प्रवृत्तियों द्वारा परिचालित होता है।

रैपसन -''घटनाओं अथवा विचारों का अति से सम्बद्ध विवरण ही इतिहास है।'' रैपसन की यह परिभाषा इतिहास की आंतरिक बुनावट में घटित घटनाओं की पारस्परिक तारतम्यता को उद्घाटित करती है।

टॉमस कार्लाइल - ''इतिहास असंख्य जीवन-वृत्तों का सार हैं।''

आर.जी.कांलिंगवुड –"इतिहास समाजों में रहने वाले मनुष्यों के कार्यों एवं उपलब्धियों की कहानी है।'' साथ ही कांलिंगवुड ने यह भी लिखा है ''सम्पूर्ण इतिहास विचारधारा का इतिहास होता है।''

ई.एच.कार - इतिहास को तटस्थ क्रिया न मानकर इतिहासकार एवं तथ्यों के मध्य व्याप्त जीवंत प्रक्रिया के रूप में देखते हैं। कार का यह कहना कि तथ्य स्वयं नहीं बोलते अपितु सुविज्ञ इतिहासकार उनसे (तथ्यों से) अभीष्ट बुलवाता है - सही है। ई.एच0 कार ने लिखा है कि ''वास्तव में इतिहास, इतिहासकार एवं तथ्यों के बीच अर्न्तक्रिया की अविछिन्न प्रक्रिया तथा वर्तमान और अतीत के बीच अनवरत परिसंवाद है।

''भारतीय साहित्य में 'इतिहास' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग 'अथर्ववेद' में प्राप्त होता हैं तदन्तर यह शब्द शतपथ ब्राह्मण, जैमनीय, बृहदारण्यक तथा छान्दोगोपनिषद में प्रयुक्त हुआ है।

'छान्दोग्योपनिषद' के अनुसार इतिहास का विषय निम्नलिखित है –

" आध्यादि बहुत्याख्यानं देवर्षिचरिताश्रयम्।
इतिहासमिति प्रोक्तंभविष्याद्भुतधर्मयुक।।''

प्रस्तत परिभाषाओं के विश्लेषण से यह बात आसानी से जानी जा सकती है कि इतिहास को लेकर दुनिया भर के विद्वानों ने कितना विचार-विमर्श किया है। इकाई के आगे आने वाले भागों में आप इतिहास की परम्परा के दो धुरवों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे। इतिहास के आधुनिक स्वरूप का विकास पश्चिम में अवश्य हुआ परन्तु इसका यह अर्थ नहीं समझना चाहिए कि भारतीय विद्वानों के पास ऐतिहासिक-दृष्टि का अभाव रहा है। इस संशय का शमन भी इकाई के अगले भागों में जाएगा। परिभाषाएँ किसी भी विषय को समझने के लिए आधार भूमि का काम करती है परन्तु समय के साथ-साथ बड़ी-बड़ी परिभाषाएँ भी अपूर्ण हो जाती है। इतिहास स्वयं में एक जीवन प्रक्रिया है अतः परिभाषाओं के आधार पर उसे बहुत मोटे तौर पर समझे जाने का

प्रयास तो किया जा सकता है परन्तु समग्र तौर पर समझा नहीं जा सकता। अतः परिभाषाओं का मोह त्याग कर हम इतिहास की आंतरिक बुनावट पर अपनी दृष्टि केन्द्रित करने का प्रयत्न करते हैं।

इस परिप्रेक्ष्य में सबसे पहले जिस प्रश्न से हमारा सामना होता है वह प्रश्न है कि इतिहास अपनी आंतरिक प्रक्रिया में विज्ञान है अथवा कला ?

1.3.2 इतिहास : विज़ान अथवा कला

किसी भी अन्य अनुशासन की तरह ही इतिहास के अध्ययन की भी अपनी कुछ समस्याएँ है। इन्हीं समस्याओं से जुझते हुए विभिन्न विद्वानों ने इतिहास एवं उसके दर्शन की व्याख्या की है। सर्वप्रथम यह सुनिश्ति करने का प्रयास किया गया है कि अपनी आंतरिक प्रगति के आधार पर इतिहास को विज्ञान माना जाए अथवा कला। इस प्रश्न का एक-रेखीय उत्तर देना कठिन एवं कई तरह से अव्यवहारिक माना गया है तथा इतिहास को कला एवं विज्ञान को गुणों से समन्वित अनुशासन बताया गया है। विभिन्न विद्वानों ने इतिहास को अलग-अलग कारणों के चले 'कला' एवं 'विज्ञान' की कोटी में रखा है। परन्तु बहुत स्पष्ट रूप से 'इतिहास' को मात्र 'कला' अथवा मात्र 'विज्ञान' कहना उचित नहीं कहा जा सकता। इतिहास के भीतर कलात्मकता की जिनती आवश्यता है उतनी ही आवश्यता वैज्ञानिक वस्तुनिष्ठता की भी है। इस संबंध में यह स्वीकार करते हुए भी कि इतिहास की आंतरिक प्रकृति में कलात्मकता का विशष पुट होता है यह कहा जा सकता है इतिहास की प्रकृति विज्ञान के बहुत अधिक समीप है। ''फिर भी एव वैज्ञानिक व इतिहासकार के मध्य यह कुछ अन्तर हैं - प्रथम के पास एक प्रयोगशाला होती है जबकि दूसरे के पास पुस्तकालय। वैज्ञानिक निर्णय, संक्षिप्त ओर अपरिवर्तनीय होते हैं जबकि इतिहासकार के निर्णय लचीले और विषय परक होते हैं। वैज्ञानिक, प्रतीकों और ग्राफों का प्रयोग करता है जबकि इतिहासकार का कार्य वर्णन और व्याख्या पर निर्भर होता है। वैज्ञानिक, वस्तुनिष्ठ होता है किन्तु इतिहासकार विषयपरक है। वैज्ञानिक विश्व पर लागू होने वाले नियमों को बनाता है किन्तु ऐतिहासिक नियम सदैव त्रुटिपूर्ण होते हैं। इतिहास और विज्ञान का मिल इस दृष्टि से एक है कि दोनों आंकड़ों के संकलन के लिए एक ही पद्धति को अपनाते हैं और दोनों का अंतिम ध्येय सत्य की खोज करना है।''

बोध प्रश्न

(क) सही विकल्प चुनिए

1. भारतीय साहित्य में इतिहास शब्द का सर्वप्रथम उल्लेख किस ग्रंथ में मिलता है ?

क. महाभारत

ख. अथर्ववेद

ग. रामायण

घ. मनुसंहिता

2. 'इतिहास' की एक सटीक परिभाषा दीजिए तथा अपने शब्दों में उसकी संक्षिप्त व्याख्या कीजिए।

3. ग्रीक विद्वान हीरोद्योत्तस का जन्म कब हुआ था ?

1.4 इतिहास लेखन की पाश्चात्य परम्परा

जैसाकि पहले बताया जा चुका है कि इतिहास लेखन की परम्परा का आरम्भ ग्रीक विद्वान **हीरोद्योत्तस** (484-425 ई.पू.) से हुआ था। इसी समय एक अन्य पाश्चात्य इतिहासविद का नाम भी सामने आता है, जिसे **थूसीडॉइड्स** (471-401 ई.पू.) के नाम से जाना जाता है। हीरोद्योत्तस ने ग्रीक और पारसियों, पश्चिम तथा पूर्व, एशिया तथा यूरूप के कुछ महत्वपूर्ण युद्धों, उन जातियों की जीवन पद्धतियों इत्यादि का महत्वपूर्ण उल्लेख अपनी कृतियों में किया था। अपनी कुछ आंतरिक त्रुटियों के बावजूद थूसीडाइड्स ने ऐथेन्स और स्पाटा के बीच हुए विश्व प्रसिद्ध 'पेलोपोनेशियन' युद्ध का सटीक इतिहास लेखन किया था। इनके उपरांत रोम निवासी **पौलीबियस** (204-122 ई.पू.) केटा (ई.पू. 160 के लगभग) जूलियस सीजर (ई.पू. 51), लीवी (ई.पू. 59 से 17) टैसीटस कॉन्स्टैन्टाइन (306-337 ई.) तथा 'सिवितास दाई' के लेखक 'सेंट ऑगस्टाइन' का नाम पाश्चात्य इतिहास दर्शन के इतिहास में महत्वपूर्ण है।

यूरोपीय इतिहास लेखन के मध्य युग में हमें इतिहास लेखन की दो प्रवृत्तियाँ दिखाई देती है एक तरफ सेंट आगस्टाइन की तटस्थ इतिहास लेखन पद्धति है तो दूसरी तरफ, थूसेबियस, सुकरात, सोजोमेन, थियोडोरेट, फैसिओडोरस जैसे इतिहास लेखकों की इतिहास पुस्तकें प्राप्त होती हैं जिनके विचार, धार्मिक विचार पद्धति पर आधारित होते थे. यूरोप में इतिहास लेखन के विकास का विश्लेषण करते हुए डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने लिखा है ''धार्मिक एवं साम्प्रदायिक संघर्ष के फलस्वरूप इतिहास-लेखन को तो प्रोत्साहन प्राप्त हुआ हो, साथ ही कुतुबनुमा जैसे वैज्ञानिक आविष्कार ने भी इस कार्य में सहायता प्रदान की। धार्मिक कारणों से ही किन्तु कुतुबनुमा की सहायता से लम्बी समुद्री यात्राएं की गई और भूमि भागों की खोज ने ईसा की 16वीं-17वीं शताब्दियों में इतिहास-अध्ययन की ओर अधिकाधिक ध्यान दिलाया'' इसी विश्लेषण को विस्तार देते हुए खोज के फलस्वरूप यूरोपीय देशों में जो सामाजिक और आर्थिक उथल-पुथल उत्पन्न हुई उससे ईसा की 16वीं-17वीं शताब्दियों में ही जो संवैधानिक एवं प्रणयन को फिर एक नया आयाम प्राप्त हुआ। 18वीं सदी तक आते-आते यूरोप के भीतर राजनैतिक एवं धार्मिक संघर्ष अपनी अंतिम अवस्था भी पार कर शांत हो चला था अतः तत्कालीन इतिहास लेखन इन

प्रभावों से अपने को मुक्त कर के ज्ञान एवं तथ्य की भूमि को आधार बनाकर विकसित होने लगा 'जिओवानी बातिस्ता वीचो (1668-1744) ने राजनैतिक युद्ध संघर्ष की मानसिकता से इतिहास लेखन को मुक्त कर के प्रथम बार समाज केन्द्रित इतिहास दृष्टि का विकास किया उसकी इस परम्परा को मांतेस्क्यू (1689-1755) ने विकसित किया। ''उसने अपनी रचनाओं द्वारा प्रकृति वैज्ञानिक की भांति तटस्थ दृष्टिकोण ग्रहण कर इंगलैण्ड, फ्रांस और राम के विधानों के क्रमिक विकास का तुलनात्मक अध्ययन कर संस्थाओं और विचारों के विकास में जलवायु को प्रमुख कारण माना,'' मांटेस्क्यू के पश्चात् यूरोपीय विद्वानों की एक लम्बी सूची इतिहास-लेखन के विकास में अपना योगदान देती रही। इस सूची के प्रमुख नाम निम्नलिखित हैं -

वाल्तेयर (1694-1778), डेविड ह्यूम (1711-1776) विलियम रॉबर्ट्सन, माइकेल श्मिट (1736-1794) एडवर्ड गिबनर (1737-1794), अनाल्ड हीरेन (1760-1842), जे0जी0 फिख्टे (1762-1814), फ्रीड्रिख श्लेगेल (1772-1829), एफ.डब्ल्यू. शेलिंग (1775-1854), फ्रीड्रिख हेगेल (1770-1831), हाइनरिख लिओ (1799-1878), कार्लाइल (1795-1881)। इस सम्पूर्ण परम्परा के पश्चात् भी यूरोप के विभिन्न भागों में इतिहास-लेखकों की नवीन परम्पा का उद्भव एवं विकास होता रहा। आगस्ट कॉम्टे, जस्टस मोसर, बार्थोल्ड नीबूर (1776-1831), लिओपोल्ड रैंके (1795-1886) एवं थिओडोर मॉमसेन, विलियम स्टब्स, जान रिचर्ड ग्रीन, जॉन आर. सीले, सेम्युअल आर. गार्डिनर, आर.जी. कालिंगवुड, बरट्रेण्ड रसल का इस संदर्भ में उल्लेखनीय है। इसके साथ-साथ यूरोप के भीरत ही मार्क्स के विचारों के आधार पर इतिहास की एक नया व्याख्या प्रस्तुत की जाने लगी। कार्लमार्क्स, लुडविग फायरबाख, लोरिया, एश्ले, हैमण्ड्स, बोगार्ट आदि इतिहासविदों इस परम्परा का क्रमशः उन्नयन किया।

बोध प्रश्न -

1. यूरोप के पाँच प्रमुख इतिहासकारों के नाम लिखिए।

2. ग्रीक इतिहास लेखन का प्रथम विद्वान किसे माना जाता है।

सही विकल्प चुनिए -

3. क. जिवोवानी बातिस्ता वीचों का कालखण्ड माना जाता -

   अ. 1668-1744

   ब. 1774-1826

   स. 1568-1644

   द. 19 वीं सदी का प्रारम्भ

ख. हीरोद्योत्तस के पश्चात् प्रख्यात इतिहासकार थे -

अ. बेंजामिन फ्रैंक

ब. रोनाल्ड रीगल

स. थूसीडाइड्स

द. इनमें से कोई नहीं

1.5 इतिहास लेखन की भारतीय परम्परा

प्राचीन भारत के इतिहास लेखन की परम्परा का अपना विशिष्ट चरित्र है। आधुनिक यूरोपीय इतिहास दृष्टि से अलग भारतीय इतिहास को भी अपनी विशिष्ट पद्धति एवं प्रक्रिया है। प्राचीन भारतीय दृष्टि आधुनिक इतिहास दृष्टि से मेल नहीं खाती इसलिए आधुनिक इतिहास दृष्टि को एक मात्र 'इतिहास' दृष्टि मानने वाले बहुत से विशेषज्ञों का मानना है कि प्राचीन भारतीय विद्वान या तो इतिहास लेखन को महत्वहीन मानते थे अथवा प्राचीन भारत में इतिहास लेखन होता ही नहीं था।

डॉ. एच.सी. शास्त्री ने लिखा है, ''प्राचीन भारतीयों ने इतिहास के प्रति विशेष ध्यान नहीं दिया क्योंकि वे अतीत तथा वर्तमान के भौतिक जीवन की अपेक्षा आगामी जीवन में रूचि रखते थे।'' यह बात संभवतः कुछ हद तक सच हो सकती है परन्तु वास्तविक बात यह नहीं है। निःसंदेह प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन में अनेक समस्याएं थीं फिर भी प्राचीन भारतीय इतिहास लेखकों ने इस दिशा में निरन्तर प्रयास जारी रखे। इतिहास लेखन के प्रति भारतीयों की अरूचि के बाद भी यहाँ पर लेखन हेतु विशाल ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध थी जिसका विद्वानों ने समय-समय पर प्रयोग किया। इस संबंध में प्रोफेसर सुरेन्द्र नाथ बनर्जी का कथन बहुत असंतग है कि प्राचीन भारत में श्रेष्ठ ऐतिहासिक साहित्य की रचना नहीं हुई ऐतिहासिक महत्व के ग्रंथ किन्ही कारण वश खो गए हैं अथवा नष्ट हो गए हैं परन्तु यह संभावना उचित नहीं प्रतीत होती कि सभी ग्रंथ नष्ट हो गए हों। यदि कुछ ग्रंथ उस काल में लिखे गए होते तब उनका कोई न कोई संकेत अथवा संदर्भ बाद के लेखकों की कृतियों में अवश्य मिलता परन्तु इस तथ्य को लगभग सभी विद्वानों ने स्वीकार किया कि मुद्राओं, अभिलेखों कास्यं, प्लेटों और सिक्कों के रूप में प्राचीन इतिहास को जानने के महत्वपूर्ण साक्ष्य बहुत बड़ी मात्रा में आज भी उपलब्ध हैं। प्राचीन भारत के इतिहास से संबंधित ग्रंथों को हम इस प्रकार विश्लेषित कर सकते है।

1. **वेद** - प्राचीन भारतीय साहित्य में वेदों का स्थान अप्रतिम हैं। वेद न केवल धार्मिक दृष्टि से सर्वोपरि माने गए हैं अपितु अपनी विशद विषयवस्तु और गंभीरता के लिए विश्व साहित्य में अपना अलग स्थान रखते हैं। ये संख्या में चार हैं - ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद एवं अथर्ववेद। यद्यपि इन वेदों का महत्व धार्मिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से अधिक है तब भी वैदिक भारत की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं भाषिक परिस्थितियों का दिग्दर्शन इनमें प्राप्त होता है। इन ग्रंथों से प्राचीन भारतीय इतिहास की विपुल सामग्री प्राप्त की गई है तथा भविष्य में होने वाले

शोधों से वेद भारतीय इतिहास लेखन में और अधिक महत्वपूर्ण होकर उभरेंगे इस बात पर संशय की कोई संभावना नहीं है।

2. **ब्राह्मण ग्रंथ एवं उपनिषद** - वेदों के अतिरिक्त अन्य वैदिक साहित्य में निहित सामग्री को भी प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है। धार्मिक एवं ऐतिहासिक रूप से वेदांग एवं सूत्र साहित्य का अत्यधिक महतव है। उपनिषद एवं ब्राह्मण ग्रंथ इस दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है।

3. महाकाव्य - लौकिक संस्कृत को दो महान महाकाव्यों की विषय वस्तु प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण है। आदिकवि वाल्मिकी प्रणीत 'रामायण' एवं महाकवि व्यास द्वारा लिखित 'महाभारत' इस कोटी की सर्वोपरि रचनाएँ है। इसके अतिरिक्त लौकिक संस्कृत साहित्य की कई महत्वपूर्ण रचनाएँ तत्कालीन भारतीय समाज, राज्य, संस्थाओं, प्रशासकों एवं सामान्य जनों की रीति-नीति एवं प्रबंधन की अत्यावश्यक ऐतिहासिक सामग्री से ओत-प्रोत है।

4 . पुराण - इनकी कुल संख्या 18 है. हांलाकि उप-पुराणों की संख्या बहुत अधिक है। इस पुराण साहित्य की विषय-वस्तु भी प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है।

5 . जैन तथा बौद्ध साहित्य - प्राचीन भारत के दो महान धर्मों से संबंधित ग्रंथों का महत्व न केवल धार्मिक रूप में है अपितु इतिहास लेखन की सामग्री के रूप में भी जैन एवं बौद्ध साहित्य का महत्व स्पष्ट है। जैन एवं बौद्ध धर्म से संबंधित साहित्यिक एवं अन्य अनुशासनपरक सामग्री का उपयोग आरम्भ से लेकर अब तक इतिहास लेखकों ने निरंतर किया है। अब तक इतिहास लेखकों ने निरंतर किया है। जैन धर्म के अंतर्गत भद्रबाहु चरित, नेमिनाथ चरित, पउम चरिउ, महापुराण, कथाकोश इत्यादि तथा बौद्ध धर्म के अन्तर्गत (क) पिटक (ख) जातक (ग) निकाय, इन तीन अंगों का साहित्य आज उपलब्ध है। बौद्ध पिटक साहित्य के अन्तर्गत तीन महत्वपूर्ण अंग हैं (1) विनय पिटक (2) सुत्त पिटक (3) अभिधम्म पिटक। जातक साहित्य में बुद्ध के पूर्व-जन्मों का वर्णन मिलता है। बौद्ध धर्म से संबंधित अधिकांश साहित्य पाली भाषा में उपलब्ध है। परन्तु परवर्ती काल में संस्कृत भाषा में भी बौद्ध धर्म से परिचालित बहुत सा साहित्य प्राप्त हुआ है। इन दोनों ही धर्मों का यह प्राप्त साहित्य प्राचीन भारत के इतिहास लेखन के अत्यधिक महत्व के इतिहास लेखन के अत्यधिक महत्व रखता है।

प्रमुख साहित्यिक ग्रंथ - आज इतिहास लेखकों के पास प्राचीन भारतीय विद्वानों द्वारा लिखित अकृत साहित्य उपलब्ध है जिसका उपयोग भारतीय इतिहास लेखन के लिए किया जाता रहा है। साहित्य, दर्शन, न्याय, व्याकरण, साहित्य, कला, संगीत आदि अनुशासनों से संबंधित अनेकानेक महत्वपूर्ण ग्रंथों को इस कोटी में रखा जा सकता है। इनमें से प्रमुख ग्रंथ निम्नलिखित हैं -

1. अष्टाध्यायी (व्याकरण ग्रंथ-आचार्य पाणिनि)

2. महाभाष्य (व्याकरण ग्रंथ - आचार्य पंतजलि)

3. अर्थशास्त्र (राजनैतिक एवं आर्थिक ग्रंथ आचार्य कौटिल्य)

4 . कामसूत्र (ललित ग्रंथ - आचार्य वात्स्यायन)

साथ ही महाकवि कालिदास, भवभूति, भारवि, श्रीहर्ष, बाणभट्ट, राजशेखर कल्हण, मास, विल्हण, जगन्नाथ आदि अनेकानेक कवियों, काव्यशास्त्रियों, विचारकों एवं साहित्यिकों द्वारा लिखित रचनाओं का उपयोग प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन में निरंतर सहायता प्रदान करता है। इनके अतिरिक्त मध्यकालीन प्रादेशिक बोलियों एवं भाषा में लिखा गया अकूत साहित्यिक भण्डार भी प्राचीन एवं मध्यकालीन भारत के इतिहास लेखन के आवश्यक सामग्री उपलब्ध कराता रहा है। महाकवि चंदबरदायी, कबीर, सूरदास, नामदेव, तुकाराम आदि अनेक कवि एवं साहित्यिकों के ग्रंथ इस कोटी में रखे जा सकते हैं।

कल्हण - कल्हण प्राचीन भारत का एक प्रसिद्ध इतिहासकार है। कल्हण का संबंध वर्तमान कश्मीर से है। वह एक विद्वान कश्मीरी ब्राह्मण था। माना जाता है कि कल्हण के विद्वान पिता 'कण्पका' कश्मीर के यशस्वी राजा हर्ष के दरबार में मंत्री था। कल्हण द्वारा लिखित विश्वप्रसिद्ध ज्ञानकोश ग्रंथ का नाम राजतंरगिणी (1148 ई.) था। इस ज्ञानकोश का लेखन कल्हण द्वारा दो वर्ष के अथक परिश्रम के पश्चात् किया गया। मूलतः कश्मीर पर लिखे गए इस ग्रंथ का महत्व अन्ततः सम्पूर्ण भारतीय इतिहास लेखन में अक्षुण्ण रहेगा।

मध्यकाल के अन्य सहायक ग्रंथ - मध्यकालीन भारतीय साहित्य एवं संस्कृति के प्रसिद्ध अन्वेषक महीबुल हसन ने कहा है, ''मध्युगीन इतिहासकारों ने अपने उद्योग को गम्भीरता से लिया और इतिहास के उच्च विचार को बनाए रखा। उदाहरण के तौर पर, बरनी इतिहास और इल्म-उल हदीस को समतुल्य मानता था और विश्वास करता था कि इतिहासकार को सत्य के प्रति निष्ठावान होना चाहिए और अतिश्योक्ति तथा शब्दों की वृथा भाषा से परहेज रखना चाहिए। लेकिन दुर्भाग्यवश, अधिकांश मध्यकालीन इतिहासकार दरबार से संबंध रखते थे, उन्होंने केवल वह ही नहीं लिखा जो उन्हें उपयुक्त अनुभव हुआ वरन् अपने संरक्षकों को उनकी प्रशंसा के लेखों तथा काव्यों से तुष्ट भी किया।'' तटस्थ कवियों एवं साहित्यिक विद्वानों के अतिरिक्त मध्यकाल के बहुत से दरबारी कवियों, विद्वानों एवं इतिहासकारों ने अनेक ऐसी इतिहासपरक पुस्तकों की रचना की जिनका उपयोग प्राचीन एवं मध्कालीन इतिहास लेखन के आवश्यक है। यह सामग्री अरबी तथा फारसी में उपलब्ध है जिनमें से कुछ प्रमुख पुस्तकों का अनुवाद हिंदी, अंग्रेजी तथा अन्य प्रादेशिक एवं विदेशी भाषाओं में किया जा चुका है।

इस प्रकार की प्रमुख पुस्तकें निम्नलिखित है -

1 . तबकात-ए-नासिरी - मिनहाज-उस-सिराज़

2 . तारीख-ए-मुहम्मदी-मुहम्मद बिहमद खानी

3 . तारीख-ए-मुबारक शाही - याहा बिन अहमद

4 . सीरत-ए-फिरोजशाही-शम्स सिराज अफीफ

5 . तारीख-ए-फिरोजशाही - शम्स सिराज अफीफ

6 . ताज उल मासिर - हसन निजामी

7 . तुगलकनामा - अमीर खुसरो

8 . फुतुह उल सलातीन - इसामी

9 . शाहनामा - फिरदौसी

10 . तहकीक-ए-हिंद - अलबरूदी

11 . आइन-ए-सिकन्दरी - अमीर खुसरों

12 . तारीख-ए-इलाही - अमीर खुसरो

13 . सान-ए-मुहम्मदी - जियाउद्दीन बरनी

14 . तारीख-ए-फिरोजशाही - जियाउद्दीन बरनी

15 . रहेला - मुहम्मद बिन मुहम्मद 'इब्नबतूता'

16 . जफरनामा - शराफुद्दीन अली याजदी

17 . तारीख - ए- दाऊदी - अब्दुलाह

इन प्रमुख इतिहास ग्रंथों के अतिरिक्त अनेक मध्यकालीन मुस्लिम ग्रंथों के अतिरिक्त अनेक मध्यकालीन मुस्लिम विद्वानों ने ऐसी बहुत पुस्तकों का प्रणयन कया है जो प्राचीन एवं मध्यकालीन भारतीय समाज, संस्कृति, राजनीति, धर्म, अर्थ तथा जीवन-पद्धतियों का दिग्दर्शन कराती है। भारतीय इतिहास लेखन परम्परा में इन प्राचीन एवं मध्यकालीन ग्रंथों का महत्व सदा बना रहेगा।

बोध प्रश्न: लघु उत्तरीय प्रश्न

क. चार वेदों के नाम लिखिए तथा बताइये प्रमुख पुराणों की संख्या क्या है ?

ख. बौद्ध साहित्य के तीन अंग कौन-कौन से हैं ?

ग. अष्टाध्यायी एवं कामसूत्र के रचनाकार हैं ?

घ. अमीर खुसरों एवं इब्नबतूता की एक-एक कृतियों का नाम लिखिए।

1.6 साहित्येतिहास: अर्थ एवं स्वरूप

सर्वप्रथम यह प्रश्न महत्वपूर्ण है कि साहित्येतिहास क्या है। वे कौन-कौन से तत्व हैं जो किसी संगठिन संरचना को साहित्येतिहास के रूप में परिभाषित करती है। इस संबंध में प्रख्यात साहित्येतिहासकार वार्ष्णेय का मत उद्धृत किया जा सकता है, '' साहित्येतिहास व केवल साहित्य का पुरावृत्त अथवा उसके अतीत का इतिवृन्तात्मक विश्लेषण है, न केवल जीवनियों या कविवृत्त का संग्रह है, न केवल स्त्रोतों की खोज है, न केवल भाषा वैज्ञानिक अध्ययन है, न केवल कला पाठालोचना है, न केवल विधाओं और आंदोलनों का विकास क्रम या धारा निरूपण है और न केवल आलोचना है। साहित्येतिहास का उद्देश्य न केवल कलाकारों को जन्म देना है, न संस्कृति का प्रचार करना है और न अध्यापक बनाना है। उस लम्बे उदाहरण के पश्चात् यह तथ्य निश्चित हो जाते हैं कि अन्ततः साहित्येतिहास क्या नहीं है जब एक बार यह तथ्य निश्चित हो जाए कि साहित्येतिहास क्या नहीं है तो वास्तविक अर्थों में साहित्येतिहास क्या है यह जानना कंचित सरल जान पड़ेगा।

1.6.1 साहित्येतिहास: अवधारणा एवं परिभाषा

इकाई के पूर्व भाग में हमने देखा कि साहित्येतिहास का स्वरूप निर्धारित करते समय हमें किन-किन तथ्यों को मूलवश साहित्येतिहास नहीं समझ रखना चाहिए। उपरोक्त विश्लेषण के पश्चात् निश्चित किया जा सकता है कि साहित्येतिहास की मूल अवधारणा क्या है।

(क) साहित्येतिहास की अवधारणा - अपने विश्लेषण को आगे बढ़ाते हुए श्री वार्ष्णेय लिखते हैं, '' साहित्येतिहास मानव जीवन की ऊर्जा, उसके सूक्ष्म स्फुलिंग, उसके चेतना के व्यपक ज्ञान की एक विशिष्ट होने के कारण उसका अपना स्वतंत्र अस्तित्व सर्वोच्च साधन है। वह एक ऐसी खोज का माध्यम है जिससे मानव मन का वह पक्ष ढूंढा जाता है जो हमारे अस्तिचर्ममय अस्तित्व से उपर हैं। मैं साहित्येतिहास को ज्ञान की ऐसी विधा मानता हूँ जो कृतियों के अध्ययन द्वारा निरंतर परिवर्तनशील जीवधारियों का सार्वभौम के भीतर विकास (जैविक विकास नहीं) स्थिर करती है।'' इस प्रकार हम देखते हैं कि साहित्येतिहास ने ज्ञान की एक ऐसी शाखा के रूप में अपना विकास किया है जिसके अन्तर्गत साहित्य के माध्यम से मानव की समग्र वैचारिक एवं मनोगत चेतना के विकास का अध्ययन संभव है। प्रख्यात विद्वान **श्री नलिन विलोचन शर्मा** ने लिखा है, साहित्येतिहास नामों की तालिका-मात्र नहीं है। वह केवल घटनाओं और तिथियों की भी सूची नहीं है और, साहित्यिक इतिहास लेखकों की ऐसी तिथिमूलक तालिका भी नहीं है, जिसमें उनकी कृतियों का विवण और सारांश मात्र है। साहित्यिक इतिहासकार के लिए यह तो आवश्यक है ही कि उसे प्राग्भावी साहित्य का पाठ सुलभ हो, क्योंकि साहित्यिक इतिहास तब तक लिखा ही नहीं जा सकता जब तक समृद्ध

पुस्तकालय और सुव्यवस्थित सूचीपत्र न हो किन्तु यदि साहित्यिक इतिहासकार चाहता है कि स्वयं उसकी तिथिमूलक सूचीपत्र से कुछ अधिक भिन्न हो, तो उसे कार्य-कारण संबंध और सातत्य का ज्ञान, सांस्कृतिक परिवेश का कुछ बोध और उस व्यवस्था में यत्किंचत् प्रवेश होना ही चाहिए, जिसमें अंशीभूत प्रवेश होना ही चाहिए, जिसमें अंशीभूत कलाएँ अंशीभूत सभ्यता से संबद्ध रहती है।

(ख) साहित्येतिहास की परिभाषा - साहित्येतिहास की अवधारणा को निश्चित करने के पश्चात् अध्ययन की उपयोगिता के लिए आवश्यक है कि साहित्यिक इतिहास के स्वरूप का निर्धारण भी आवश्यक। इस संबंध में यह भी महत्वपूर्ण है कि साहित्येतिहास की एक निश्चित परिभाषा का निर्धारण एवं विशलेषण किया जाए। इसी आधार पर साहित्येतिहास का स्वरूप स्पष्ट किया जा सकता है। विद्यार्थियों के अध्ययन को ध्यान मे रखकर हम कुछ सर्वमान्य परिभाषाओं को उद्धृत कर रहे हैं। इन्हीं परिभाषाओं के विश्लेषण से हम साहित्येतिहास का स्वरूप निश्चित कर सकेंगे। आचार्य रामचंद्र शुक्ल - **''जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। आदि से अंत तक इन्हीं चित्तवृत्तियों की परंपरा को परखते हुए साहित्य परंपरा के साथ उनका सामंजस्य दिखाना ही 'साहित्य का इतिहास' कहलाता है।''**

"किसी भी भाषा के साहित्य का इतिहास-लेखक उस भाषा के साहित्य के विषय में भाषा वैज्ञानिक गवेषणा पाठालोचन, सम्पादन, सांस्कृतिक चिंतन की व्याख्याओं, समीक्षाओं, समाज की परिवेशगत प्रवृत्ति आदि सभी अध्ययन प्रणालियों का उपयोग करता है और उसके प्रसाद का निर्माण इसकी नींव के बिना संभव नहीं है। परिभाषाओं के आलोक में साहित्येतिहास की जो तस्वीर सामने आती है उसे अतीत और वर्तमान, रूप और वस्तु के परम्परागत निष्कर्षों की कसौटी पर चर्चा का केन्द्र नहीं बनाया जा सकता। साहित्येतिहास में रचनाओं का मूल्यांकन रचनाकार की रचनाशीलता के संबंध में जीवन की वास्तविकता की मींमासा, परम्परा का विवेचन और युग की सामाजिक सांस्कृतिक खोज का काम होता है।''

इस प्रकार हम देखते हैं कि विभिन्न विद्वानों ने साहित्येतिहास की अलग-अलग परिभाषाएँ निश्चित की है जिससे अध्येता को साहित्येतिहास के स्वरूप का ज्ञान प्राप्त होता है।

1.7 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप -

- ❖ इतिहास के अर्थ, स्वरूप एक प्रक्रिया का ज्ञान प्राप्त कर चुके होंगे।

- ❖ विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाओं के माध्यम से इतिहास की अवधारणा का ज्ञान प्राप्त कर चुके होंगे।
- ❖ इतिहासलेखन की भारतीय एवं पाश्चात्य परम्परा को जान चुके होंगे।
- ❖ साहित्येतिहास का स्वरूप, अर्थ एवं प्रक्रिया का ज्ञान प्राप्त कर चुके होंगे।

1.8 शब्दावली

साहित्येतिहास	-	साहित्य का इतिहास
परिप्रेक्ष्य	-	संबंध में, संदर्भ
श्रेयस्कर	-	लाभकारी, कल्याणकारी
कुतुबनुमा	-	दिशा सूचक यंत्र
सार्वभौम	-	जो सब जगह स्थित हो
सर्वमान्य	-	सभी को मान्य, स्वीकार

1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.3 के उत्तर

(क) अथर्ववेद

(ग) 484-425 ई.पू.

1.4 के अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(अ) सेंट आगस्टाइन

(ब) मौतेस्क्यू

(स) वोल्तेयर

(द) फीड्रिख हेगेल

(य) कार्लाइल

2. हीरोद्योतस

3. सही विकल्प चुनिए

(क) 1668-1744

(ख) थूसीडाइड्स

1.6 अतिलघु उत्तरीय प्रश्न -

(क) ऋग्वेद, अथर्ववेद, यजुर्वेद, सामवेद, 18 पुराण

(ख) (1) पिटक (2) जातक (3) निकाय

(ग) पाणिनी, वात्स्यायन

(घ) (1) तारीख-ए-इलाही - अमीर खुसरो

(2) रहेला - इब्नबतूता।

1.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. गुप्त, गणपति, हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास (प्रथम खण्ड), 2010, लोकभारतीय प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ - 01
2. मौर्य, देवलाल, हिंदी साहित्य का इतिहास दर्शन और रामचंद्र शुक्ल, 1993, एक्सीलेंश पब्लिशर्स इलाहाबाद, पृष्ठ -03
3. गुप्त गणपति, पूर्वोक्त, पृष्ठ - 03
4. खुराना एवं बंसल, इतिहास लेखन, धारणाएँ तथा पद्धतियाँ , 2009-10, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, पृष्ठ - 03
5. वार्ष्णेय, लक्ष्मीसागर, इतिहास और साहित्येतिहास 1984, भारतीय साहित्य प्रकाशन, मेरठ, पृष्ठ - 37
6. पूर्वोक्त, पृष्ठ - 37
7. पूर्वोक्त, पृष्ठ - 38
8. खुराना एवं बंसल, पूर्वोक्त, पृष्ठ - 112
9. पूर्वोक्त, पृष्ठ - 122

10. वार्ष्णेय, लक्ष्मीसागर, पूर्वोक्त, पृष्ठ - 85

11. पूर्वोक्त, पृष्ठ - 86

12. शर्मा, नलिन विलोचन, साहित्य का इतिहास दर्शन, संवत् 2016, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, पृष्ठ - 33

13. शुक्ल, रामचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास संवत् 2055, काशीनागरी प्रचारिणी, सभा, वाराणसी, पृष्ठ-01

14. व्यास, भोलाशंकर, साहित्य का इतिहास - लेखन समस्या व समाधान, पृष्ठ – 04

1.11 सहायक पाठ्य सामग्री

1. इतिहास लेखन, धारणाएँ तथा पद्धतियाँ डा. के.एल. खुराना, डा.आर.के.बंसल लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।

2. इतिहास और साहित्येतिहास, डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, भारतीय साहित्य प्रकाशन मेरठ

3. हिंदी साहित्य का इतिहास-दर्शन, डॉ. शिवकुमार दिल्ली।

1.12 निबंधात्मक प्रश्न

(क) इतिहास की परिभाषा देते हुए इतिहास लेखन की भारतीय एवं पाश्चात्य परम्परा का विवेचन कीजिए।

(ख) साहित्येतिहास से आप क्या समझते है? सविस्तार व्याख्या कीजिए।

इकाई 2 हिन्दी साहित्येतिहास लेखन की परंपरा

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 हिन्दी साहित्येतिहास परम्परा का उद्भव एवं विकास
  2.3.1 हिन्दी साहित्येतिहास का स्वरूप
  2.3.2 हिन्दी साहित्येतिहास की सामग्री एवं स्रोत
2.4 हिन्दी साहित्येतिहास की परम्परा (एक)
  2.4.1 गार्सां द तासी कृत 'इतिहास'
  2.4.2 मौलवी करीमुद्दीन एवं एफ.फैलन कृत 'इतिहास'
  2.4.3 शिव सिंह सेंगर कृत 'इतिहास'
  2.4.4 सर जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन कृत 'इतिहास'
  2.4.5 मिश्रबन्धु कृत 'इतिहास'
  2.4.6 एडविन ग्रीव्ज कृत 'इतिहास'
  2.4.7 एफ.ई. के कृत 'इतिहास'
2.5 हिन्दी साहित्येतिहास की परम्परा (दो)
  2.5.1 आचार्य रामचंद्र शुक्ल कृत 'इतिहास'
  2.5.2 हिन्दी साहित्येतिहास के अन्य महत्वपूर्ण ग्रन्थ
2.6 सारांश
2.7 शब्दावली
2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
2.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
2.11 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से पूर्व आपने जाना की इतिहास किसे कहते हैं. 'इतिहास' का अपना आतंरिक स्वरुप व उसकी प्रक्रिया क्या है साथ ही आपने यह भी जाना की साहित्येतिहास किसे कहते हैं ? साहित्येतिहास के लक्षण, स्वरुप और विशेषताएं क्या हैं। प्रस्तुत इकाई से पूर्व आपने इतिहास तथा साहित्येतिहास
की विभिन्न लेखन पद्धतियों एवं परम्पराओं का ज्ञान प्राप्त किया।

प्रस्तुत इकाई में आप जानेंगे कि हिन्दी साहित्येतिहास का लेखन किन परिस्थितियों में प्रारम्भ हुआ। वो कौन-कौन से स्रोत थे जिनसे सामग्री संचयन कर इतिहास लेखकों ने हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की नींव रखी। इस इकाई में आप यह भी जानेंगे कि हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन का उद्भव एवं क्रमशः विकास कैसे हुआ. औपनिवेशिक एवं प्रति-औपनिवेशिक वातावरण ने हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की पद्धतियों को कैसे और कितना प्रभावित किया।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप हिन्दी साहित्येतिहास लेखन की सम्पूर्ण परम्परा का परिचय प्राप्त कर सकेंगे। जिसके आधार पर आप हिन्दी साहित्य के विभिन्न कालखंडों एवं उनकी विशेषताओं तथा सीमाओं को जान सकेंगे.

2.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप -

- बता सकेंगे कि हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन में सामाजिक पृष्ठभूमि का क्या महत्व है तथा साथ ही यह भी बता सकेंगे कि साहित्य की विचारधारा को समाज कैसे और कितना प्रभावित कर सकता है।
- समझा सकेंगे कि हिन्दी समाज की ऐतिहासिक चेतना का विकास क्रमशः कैसे हुआ तथा हिन्दी साहित्येतिहासकारों ने इस चेतना का रेखांकन और मूल्यांकन कैसे किया।
- समझा सकेंगे कि किसी भी समाज की साहित्यिक चेतना को विकसित करने में इतिहास का क्या महत्व है।

2.3 हिन्दी साहित्येतिहास परम्परा का उद्भव एवं विकास

किसी भी साहित्य का इतिहास लेखन बहुत जरूरी है। इतिहास लेखन इसलिए जरूरी नहीं कि उक्त साहित्य की सुदीर्घ परम्परा को कुछ पृष्ठों के उपयोग से जाना जा सके अपितु उस

साहित्य के भीतर स्वयं अपने को पहचानने की आकॉंक्षा इसका कारण होना चाहिए। दरअसल साहित्य केवल इसलिए नहीं होता है कि हम बीते हुए कालखण्ड को पहचान सकें अपितु साहित्य के इतिहास लेखन की प्रक्रिया अतीत के साथ-साथ वर्तमान को पहचानने की भी होती है।

2.3.1 हिन्दी साहित्येतिहास का स्वरूप -

हिंदी साहित्येतिहास को किसी भी कारण मिश्रबंधुओं से पहले नहीं खींचा जा सकता। हालांकि अन्ततः हिंदी साहित्य का पहला व्यवस्थित इतिहास तो **आचार्य रामचंद्र शुक्ल** (1884-1941) का **'हिंदी साहित्य का इतिहास'** (1929) ही है। परन्तु सर ग्रियर्सन और मिश्रबंधुओं का अध्ययन हम हिंदी साहित्य के इतिहास को जाँचने वाली मेधा के दो ध्रुवांतों के रूप में कर सकते हैं। एक इतिहास (मिश्रबंधु विनोद) उस जाति की प्राचीन इतिहास-दृष्टि के साथ अपने वर्तमान को परिभाषित करने वाला दिखाई देता है तो दूसरा इतिहास (**द मॉर्डन वर्नाक्यूलर लिट्रेचर ऑफ हिन्दुस्तान**) उस जाति की चेतना को औपनिवेशिक प्रत्यारोपण के माध्यम से परिभाषित करने की कोशिश करता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने इतिहास में पहली बार साहित्य और समाज के गतिशील विकासवादी संबंधों को पहचानने की कोशिश की थी, जैसा कि उनका इतिहास संबंधी दृष्टिकोण है, जिसमें वे लिखते है: ''जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में परिवर्तन होता चला जाता है। आदि से अंत तक इन्हीं चित्तवृत्तियों की परम्परा को परखते हुए साहित्य परम्परा के साथ उनका सामंजस्य दिखाना ही 'साहित्य का इतिहास' कहलाता है।''

कोई भी इतिहास साहित्य का लिखा जाएगा तो साहित्य में जनता की चित्तवृत्ति के अनुरूप कैसे परिवर्तन हुआ है और चित्तवृत्तियों में परिवर्तनों का सामाजिक कारण क्या है इसे दिखलाए बिना इतिहास नहीं हो सकता और परिवर्तनों में जब तक आप परम्परा का निरूपण नहीं करेंगे, नैरंतर्य नहीं दिखाएं गे, तब तक इतिहास नहीं होगा। इसलिए उसमें परम्परा और परिवर्तन, सामाजिक आधार पर चित्तवृत्तियों के अनुरूप साहित्य में जैसे-जैसे परिवर्तन होगा, दिखाएँगे । यही इतिहास होगा। निश्चित ही शुक्ल जी ने हिंदी को उसका पहला व्यवस्थित इतिहास ही नहीं अपितु हिंदी को एक व्यवस्थित इतिहास-दृष्टि भी प्रदान की। उन्होंने अपने से पहले की सम्पूर्ण ऐतिहासिक चेतना तथा साहित्य विषयक सामग्री को जोड़कर यह कार्य किया। सामाजिक चेतना के मौलिक परिवर्तनों के साथ क्रमश: विकसित होती हुई 'ऐतिहासिक-दृष्टि पर बात करते हुए प्रो.रामस्वरूप चतुर्वेदी लिखते हैं : ''19वीं सदी से ही आधुनिक चिंतन सामान्य जन को केन्द्र में रखकर चलता है। इसलिए इतिहास में राज-वंशों के स्थान पर सामाजिक इतिहास का महत्व, साहित्य में क्लैसिक आभिजात्य के स्थान पर रोमांटिकों की जनसामान्य में

रूचि, दर्शन में मानववादी परिणति, जनतंत्र का उदय, ये सभी प्रवत्तियाँ एक ही दिशा की ओर संकेत करती है। इसी समय के आस-पास लोक इतिहास और लोक वार्ता में अध्ययन की निष्ठा जाग्रत होती है, और जर्मनी के पांडित्य में उस समय उपहास के विषय 'नव्य वैयाकरण' अतीत की गौरवशाली पर अब मृत भाषाओं के स्थान पर समकालीन जीवित एवं विकासशील जनभाषाओं के अध्ययन पर बल देते हैं।.....लोक जीवन और लोक शक्ति में आस्था आधुनिक विचारधारा की एक प्रमुख पहचान है।''

2.3.2 हिन्दी साहित्येतिहास की सामग्री एवं स्रोत

श्री देवलाल मौर्य ने 'हिंदी साहित्येतिहास लेखन के उद्गम स्रोत' का परिचय देते हुए लिखा ''यह एक विचारणीय प्रश्न है कि हिंदी के इस विकसित रूप का मूल स्रोत क्या है और वह कहाँ से निकलकर कहाँ तक प्रवाहित हुआ है?..... मूल कृतियों के अतिरिक्त जो सूचनाएँ अन्य स्थानों से प्राप्त होती है, उन्हें साहित्येतिहास के स्रोत कहा जा सकता है। सामान्यतः इतिहास के स्रोत बहुमुखी होते हैं, परन्तु साहित्येतिहास के स्रोत काफी सीमित एवं कई श्रेणियों में विभक्त होते हैं। उसके पश्चात् उसी युग में लिखा गया अन्य साहित्य आता है। क्रमशः काल के विस्तार में लिखे गए साहित्य की प्रमाणिकता संदिग्ध होती जाती है परन्तु उनसे कार्य लेने के अपने ऐतिहासिक तरीके हैं।''

उन्होंने अपने से पूर्व में हुए अध्ययनों के आधार पर हिंदी साहित्येतिहास की सामग्री को 10 भागों में विभाजित किया है।

1- कविवृत्त-संग्रह,
2- पूर्ववर्ती इतिहास,
3- वार्ता-साहित्य,
4- भक्तमाल साहित्य
5- पश्चिमी साहित्य,
6- जीवनी साहित्य,
7- ग्रंथों में आए उद्धरण,
8- दरबारी ग्रंथ,
9- सांप्रदायिक ग्रंथ,
10- शिलालेख आदि।

हिन्दी साहित्येतिहास लेखन के कुछ प्रमुख स्रोत-

1. कविवृत्त-संग्रह –

- कविमाला (संवत् 1712) 75 कवि संकलित।
- कालिदास हजारा (सन् 1719) 212 कवि।

- अलंकार-रत्नाकर (संवत् 1792) ।
- सार संग्रह (संवत् 1880) ।
- सत्कविगिराविलास (संवत् 1803) बदलेव कवि कृत-17 कवि संकलित।
- विद्वन्मोदतरंगिणी-राजासुब्बा सिंह (संवत् 1874) 44 कवि संकलित।
- राग कल्पद्रुम-कृष्णानंद व्यासदेव रामसागर (संवत् 1900) 200 संत कवि संकलित। मिश्रबंधुओं ने इसी ग्रंथ को 'रामसागरोद्भव संग्रह' माना है।
- रामचन्द्रोदय-ठाकुर प्रसार त्रिवेदी (संवत् 1920) 242 कवि संकलित।
- दिग्विजय भूषण-लाला गोकुल प्रसाद 'बृज' (संवत् 1952) 192 कवि संकलित।
- सुन्दरी तिलक-भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र (सन् 1869) 69 कवि संकलित।
- भाषा काव्य संग्रह (महेश दत्त शुक्ल) (सन् 1873) ।
- हिंदी-कोविद-रत्नमाला (तीन भागों में) -डॉ.श्यामसुदंर दास (सन् 1909-1914)।
- कविता कौमुदी (चार भागों में) पं. रामनरेश त्रिपाठी (सन् 1922-1924)।
- ब्रजमाधुरी सार-वियोगी हरि (सन् 1923) ।

2. वार्ता साहित्य - सुप्रसिद्ध पुष्टिमाग्रीय संप्रदाय में इन ग्रंथों का महत्वपूर्ण स्थान है। ये दो हैं –

- चौरासी वैष्णवन की वार्ता (सन् 1568 के लगभग)।
- दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता (सन् 1568 के लगभग)।

3. भक्तमाल साहित्य –

- नाभादास कृत 'भक्तमाल' (लगभग 1585)।
- जगाकृत 'भक्तमाल'।
- चैनजी कृत 'भक्तमाल'
- भगवत मुदित कृत 'रसिक अनन्यमाल'।

4. परिचयी साहित्य – यह भी भक्तमाल की तरह सन्त-भक्त कवियों के परिचय (चरित्र इत्यादि) का संकलन है।

- अनंतदास की 'परिचयियाँ ' सर्वाधिक प्रसिद्ध है।

5. बीतक साहित्य या जीवनी साहित्य –

'बीतक' शब्द का अर्थ है – वृत्त या वृत्तान्त

- स्वामी लाल दास कृत बीतक
- ब्रजभाषा कृत बीतक।
- हंसराज स्वामी कृत बीतक इत्यादि।

हिन्दी साहित्य से संबंधित ऐसी इतस्तत सामग्री का अपना ऐतिहासिक महत्व है। महत्वपूर्ण होते हुए भी यह सामग्री इतिहास नहीं अपितु यह अपने आप में इतिहास-दृष्टि देने में भी असमर्थ है। संभवत: इतिहास-दृष्टि इस सामग्री के सापेक्ष कहीं और विकसित होकर इस सामग्री को अपने योग्य नियोजित करती है। राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक दशाएं किसी जाति को अपने इतिहास (राजनैतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं सामाजिक) लिखने की प्रेरणा प्रदान करती है।

अभ्यास प्रश्न

साहित्य का इतिहास लेखन इसलिए जरुरी है क्योंकि -

1 . (सही उत्तर के सामने सही √ का निशान लगाएं)

(क) हमें स्वयं के अतीत के बारे में जानकारी मिल सके .

(ख) हमें स्वयं के अतीत के साथ-साथ वर्तमान की पहचान कर सकें.

(ग) हमें इतिहास-विषय में अच्छे अंक मिल सकें . फ्क

(घ) इनमें से कोई नहीं .

2 . सही विकल्प चुनिए

(क) कविता कौमुदी का सम्बन्ध किस से है

(1)रामचंद्र शुक्ल (2)नामवर सिंह (3)ग्रियर्सन (4)रामनरेश त्रिपाठी

(3) परिचयियाँ के लेखक हैं

(1) नाभादास (2) कबीर (3)अनंतदास (4)रैदास

4 . हिन्दी साहित्येतिहास लेखन की स्रोत सामग्री पर एक संक्षिप्त टिपण्णी लिखिए (पांच पंक्तियों में उत्तर दें)

.....

.....

.....

.....

.....

2.4 हिन्दी साहित्येतिहास की परम्परा (एक)

2.4.1 गार्सां द तासी कृत 'इतिहास'

(इस्त्वार द ल लितेरेत्यूर ऐंदुइ ए ऐंदुस्तानी, 1839)- हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन का प्रथम प्रयास एक फ्रांसीसी विद्वान गार्सां द तासी (1794-1878) द्वारा किया गया। फ्रांस के प्रसिद्ध बन्दरगाह मारसेल में जन्में इस अध्येता को फ्रेंच, अंग्रेजी, लैटिन के अलावा फारसी, अरबी, तुर्की, उर्दू और संस्कृत भाषा की भी खासा ज्ञान था। पारसी विश्वविद्यालय में उर्दू के प्रोफेसर गार्सा द तासी ने 'इस्त्वार द ल लितेरेत्यूर ऐंदुइ ए ऐंदुस्तानी' के नाम से हिंदुई और हिन्दुस्तानी का इतिहास फ्रेंच भाषा में लिखा था। इसके प्रथम संस्करण का प्रथम भाग 1839 ई. में, जिसमें मात्र कवि परिचय था, प्रकाशित हुआ दूसरा भाग कुछ समय पश्चात् 1847 ई. में प्रकाशित हुआ। इस दूसरे भाग में फ्रेंच भाषा में कवियों की रचनाओं के उदाहरण संकलित थे। यह प्रथम संस्करण ग्रेट ब्रिटेन और आयरलैण्ड की ओरिएंटल ट्रांसलेशन कमेटी द्वारा प्रकाशित किया गया था। उर्दू से लगाव होने के नाते इस ग्रंथ में उल्लिखित 738 कवि और लेखकों में से मात्र 72 हिंदी और उसकी बोलियों के कवि माने जा सकते हैं। ''इस पुस्तक का द्वितीय संस्करण तीन भागों में प्रकाशित हुआ। प्रथम एवं द्वितीय भाग सन् 1870 तथा तृतीय भाग 1871 में पेरिस से प्रकाशित हुआ। तीनों भागों में क्रमश: एक हजार दो सौ तेइस, एक हजार दो सौ और आठ सौ एक कवियों और लेखकों का उल्लेख है।'' खोज के पश्चात् भी इस ग्रंथ की मूल प्रति उपलब्ध नहीं हो पाई परन्तु सौभाग्य से हिंदी जगत के प्रख्यात विद्वान, **डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय** द्वारा तासी के इस ऐतिहासिक ग्रंथ के सभी भागों की मूल भूमिकाओं एवं 358 कवि और लेखकों का

परिचय '**हिन्दुई साहित्य का इतिहास' हिन्दुस्तानी एकेडेमी, उत्तरप्रदेश इलाहाबाद** से सन् **1953** में किया गया है।

2.4.2 मौलवी करीमुद्दीन एवं एफ.फैलन कृत 'इतिहास'

(तबकातुश्शुअरा 1848) - इस ग्रंथ को मौलवी करीमुद्दीन नामक व्यक्ति ने 1848 में देहली कॉलेज द्वारा प्रकाशित करवाया। इसे 'तबकातुश्शुअरा' अथवा 'तजकिरा-ई-शुअरा-ई-हिंदी' के नाम से जाना जाता है। दुर्भाग्यवश इस ग्रंथ का मूल, अनुवाद अथवा 'इसका कोई संक्षिप्त भाग' खोजने पर भी न मिल सका। विभिन्न विद्वानों द्वारा छिटपुट लेखों के आधार पर इस ग्रंथ के विषय में लिखा गया है। इन लेख-निबंधों द्वारा इतना ही ज्ञात हुआ है कि अन्तत: यह पुस्तक तजकिरा-ई-शुअरा-ई-हिंदी' 'तजकिरा' अर्थात् जिक्र (चर्चा) मात्र ही है। इस पुस्तक के मुखपृष्ठ पर इंग्लिश में जो विवरण मुद्रित है वो इसके इतिहास (हिस्ट्री) होने की बात कहता है'' 'ए हिस्ट्री ऑफ उर्दू पोएटस चीफली ट्रांसलेटेड फ्राम इस्त्वार द ल लितरेत्यूर ऐंदुई ऐ ऐंदुस्तानी', वाई.एफ.फैलन ऐन्ड मौलवी करीमुद्दीन विथ ऐडिशन्स। देहदी कॉलेज, 1848''। हालॉकि मूलत: यह ग्रंथ तासी की इतिहास पुस्तक का अनुवाद है परन्तु बिहार शिक्षा विभाग के इंस्पैक्टर वाई.एफ.फैलन ने इसका अनुवाद उर्दू में किया जिसमें मौलवी करीमुद्दीन ने अपनी ओर से बहुत कुछ तोड़ा और जोड़ा है। यह जोड़-तोड़ इतनी अधिक है कि स्वयं तासी ने अपनी पुस्तक के द्वितीय संस्करण में इसका उपयोग किया है और इसे एक स्वतंत्र ग्रंथ के रूप में मान्यता भी दी है।

2.4.3 शिव सिंह सेंगर कृत 'इतिहास'

(शिवसिंह सरोज, 1878) - शिवसिंह सेंगर द्वारा लिखा यह ग्रंथ अपने वृहद कवि संकलन के बतौर अपना महान ऐतिहासिक महत्व रखता है। डॉ.किशोरीलाल गुप्त हालाँकि इसे भी इतिहास ग्रंथ नहीं मानते परन्तु फिर भी वे इसे हिंदी साहित्येतिहास का प्रस्थान बिंदु मानते है।

'शिवसिंह पुलिस के सरकिल इंस्पेक्टर थे और प्राचीन काव्य में इनकी अभिरूचि थी। 'सरोज' में 838 कवियों की कविताओं के प्राय: दो हजार नमूने दिए गए हैं। काव्य संग्रह के उपरांत ग्रंथ के उत्तरार्द्ध में, प्राय: 125 पृष्ठों में सेंगर जी ने 1003 कवियों का जीवन चरित्र भी अकारादि क्रम से दिया है। इन 1003 कवियों में से 687 की तिथियाँ भी दी गई हैं, 53 कवि 'विद्यमान' कहे गए हैं, 263 कवि तिथिहीन हैं।''

अपनी विशाल सामग्री के कारण बाद के इतिहासकारों (जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन, मिश्रबंधु) के साथ अब तक भी 'शिवसिंह सरोज' का महत्व बना हुआ है, लेकिन ठेठ ऐतिहासिक दृष्टि के आभाव के कारण अन्तत: शिवसिंह सरोज भी इतिहास ग्रंथ नहीं है। वे ग्रंथ की भूमिका में ''भाषा काव्य निर्णय'' शीर्षक से हिंदी भाषा का मूल खोजने का प्रयत्न करते हैं।

इसी स्मृति सम्पन्न प्रयत्न के चलते वे हिंदी की अपनी चेतना को लेकर विक्रम सवंत् 770 में विद्यमान पुंड कवि तक पहुँचते हैं।

2.4.4 सर जान अब्राहम ग्रियर्सन कृत 'इतिहास'

(द माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान, 1889) - भाषा – वैज्ञानिक, इतिहासज्ञ और प्राच्य विद्याविशारद के रूप में सर जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन (1851-1941) का नाम सर्वप्रसिद्ध है। बिहारी भाषाओं के सात व्यकरण (1883-1887) लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इण्डिया (11 जिल्दों में) जैसे महान और वृहदकाय ग्रंथ के अलावा इन्होंने 'द मॉर्डन वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान' (1889) जैसे ग्रंथ का भी प्रणयन किया। सन् 1886 में डॉ. ग्रियर्सन ने सप्तम अन्तर-राष्ट्रीय प्राच्यविद् सम्मेलन, वियना में हिन्दुस्तान (हिंदी भाषा-भाषी प्रदेश) के मध्यकालीन भाषा साहित्य और तुलसी पर एक लेख पढ़ा था, (मूल लेख-द मिडीवल वर्नाक्यूलर लिट्रेचर ऑफ हिन्दुस्तान विद स्पेशल रेफ्रंस टु तुलसीदास) बहाने समग्र हिंदी परिदृश्य पर लिखे गए इस लेख को सम्मेलन एवं उसके पश्चात् भी विद्वानों ने खूब सराहा और उसे अधिक स्थिर रूप देने को कहा। इसी का परिणाम यह हुआ कि ग्रियर्सन ने **'द मार्डन वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान'** लिखा। जिसका प्रथम प्रकाशन 1888 में 'रायल एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल' की संख्या एक में हुआ। एक वर्ष पश्चात् यह वृहद निबंध पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित हुआ। ग्रियर्सन के ग्रंथ का अपना ऐतिहासिक महत्व है।

ग्रियर्सन के ग्रंथ में पहली बार इतिहास बोध को रेखांकित किया जा सकता है। डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय लिखते हैं ''यद्यपि ग्रियर्सन का यह दावा है कि उन्होंने लगभग सभी 952 कवियों और लेखकों की रचनाओं को पूर्ण या आशिंक रूप में, या नमूनों के रूप में देखा था, तो भी, तासी और सेंगर के ग्रंथों की भांति उनके ग्रंथ में बहुत से कवियों और लेखकों के नाम, जन्म–तिथि, निवासस्थान, आदि के साथ अध्यायों के अंत में पूरक अंश के रूप में अथवा विविध शीर्षक के अन्तर्गत दिए गए हैं। इसीलिए उन्होंने अपने ग्रंथ को विधिवत् लिखा गया साहित्येतिहास कहने में संकोच किया है। उसकी सबसे बड़ी विशेषता काल-विभाजन है।''

ग्रियर्सन के इतिहास लेखन में कुछ ठोस विशेतषताएं भी हैं जिन्हें स्वीकार करके ही हिंदी साहित्येतिहास की ऐतिहासिकता पूर्ण होती है। दरअसल सर जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन के पास अपनी व्यक्तिगत खोज और गहन अध्ययनशील प्रवृत्ति के चलते हिन्दुस्तान की भाषा एवं इसके साहित्य को समझने, इसके भीतर बहने वाली विभिन्न धाराओं को जाँचने की प्रखर संभावनाएं मौजूद थीं।

2.4.5 मिश्रबन्धु कृत 'इतिहास'

(**मिश्रबंधु विनोद, 1913**) - इटौंजा, जिला लखनऊ निवासी पं.गणेश बिहारी मिश्र, रावराजा डॉक्टर श्याम बिहारी मिश्र (1873-19 फरवरी 1947) डी.लिट्., साहित्य वाचस्पति पं.शुकदेव बिहारी मिश्र तीनों सगे भाई थे एवं ''मिश्रबंधु'' नाम से संयुक्त रूप से पुस्तकें लिखा करते थे। दिसंबर 1901 में इन्होंने 'सरस्वती' नामक प्रसिद्ध पत्रिका के एक अंक में 'हिंदी-साहित्य का इतिहास' लिखने की बात कही थी। सन् 1900 में काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने हस्तलिखित हिंदी ग्रंथों की खोज का कार्य प्रारम्भ किया। 1900 से 1908 तक खोज कार्य के निरीक्षक बाबू श्यामसुंदर दास थे। 1909 से 1916 तक इसके निरीक्षक श्याम बिहारी मिश्र एवं शुकदेव बिहारी मिश्र हुए। इस खोज कार्य से मिश्र बंधुओं को इतिहास लिखने में बहुत सहायता हुई। इस ग्रंथ का प्रथम संस्करण संवत् 1970 (सन् 1913) में प्रकाशित हुआ। उस समय इसमें तीन भाग, 1593 पृष्ठ तथा 3,757 कवियों एवं लेखकों के विवरण थे। कुल मिलाकर 4591 कवियों एवं लेखकों के विवरण समालोचनाओं एवं चक्रों में दिए गए थे। जब तक चतुर्थ भाग निकले, उसके पूर्व ही प्रथम भाग का तृतीय संस्करण, सं. 1986 (सन् 1929) में निकल गया।

इस प्रकार कई स्तरों से कवियों एवं लेखकों के विषय में सूचनाएं संग्रहित करने के पश्चात् 'मिश्रबंधुओं' ने एक बृहद्काय ग्रंथ का निर्माण किया जिसे स्वयं उन्होंने **'मिश्रबंधु विनोद' अथवा 'हिंदी साहित्य का इतिहास तथा कवि-कीर्तन'** कहना उचित समझा।

मिश्रबंधुओं ने हिंदी साहित्य के इतिहास को निम्नांकित कालों में विभाजित किया है। विषय-वस्तु के आधार पर यह काल-विभाजन 'मिश्रबंधु विनोद' के विभिन्न भागों में व्याप्त है।

पूर्व प्रारंभिक हिंदी सं. 700 से 1347 तक

चंद पूर्व हिंदी-सं. 700-1200

रासो काल – सं. 1201-1347

उत्तर प्रारंभिक हिंदी –सं. 1348-1444

उत्तर प्रारंभिक हिंदी-सं. 1348-1444

माध्यमिक हिंदी

पूर्व माध्यमिक-हिंदी-सं. 1444-1560

प्रौढ़ माध्यमिक हिंदी-सं. 1561-1680

अष्टछाप-1561-1630

सौरकाल – 1561 -1630

गोस्वामी तुलसीदास तथा तुलसीदास की हिंदी-सं. 1631-1680

पूर्व तुलसीकाल- 1631-1645

माध्यमिक तुलसीकाल – 1646-1670

अंतिम तुलसीकाल – 1671-1680

(मिश्रबंधु विनोद-द्वितीय भाग सं.-1681-1889)

अलंकृत हिंदी

पूर्वालकृंत प्रकरण- 1681-1790

पूर्वालकृंत हिंदी

महाकवि सेनापति

सेनापति काल 1681-1706

बिहारी काल 1707-1720

भूषण काल 1721-1750

आदिम देवकाल 1751-1771

माध्यमिक देवकाल 1772-1790

उत्तरालंकृत प्रकरण 1791-1889

उत्तरालंकृत हिंदी

दास काल 1791-1810

सूदन काल 1811-1830

रामचंद्रकाल 1839-1855

बेनी प्रवीन काल 1856-1875

पद्माकर काल 1876-1889

(मिश्रबंधु विनोद – तृतीय भाग 1890-1955)

अज्ञात काल-उन प्राचीन कवियों का अकारादि क्रम से वर्णन, जिनका काल निर्धारण नहीं हो सका।

परिवर्तन प्रकरण 1890-1925

परिवर्तन कालिक हिंदी

द्विजदेव काल 1890-1915

दयानंद काल 1916-1926

वर्तमान काल – 1926

वर्तमान हिंदी एवं पत्रपत्रिकाएं 1926-1945

पूर्व हरिश्चंद्र काल-1926-1935

उत्तर हरिश्चंद्र काल – 1936-1945

(मिश्रबंधु विनोद –चतुर्थ भाग- सं. 1946-1990)

पूर्व नूतन परिपटी 1945-1960

उत्तर नूतन परिपाटी 1961-1994

प्रथम भाग – 1960-1975

द्वितीय भाग आजकल 1976-1994 तक (सभी तिथियाँ विक्रम संवत् हैं।)

इस प्रकार हम देखते हैं कि अपनी निर्धारित सीमा के भीतर रहते हुए मिश्रबंधुओं ने सम्पूर्ण हिंदी साहित्य का एक पूर्ण चित्र प्रस्तुत करने का प्रयत्न अवश्य किया था। हालाँकि मिश्रबंधुओं से पूर्व जिस तरह ग्रियर्सन ने अपनी मानसिकता के अनुसार एक काल-विभाजन किया था उसी प्रकार मिश्रबंधुओं ने भी हिंदी की क्रमश: विकसित होती हुई स्वाभाविक चेतना को कालानुसार विभाजित किया। काल-विभाजन की यही चेतना आगे चलकर आचार्य शुक्ल के इतिहास में सर्वमान्य रूप ग्रहण करती है।

2.4.6 एडविन ग्रीव्ज कृत 'इतिहास'

(ए स्केच ऑफ हिंदी लिटरेचर-एड्विन ग्रीव्स,1918) - इसके पश्चात् एक अंग्रेज विद्वान एड्विन ग्रीव्ज ने 1918 में 'ए स्केच ऑफ हिंदी लिटरेचर' प्रकाशित किया। अपनी इस पुस्तक में उन्होंने यथासंभव पिछली सारी साहित्यिक सामग्री से सहायता ली। मूल रूप से यह पुस्तक 112 पृष्ठों की एक छोटी-सी रचना है। सम्पूर्ण पुस्तक आठ भागों में विभाजित है (मूल रूप से यह पुस्तक नहीं देखी गई है डॉ.किशोरीलाल द्वारा 'हिंदी साहित्य का रेखांकन' नाम से इसका अनुवाद 1995 में हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ है।) श्री ग्रीव्ज ने बेहद संक्षिप्तता के साथ इस पुस्तक में हिंदी साहित्य का सामान्य परिचय प्रस्तुत किया है। श्री ग्रीव्ज ने हिंदी साहित्य के इतिहास को पाँच भागों में विभाजित किया है

1. आदिकाल	-	सन् 1400 तक
2. रचनात्मक काल	-	1400-1580
3. विस्तार काल	-	1580-1700

4. स्थिर काल - 1700-1800

5. पुनर्जागरण और परिवर्तनकाल – 1800 से वर्तमान

श्री ग्रीव्ज न केवल भाषा के विषय में बेहद साधारण विचार प्रस्तुत करते हैं अपितु हिंदी साहित्य के जनमान्य महान कवियों विद्यापति, खुसरों, कबीर, सूर और अन्य बड़े कवियों पर बहुत चलते ढंग से विचार करते हैं।

2.4.7 एफ.ई. के कृत 'इतिहास'

(ए हिस्ट्री ऑफ हिंदी लिट्रेचर, 1920) - 116 पृष्ठों की यह पुस्तक भूमिका, मानचित्र, संदर्भ ग्रंथ और नामानुक्रमिका के अतिरिक्त हिंदी साहित्य के इतिहास को कुल बारह अध्यायों में प्रस्तुत करती है।

1. हिंदी भाषा और उसकी पड़ोसी भाषाएं
2. हिंदी साहित्य का सामान्य सर्वेक्षण
3. आरम्भिक चारण युग के इतिवृत्त (1150-1400 ई.)
4. आरम्भिक भक्त कवि (1400-1550 ई.)
5. मुगल दरबार और उसका हिंदी साहित्य पर कलात्मक प्रभाव (1550-1800 ई.)
6. तुलसीदास और रामसम्प्रदाय (1550-1800 ई.)
7. कबीर के उत्तराधिकारी (1550-1800 ई.)
8. कृष्ण सम्प्रदाय (1550-1800 ई.)
9. चारण और फुटकल साहित्य (1550-1800 ई.)
10. आधुनिक काल (1800 ई.)
11. हिंदी साहित्य की सामान्य विशेषताएँ
12. वर्तमान स्थिति और हिंदी साहित्य का भविष्य

अभ्यास प्रश्न

5 . निम्नलिखित कथनों के सामने सत्य/असत्य लिखिए

(क) द मार्डन वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ़ हिन्दुस्तान के लेखक गार्सां द तासी हैं

(ख) आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा लिखित इतिहास ग्रन्थ का प्रकाशन 1902 में हुआ।

6. (लघु उत्तरीय प्रश्न दस पंक्तियों में उत्तर दें)

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार साहित्य का इतिहास किसे कहते हैं ?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

7 . अति लघु उत्तरीय प्रश्न

(क)मिश्र बंधुओं ने अपने साहित्येतिहास ग्रन्थ को किस नाम से पुकारा है ?

8 . निम्नलिखित इतिहास ग्रंथों को कालक्रम के अनुसार लिखिए -

(क) द मार्डन वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ़ हिन्दुस्तान

(ख) तबकातुश्शुअरा

(ग) मिश्रबंधु विनोद

(घ) ए स्केच ऑफ़ हिन्दी लिटरेचर

2.5 हिन्दी साहित्येतिहास की परम्परा (दो)

2.5.1 आचार्य रामचंद्र शुक्ल कृत 'इतिहास'

(हिन्दी साहित्य का इतिहास, 1929)- आचार्य रामचंद्र शुक्ल (1884-1941) की इतिहास दृष्टि को अधिकतर मध्ययुग, विशेषकर भक्तिकाल के परिप्रेक्ष्य में ही महत्वपूर्ण माना जाता है। यह बात अपनी ऐतिहासिकता के साथ सत्य भी है। भक्तिकाल के उदय और उसकी पृष्ठभूमि से लेकर उसकी साहित्यिक आलोचना में आचार्य शुक्ल वस्तुत: अपनी प्रतिभा का समग्र देते प्रतीत होते हैं।

काशी हिंदू विश्वविद्यालय में 1921 ई. से स्नातक और स्नातकोत्तर स्तर पर हिंदी के अध्ययन-अध्यापन का शुभारंभ हुआ। छात्रों के लिए हिंदी साहित्य के एक इतिहास की आवश्यकता महसूस हुई। आचार्य शुक्ल ने स्वयं स्वीकार किया है कि उस समय उन्होंने छात्रों के उपयोग के लिए कुछ संक्षिप्त नोट तैयार किए थे जिनमें परिस्थिति के अनुसार शिक्षित जन समूह की बदलती हुई प्रवृत्तियों को लक्ष्य करके हिंदी साहित्य के इतिहास के काल विभाग और रचना की भिन्न–भिन्न शाखाओं के निरूपण का एक कच्चा ढांचा खड़ा किया गया था। कार्य में गति आई 'हिंदी शब्द सागर' के समापन से। स्वयं आचर्य शुक्ल के अनुसार ''हिंदी शब्द-सागर''

समाप्त हो जाने पर उसकी भूमिका के रूप में भाषा और साहित्य का विकास देना भी स्थिर किया गया। अत: एक नियत समय के भीतर ही यह इतिहास लिखकर पूरा करना पड़ा।'' चन्द्रशेखर शुक्ल के अनुसार आचार्य शुक्ल को 'हिंदी शब्द सागर' की भूमिका के लिए 'हिंदी साहित्य का विकास, लिखकर पूरा करने में पूरे आठ महीने लगे। अन्तत: यह 'विकास' शब्दसागर के साथ जनवरी 1929 ई. में प्राकाशित हुआ ''किन्तु इस 'विकास' के कुछ अंशों का प्रकाशन 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' में पहले ही 1928 ई. में ही धारावाहिक रूप से हो चुका था।''

अपने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' के बिलकुल आरंभ में वे घोषित तौर पर बता देते हैं कि उनके लिए इतिहास क्या है। आचार्य शुक्ल लिखते हैं : **''जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। आदि से अंत तक इन्हीं चित्त्वृत्तियों की परम्परा को परखते हुए साहित्य परम्परा के साथ उनका सामंजस्य दिखाना ही 'साहित्य का इतिहास' कहलाता है। जनता की चित्तवृत्ति बहुत कुछ राजनीतिक, सामाजिक, सांप्रदायिक तथा धार्मिक परिस्थति के अनुसार होती है। अत: कारण स्वरूप इन परिस्थितियों का किंचित दिग्दर्शन भी साथ ही साथ आवश्यक होता है।''** आचार्य शुक्ल मानते हैं कि साहित्य जनता की चित्त्वृत्तियों का संचित प्रतिबिंब होता है, जैसे-जैसे चित्तवृत्ति बदलती है वैसे-वैसे साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता जाता है। साहित्य एवं समाज के इन सामान्तर परिवर्तनों का सामंजस्यपूर्ण आकलन ही 'साहित्य का इतिहास' कहलाता है। साहित्य के इतिहास की उपेक्षा करने का मतलब है, इन संबंधों को जड़ बना देना, साहित्यिक यथार्थ के वास्तविक स्वरूप की अनदेखी करना। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा प्रतिपादित हिन्दी साहित्य का काल-विभाजन निम्न प्रकार है-

आदिकाल	**(वीरगाथाकाल,**	**सं. 1050-1375)**
पूर्व मध्यकाल	**(भक्तिकाल,**	**सं. 1375-1700)**
उत्तर मध्यकाल	**(रीतिकाल,**	**सं. 1700-1900)**
आधुनिक काल	**(गद्यकाल,**	**सं. 1900-1984)**

2.5.2 हिन्दी साहित्येतिहास के अन्य महत्वपूर्ण ग्रन्थ

1. हिंदी साहित्य का इतिहास (1931)-रमाशंकर शुक्ल 'रसाल'
2. हिंदी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास (1932)- सूर्यकान्त शास्त्री।
3. हिंदी भाषा और साहित्य का विकास (1934)-अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'।
4. हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (1938)-डा. रामकुमार वर्मा।
5. हिंदी साहित्य की भूमिका (1940)- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी।

6. खड़ी बोली: हिंदी साहित्य का इतिहास (1941)-ब्रजरत्न दास।

7. हिंदी साहित्य (1948)-डा.रामरतन भटनागर।

8. हिंदी साहित्य का सुबोध इतिहास (1952)-गुलाबराय।

9. हिंदी साहित्य (1952)-आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी

10. हिंदी साहित्य का वृहद् इतिहास (16 भागों में)-सं.सुधाकर पाण्डेय (1960 से)।

11. हिंदी साहित्य का परिचय (1961)-चतुर सेन शास्त्री।

12. हिंदी साहित्य का प्रमाणिक इतिहास (1962) गंगाधर मिश्र।

13. हिंदी साहित्य का सरल इतिहास (1964)-डा.लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय।

14. हिंदी साहित्य का आर्दश इतिहास (1965)-डॉ.रामगोपाल शर्मा 'दिनेश'।

15. हिंदी साहित्य के अस्सी वर्ष (1954)-शिवदानसिंह चौहान

16. हिंदी साहित्य का प्रवृत्यात्मक इतिहास (1967)-डा.प्रताप नारायण टण्डन।

17. हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास (1968)- डा. गणपतिचन्द्र गुप्त।

18. हिंदी साहित्य एक परिचय (1968)-डा.त्रिभुवन सिंह।

19. हिंदी भाषा और साहित्य का इतिहास (1969)-डा.भगवतशरण चतुर्वेदी।

20. हिंदी भाषा का नया इतिहास (1969)-डा.रामखेलावन पाण्डेय।

21. हिंदी साहित्य एक ऐतिहासिक अध्ययन (1969)-डा.रतिभानु सिंह नाहर।

22. हिंदी साहित्य का इतिहास (1970)-डा.लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय

23. हिंदी साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास (1971)- डा.रामचन्द्र आनंद।

24. हिंदी साहित्य का अद्यतन इतिहास (1971)- डा.मोहन अवस्थी।

25. हिंदी साहित्य का विकास (1971)-वासुदेव शर्मा।

26. हिंदी साहित्य का मानक इतिहास (1973)-डा.0 लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय।

27. हिंदी साहित्य का इतिहास (1973) सं.डा.नगेन्द्र।

28. हिंदी साहित्य का अतीत (1960)- विश्वानाथप्रसाद मिश्र

29. हिंदी साहित्य का इतिहास (1973) प्रताप नारायण टण्डन।

30. हिंदी साहित्य का इतिहास (1973) डा.राममूर्ति त्रिपाठी।

31. हिंदी साहित्य का सर्वेक्षण (1977) विश्वंभर नाथ मानव।

32. हिंदी साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास (1982)- डा.वासुदेव सिंह।

33. हिंदी साहित्य का प्रवृत्तिपरक इतिहास (1985)- डा.रामप्रसाद मिश्र।

34. हिंदी साहित्य का विवेकात्मक इतिहास (1986)- डा.तिलक राज शर्मा।

35. हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास (1986)-रामस्वरूप चतुर्वेदी।

36. हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास (1996)-बच्चन सिंह।

इन सभी इतिहास-ग्रंथों ने युगीन परिस्थितियों के अनुसार हिंदी साहित्य के इतिहास को जॉचने का प्रयास किया। इन साहित्येतिहासों के अलावा अन्य कई-कई ऐसी साहित्यिक कृतियाँ प्रकाश में आई जिन्होंने साहित्य का समग्र इतिहास तो प्रस्तुत नहीं किया परन्तु अपनी ऐतिहासिक चेतना के बल पर हिंदी समाज को गहन इतिहास -बोध अवश्य प्रदान किया। समय-समय पर लिखे ऐसे ग्रंथ एक तरफ जहाँ हिंदी साहित्य की ऐतिहासकता को प्रस्तुत कर रहे थे वहीं अपने नए निष्कर्षों के आधार पर परम्परागत इतिहास बोध को बदल भी रहे थे। नंददुलारे वाजपेयी, राहुल सांकृत्यायन, डा.नगेन्द्र, अज्ञेय, मुक्तिबोध, रामविलास शर्मा, नामवर सिंह, विजयदेवनारायण साही, विद्यानिवास मिश्र, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, रमेशचन्द्र शाह आदि कुछ प्रमुख नाम इस संबंध में लिए जा सकते हैं।

अभ्यास प्रश्न

9 . अति लघु उत्तरीय प्रश्न

(क) मिश्र बंधुओं द्वारा लिखित हिन्दी साहित्येतिहास पुस्तक का क्या नाम है

(ख) हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा लिखित हिन्दी साहित्य की भूमिका का प्रकाशन किस वर्ष हुआ ?

(ग) ग्रियर्सन लिखित हिन्दी साहित्येतिहास विषयक पुस्तक का प्रकाशन किस वर्ष हुआ ?

10 . कालम '1'और '2' का सही मेल कीजिए

(क) रामचंद्र शुक्ल	शिव सिहं सरोज
(ख) रामकुमार वर्मा	हिन्दी साहित्य का इतिहास
(ग) शिव सिंह सेंगर	हिन्दी सहित्य का दूसरा इतिहास
(घ) बच्चन सिंह	हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास

11. लघु उत्तरीय प्रश्न .

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के पश्चात प्रकाशित दस प्रमुख हिन्दी साहित्येतिहास ग्रंथों एवं उनके लेखकों के नाम लिखिए

.....

.....

.....

…….....

.....

.....

.....

2.6 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप यह जान चुके हैं कि -

- हिन्दी साहित्येतिहास की लेखन परम्परा का उदभव एवं विकास कैसे हुआ
- हिन्दी साहित्येतिहास लेखन परम्परा के विकास के लिए कौन-कौन से साहित्यिक एवं गैरसाहित्यिक स्रोतों की भूमिका महत्वपूर्ण है।
- हिन्दी साहित्येतिहास की परम्परा का आरंभ कब हुआ।
- हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की परम्परा उपनिवेशवादी विचारधारा से किस प्रकार प्रभावित हुई।
- हिन्दी साहित्येतिहास लेखन परम्परा का भारतीय संदर्भ क्या था, हिन्दी लेखकों द्वारा हिन्दी साहित्येतिहास लेखन में क्या गुणात्मक परिवर्तन किए गए।
- हिन्दी साहित्येतिहास लेखन की सम्पूर्ण परम्परा का विकास कैसे हुआ।
- वर्तमान तक हिन्दी साहित्येतिहास परम्परा की दशा एवं दिशा क्या है।

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. हम स्वयं के अतीत के साथ-साथ वर्तमान की पहचान कर सकें. √
2 . रामनरेश त्रिपाठी
3. अनंतदास
4 . हिन्दी साहित्येतिहास लेखन की स्रोत सामग्री पर एक संक्षिप्त टिपण्णी लिखिए
(पांच पंक्तियों में उत्तर दें)

उत्तर :

.....

.....

.....

.....

.....

5. (क) (असत्य)
(ख). (असत्य)
6. (लघु उत्तरीय प्रश्न दस पंक्तियों में उत्तर दें)

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार साहित्य का इतिहास किसे कहते हैं ?

उत्तर : .....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

7 . हिन्दी साहित्य का इतिहास तथा कवि कीर्तन

8 . (क) तबकातुश्शुअरा 1848

(ख) द मार्डन वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ़ हिन्दुस्तान 1889

(ग) मिश्रबंधु विनोद 1913

(घ) ए स्केच ऑफ़ हिन्दी लिटरेचर 1918

9 . (क) मिश्रबंधु विनोद 1913

(ख) 1940

(ग) 1889

10 . (क) (ख)

(ख) (घ)

(ग) (क)

(घ) (ग)

2.8 शब्दावली

साहित्येतिहास	-	साहित्य का इतिहास
चित्तवृत्ति	-	मन का भाव
औपनिवेशिक	-	उपनिवेश सम्बन्धी
इतिवृत्तात्मक	-	घटना प्रधान
परिप्रेक्ष्य	-	सन्दर्भ
प्रतिपादन	-	किसी भी विषय का सप्रमाण कथन,बोध कराना
संचित	-	एकत्र , जमा किया हुआ
मनोभूमि	-	मन का स्तर

2.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. पाण्डेय डॉ.मैनेजर, *साहित्य और इतिहास दृष्टि,* 1981, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली।

2. शुक्ल आचार्य रामचंद्र, *हिंदी साहित्य का इतिहास*, 2007, लोक भारती प्रकाशन,

3. मौर्य डॉ.देवलाल, *हिंदी साहित्य का इतिहास-दर्शन और रामचंद्र शुक्ल,* 1993, इलाहाबाद।

4. द्विवेदी आचार्य हजारी प्रसाद, *हिंदी साहित्य की भूमिका*, 1940 राजकमल प्रकाशन दिल्ली।

5. वार्ष्णेय लक्ष्मीसागर, *इतिहास और साहित्येतिहास,* 1984, भारतीय साहित्य प्रकाशन, मेरठ।

6. ठाकुर, समीक्षा, *आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के इतिहास की रचना प्रक्रिया*, 1996, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद।

7. सिंह बच्चन, *हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास,* 1996, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली।

8. डॉ.नगेन्द्र, *हिंदी साहित्य का इतिहास* 1973, मयूर प्रकाशन नई दिल्ली।

9. चतुर्वेदी रामस्वरूप, *हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास* 1986, राजकमल प्रकाशन दिल्ली।

10.तासी गार्सा द, *हिंदुई साहित्य का इतिहास*, भूमिका, 1953, हिन्दुस्तानी एकेडमी इलाहाबाद।

11. ग्रियर्सन, *हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास*, 1961, हिन्दुस्तानी एकेडमी इलाहाबाद।

12. राजे, सुमन, *हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास*, 2004, भारतीय ज्ञान पीठ नई दिल्ली।

13. चतुर्वेदी रामस्वरूप, *इतिहास और आलोचक दृष्टि*, 1998, तक्षशिला प्रकाशन नई दिल्ली।

14. सिंह त्रिभुवन, *साहित्यिक निबंध*, 1976, हिन्दी प्रचारक संस्थान वाराणसी।

15. नलिन विलोचन शर्मा – साहित्यिक का इतिहास दर्शन, सं. 2016, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना।

16. बेदी डा.हरमहेन्द्र सिंह, *हिन्दी साहित्येतिहास पाश्चात्य स्रोतों का अध्ययन,* 1985, प्रतिभा प्रकाशन होशियारपुर।

2.10 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, 1929- आचार्य रामचंद्र शुक्ल, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद।

2. हिंदी साहित्य के अस्सी वर्ष (1954)-शिवदानसिंह चौहान, राजकमल प्रकाशन दिल्ली।

3. हिंदी साहित्य का इतिहास (1973) सं. डा.नगेन्द्र, मयूर प्रकाशन नई दिल्ली।

4. हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास (1986)-रामस्वरूप चतुर्वेदी, राजकमल प्रकाशन दिल्ली।

5. हिंदी साहित्य का अतीत (1960)- विश्वानाथप्रसाद मिश्र, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली।

6. हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास (1996)-बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली।

7. साहित्य और इतिहास दृष्टि (1981) वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।

8. हिंदी साहित्य की भूमिका (1940)- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन दिल्ली।

9. हिंदी साहित्य का वृहद् इतिहास (16 भागों में)-सं.सुधाकर पाण्डेय (1960 से)।

10. साहित्य का इतिहास दर्शन (सं. 2016) नलिन विलोचन शर्मा, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना।

2.11 निबंधात्मक प्रश्न

(1) हिन्दी साहित्येतिहास के उद्भव एवं विकास पर एक निबंध लिखिए।

(2) हिन्दी साहित्येतिहास का संक्षिप्त परिचय देते हुए शुक्ल पूर्व हिन्दी के प्रमुख साहित्येतिहासों का परिचयात्मक विवेचन कीजिए।

(3) आचार्य रामचंद्र शुक्ल के इतिहास का विवेचन करते हुए शुक्लोत्तर युग के प्रमुख इतिहास ग्रंथों का परिचय दीजिए।

इकाई 3 हिन्दी साहित्य का आदिकालः उद्भव एव विकास

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 आदिकाल की अवधारण और सीमा निर्धारण
  3.3.1 आदि काल या वीरगाथा काल
  3.3.2 नामकरण वैविध्य
  3.3.3 आदिकालः सीमा निर्धारण
3.4 आदिकाल आधारभूत समाग्री
  3.4.1 आदिकाल की नव्य सामग्री
  3.4.2 आदिकाल की प्रतिनिधि रचनाएं
3.5 सारांश
3.6 शब्दावली
3.7 सहायक पाठ्य सामग्री
3.8 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई स्नातक पाठ्यक्रम से सम्बंधित है। इस इकाई के अध्ययन से पूर्व आपने हिन्दी साहित्येतिहास की सम्पूर्ण परम्परा एवं साहित्येतिहास की विभिन्न समस्याओं के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त किया।

प्रस्तुत इकाई में आप हिन्दी साहित्य से प्रथम काल खण्ड आदिकाल के उद्भव एवं विकास का अध्ययन करेंगे। इस इकाई के अंतर्गत आप यह भी जानेंगे की हिन्दी साहित्येतिहासकारों को आदिकाल से सम्बंधित कौन -कौन सी समस्याओं का सामना करना पड़ा है । आदिकालीन कविता के उदय की पृष्ठभूमि तथा आदिकालीन कविता के नामकरण तथा सीमांकन का अध्ययन भी इस इकाई में किया गया है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप –

- काल निर्धारण की आधार सामग्री पर विद्वानों का मतान्तर क्यों रहा है, इसे समझ सकेंगे।
- आदिकाल की पृष्ठभूमि क्या थी, यह जान सकेंगे ।
- आदिकालीन सामान्य प्रवृत्तियों को जान पायेंगे तथा साथ हि साथ यह भी जान सकेंगे कि आदिकाल के विकास का स्वरूप क्या है।
- विभिन्न साहित्येतिहासकारों के मत-मतान्तरों की समीक्षा कर सकेंगे।

3.3 आदिकाल की अवधारणा और सीमा निर्धारण

3.3.1 आदिकाल या वीरगाथा काल

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा हिन्दी साहित्य के काल-विभाजन में प्रथम काल -खण्ड को वर्गीकृत करते हुए नाम दिया गया था - वीरगाथा काल (आदिकाल- सं0 1050-1350) । विकल्प रूप में उन्होंने वीरगाथा काल को आदिकाल भी कहा क्योंकि बारह आधार ग्रन्थों में से चार अपभ्रंश भाषा की रचनाएँ थी। उन्होंने बताया कि जयचन्द्र प्रकाश, जयमंयक जसचंद्रिका (भट्ट केदार और मधुकर कवि) सूचना (नोटिस) मात्र है। हम्मीर रम्सो (शारंगधर कवि) का आधार प्राकृत-पैगंलम् में आगत कुछ पद्य हैं और वह काव्य आधा ही प्राप्त है। विजयपाल रासो के सौ छन्द ही प्राप्त हुए है, इस प्रकार यह ग्रन्थ भी अधूरा और वीसलदेव रासो की भाँति प्रेमगाथा काव्य है। वीरगाथा नहीं। अमीर खुसरो की पहेलियाँ भी वीरगाथा के अंतर्गत ग्राह्य नहीं है। पृथ्वीराज रासों की प्रामाणिकता जितनी संदिग्ध है उतनी ही परमाल रासो की क्योंकि वह लोक (श्रुत) काव्य आल्हा है। मूल पाठ का निर्धारण असंभव है।

आचार्य शुक्ल के पास जो अन्य सामग्री स्त्रोत उपलब्ध होते थे, वे उन्होनें धार्मिक एवं सांप्रदायिक मूलक बताए थे, पर परवर्ती शोध कार्यों से यह विदित होता है कि ये धार्मिक और सम्प्रदाय मूलक ग्रन्थ साहित्यिक उदारता से शून्य नहीं थे। तभी आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा था कि - धार्मिक प्रेरणा या आध्यत्मिक उपदेश होना काव्य का बाधक नहीं समझा जाना चाहिए अन्यथा हमें रामायण, महाभारत, भागवत एवं हिन्दी के रामचरित मानस, सूरसागर आदि साहित्यिक सौन्दर्य संवलित अनुपम ग्रंथ-रत्नों को भी साहित्य की परिधि से बाहर रखना पड़ जाएगा। (हिन्दी साहित्य का आदिकाल, प्रथम व्याख्यान,पृष्ठ 49)

साहित्य का इतिहास न तो इतिहास के वृत्ति प्रस्तुति का निरूपण है और न प्रशस्ति मूलक सम्वेदना। उसमें साहित्येतिहासकार के भीतर साहित्यकार की सम्वेदना का समाहार अनिवार्य है। तभी वह साहित्यिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं सामाजिक प्रवृत्तियों की संरचना से ही काल विशेष की संज्ञा प्राप्त कर सकता है।

3.3.2 नामकरण वैविध्य और आधार

हिन्दी साहित्य के इस आदिकाल विकल्प की उपेक्षा करते हुए रामचन्द्र शुक्ल से पूर्ववर्ती मिश्रबन्धु (मिश्रबन्धु विनोद) ने उसे प्रारम्भिक काल, महावीर प्रसाद द्विवेदी ने उसे बीजवपन काल, रामकुमार वर्मा ने उसे संधिकाल एवं चारण काल, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने वीरकाल एवं बच्चन सिहं ने अपभ्रंशकाल नाम दिया है । काल विभाजन और नामकरण प्रवृत्तिपरक होता है। यह आप समझ चुके हैं, पर यह भी समझना उचित होगा कि ये दो अलग प्रश्न नहीं है, मूलतः एक ही है। जिस प्रकार रचना की प्रवृत्ति काल-विभाजन का आधार है, उसी प्रकार वह नामकरण का भी महत्वपूर्ण आधार है। नामकरण के निर्मिति में तद्विषयक रचना कृतियों की बहुलता है और उन रचनाओं में प्रवृत्ति मूलक प्रतिशत निकालकर काल खण्ड विशेष का नामकरण किया जाता है। परिवर्ती हिन्दी साहित्येतिहाकारों में सभी एकमत से स्वीकार करते हैं कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का हिन्दी साहित्य का इतिहास सर्वमान्य है . कुछ मूल प्रश्नों को छोड़ कर शेष सम्पूर्ण ढांचा लगभग सर्वमान्य है .

3.3.3 आदिकाल: सीमा निर्धारण

हिन्दी साहित्य के आरंभिक काल पर विद्वानों में पर्याप्त मत-भेद है। इस के मूल में महत्वपूर्ण कारण अपभ्रंश भाषा की हिन्दी में स्वीकृति या हिन्दी से बहिष्कृति की मानसिकता है। पूर्व खण्ड के अध्ययन के बाद आप यह अवश्य ही जान गए हैं कि सम्पूर्ण भारतीय वाङमय में अपभ्रंश भाषा प्रचलित थी। उसमें कौन से परिवर्तनकारी बिंब कब आरंभ हुए इसको सहज रूप में कह पाना संभव नहीं है, किन्तु यह तो स्पष्ट है कि हिन्दी भाषा में ये परिवर्तन सहज ही उभरते गए है। वास्तव में अपभ्रंश भाषा जब परिनिष्ठित और साहित्यिक भाषा के रूप में विकसित हुई, तब तक वह जनभाषा से दूर हो गई और उस अपभ्रंश से इतर जनभाषा से ही हिन्दी का विकास होता है। उस समय यह अपभ्रंश ही एक नई भाषा (या पुरानी हिन्दी) के रूप में विकसित हो रही थी। हिन्दी के आरंभिक रूप का परिचय बौद्ध तांत्रिकों की रचनाओं में मिलता है। तभी गुलेरी ने

लिखा है कि "अपभ्रंश या प्राकृतभास हिन्दी के पद्यों का सबसे पुराना पता तांत्रिकों और योगमार्गी बौद्धों की सांप्रदायिक रचनाओं के भीतर विक्रम की सातवीं शताब्दी के अंतिम चरण में लगता है।"

जार्ज ग्रियर्सन आदिकाल को 'चारण काल' कहते हैं और इसका आरंभ 643 ई0 से मानते हैं जबकि चारण काव्य परम्परा का विकास तब नहीं हुआ था क्योंकि वह काल-खण्ड नाथों-सिद्धों का सर्जन काल था। चारण काल एवं साहित्य का आविर्भाव दसवीं शताब्दी के बाद ही होता है। इसलिए ग्रियर्सन के विचार त्याज्य है। मिश्रबंधुओं ने आदिकाल का नामकरण करते हुए प्रवृत्ति का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है। डॉ.रामकुमार वर्मा ने इस काल खण्ड को 'संधिकाल' और 'चारण काल' कहा है।

अभ्यास प्रश्न 1

1. वीरगाथाकाल नामकरण क्यों अस्वीकार है ?
2. आदिकाल के विकल्प का चयन क्यों आवश्यक समझा गया ?

3.4 आदिकाल की आधारभूत सामग्री

3.4.1 आदिकाल की नव्य सामग्री

अभी तक के अध्ययन के उपरान्त आज यह भली भाँति जान चुके हैं कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा आदिकाल के लिए गृहीत बारह पुस्तकों की विषय-सामग्री वीरगाथा काल के नाम की सार्थकता सिद्ध नहीं कर पाती कुछ मात्र नोटिस या सूचना मात्र थीं कुछ वीर गाथात्मक प्रवृत्तिमूलक नहीं थीं, कुछ अपूर्ण और प्रेमपरक थी। अतः विकल्प के रूप में आदिकाल को ही आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने समर्थन दिया है। इस प्रकार आदिकाल नामकरण के निर्धारण में आधारभूत सामग्री निम्नांकित है।

1.	स्वयंभू	-	पउम चरिउ (पद्म चरित-रामचरित) रिट्णेमि चरिउ (अरिष्टनेमि चरित)
2.	पुष्पदन्त	-	पाय कुमार चरिउ (नागकुमार चरित)
3.	हरिभद्र सूरि	-	णेमिनाथ चरिउ (नेमिनाथ चरित)
4.	धनपाल	-	भविष्यतकथा, करकंड चरिउ, जसहर चरिउ
5.	जोइन्दु	-	परमात्मा प्रकाश
6.	रामसिंह	-	पाहुड़ दोहा
7.	सरहपा	-	दोहाकोश
8.	अद्दहमाण	-	संदेश रासक
9.	हेमचन्द्र	-	प्राकृत व्याकरण (दोहा काव्य)
10.	दलपति विजय	-	बीसलदेव रासो

11. चन्दबरदाई	-	पृथ्वीराज रासो
12. कुशल शर्मा	-	ढोला मारूरा दूहा (लोककाव्य)
13. अज्ञात	-	वसंत विलास फागु
14. विद्यापति	-	कीर्तिलता, कीर्ति पताका
15. अमीर खुसरो	-	पहेलियां

3.4.2 आदिकाल की प्रतिनिधि रचनाएं

अभी तक आप आदिकाल की उपलब्ध नव्य सामग्री से परिचित हो चुके हैं। इकाई के इस भाग में आप आदिकाल की प्रतिनिधि रचनाओं से परिचित हो सकेंगे। इतना तो आप जान ही चुके हैं कि इस युग में शौर्य युक्त प्रवृत्तियों ही नहीं थी अपितु अन्य अनेक प्रवृत्तियों भी एक साथ उभरी थीं। परिणाम स्वरूप वीररसात्मक काव्य धारा के साथ श्रंगार रस सिक्त रचनाओं का प्रणयन भी हुआ। लोक कथाओं पर आधारित प्रेमकथाएं भी लिखी गई। लौकिक काव्य (पहेली और मुकरी) की भी रचना हुई। यही नहीं इस काल खण्ड में अगर अपभ्रंश भाषा कृतियों प्राप्त हुई हैं तो ब्रज- राजस्थानी मिश्रित भाषा और मैथिली में साहित्य सर्जना हुई थी साथ ही साथ खड़ी बोली में रचनाएँ प्राप्त हुई हैं.

1. पृथ्वीराज रासो
2. बीसलदेव रास
3. ढोल मारू रा देहा
4. विद्यापति काव्य
5. अमीर खुसरो की पहेलियाँ
6. प्राकृत व्याकरण
7. सन्देश रासक
8. भाविसत्त कहा
9. पाहुड़ दोहा

पृथ्वीराज रासो - रासोकाव्य परम्परा में अनेकशः रचनाएँ हुई हैं और इनमें स्वरूप वैविध्य भी हैं. पृथ्वीराज रासो आदिकाल की प्रतिनिधि कृति है। पृथ्वीराज रासो का रचयिता चन्द बरदाई पृथ्वीराज चौहान का दरबारी कवि था तथा दरबारी काव्य परम्परा की प्रशस्ति मूलक रूढियों से भरे अपने आश्रय दाता के यशगान हेतु रासो की रचना की है।जैसा कि अभी संकेत किया जा चुका है कि पृथ्वीराज रासो प्रशस्ति काव्य है। कविचंदबरदाई ने अपने आश्रयदाता का प्रशस्ति परक वर्णन किया है तथा उसे ईश्वर तक कहा है और तत्कालीन राजनीति , धर्म,योग, कामशास्त्र, शकुन, नगर ,युद्ध ,सेना की सज्जा, विवाह, संगीत,नृत्य, फल,फूल, पशु,पक्षी, ऋतु-वर्णन, संयोग, वियोग, श्रंगार, बसंतोत्स्व इत्यादी सभी का वर्णन भारतीय काव्य शास्त्रीरय परम्परा के अनुरूप किया है। परिणामस्वरूप ऐतिहासिकता अनैतिहसिकता प्रामाणिकता अप्रमाणिकता के

अनेक प्रश्नों के रहते हुए पृथ्वीराज रासो साहित्य और तत्कालीन समाज दोनों की चित्तवृत्तियों का प्रतिबिम्ब हैं ।पृथ्वीराज रासो के वर्ण्य-विषय पर विचार करते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं- पृथ्वीराज रासो ऐसी ही रस,भय,अलंकार, युद्धबद्ध कथा थी जिसका मुख्य विषय नायक की प्रेमलीला, कन्याहरण और शत्रु-पराजय था।

बीसलदेव रास - काल खण्ड के नाम के विकल्प - आदिकाल- के चयन और वीरगाथाकाल नाम के व्याज्य के निकर्ष पर देखा जाए तो पृथ्वीराज रासो में जहाँ वीर एवं श्रृंगार की प्रधानता है वहीं वीसल देव रास मूलतः श्रृंगार रस प्रधान ;विशेषकर वियोग श्रृगांर काव्य है । इसके रचयिता नरपति नाल्ह है और रचनाकाल 1155 ईस्वी माना जाता है।

वीसलदेव रास एक विरह काव्य है। जिसमें वीसल देव की रानी का विरह वर्णन किया गया है . भोज परमार की पुत्री राजमती से विवाह के तुरन्त बाद राजमती की गर्वोक्ति सुनकर वीसलदेव उड़ीसा चला जाता है। बारह वर्ष तक राजमती वियोग की ज्वाला में जलती रहती है। इसके बाद राजमती अपने राज पुरोहित से अपने पति के लिए सन्देश भिजवाती है। जब तक राजा लौटता है तब तक राजमती अपने पिता के घर जा चुकी होती है। बीसलदेव उड़ीसा से लौटकर अपनी ससुराल जाकर अपनी पत्नी को घर ले आता है।

ढोला मारू रा दूहा - अभी तक आपने आदिकाल की दो महत्वपूर्ण कृतियों का परिचय प्राप्त कर लिया है जो अपभ्रंश भाषा से इतर आदिकाल की तत्कालीन भाषा प्रवाह का परिनिष्ठित भाषा रूप लेकर रची गई है जो राजस्थान एवं ब्रज भाषा के साथ विविध भाषाओं की शब्दावली से युक्त हैं . इस बार आप लोकाश्रित एवं तत्कालीन लोक भाषा काव्य का परिचय पायेंगे। यह ढोला मारू रा दूहा नाम से प्रसिद्ध लोक गाथा काव्य है। लोक कथा या लोक गाथा का रचयिता व्यक्ति न होकर लोक ही होता हो और उसके पाठ में समयानुसार भिन्नता की सम्भवना होती है। ढोला मारू रा दूहा का रचयिता कुशल शर्मा कहे जाते हैं तथा इसका रचना काल ग्याहरवीं शताब्दी है।

विद्यापति काव्य - विद्यापति हिन्दी और आदिकाल के प्रमुख कवि हैं चौदहवी-पंद्रहवी शताब्दी के मध्य विद्यापति तिरहुत के राजा कीर्ति सिंह के दरबारी कवि थे और उनकी शौर्यता का चित्रण ही कवि ने अपनी कीर्तिलता नामक पुस्तक में किया है। दूसरी ऐसी ही प्रशस्ति कथा कीर्तिपताका में है। इन दोनों काव्यों की भाषा को उन्होंने अवहटठ् ,अपभ्रंशद्ध कहा है

अमीर खुसरो पहेलियाँ - अमीर खुसरो आदिकाल के ऐसे प्रमुख कवि हैं जो अपने समय से आगे की खड़ी बोली के सूत्र-प्रसारक कहे जा सकते हैं। आचार्य रामचन्द्र के अनुसार उनका लेखन 1293 ई के आसपास आरम्भ हो गया था। उन्होंने तेरहवीं शताब्दी के आरंभ में दिल्ली के आसपास बोली जाने वाली भाषा में कविता की। लेकिन आप यह भी जान लीजिए कि अमीर खुसरो ने ब्रजभाषा में भी कविता लेखन किया था पर उस पर खड़ी बोली का स्पष्ट प्रभाव था यथा-

उज्जवल बरन अधीन तन एक चित्र दो ध्यान।

देखत में साधु है निकट पाप की खान ॥

खुसरो रैन सुहाग की जागी पी के संग।

तन मोरो मन पीउ को दोउ भए एकरंग ॥

गारी सोवे सेज पर मुख पर डारे केस।

चल खुसरो घर आपनै रैन भई यह देस ॥

अमीर खुसरो ने पहेलियों को देखकर ऐसा नहीं लगता कि ये आठ से आठ सौ से अधिक वर्ष पूर्व लिखी गई होंगी। यथा- एक थाल मोती भरा सबके सिर औंधा धरा।
चारों ओर वह थाली फिरे। मोती उससे एक न गिरे।

अमीर खुसरो अरबी फारसी,तुर्की,ब्रज और हिन्दी के विद्वान कवि थे। साथ ही उन्हें संस्कृत भाषा का भी थोड़ा ज्ञान था। सूचना के स्तर पर आपको बताया जा सकता है कि उन्होंने 99 पुस्तकें लिखी थी। लेकिन इनके बीस,बाईस ग्रन्थ ही प्राप्त होते हैं।

प्राकृत व्याकरण - आदिकाल के अपभ्रंश काव्य के रूप में अब आप ऐसी कृति का परिचय पाऐंगे जो दसवीं शताब्दी में रचित सिद्ध हेमचन्द्र शब्दानुशासन के नाम से प्रसिद्ध व्याकरण ग्रन्थ है और उसके रचयिता हेमचन्द्र हैं। इस कृति में हेमचन्द्र ने संस्कृत,प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं का समावेश किया है किन्तु विशेष बात यह है कि अपभ्रंश का उदाहरण देते हुए उन्होंने पूरा दोहा ही उद्धृत किया है परन्तु उनके रचयिताओं के विषय में कोई संकेत नहीं किया है हेमचन्द्र के इस प्राकृत व्याकरण को आदिकाल की निर्णायक कृतियों के रूप में उल्लेख किया जाना आपको सहज ही आश्चर्य में डाल सकता है क्योंकि यह शब्दानुशासन यानी व्याकरण की पुस्तक ही प्रतीत होती लेकिन व्याकरण कृति होते हुए भी इसमें प्रयुक्त दोहों का चयन हेमचन्द्र ने पूर्ववर्ती या तद्युगीन रचनाकारों की रचनाओं से किया है। ये दोहे व्याकरण से अधिक तत्कालीन समय एवं परिवेश का यथार्थ प्रस्तुत करते हैं क्योंकि ये दोहे उस काल की लोक भावनाओं से परिपूर्ण है।

सन्देश रासक – 'संदेशरासक' अहद्द्माण या अब्दुर्रहमान रचित खण्ड काव्य है। अहद्द्माण कबीर की भाँति जुलाहा परिवार से थे तथा मुल्तान निवासी थे। उन्होंने स्वयं लिखा है - मैं मलेच्छ देशवासी तंतुवाय भीरसेन का पुत्र हूँ। उनकी कृति 'सन्देश रासक' जो एक सन्देश काव्य है, के रचना काल के संबंध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है अतः इसे ग्यारहवीं से चौदहवीं के मध्य की रचना माना जाता है।सन्देश रासक वियोग, विरह, श्रृंगार की रचना है। इसकी विषय-वस्तु के सम्बन्ध में इतना कहा जा सकता है कि प्रिय के परदेश जाने और वहाँ से लौटने में विलम्ब होने के कारण प्रियतमा पत्नी-नायिका का हृदय विरहकातर हो उठता है। अहद्द्माण ने इस कृति के

बीच-बीच में प्राकृत गाथाएं संजोयी हैं। इसमें विरहिणी नायिका एक पथिक से पति को सन्देश भिजवाती है । कवि ने दो सौ तेईस छन्दों में कथा प्रस्तुत करते हुए प्रत्येक छन्द को स्वयं में स्वतंत्र रखा है क्योंकि कवि को विरहाभिव्यक्ति का उल्लेख करना है कथा कहना मात्र उसका उद्देश्य नहीं है. सन्देश रासक तीन प्रक्रमों में विभाजित और 223 छन्दों में रचित ऐसा सन्देश काव्य है जिसका अध्ययन करके आप यह विधिवत् जान पायेंगे कि इसका प्रथम प्रक्रम मंगलाचरण, कवि का व्यक्तिगत परिचय , ग्रन्थ रचना का उद्देश्य तथा आत्मनिवेदन से अनुपूरित है। दूसरे प्रक्रम से मूल कथा आरंभ होती है पर कथा सूत्र इतना ही है कि विजय नगर की एक प्रोषितपतिका अपने प्रिय के वियोग में रोती हुई एक दिन राजमार्ग से जाते हुए एक बटोही को देखती है और दौड़कर उसे रोकती है। उसे जब यह पता चलता है कि वह बटोही साभांर से आ रहा है और स्तंभ तीर्थ को जा रहा है तो वह पथिक से निवेदन करती है कि अर्थलोभ के कारण उसका प्रिय उसे छोड़ कर स्तम्भ तीर्थ चला गया है इसीलिए कृपा करके मेरा सन्देश को ले जाओ पथिक को संदेश देकर नायिका ज्यों ही उसे विदा करती है कि दक्षिण दिशा से उसका प्रिय आता हुआ दिखाई देता है। तीसरे प्रक्रम में अब्दुर्रहमान कृति का समापन करता है जिसे पढ़कर निश्चित आप जान पायेंगे कि नायिका का कार्य अचानक सिद्ध हो जाता है .उसी प्रकार पाठकों को भी यह अनुभव होता है कि कवि को कथा से कोई भी मतलब नहीं था उसका उद्देश्य साम्भर नगर के जीवन, पेड़-पौधों तथा ऋतु वर्णन के साथ प्रोषितपतिका की विरह भावना का वर्णन करना था .काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से सन्देश रासक अपभ्रंश साहित्य में विशेष स्थान रखता है।

भविस्यत्त कहा - जैन कवि धनपाल रचित भविस्यत्त कहा अपभ्रश में लिखित दसवीं शती की ऐसी काव्य कृति है जिसमें तीन प्रकार की कथाएँ बाईस संधियों में जुडी हुई है। अभी तक आप यही जानते रहे हैं कि जैन काव्य धार्मिक है और आचार्य शुक्ल ने उन्हें हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन के निमित्त आधार ग्रंथ के रूप में गणनीय तक नहीं माना था। यद्यपि जैन साहित्य में धर्म से विलग साहित्यिक कृतियों का अभाव नहीं था। उन्ही में से एक कृति भविस्यत्त कहा है। यह वर्णन हृदयग्राही है जिसमें श्रृंगार एवं वीररस के साथ शान्त रस का परिपाक होता है।

आपके ज्ञानवर्द्धन के लिए यह उल्लेखनीय है कि कवि धनपाल का यह काव्य शुद्ध घरेलू ढंग की कहानी पर आधारित है जिसमें दो विवाहों का दुःखद पक्ष उभरता है। कणिक पुत्र भविष्यदत्त की कथा अपने सौतेले भाई बंधुदत्त द्वारा कई बार छले जाने ,जिन महिमा ,जैन चिन्तन के कारण सुखद परिणति तक पहुंचती है। यह प्रमुख कथा चौदह सन्धियों तक विस्तार पाती है।

पाहुड़ दोहा - राजस्थान के रामसिंह द्वारा लिखित दो सो बाईस दोहो ,छन्दों में लिखित लघुकाव्य पाहुड़ दोहा का संपादन परवर्ती काल में हीरालाल जैन द्वारा किया गया है। उनके अनुसार जैनियों में पाहुड शब्द का प्रयोग किसी विजय के प्रतिपादन के लिए किया जाता है।

अब आप यह जान लीजिए कि इस कृति का रचना काल में वास्तव में ऐसा युग था जिसमें प्रत्येक धर्म के भीतर इसके उदारमना चिन्तक कवि पैदा हुए थे जो अपने मत और समाज की रूढियों का विरोध करते हुए मानवता की सामान्य भावभूमि पर एक साथ खडे थे।

इसका अन्य मतों से कोई विरोध नहीं था। वे सबके प्रति सहिष्णु थे और उनका विश्वास था कि सभी मत एक ही दिशा की ओर ले जाते हैं और एक ही परमतत्व को विविध नामो से पुकारते हैं।

बोध प्रश्न . 2

1. आदिकाल की आधारभूत सामग्री क्या है ? संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए

2. **सुमेलित कीजिए**

पृथ्वीराज रासो	अब्दुर्रहमान
ढोला मारू रा दूहा	धनपाल
वीसलदेव रास	हेमचन्द्र
विद्यापति का काव्य	रामसिंह
पहेलियाँ	कुशलशर्मा
प्राकृतव्याकरण	चंद्रबरदाई
सन्देशरासक	नरपति नाल्ह
भविस्यत्त कहा	विद्यापति
पाहुड़ दोहा	अमीर खुसरो

3.5 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात आप -

- हिंदी साहित्येतिहास के अंतर्गत काल-निर्धारण की प्रक्रिया को जान चुके होंगे
- आदिकाल की पृष्ठभूमि एवं उसकी सामान्य प्रक्रिया का ज्ञान प्राप्त कर चुके होंगे
- आदिकाल के उद्भव एवं क्रमिक विकास को समझ चुके होंगे
- आदिकाल की प्रमुख पुस्तकों से परिचित हो चुके होंगे

3.6 शब्दावली

वैविध्य	-	विविधतापूर्ण , भिन्न-भिन्न
परवर्ती	-	बाद के समय का
वाङमय	-	साहित्य
आविर्भाव	-	पैदा होना
रस सिक्त	-	रस से भरा हुआ
इतर	-	अलग
सहिष्णु	-	उदार

3.7 उपयोगी पाठ्य सामग्री

(1) हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी।

(2) हिन्दी साहित्य का आदिकाल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।

(3) हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डॉ0 रामकुमार वर्मा,लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

(4) सांकृत्यायन, राहुल, हिन्दी काव्य-धारा, किताब महल, इलाहाबाद 1945

3.8 निबंधात्मक प्रश्न

1. हिन्दी साहित्य के आदिकाल के उद्भव एवं विकास पर एक विस्तृत निबंध लिखिए
2. आदिकाल की पृष्ठभूमि स्पष्ट करते हुए आदिकाल की प्रमुख रचनाओं का परिचय दीजिए

इकाई 4 हिंदी साहित्य का आदिकाल : स्वरूप और प्रक्रिया

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 आदिकाल:अर्थ एवं स्वरूप
4.4 आदिकालीन परिस्थितियाँ
  4.4.1 राजनीतिक परिस्थितियाँ
  4.4.2 धार्मिक एवं आर्थिक परिस्थितियाँ
  4.4.3 सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियाँ
  4.4.4 साहित्यिक परिस्थितियाँ
4.5 आदिकाल:प्रमुख प्रवृत्तियां
  4.5.1 धर्म संबंधी साहित्य
  4.5.2 सिद्ध काव्य
  4.5.3 नाथ काव्य
  4.5.4 जैन काव्य
  4.5.5 चारण काव्य
  4.5.6 लौकिक काव्य
4.6 आदिकालीन काव्य प्रक्रिया
4.7 सारांश
4.8 शब्दावली
4.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री
4.10 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

इससे पूर्व की इकाई में आप हिन्दी साहित्य के आदिकाल के उद्भव और विकास के संबंध अध्ययन कर चुके हैं। जिससे आप यह भी जान चुके हैं कि हिन्दी साहित्य का व्यवस्थित इतिहास लिखते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने युगीन परिस्थितियों के संदर्भ में साहित्य के विकास क्रम की व्याख्या करते हुए साहित्येतिहास का काल विभाजन करते हुए प्रारंभिक काल का नाम वीरगाथा काल (आदिकाल) किया था और जनता की चित्तवृत्तियों के साथ जोड़कर नामकरण का प्रयास करते हुए आधार ग्रंथों या सामग्री के आधार पर अपना संशय भी व्यक्त किया था। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने शुक्ल जी के संशय का निराकरण करते हुए उनके दृष्टिकोण के समानांतर अपना नवीन दृष्टिकोण स्थापित कर युगीन परिस्थितियों के सम्यक मूल्यांकन के पश्चात हिन्दी साहित्य के प्रथम काल को आदिकाल के नाम से अभिहित किया।

प्रस्तुत इकाई में आप हिन्दी साहित्य के प्रथम कालखण्ड आदिकाल के सम्बन्ध में विभिन्न अधिकारी विद्वानों द्वारा प्रस्तुत निष्कर्षों के आधार पर किए गए विश्लेषणों का सार पढ़ेंगे . इस इकाई में आप आदिकाल के उद्भव एवं विकास , उस कालखंड की सम्पूर्ण प्रक्रिया का विस्तार से अध्ययन करेंगे

4.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप बता सकेंगे कि -

- आदिकाल का सामान्य अर्थ क्या है ?
- आदिकाल का स्वरूप क्या है ?
- आदिकाल की विभिन्न परिस्थितियाँ किस प्रकार आदिकाल का स्वरूप निर्माण करने में सहयोगी रही हैं।
- हिन्दी साहित्य के आदिकाल की प्रमुख प्रवृतियाँ एवं प्रक्रिया क्या रही हैं ?

4.3 आदिकाल : अर्थ एवं स्वरूप

अब तक के अध्ययन के पश्चात आप भली-भांति समझ चुके हैं कि हिन्दी साहित्य के आदिकाल का अर्थ साहित्य का प्रारंभिक काल ही है जिसे विभिन्न विद्वानों के मत-मतांतर के बाद आदिकाल के रूप में स्वीकार किया जा चुका है, यथा –

1.	जार्ज ग्रियर्सन	-	चारणकाल
2.	मिश्रबंधु	-	आरंभिक काल
3.	हजारी प्रसाद द्विवेदी	-	आदिकाल
4.	राहुल सांकृत्यायन	-	सिद्ध सांमत युग
5.	महावरी प्रसाद द्विवेदी	-	बीज-वपन काल

6.	विश्वनाथ प्रसाद मिश्र	-	वीर काल
7.	रामकुमार वर्मा	-	संधिकाल-चारण काल
8.	गणपति चंद्र गुप्त	-	संक्रमण काल
9.	हरिश्चन्द्र वर्मा	-	प्रारंभिक काल

आज हिन्दी साहित्य का काल-विभाजन स्वमान्य हो चुका है। अत: आप भी एक बार पुन: दुहरा लीजिए –

(क) आदिकाल	(दसवीं-चौदवीं शती)
(ख) पूर्वमध्यकाल	(चौदहवीं- सत्रहवीं शती)
(ग) उत्तर मध्य काल	(सत्रहवीं-उन्नीसवीं शती)
(घ) आधुनिक काल	(उन्नीसवीं – वर्तमान काल तक)

हिन्दी साहित्य के आदिकाल को यदि आप स्मरण कर पायें तो स्वयं यह अनुभव करेंगे कि उस समय राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अस्थिरता थी। आदिकाल की राजनीतिक अस्थिरता का सीधा प्रतिफलन वीरगाथाएं ही थी, क्योंकि भारतीय राजा आपस में लड़ते रहते थे विदेशी आक्रमण हो रहे थे या भारतीय राजाओं द्वारा अपने प्रतिपक्षी को पदावनत कराने के लिए भारत से वाह्य शासकों को आमंत्रण भी दिए जाते थे। देखा जाए तो भारतीय राजाओं का अधिकांश समय युद्ध क्षेत्र में ही बीतता था।

यही नहीं, आप यह भी पायेंगे कि बड़े भारतीय राज्यों को अपनी वरिष्ठता सिद्ध करने तथा प्रतिस्पर्धात्मक रूप में अपनी प्रशंसा और प्रशस्ति के विस्तार हेतु शायद यही एकमात्र उपाय रह गया था। उस आकांक्षा को उनके दरबारी कवियों ने भली प्रकार पहचाना था और देशी राजा दरबार में अनेकानेक अवसरों पर अपने आश्रय प्राप्त कवियों से विरुदावली (प्रशस्ति गायन) सुनने का सुख पाते थे। युद्धारंभ में उन्हीं आश्रय प्राप्त राजाओं की अपने प्राण देकर अपने आश्रयदाता के प्राणों की रक्षा के लिए प्रेरणा भी देते थे। पृथ्वीराज रासो में संयम्राव द्वारा घायल पृथ्वीराज की प्राणरक्षार्थ हेतु अपने घायल अंगों को काट-काटकर गिद्धों को खिलाने का उल्लेख चंद बरदाई द्वारा स्वामिभक्ति के व्यापक प्रभाव का संकेत करता है।

दरबारी कवि अथवा कवियों द्वारा जहां अपने आश्रयदाता राजाओं की वीरता और शौर्य का अतिश्योक्ति पूर्ण वर्णन भी व्यापक प्रवृत्ति थी वही वीर रस के संचरण के समानांतर श्रृंगार रस का व्यापक काव्यशास्त्रीय निरूपण करने और उस स्थिति में अपने-अपने आश्रयदाता के श्रृंगारिक उत्प्रेरण का चित्रण ही उन कवियों का एकमात्र उद्देश्य था। लेकिन इनमें कई ऐसी गाथाएं भी है, जहां आश्रय प्राप्त दरबारी कवि केवल लेखनी का ही कमाल नहीं दिखाते थे, युद्ध क्षेत्र में वे तलवार का हस्त कौशल भी दिखाने में पीछे नहीं थे।

आपको यह भी जान लेना क्यों उचित होगा कि इस काल को वीर गाथा काल का नाम देना क्यों अनुपयुक्त था ? पिछली इकाई के अध्ययन में आप यह जान चुके हैं कि इस काल

विशेष में वीसलदेवरास और विजयपालरासो जैसे काव्य भी उपलब्ध होते हैं जिनका विषय वीर गाथा परक नहीं है, अपितु प्रेमगाथा काव्य परक है, विजयपाल रासो अभी तक अपूर्ण है तथा वीसलदेवरास विरहकाव्य है। जिसे अब्दुल रहमान कृत **सन्देश रासक** की परम्परा की प्रतिनिधि कृति कहा जा सकता है। पिछली इकाई में आप यह भी पढ़ चुके हैं कि आदिकाल की आधार सामग्री में जहाँ अपभ्रंश भाषा की रचनाएं भी सम्मिलित हैं, वही विद्यापति पदावली की भाषा मैथिली है और अमीर खुसरो की भाषा खड़ी बोली हिन्दी का प्रारंभिक रूप तो लिए ही है, उसके साथ उक्त कालखण्ड में **ढोला मारु रा दूहा** जैसा लोककाव्य भी रचा गया था। यद्यपि उसे आदिकाल की आधार सामग्री के रूप में अग्राहय मान लिया गया था। आप पिछली इकाई में यह भी भली प्रकार जान चुके हैं कि उल्लिखित अपभ्रंश की कतिपय महत्वपूर्ण काव्य रचनाओं को भी इस काल के नाम निर्धारण के निमित्त ग्रहण किया जाना एक महत्त्वपूर्ण कदम है । जिनमें अपभ्रंश भाषा में रचित जैन संतों द्वारा चरित काव्य जसहर चरिउ , करकंडु चरिउ , णायकुमार चरित (नागकुमार चरित), पउम चरिउ (पद्म चरित), पाहुडा दोहा आदि प्रमुख हैं। इसी प्रकार आचार्य शुक्ल द्वारा धार्मिक अथवा संप्रदायगत रचनाएं कहकर नाथो-सिद्धों और बौद्ध सम्प्रदायों की कृतियाँ भी स्वीकार नहीं की थी। कालान्तर में साहित्येतिहासकारों ने इन रचनाओं को तत्कालीन समाज की चित्तवृत्तियों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति माना है।

4.4 आदिकालीन परिस्थितियाँ

आदिकालीन परिस्थितियों की चर्चा करने से पूर्व आपको आदिकाल के स्वरूप को समझने का संकेत ऊपर किया जा चुका है। जिससे आप भलीभॉति जान चुके हैं कि आदिकालीन साहित्य सर्जना के लिए किस प्रकार की परिस्थितियाँ थीं जो तत्कालीन दरबारी कवियों को काव्य रचना के लिए बाध्य करती थी। आपके समक्ष इन परिस्थितियों की निमांकित चार वर्गों में रखा जा रहा है।

4.4.1 राजनीतिक परिस्थितियाँ

हिन्दी साहित्य का यह प्रथम काल खण्ड तत्कालीन राजनीतिक अस्थिरता एवं अव्यवस्था, गृह-कलह और पराजय और आंतरिक हताशा का कालखण्ड था। दूसरी ओर विदेशी आक्रमण राज्यों की स्वतंत्रता पर हावी हो रहे थे। सम्राट हर्ष वर्धन (सन् 606-643) के निधन के बाद उत्तर भारत में केन्द्रीय शक्ति का क्षय और राजसत्ता अस्थिर हो गई थी, दक्षिण भारत में राष्ट्रकूटों का साम्राज्य स्थापित हो चुका था। मुहम्मद बिन कासिम के सिंध पर आक्रमण पर वहां का राजा दाहिर की पराजय का कारण वहां के जाट और ब्राहमण राजाओं के सहयोग का अभाव रहा है। आप इतिहास पर दृष्टि डालें तो इस कालखण्ड में अनेक छोटे-छाटे राज वंश- गुर्जर, तोमर, राठौर, चौहान, चालुक्य, चंदेल, परमार, गाहड़वार आदि सत्ता प्राप्ति के लिए पारस्परिक युद्ध, गृह कलह और विघटन के कारण सामन्तवाद को प्रोत्साहित कर रहे थे तथा देश एकतंत्र-व्यवस्था में न रहकर अनेक राज्यों में बट गया था। राष्ट्रीयता या देशभक्ति की

भावना सर्वथा लुप्त थी। राज-भक्ति, आश्रयदाता का शौर्य-गान एवं प्रशंसा तथा अनुचित कार्यों के समर्थन का प्रचलन बढ़ चला था।

सन् 800 से 1020 ई० तक के पाल शासकों ने गजनवी के तुर्कों का सामाना केवल व्यक्तिगत वीरता, शौर्य, आत्मबल और देश-हित में प्राणोत्सर्ग करने के लिए ही रहा, सामूहिक रूप से गजनी के आक्रमणों से लोहा लेना नहीं। आपसी फूट, कलह तथा विलासिता के कारण भारतीय शक्ति ध्वस्त होती रही और इस्लाम का आगमन, उनकी बढ़ती सत्ता-भूख के सामने दोषपूर्ण राजनीति अपनी चेतना खो चुकी थी। दसवीं से 1026 की अवधि में महमूद गजनवी ने सत्रह बार भारत पर आक्रमण क्रिया और अनेक भारतीय शक्तिशाली राजपूतों को अपने बीच कर लिया। मोहम्मद गौरी की मृत्यु के बाद कुतुबुद्दीन ऐबक ने भारत के पूरे हिन्दी भाषी क्षेत्र पर राज्य स्थापित किया।

अधिकांश आदिकालीन साहित्य में हिंदु शासकों के या तो पारस्परिक युद्धों का या फिर तुर्क-अफगानों से किए गए युद्धों अव्यवस्थाओं, लूट-मार तथा भारतीय राजतंत्र के पराजय के वातावरण में दरबारी कवियों द्वारा अपने आश्रयदाताओं के यश-प्रशस्त शौर्यका गान उपलब्ध होता है लेकिन उससे अधिक पराजित हिन्दुओं को जैन एवं बौद्ध धर्म से संबंधित साहित्य के माध्यम से चित्रित किया गया है। चंद बरदाई, विद्यापति, अमीर खुसरो, स्वयंभू, पुष्पदंत, हरिभ्रदसूरि, रामसिंह के अतिरिक्त कण्हपा सरहपा ने तत्कालीन परिवेश को शब्द दिए हैं।

4.4.2 धार्मिक एवं आर्थिक परिस्थितियाँ

हिन्दी साहित्य के आदिकाल धार्मिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से भी अस्थिर, एक दूसरे को प्रभावित करने तथा परिस्परिक आदान-प्रदान का था। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में आठवीं से लेकर बारहवीं शती तक भारतीय संस्कृति के मूलभूत सिद्धान्त लगभग अपरिवर्तनीय हैं, किन्तु उनका बाह्य आकार परिवर्तित होता हुआ प्रतीत होता है। आपके समक्ष धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों का पृथक रूप से उल्लेख अधिक उपयुक्त है।

धार्मिक परिस्थितियां :- ईसा की सातवीं शती यानी हर्षवर्धन के समय में ब्राहमण और बौद्ध धर्मों में समान आदर भाव था। हर्ष स्वयं बौद्ध मतावलंबी थे और बौद्ध धर्म का प्रचार-प्रसार काफी मात्रा में था फिर भी उदार एवं धार्मिक सहिष्णुता के परिणाम स्वरूप विभिन्न धर्मों में पारस्परिक सौहार्द्र था तथा समन्वय की प्रवृत्ति की झलक भी मिलती थी। हर्षवर्धन की मृत्यु के उपरांत केन्द्रीय सत्ता के अभाव से देश खण्ड राज्यों में विभाजन हुआ तो धार्मिक अराजकता के विस्तार के साथ वैदिक विधि-विधान और कर्मकाण्ड के चलते ब्राहमण और बौद्ध धर्म संप्रदाय अपनी पवित्रता खो चुके थे। आम जन सिद्धियों की दिग्भ्रांतता का शिकार हो रहा था। हीनयान-वज्रयान, महायान, सहजयान में बिखरा बौद्ध धर्म तंद्ध-मंत्र, हठयोग जैसे पंचमकारों (मांस, मैथुन, मत्स्य, मद्य तथा मुद्रा) को भी विशेष स्थान प्राप्त होता जा रहा था। इनके बिना साधना अधूरी मानी जाती थी। वास्तव में बौद्धमत वाममार्गी हो चुका था। दूसरी ओर धर्म-नियम संयम और हठयोग द्वारा साधना के कठिन मार्ग से बढ़ने वाले नाथसिद्ध के रूप में जाने गए। डॉ० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय ने लिखा है- ''इस काल के हिन्दी प्रदेश और उसकी सीमाओं के आस-

पास जैन धर्म, बौद्ध धर्म के वज्रयानी रूप, तांत्रिक मत, रसेश्वर-साधना, उमा-महेश्वर-योग साधना, सोम सिद्धांत, वामाचार, सिद्ध और नाथ-पंथ शैवमत, वैष्णवमत, शाक्त मत आदि विभिन्न मत प्रचलित थे। जैन-वैष्णव, शैव , शक्ति आदि संप्रदायों की प्रतिद्वन्द्विता राष्ट्रीय शक्ति का ह्रास कर रही थी। भीतरी विद्वेष से जर्जर देश में इतिहास से टकराने वाला संकल्प न रह गय। दुर्भाग्यवश ये धर्म मनुष्य की सामाजिक और राजनीतिक मुक्ति के साधन बनने के स्थान पर विच्छेद-भाव उत्पन्न करने के साधन बने।

काल में वैदिक,बौद्ध एवं जैन धर्मसाथ-साथ प्रचलित थे और वैदिक धर्मका कभी-कभी बौद्ध या जैन धर्म से संघर्ष भी हो जाता था, पर धीरे-धीरे वैदिक या ब्रहमण धर्म बल पकड़ता गया तथा बौद्ध एवं जैन धर्म कमजोर पड़ते गए। इसका प्रमुख कारण यह है कि युद्धों के उस काल में अहिंसा पर आधारित बौद्ध-जैन धर्म सीमाओं की मनोवृत्ति के अनुकूल नहीं हो सकते थे, इसलिए शैव मत का प्रभाव भी बढ़ता गया। निस्संदेह इस काल खंड में अनेक मत-मतांतरों से परिपूर्ण प्रतिद्वन्द्वी धार्मिकदल, इस्लाम की बढ़ती शक्ति, ब्राहमणविरोध , वैदिक और बौद्ध धर्मो का अत: संघर्ष तथा सांप्रदायिक विद्वेष कई रूपों में देखने को मिलता है।

सांस्कृतिक परिस्थितियाँ – सम्राट हर्षवर्धन के समय तक भारत सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय दृष्टि से सम्पन्न और संगठित था। उस समय की सांस्कृतिक उत्वर्ष को संगीत, चित्र , मूर्ति तथा स्थापत्य आदि कलाओं के रूप में आंका जा सकता था। जातीय एवं राष्ट्रीय गौरव का यह भाव सर्वत्र देखा जा सकता था। हिन्दी साहित्य यह काल दो संस्कृतियों के संक्रमण एवं ह्रास-विकास का काल था जिसके एक छोर पर भारतीय संस्कृति का उत्कर्ष था तो दूसरे छोर पर आदिकाल के समापन काल में मुस्लिम संस्कृति की संस्थापना थी। तभी तो कहा गया है कि – भारत में मुस्लिम संस्कृति के समय में दीर्घ काल से चली आती हुई समन्वय की एक व्यापक प्रक्रिया पूर्णता को पहुँच रही थी। (हिंदी साहित्य का इतिहास-सं. नगेन्द्र,)

ईसा की ग्यारवीं शती में इस्लामिक संस्कृति के प्रवेश से भारत की दोनों संस्कृतियों (हिंदू-मुस्लिम) का एक दूसरे से प्रभावित होना सहज-स्वाभाविक था। प्रारंभ में ये दोनों संस्कृतियाँ परस्पर प्रतिद्वन्द्वी के रूप में आमने-सामने थी, पर सत्ता में बढ़ते मस्लिम प्रभाव के कारण मुस्लिम संस्कृति एवं कला का प्रभाव भारतीय जन-जीवन पर पड़ने लगा था। इस्लाम मूर्ति-विरोध सर्वविदित है। लेकिन इसमें दो मत नहीं है कि दोनों संस्कृतियाँ परस्पर किसी न किसी रूप में एक समान प्रभाव ग्रहण करती है।

4.4.3 सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियाँ

हिन्दी साहित्य के आदिकाल से समाज विभिन्न वर्णों तथा जातियों में विभाजित तथा असंगठित समाज-व्यवस्था का शिकार था। भारतीय राजसत्ता समाज के हित को भूलकर आपसी फूट और झगड़ों में डूबी थी । यद्यपि वीसल देव व राणा सांगा जैसे राष्ट्रीय भावना युक्त क्षत्रिय भी इस समाज का अंग थे, पर अधिसंख्य लोगों में इस भावना का अभाव था। आप इसे दो स्तर पर भली प्रकार समझ सकते हैं –

सामाजिक परिस्थितियाँ - आदिकाल में समाजिक रीतिरिवाजों और विधि विधान की कट्टरता का प्रचलन पहले से ही विद्यमान था तथा जनता शासनऔर धर्म दोनों ही ओर से निराश्रित और निरतंर युद्धों के झेलने के कारण बुरी तरह त्रस्त थी। ईश्वर के प्रति अनास्था का भाव विकसित हो रहा था। समाज का उच्चवर्ण भोग विलासिता में लीन था और निर्धन या निम्न वर्ण शोषण का शिकार था। नारी भोग की वस्तु रह गई थी। सती प्रथा तथा अंधविश्वासों के अभिशाप से पूरा समाज ग्रस्त था। साधु-सन्यासी शाप और वरदानों के बीच जनसामान्य पर आतंक जमाए थे। आदिकालीन कवियों ने अपने परिवेश और वातावरण से ही अपनी काव्य रचनाओं की सामग्री जुटायी है।

सामाजिक संकीर्णता अपने अनेक प्रतिबन्धों के रूप में आम व्यक्ति को सता रही थी। तभी लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय ने लिखा है कि ,इस काल के समाज में विभिन्न वर्गों के विविध प्रकार के उत्सव और वस्त्राभूषणों के प्रति प्रेम प्रचलित था। अरिवेट, मज्ज युद्ध, घुड़सवारी, द्यूत-क्रीड़ा, संगीत-नृत्य आदि मनोरंजन के साधन थे और कवियों का विशेष आदर था....शक्ति और शैवों को छोड़कर शेष लोग खान-पान में सात्त्विकता बरतते थे। (हिन्दी साहित्य का इतिहास,)

आर्थिक परिस्थितियाँ – आदिकाल के इस काल खण्ड में समाज अपनी आर्थिक परिस्थितियों से भी जूझ रहा था, आर्थिक परिस्थितियों की अस्थिरता का मूल कारण तद्युगीन युद्ध ही कहे जा सकते हैं। विदेशी आक्रांताओं का मुख्य उद्देश्य भारतीय संपत्ति को क्षति पहुँचाना या फिर धन, स्वर्ण आदि लूट कर अपने देश ले जाना था. यही नहीं, समय-समय पर यवन आक्रमणकारी देश में प्रविष्ट होकर हमारे खेतों में खड़ी फसलों को रौंद कर, जलाकर नष्ट कर देते थे। नगरों, गांवों , मंदिरों तथा संग्रहांलयों को तोड़कर लूट कर के हमारी ज्ञान संपदा भी नष्ट करते थे। लगातार युद्धों एवं आक्रमणों का दुष्परिणाम अर्थव्यवस्था तथा सामाजिक व्यवस्था पर व्यापक रूप से पड़ा । जनता निर्धनता और लूटमार से आक्रांत एवं त्रस्त हो चुकी थी और उसको जीवन यापन के साधन जुटाना भी दुर्लभ हो गया था। साहूकारों और सामंत आम निर्धन जनता को ऋण ग्रस्त कर बेहाल किए हुए थे। सत्ता जनता के प्रति गहरी निरपेक्ष थी वह उनके कल्याण और आर्थिक उद्धार करने के स्थान पर उनका शोषण ही कर रही थी। यह स्पष्ट है कि यह काल खण्ड सामाजिक एवं आर्थिक अराजकता का ही था। जमींदार, सेना नायक, शासक जागरूक थे. कर्तव्य-पालन के प्रति उदास थे। अत: आर्थिक अनुदारता के सत्ता पक्ष के इस स्वरूप से जनता निर्धन, आश्रयहीन एवं कमजोरअर्थ साधनों के कारण उच्च वर्गीय शोषण का भी शिकार थी।

4.4.4 साहित्यिक परिस्थितियाँ

त्रिभाषात्मक साहित्यिक सर्जना - आदिकालीन हिन्दी साहित्य का विवेचन करते हुए आपके सामने यह प्रस्तुत किया जा चुका है कि तत्कालीन समय में परंपरागत संस्कृत साहित्य धारा में प्राकृत और अपभ्रंश की साहित्य सर्जना मूलकधारणा और जुड़ गई थी। इसीलिए आदिकाल की साहित्यिक परिस्थिति, साहित्य एवं भाषा के स्वरूप तथा स्थिति विशेष के अध्ययन की अपेक्षा रखती है। आदिकाल की राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक परिस्थितियों की

अस्थिरता और अराजकताका अध्ययन अभी तक आप कर ही चुके हैं। अब आप आदिकालीन साहित्य एवं भाषा की परिस्थितियाँ कैसी थीं यह भी जान लीजिए। नवीं से ग्यारहवी शती ईस्वी तक कन्नौज और कश्मीर संस्कृत साहित्य के मुख्य केन्द्र थे और इस काल खण्ड में एक ओर संस्कृत साहित्य धारा के आनन्दवर्धन, अमिनव गुप्त, कुन्तक, क्षेमेन्द्र, भोजदेव, मम्मट, राजशेखर तथा विश्वनाथ जैसे काव्यशास्त्री तो दूसरी ओर शंकर, कुमारिल भट्ट, एवं रामानुज जैसे दर्शनिकों और भवभूति , श्री हर्ष ,जयदेव जैसे साहित्यकारों का सर्जनात्मक सहयोग था ।

इसी काल खण्ड में प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं की साहित्य सर्जना भी हो रही थी। स्वयंभू, पुष्पदंत तथा धनपाल जैसे जैन कवियों ने अपनी प्राकृत एवं अपभ्रंश तथा पुरानी हिन्दी की मिश्रित रचनाएं भी प्रस्तुत की थीं। सरहपा, शबरपा, कणहपा, गोरखनाथ, गोपीचंद जैसे नाथ सिद्धों ने अपभ्रंश तथा लोकभाषा हिंदी में अपनी रचनाएं प्रस्तुत की। राजशेखर की कर्पूरमंजरी, अमरूक का अमरूशतक तथा हाल की आर्यासप्तशती, अपभ्रंश की उत्तम कृतियों इसी कालखण्ड की देन हैं। वास्तव में यह काल मीमांसा-साहित्य सर्जना की प्रवृत्तियों का रहा हैं। आप ये जान लें कि संस्कृत भाषी साहित्य तत्कालीन राज प्रवृत्ति सूचक है तो प्राकृत एवं अपभ्रंश साहित्य धर्म ग्रंथ मूलक भाषा की प्रवृत्ति का परिचालक है और हिंदी जन मानस की प्रवृत्ति की रचनात्मक वृत्ति का प्रतिनिधित्व करती है।

आदिकालीन साहित्य का विशिष्ट स्वरूप –सामान्यत: इसमें अतिश्योक्ति ही है कि आदिकाल वीरगाथात्मक काव्य में आश्रयदाताओं के शौर्य गान, प्रशस्ति प्रकाशन और अतिरंजना पूर्ण अमिसिकतताका काल है। भावगत इकाई में यह अध्ययन कर चुके हैं कि इसी भ्रम के कारण इस काल खण्ड को वीरगाथा काल कहने के लिए आचार्य शुक्ल को दुविधा में डाला था। अब आप अध्ययन कर यह अवश्य ही अनुभव करेंगे कि दसवीं से चौदहवीं शताब्दी ईस्वीं का यह काल खण्ड साहित्य और भाषा की दृष्टि से विकास का काल था। युद्धों की निरंतरता और वैदेशिक आक्रांताओं द्वारा इस देश को तहस-नहस करने के बीच भी आश्रयदाताओं की साहित्यिक अभिरूचि की सशक्तता के परिणाम स्वरूप इस काल में निम्न प्रकार से भाषा एवं साहित्य के स्वरुप का अववाहन किया जा सकता है-

आदिकालीन भाषा एवं साहित्य

क . संस्कृत साहित्य 1 . वैदिक संस्कृत साहित्य 2 .लौकिक संस्कृत साहित्य

ख . प्राकृत साहित्य 1 . संस्कृतेतर साहित्य 2. अपभ्रंश साहित्य 3 . देशभाषा साहित्य

ग . धर्म संप्रदाय गत साहित्य - स्फुट साहित्य **,** बौद्ध साहित्य , जैन साहित्य

घ . देश भाषा साहित्य

विषम परिस्थितियों में भी आदिकाल में वीरगाथा, भक्ति एवं श्रंगार के साथ धार्मिक, लौकिक और नीतिपरक आध्यात्मिक रचनाएं लिखी गई हैं। संकेत रूप में आप पुन: जान

लीजिए कि इस युग और परिवेश में चंद बरदाई,विद्यापति, अमीर खुसरों, स्वयंभू, पुष्पदंत, रामसिंह, सरहपा, कण्हपा, गोरखनाथ, अब्दुर्रहमान, नरपति नाल्ह तथा जगनिक आदि ने राष्ट्रीय भावना से दूर रहकर आश्रयदाताओं के प्रशस्ति-गायन, शौर्य-वर्णन की अतिशयता, ऐतिहासिक विसंगतियों के बीच विकसित काव्यधारा में भक्ति, नीति और प्रकृति का चित्रण भी किया गया है। उक्त साहित्य सर्जना के आधार पर आचार्य शुक्ल का यह कथन अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है – ''आदि से अंत तक इन्हीं चित्तवृत्तियों की परम्परा को परखते हुए साहित्य परंपरा के साथ उनका सामंजस्य दिखाना ही साहित्य का इतिहास कहलाता है। जनता की चित्तवृत्ति बहुत कुछ राजनीतिक, सामाजिक, सांप्रदायिक तथा धार्मिक परिस्थिति के अनुसार होती है। अत: कारण-स्वरूप इन परिस्थितियों का किंचित दिग्दर्शन भी साथ ही साथ आवश्यक होता है (रामचंद्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास, भूमिका,)

बोध प्रश्न 1 :-

1. आदिकाल की राजनीतिक परिस्थितियाँ क्या थी ?
2. आदिकालीन धार्मिकएवं सांस्कृतिक परिस्थितियों की समीक्षा कीजिए।
3. आदिकाल की साहित्यिक परिस्थितियों का विवेचन कीजिए।
4. आदिकालीन सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियाँ कैसी है ?

4.5 आदिकाल : प्रमुख प्रकृतियाँ

आप अभी आदिकालीन परिस्थितियों का अध्ययन कर चुके हैं और निश्चित ही आपके मन में यह प्रश्न उठ सकता है कि इन परिस्थितियों में किस प्रकार के साहित्य की रचना हुई। अत: इकाई के इस अंश में आपको इस काल की प्रमुख प्रवृत्तियों के विषय में विस्तृत जानकारी देंगे। आपकी सुविधा के लिए प्रमुख आदिकालीन प्रवृत्तियों का वर्गीकरण तीन स्तर पर किया जा रहा है- धर्म संबंधी साहित्य, चारण काव्य और लौकिक साहित्य। अब क्रमश: हम इन्हीं बिन्दुओं के आधार पर आदिकाल की प्रमुख प्रवृत्तियों का उल्लेख करेंगे -

4.5.1 धर्म संबंधी साहित्य

धर्म संबंधी साहित्य के अंतर्गत उस साहित्य का उल्लेख किया जा रहा है जो किसी मत विशेष के प्रचार-प्रसार करने हेतु लिखा गया जैसे – सिद्ध संप्रदाय, नाथ संप्रदाय, जैन संप्रदाय आदि। यद्यपि आचार्य शुक्ल ने इन्हें साहित्यिक रचनाओं के रूप में स्वीकार नहीं किया था। लेकिन आप जान सकते हैं कि ये धर्मसंबंधी रचनाएं केवल धर्म प्रचार मात्र नहीं थी, अपितु इन्हें उत्तम काव्य की कोटि में रखा जा सकता है । इस संबंध में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का कहना है कि , इधर जैन, अपभ्रंश चरित काव्यों की जो विपुल सामग्री उपलब्ध हुई है, वह सिर्फ धार्मिक संप्रदाय के मुहर लगने मात्र से अलग कर दी जाने योग्य नहीं है, अपभ्रंश की कई रचनाएं, जो मूलत: जैन धर्म भावना से प्रेरित होकर लिखी गई हैं, निस्संदेह उत्तम काव्य हैं। यह बात बौद्ध

सिद्धों की कुछ रचनाओं के बारे में भी कहीं जा सकती हैं। (हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली, भाग 1)

4.5.2 सिद्ध काव्य

सिद्ध संप्रदाय को बौद्ध धर्म की परंपरा का हिन्दू धर्म से प्रभावित एवं धार्मिक आन्दोलन माना जाता है। तांत्रिक क्रियाओं में आस्था तथा मंत्र द्वारा सिद्धि चाहने के कारण इन्हें सिद्ध कहा जाने लगा। इन सिद्धों की संख्या 84 मानी गई है। राहुल सांकृत्यायन ने तथा आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इन सिद्धों के नामों का उल्लेख किया है, जिनमें सरहया, शबरपा , कण्हपा, लुइपा, डोम्मिपा, कुक्कुरिपा आदि प्रमुख हैं। केवल चौदह सिद्धों की रचनाएं ही अभी तक उपलब्ध हैं।

सिद्धों द्वारा जनभाषा में लिखित साहित्य को सिद्ध साहित्य कहा जाता है। यह साहित्य वस्तुत: बौद्धधर्म के वज्रयान का प्रचार करने हेतु रचा गया। अनुमानत: इस साहित्य का रचनाकाल सातवीं से तेरहवीं शती के मध्य है। इन सिद्ध कवियों की रचनाएं दोहाकोश और चर्यापद के रूप में उपलब्ध होती है सिद्ध साहित्य में स्वाभाविक सुख-भोगों की स्वीकृति और गृहस्थ जीवन पर बल दिया गया है तथा पाखण्ड एवं बाह्य अनुष्ठानों का विरोध तथा स्व-शरीर में परमात्मा का निवास माना है। यही नहीं गुरू का विशेष महत्व प्रतिपादित किया गया है। आचार्य द्विवेदी का कथन है कि इन रचनाओं में प्रधान रूप से नैराश्य भावना, काया योग, सहज शून्य की साधना और भिन्न प्रकार की समाधि आदि अन्य अवस्थाओं का वर्णन है।

यद्यपि सिद्ध सम्प्रदाय का अभीष्ट काव्य लेखन नहीं था। वो तो केवल अपने विचारों एवं सिद्धांतों की अभिव्यक्ति के लिए जनभाषा में साहित्य रचते थे और उनकी भाषा शैली में जो अक्खड़पन और प्रतीकात्मकता है उसकी प्रभाव परवर्ती हिंदी साहित्य पर पड़ा है। आप देखेंगे कि वे सिद्ध कवि अपनी बात सीधे ढंग से न कहकर तंत्र-मंत्र के अंतर्गत प्रयोग किए जाने वाले विशिष्ट शब्दों के माध्यम से ही प्रकट करते थे। राहुल सांकृत्यायन ने परवर्ती हिंदी कवियों पर उनके प्रभाव का उल्लेख करते हुए कहा है कि ''यही कवि हिंदी काव्य धारा के प्रथम सृष्टा थे। नये-नये छन्दों की सृष्टि करना इनका ही कार्य था उन्होंने दोहा, सोरणा, चौपाई, छप्पय आदि कई छन्दों की सृष्टि की जिन्हें हिंदी कवियों ने बराबर अपनाया है। (हिंदी काव्य धारा, पृ०-36)

सरहपा या राहुलभ्रद का समय 769 ई० के लगभग माना जाता है। इनके ग्रंथों की संख्या 32 है। जिनमें कायावाश, दोहाकाश, सरहपाद गीतिका को प्रमुख माना जाता है। वे कहते हैं –

पडित सअल सत्य वक्टवाण्अ।

देहहिं बुद्ध बसन्त या जाणअ।।

अर्थात पडित सभी शास्त्रों का व्याख्यान करते हैं, किन्तु देह बसने वाले बुद्ध (ब्रहम) को नहीं जानते। सरहपा के अतिरिक्त शबरपा ,लुइप , कण्इपा आदि हैं। जिनके ग्रंथों की अनुमानित: संख्या 16 है । कण्हपा की रचनाओं की संख्या 74 मानी जाती है, पर कण्हपा गीतिका तथा दोहाकांश प्रमुख है। आप जान पायेंगे कि इन ग्रंथों में दर्शन तथा तम-विद्या है। उन्होंने मनुष्य के

जीवन का मूल उद्देश्य सहजानंद की प्राप्ति को माना है,जो मात्र मोह के त्यागने पर शरीर के अंदर ही प्राप्य है जिसका मार्गदर्शक गुरू है। यही साधना मार्ग परवर्ती कवियों के लिए भी मार्ग दर्शक है।

4.5.3 नाथ काव्य

नाथ संप्रदाय को सिद्धों की परंपरा का विकसित रूप माना जाता है। नाथ संप्रदाय में नाथ शब्द का अर्थ मुक्ति देनेवाला है। यह मुक्ति सांसारिक आकर्षण एवं भाग विलास से होती है तथा निवृत्ति मार्ग का दर्शक गुरू होता है। दीक्षा के उपरांत गुरू वैराग्य की शिक्षा देकर इन्द्रिय निग्रह, कुण्डलिनी जागरण, प्राण-साधना, नारी विरति के साथ हठयोग की प्रक्रिया अपनाता है। इनके साहित्य में प्रयुक्त प्रतीक सूर्य, चंद्र, गगन, कमल आदि है जो सूर्य 'ह' और चन्द्र 'ठ' के प्रतीक है और इनका मिलन हठ योग कहा गया है। आचार्य शुक्ल ने इन ग्रंथों की भाषा देशभाषा मिश्रित अपभ्रंश या पुरानी हिंदी मानी है।

नाथ योगियों की संख्या नौ मानी गई है – नागार्जुन, जडभरत, हरिशचन्द्र, सत्यनाथ, भीमनाथ, गोरखनाथ, चर्पटनाथ, जलंधरनाथ और मलयार्जुन है। इस संप्रदाय का आचार्य गोरखनाथ को माना जाता है तथा मत्स्येन्द्रनाथ उनके गुरू थे। गोरखनाथ के ग्रंथों की संख्या चालीस मानी जाती है, परन्तु हजारीप्रसाद द्विवेदी तथा पीताम्बरदत्त बडथ्वाल आदि ने प्रमुखत: चार ग्रंथ ही माने हैं – सदी, पद, प्राण-संकल्पी, शिष्यादर्शन । इनमें संयम, साधना तथा ब्रहमचर्य पर जोर दिया गया है तथा गुरू की महत्ता का बखान किया गया है। गोरख नाथ कहते हैं –

जाणि के अजाणि होय बात तूं ले पशाणि।

चेलेहोइआं लाभ होइगा गुद होइआं हाणि।।

अर्थात् तू जानबूझकर अनजान मत बन और यह बात पहचान ले या जान ले कि शिष्य बनने में लाभ ही लाभ है और गुरू बनने में हानि है।

नाथ योगियों ने आचरण-शुद्धि और चरित क्षमता पर बहुत जोर दिया है। उनके योग में संयम और सदाचार का बड़ा महत्व था। कबीर तथा अन्य भक्ति कालीन संत कवियों के साहित्य में प्राप्त कुंडलिनी जागृत करने की क्रिया का आधार भी नाथ योगियों का हठयोग है। आचार्य द्विवेदी कहते हैं कि नाथपंथ ने ही अनजाने परवर्ती संतों के लिए श्रृद्धाचारण प्रधान पृष्ठभूमि तैयार कर दी थी। (हिंदी साहित्य की भूमिका)

4.5.4 जैन काव्य

जैन का अर्थ होता है सांसारिक विषय वासनाओं पर विजय प्राप्त करने वाला। यह शब्द 'जिन' से बना है यानी विजय पाने वाला। जो सांसारिक आकर्षण पर प्राप्त की जाती है। बौद्ध संप्रदाय से पूर्व ही जैन संप्रदाय का अम्युदय हो चुका था और उसके प्रवर्त्तक भी महावीर स्वामी थे जिनका अविर्भाव भी महात्मा बुद्ध से पहले आया था। जैन संप्रदाय में दया, करूणा, त्याग तथा अहिंसा, इंद्रिया निग्रह, सहिष्णुता, व्रतोपवास आदि को महत्व दिया गया है। जैन कवियों एवं

मुनियों ने अपने धर्म-प्रचार के लिए लोकभाषा ही अपनाई जो अपभ्रंश से प्रभावित हिंदी है। इनकी अधिसंख्य रचनाएँ धार्मिक हैं जिनमें जैन संप्रदाय की नीतियों, अध्यात्म और आगमों का विवेचन है और कुछ चरितकाव्य हैं। इनकी कृतियाँ रास, फागु, चरित, चउपई आदि काव्यरूपों में उपलब्ध है तथा अधिकतर उपदेशात्मक है। रस काव्यों में प्रेम-विरह एवं युद्ध आदि का वर्णन है। लौकिककाव्य होने के कारण इनमें धार्मिक तत्वों का समावेश भी हो गया है। अपभ्रंश काव्य परंपरा में प्रथम जैन कवि स्वयंभू हैं जिनका आविर्भाव सातवीं शती में हुआ था। इनकी प्रमुख कृतियाँ है – रिट्ठनेमि चरिउ (अरिष्टनेमि चरित), पउम चरिउ (पद्म चरित) तथा स्वयं भूछन्दस। इनमें से पउम चरिउ में राम कथा है जो जैन धर्मानुसार रूप ग्रहण करती है तथा पांच खण्डों में विभक्त है। अरिष्टनेभि चरित में महाभारत और कृष्ण कथा चारकाण्डों में वर्णितहैतथा कौरव-पाण्डव युद्ध का वर्णन भी मिलता है लेकिन वह भी जैन धर्म की रीतिके अनुसार कृष्ण चरित में उभरते परिवर्तन के रूप में ही है।

दूसरे महत्वपूर्ण कवि पुष्पदंत हैं जिनका आदिर्भाव दसवीं शती के आरंभ माना जाता है। पुष्पुदंत पहले शैव थे, बाद में जैन दीक्षा ग्रहण की थी। इनकी कृतियाँ हैं – तिसट्ठि मही , पुरिसगुणालंकार, महापुराण और णायकुमार चरिउ इसमें से प्रथम कृति दो भागों- आदि पुराण एवं उत्तर पुराण जो तीन खण्डों में विभक्त हैं तथा तेईस तीर्थंकरों एवं भरत का चरितोल्लेख लिए हुए है। नागकुमार चरित में नौ संधियों में विभक्त चरितकाव्य है जो मूलत: श्रुत पंचमी के व्रत की महिमा लिए हुए है तथा अपभ्रंश भाषा में लिखी गई है। यह व्रतानुष्ठानिक कथा है। नागकुमार ने व्रतानुष्ठान के आधार पर 24 कामदेवों में से एक के रूप में जन्म लिया था। यह अपभ्रंश भाषा में लिखित नागकुमार के अलौकिक एवं चमत्कारिक कार्यों का वर्णन है। यही नहीं, आदिकालीन आधार सामग्री हेतु इसके अतिरिक्त मेरूतुंग की 'प्रबंध चिंतामणि, मुनि रामसिंह की पाहुड़ दोहा, धनपाल की **भविसयत्तकहा** भी जैन साहित्य की उल्लेखनीय कृतियाँ हैं।

4.5.5 चारण काव्य

आदिकाल की विशेष प्रवृत्ति रही हैं कि कवियों आश्रयदाता राजा के राज्याश्रित कवियों द्वारा उनकी प्रशस्ति एवं वीरता तथा शौर्य का गायन किया है तथा युद्धों का सजीव चित्रण भी। ऐसे कवियों को चारण कवि या दरबारी कवि कहा जाता था। ये चारण कवि अपने आश्रयदाता के यश, शौर्य, गुण में और वीरता की अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन करने में कुशल स्वामी भक्ति कवि थे। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते हैं कि , निरन्तर युद्धों के लिए प्रोत्साहित करने को भी एक वर्ग आवश्यक हो गया था। चारण इसी श्रेणी के लोग थे। उनका कार्य ही था हर प्रसंग से आश्रयदाता के युद्धोन्माद को उत्पन्न कर देने वाली घटनाओं का अविष्कार (हिंदी साहित्य की भूमिका) चारण कवियों ने अपने काव्य का प्रणयन अधिकतर डिंगल भाषा (राजस्थानी) में ही किया है : बोलचाल की राजस्थानी भाषा के साहित्यिक रूप को डिंगल कहा जाता है जो वीरगाथात्मक काव्य के लिए सर्वथा उपयुक्त है। चारण काव्यकारों में चंद बरदाई, दलपति विजय, जगनिक, नरपतिनाल्ह आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इनमें प्राय: सभी ने रासो काव्य

परंपरा में अपनी काव्य कृतियाँ प्रस्तुत की हैं। चंद बरदाई ने पृथ्वीराजरासो , नरपति नाल्ह ने वीसलदेवरास , दलपति विजय ने खुमाणरासो तथा जगनिक ने परमालरासो (आल्हा खण्ड) की रचनाएं की .जगनिक ने परमात्मा रासों में क्षत्रिय जीवन का युद्ध के लिए ही अभीष्ट माना है –

बारह बरस लौ कूकर जिए औ तेरह लै जिए सियार।

बरस अठारह सभी जीये, आगे जीवन को धिक्कार।।

नरपति नाल्ह ने विग्रह राज (बीसल देव) का चरित वर्णन किया।

यहीं पर आपको यह बताना भी अधिक उपयुक्त होगा कि आचार्य रामचंद्र शुक्ल वीरगाथा काल की आधार सामग्री में गृहीत पुस्तक भट्ट केदारकृत जयचंद प्रकाश तथा मधुकर कवि रचित जयमयंकजस चंद्रिका आज भी अनुपलब्ध हैं और उनका उल्लेख दयालदास कृत **राठौड री ख्यात** में ही मिलता है। अनुमान किया जा सकता कि ये दोनों कृतियाँ महाराजा जयचंद के प्रताप और पराक्रम की गाथा से परिपूर्ण हो सकती हैं।

4.5.6 लौकिक काव्य

जनता की चित्तवृत्तियों का सर्वाधिक सटीक वर्णन लौकिक या लोक साहित्य परक कृतियों में मिलता हैं। ये प्रमुख रचनाएं ऐसी होती हैं जो कभी कवि विशेष द्वारा रची गई होती हैं, पर कालान्तर में वे लोक कंठाश्रित हो जाती हैं और जो उनका गायन वाचन करते हैं उनकी अपनी काव्यात्मक सम्वेदना कब कितना योगदान करती हैं, उसकी कोई पहचान संभव नहीं होती है। दूसरी ओर ऐसी भी लौकिक परंपरा की काव्य कृतियाँ सामने आती हैं जिसमें विशेष विषयों से संबंध जुड़ा होता है जिसका साहित्येतर प्रवृत्ति के रूप में जनता के मनोरंजन हेतु प्रस्तुत किया जाता है। इसमें अमीर खुसरों द्वारा मुकारियों तथा पहेलियों का सृजन किया गया है। दूसरी ओर भक्ति एवं श्रृंगार की प्रकृति को लेकर विद्यापति ने साहित्य (पदावली) की रचना की धनपाल जैसे जैन कवि ने सामान्य व्यक्ति को नायक बनाकर काव्य सृजन की नई प्रवृत्ति आरंभ की।

अमीर खुसरों का आविर्भाव तेरहवीं शती (सन् 1255 ई.) में हुआ और उन्होंने लगभग सौ ग्रंथ की रचना की। उनमें से बीस ग्रंथ ही उपलब्ध होते हैं। उनकी काव्य कृति में पहेलियाँ, दो सुखन, मुकरियाँ, ढकोसला आदि संग्रहित हैं । उनकी रचनाएं प्राय: खड़ी बोली हिंदी का प्रारम्भिक किंतु ऐतिहासिक रूप है। कुछ उद्धाहरण द्रष्टव्य है –

एक थाल मोती से भरा।

सब के सिर औंधा धरा।

चारों ओर वह थाल फिरे

मोती उससे एक न गिरे (पहेली उत्तर : तारों भरा आकाश)

मुकरी का उदाहरण –

मेरा मोसे सिंगार करावत

आगे बैठ के मान बढावत

वासं चिक्कन ना कोउ हीसा

ऐ सखि साजन ना सखि सीसा

विद्यापति बिहार (दरभंगा) निवासी कवि हैं जिन्होंने मैथिली भाषा में श्री कृष्ण एवं राधा विषयक प्रेम विरह भावों को अभिव्यक्ति दी है। विद्यापति के प्रथम आश्रयदाता राजा कीर्ति सिंह और बाद में मैथिली नरेश शिव सिंह थे। विद्यापति ने अपने अधिकांश ग्रंथों की रचना संस्कृत में की। इनमें शैव सर्वस्वसार, प्रमाणभूत पुराण संग्रह ,भू-परिक्रमा, पुरूष परीक्षा, लिखनवली, गंगा वाक्यावली, दान वाक्यावली, विभागसार, दुर्गाभक्ति तरंगिनी प्रमुख हैं। हिंदी साहित्य के अंतर्गत विद्यापति के तीन ग्रंथ उल्लेखनीय हैं – कीर्तिलता, कीर्तिपताका तथा पदावली. कीर्तिलता और कीर्तिपताका चरित काव्य है, पदावली श्रृंगारिक एवं भक्ति परक रचना है। कीर्तिलता राजा कीर्ति सिंह चरित विषयक रचना है जो कवि द्वारा अवहट्ठ (अपभ्रंश) की प्रथम रचना है और जिसे सुनने से पुण्य प्राप्ति होती है। भृंग-भृंगी संवाद द्वारा कहानी आगे बढ़ाई गई है। पृथ्वीराज रासो में शुक-शुकी सम्वाद है। इस रूप में दोनों कृतियों में साम्य है। पदावली पद संग्रह है जो मैथिली (भाषा) में रची गई है। वस्तुत: इस विद्यापति पदावली के गीतों का सर्वाधिक प्रचार चैतन्य महाप्रभु ने किया है। वे भाव विभोर इन नीतियों का गायन करते थे। इन पदों (82) में राधाकृष्ण प्रेम का श्रंगारिक चित्रण है। राधा के अप्रतिम सौन्दर्य का चित्रण विद्यापति करते है-

लोल कपोल ललित मनि-कुण्डल, अधर बिम्ब अध आई।

भौंह भमर नासा पुट सुन्दर, देखि कीर लजाई

विद्यापति के इस गीत काव्य के नायक राधा-कृष्ण हैं, परन्तु यह केवल भक्ति रचना नहीं है। वास्तव में विद्यापति ने राधा-कृष्ण की प्रणय-लीला से सम्बद्ध पदों की रचना श्रृंगार चित्रण को ध्यान में रखकर की है। डॉ. रामकुमार वर्मा कहते हैं -, उन्होंने (विद्यापति ने) श्रृंगार पर ऐसी लेखनी उठाई है जिससे राधा और कृष्ण के जीवन का तत्व प्रेम के सिवाय कुछ नहीं रह गया है। ‘‘(हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास) **भविष्यत्त कहा** यह अपभ्रंश में रचित कथा काव्य है जो श्रुतपंचमी के महात्मय का वर्णन है। इसके रचयिता जैन संप्रदाय में दीक्षित कवि (दसवीं शती) है। यह कृति बाईस संधियों में रचित दम्पत्ति धनपाल और कमलश्री के पुत्र भविष्यदत्त की कथा है जिसे उसका सौतेला भाई बंधुदत्त धोखा देकर सारी संपत्ति हड़प कर लेता है। भविष्यदत्त की सच्चरित्रता तथा वीरता के कारण राजपुर के राजा बंधुदत्त को दंडित कर भविष्यदत्त से अपनी बेटी का विवाह कर देते हैं। विवाह के उपरांत भविष्यदत्त को मनि विमल बुद्धि उपदेश देते हैं तथा उन्हीं के माध्यम से उसे अपने पूर्वजन्म की कथा का पता चलता है। अंत में भविष्यदत्त तपस्या करके निवार्ण की प्राप्ति करते हैं। यह काव्य कडवकबद्ध शैली में रचित प्रकृति, रूप, नखशिख वर्णनों का श्रेष्ठ आंकलन है जिसमें वीर श्रृंगार तथा शांत तीन रसों का समावेश है तथा इसकी भाषा अपभ्रंश या पुरानी हिंदी है। ढोलामारू रा दूहा , सन्देशरासक

की परंपरा में रचा गया लोककाव्य है और बीसलदेवरासो की भांति सन्देश काव्य है। इसमें बचपन में हुए विवाह के उपरांत मारू अपने पति ढोला को कई सन्देश भेजती है। अंत में मारर (मारवणी) लोकगीतों के गायक ढोढी का दायित्व सौंपती हैं और वह अपने उद्देश्य में सफल होती है और उन दोनों का मिलन सम्भव हो जाता है। यद्यपि परदेश में ढोला का प्रेम मालवाणी के साथ विकसित हो जाता है। इधर-मारवणी की मृत्यु के बाद मालवणी और ढोला का पुनर्मिलन हो जाता है।

ढोलाकाव्य सौष्ठव से परिपूर्ण अनुपम लोकगाथा है। जिसमें श्रृंगार का संयोगकालीन वर्णन मर्यादित एवं अलौकिक है। नख-शिख पंरपरा युक्त वियोग वर्णन में हृदय की सच्चाई का स्वाभाविक एवं प्रभावशाली वर्णन है। मारवणी ढोढी के समक्ष अपने सन्देश में नारी हृदय को खोल कर रख देती है –

ढाढी एक संदेसड़उ , प्रीतम कहिया जाइ।

सा घण बलि कुइला भई भसम ढँढोलिसि आइ।

ढाढ़ी जे प्रीतम मिलइ, यूं कहि दाखनियाह।

ऊँजर नहिं छई प्रणिय था दिस झल रहियाह।

अर्थात् घनि (पत्नी) जलकर कोयला हो गई है। अब आकर उसकी भस्म ढूंढना । अब उसके पंजर में प्राण नहीं है केवल उसकी लौ तुम्हारी ओर झुककर जल रही हैं, मारवणी का वह निवेदन जहाँ एक ओर चारण काव्यों के प्रणयन की व्यापकता बढ़ाता है, वही जन साधारण के कवि की स्वान्त:सुखाय लोक भावनाओं को जीवंत रूप में सहज ही प्रस्तुत करता है।

बोधप्रश्न 2

1. सिद्धकाव्य किसे कहते हैं ?
2. नाथ कवियों की विशेष प्रवृत्ति पर प्रकाश डालिए।
3. जैन काव्य का महत्व स्पष्ट कीजिए।
4. चारणकाव्य का स्वरूप स्पष्ट कीजिए।
5. लोकाश्रित ढोला मारू रा दूहा का महत्व स्पष्ट कीजिए।

4.6 आदिकालीन काव्य प्रक्रिया

अब तक के अध्ययन से आप जान चुके हैं कि आदिकाल की परिस्थितियाँ कैसी बन पड़ी थी जिन्होंने तत्कालीन कवियों में काव्य रचना की विशेष प्रवृत्तियों को जन्म दिया था। आप इस इकाई से यह जान ही चुके हैं कि परिस्थितियाँ कवि को उत्प्रेरित करती हैं और अवसर भी देती हैं कि वह अपने समय की यथार्थ चेतना की अभिव्यक्ति काव्य सर्जना में करें। परिस्थितियाँ और प्रवृतियाँ परस्पर परिपूरक दायित्व से जुड़ी रहती हैं, इन्हें अलग करके नहीं देखा जा सकता है। ये दोनों ही कवि की रचना-प्रक्रिया का मूलाधार बनती हैं।

ऐतिहासिक काव्य – आदिकाल की संक्रमणशील परिस्थितियों और तत्कालीन राजा-महाराजाओं तथा विदेशी आक्रामकों के कारण कवियों ने अपने आश्रयदाता राजा के कुल गौरव एवं शौर्य-गाथा का चित्रणयुगीन आवश्यकता के रूप में किया है। पराजय और हताषा के युग में अपने पूर्व-पुरूषों के शौर्य एवं गौरव को दुहराने के लिए उन्हें इतिहास का सहारा लेना ही अनिवार्य था, पर इतिहास को अपने राजा और उसकी प्रशास्ति के अनुरूप मोड़ लेना भी अनिवार्य था। यही कारण है कि उसमें इतिहास एवं कल्पना (फैक्टस और फिक्शन) का आश्रय लेकर उन्होंने अतीत को वर्तमान में देखने की सफल प्रयास किया है।

काव्य रचना इतिहास नहीं होती है, पर इतिहास का आश्रय काव्य की सम-सामयिक उपदेयता बढ़ा देता है। कवि इतिहासकार भी नहीं होता जो घटनाओं का यथाक्रम विवरण दें, वह तो काव्य-प्रयोजन सिद्ध घटनाक्रमों का आश्रय लेता है और कल्पना से उसमें काव्यात्मक ऊर्जा का मिश्रण कर उसे श्रवणीय (दरबारी वातावरण में) और पठनीय (लिखित कृति रूप में) बना देता है। पृथ्वीराज रासो का प्रथम संपादन जब कर्नल जेम्स टाड ने उदयपुर से पच्चीस किलोमीटर दूर एकांत में निर्मित एजेण्ट के बंगले में पशु चराने वालों से सुनकर किया तो प्रो व्हूलर में उसे जाली करार दे दिया था क्योंकि जगनिक द्वारा संस्कृत की हस्तलिखित प्रति **पृथ्वीराज विजय** में उल्लिखित सन् सम्वतों का साम्य विविध शिलालेखों से हो जाता था, पर पृथ्वीराज रासो में उल्लिखित ऐतिहासिक घटना क्रम से साम्य नहीं रखता था। ऐसे ही किसी भी काव्य ग्रंथ में इतिहास सप्रसंग सांकेतिकता तो ले सकता है पर कल्पना ही अधिक व्यापकता ग्रहण करती है तभी कवि अपने काव्य प्रयोजन की सिद्धि में सफल हो पाता है। इस संदर्भ में यह कहा जाना भी कि पृथ्वी राज रासो ही नहीं अनेक अन्य रचनाएं ऐसी हैं, जो इतिहास का संस्पर्श लेकर ही चली हैं, उनमें सन् सम्वत का वह दखल नहीं हैं जो इतिहास में होता है, पर काव्यात्मक दृष्टि से वे अपने चरित नायक को ऐतिहासिक सिद्ध कर देती है, शेष कथा का विकास कवि कल्पना का विस्तार लिए है (रासो काव्यधारा)

उक्त विवरण के साथ आप यह भी जान सकते हैं कि आदिकाल के हिंदी ऐतिहासिक काव्यों में ऐतिहासिक तथ्यों की ओर कवि ने ध्यान नहीं दिया। उसने कल्पना का ही अधिक सहारा लिया और काव्य-निर्माण पर विशेष ध्यान दिया। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का कथन इस संदर्भ में महत्वपूर्ण सिद्ध होता है कि ऐतिहासिक व्यक्तियों के नाम पर काव्य लिखने की प्रथा बाद में खूब चली।.....परन्तु भारतीय कवियों ने ऐतिहासिक नाम भर लिया, शैली उनकी वही पुरानी रही जिसमें काव्य निर्माण की ओर अधिक ध्यान था, विवरण संग्रह की ओर कम, कल्पना अधिक, तथ्य निरूपण कम, संभावनाओं की ओर अधिक रूचि थी, घटनाओं की ओर कम, उल्लासित आनंद की ओर अधिक झुकाव था, तथ्यावली की ओर कम।..... पृथ्वीराज रासो में चंद बदराई ने कल्पना और तथ्य का सुन्दर सामंजस्य उपस्थित किया है, पर इसमें भी कल्पना तथ्य पर हावी हो गई है। (हिंदी साहित्य का आदिकाल) आदिकाल की आधार सामग्री में और नई खोजों से प्राप्त तद्युगीन अन्य काव्यकृतियों का मूल्यांकन किए जाने के उपरांत आपके समक्ष यह तथ्य बहुत ही स्पष्ट रूप में रखा जा सकता है कि युद्ध सामंती

परिवेश की अनिवार्यता है और उसके लिए प्रतिपक्ष से शत्रुता ही अनिवार्य नहीं है क्योंकि आल्हाखण्ड (परमाल रासो) में कवि एक स्थान पर कहता है-

''जेहि कि कन्या सुन्दर देखी

तेहीं घर जाय धरै हथियार''

यानी जिस किसी परिवार में सुन्दर कन्या देखी, वहीं वीर योद्धा ने उसकी प्राप्ति के लिए उसके परिवार के समक्ष तलवार दिखाकर विवाह के लिए बाध्य कर दिया।

इस प्रकार के उल्लेख से आप समझ सकते हैं कि राजाओं द्वारा किस प्रकार अन्य राजाओं को युद्ध अथवा बेटी से विवाह के विकल्प दिए थे क्योकि हारकर या बेटी देकर दोनों की रूपों में उक्त राजा की अधीनता या आश्रय ही उनकी नियति रह गई थी। प्रश्न यह भी है कि आदिकाल में लिखित काव्यों में श्रृंगार का निरूपण किस रूप में हुआ है। प्रथम रूप में वीरगाथात्मक काव्यों के स्तर पर प्रेम और युद्ध के साथ-साथ श्रृंगार का चित्रण किया गया है। पृथ्वीराज रासो इसका श्रेष्ठ उदाहरण है। पृथ्वीराज रासो के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उसमें प्रेम का वर्णन युद्ध के फलक पर हुआ है। लेकिन आदिकाल के अन्यकाव्यों में ऐसे भी उदाहरण हैं, जिनमें अलग से नायक-नायिका के प्रेम और विरह (संयोग और वियोग) का चित्रण किया गया है। वीसलदेव रास, विद्यापति पदावली, ढोलामारू दूहा के उदाहरण इसके साक्षी हैं। विजयपाल रासो की खण्डित सामग्री में भी श्रृंगार और प्रेम का ही निरूपण मिलता है। इस रासो के 43 छन्द मिले हैं।

निष्कर्ष रूप में यह कहना आप के लिए अधिक सहज है कि आदिकाल के काव्यों में अपने आश्रयदाता के मनोरंजन के लिए शौर्य एवं प्रशस्ति गायन (यानी वीर रस) के अतिरिक्त श्रृंगार (संयोग-वियोग) के चित्र ही उनके काव्य कौशल को प्रशंसा दिला सकते थे।

4.6.3 लौकिक काव्य - अब इकाई के इस अंश में आदिकाल में लिखत काव्य प्रक्रिया का यह स्वरूप आपकेसामने प्रस्तुत है जिसे कहा जाता है-लौकिक काव्य। यद्यपि खुसरोकी पहेलियोंका उल्लेख आधार सामग्री के रूप में आचार्य रामचंद्र शुक्ल कर ही चुके थे। अन्य और परवर्ती सामग्री उन्हें बीसवीं शती के दूसरे दशक तक उपलब्ध हो गई होती तो यह संभव था कि इस प्रक्रिया में वह भी आपके अध्ययन के लिए उपलब्ध करा दी गई होती। पर शुक्ल जी के समय में जब हिंदी शब्द सागर की भूमिका को वे इतिहास का रूप दे रहे थे, तब साधनों के अभाव और लेखक की सीमाओं के कारण ऐसा संभव नहीं हो सकता था।

परवर्ती काल में हिंदी साहित्येतिहासकारों के प्रतिस्पर्धात्मक इतिहास लेखन ने गर्भगृहों, मंदिरों-उपासरों, निजी पुस्तकालयों के द्वार खटखटाए और सामग्री की खोज में लगे तो आदिकाल की इस प्रवृति-प्रक्रिया का क्षेत्र विस्तार हुआ और अब इस क्षेत्र में ढोलामारूदा दूहाका उल्लेख अनिवार्य हो गया है। 'वसंतविलास', जयचंद्र प्रकाश और जयमंयकजसचिद्रका, को भी लौकिक काव्य के रूप में स्वीकार किया जाने लगा है। यद्यपि हम पिछली इकाई में (पांचवीं में) आपको यह बता चुके हैं कि 'जयचंद्र प्रकाश' और जयमयंकजस

चंद्रिका का उल्लेख ही हैं,वह भी राठौढा री ख्यात में उल्लेखकार ने स्वयं इन कृतियों के संबंध में कुछ भी विवरण नहीं दिया है।

आप यह जान कर अपना ज्ञान-वर्द्धन करेंगे कि इन लौकिक काव्यों की वर्ण्य-वस्तु श्रृंगार रस प्रधान है। वीर रस का उसमें योगदान नहीं है। वीर और श्रृंगार रस एक दूसरे के पूरक होते हैं पर यह नितान्त श्रृंगारिक रचनाएं हैं। 'ढोला मारू रा दूहा' प्रेमकाव्य है, वसंत विलास में वसंत और स्त्रियों पर उसके विलास पूर्ण प्रभाव का मनोहारी चित्रण किया गया है। उसका ही एक उदाहरण दृष्टव्य है –

इणिपरि कोइलि कूजइ, पूजइ यूवति मणोर।

विधुर वियोगिनि धूजइ, कूजइ मयण किशोर।

अर्थात एक ओर आम्रवृक्षों पर कोयल कूकती है, दूसरी ओर पति युक्त युवतियाँ विलास मग्न होकर मनोरंजन करती हैं। इसे देखकर विधुर जन और वियोगिन नारियाँ कांपने लगती हैं, क्योकि मदन किशोर (कामदेव) का कूजन उनके मन में प्रिय के अभाव का आभास देता रहता है। आदिकाल के स्तर पर लौकिक काव्य में ऐसी रचनाएं हैं जो इस काल खण्ड में लिखी गई हैं, पर उनकी वर्ण्य-वस्तु रीतिकालीन है।

बोध प्रश्न 3

1. आदिकाल की काव्य प्रक्रिया समझाइए।
2. आदिकाल के ऐतिहासिक काव्यों में ऐतिहासिकता क्यों नहीं है ?
3. आदिकाल में श्रृंगारिक रचनाओं का अंबार क्यो रहा है ?
4. आदिकाल के लौकिक काव्य की विषय वस्तु पर प्रकाश डालिए।

4.7 सारांश

इस संपूर्ण इकाई का अध्ययन करने के बाद आप जान चुके होंगे कि आपको आदिकाल के विविध स्वरूपों का अच्छा परिचय हो गया है कि आदिकाल में मात्र वीरगाथाएं ही नहीं लिखी जा रही थीं और जो वीरगाथाएं थी उनके ऐतिहासिकता नामोल्लेख भर रही है, क्योंकि कवि का उद्देश्य इतिहास निर्माण करने के स्थान पर अपने आश्रयदाता को प्रोत्साहित एवं उद्बोधित करने के लिए ही कल्पना प्रसूत काव्य रचना प्रस्तुत करना था । इसीलिए तत्कालीन विषम राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, साहित्यिक परिस्थितियों के बीच अपने आश्रयदाता का मनोबल बनाए रखने के लिए कवि तथ्य एवं कल्पना के आश्रय में मनोरंजक एवं श्रृंगारिक काव्य प्रस्तुत करता था। इसी कारण इस काल खण्ड में इतिहास न लिखकर ऐतिहासिक (रस ग्राह्य), श्रृंगारिक एवं लौकिक काव्य रचनाओं की सृष्टि हुई हैं।

4.8 शब्दावली

आगम	:	जैन विद्या में वेद निरूपण
आक्रांता	:	भयभीत करने वाला
चरितकाव्य	:	ऐसा काव्य जिसमें किसी व्यक्ति का चरित चित्रण प्रमुख हो
पदावली	:	पद शैली में रचित काव्य। इसका मूल स्रोत लोकगीत है। पद में प्राय: किसी न किसी राजा का निर्देश होता है
रास	:	रास एक गेय रूपक
रासो का	:	रासक शब्द से निर्मित। व्यापक रूप से ऐसा चरित्र काव्य जो जीवन समग्र चित्रण लिए हो।
चारण	:	राजाश्रय प्राप्त कवि जिनका काम राजा की प्रशस्ति करना होता था .

4.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. हजारीप्रसाद द्विवेदी : हिंदी साहित्य का आदिकाल , हिंदी साहित्य की भूमिका
2. रामचंद्र शुक्ल : हिंदी साहित्य का इतिहास
3. राहुल सांकृत्यायन : हिंदी काव्यधारा
4. विजय कुलश्रेष्ठ : रासो काव्यधारा
5. शिवकुमार शर्मा : हिंदी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ
6. हरिश्चन्द्र वर्मा : हिंदी साहित्य का इतिहास
7. रामकुमार वर्मा : हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास

4.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. आदिकाल की परिस्थितियों पर अपने विचार स्पष्ट कीजिए।
2. आदिकाल की प्रमुख प्रवृत्तियाँ क्या थी, उनका विवेचन कीजिए।
3. आदिकालकी सर्जनात्मक प्रक्रिया पर अपना सटीक निबंध लिखिए।

इकाई 5 भक्तिकालीन कविता का उदय

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 भक्तिकाल: सीमांकन एवं नामकरण
5.4 भक्तिकालीन युग एवं परिवेश
  5.4.1 राजनीतिक परिस्थिति
  5.4.2 आर्थिक परिस्थिति
  5.4.3 सामाजिक परिस्थिति
  5.4.4 सांस्कृतिक परिस्थिति
5.5 भक्ति का अर्थ एवं स्वरूप
5.6 भक्ति का उदय
5.7 भक्ति संबंधी विभिन्न दार्शनिक सिद्धांत
  5.7.1 विशिष्टाद्वैतवाद
  5.7.2 द्वैतवाद
  5.7.3 शुद्धाद्वैतवाद
  5.7.4 द्वैताद्वैतवाद
5.8 निर्गुण भक्ति का दार्शनिक आधार
  5.8.1 संत काव्य का दार्शनिक आधार
  5.8.2 सूफी मत
5.9 भक्ति आन्दोलन
  5.9.1 भक्ति आंदोलन: उदय एवं विकास
  5.9.2 भक्ति आंदोलन: उदय के कारण
  5.9.3 भक्ति आंदोलन: महत्व
5.10 भक्ति कालीन कविता का उदय
5.11 सारांश
5.12 शब्दावली
5.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.14 संदर्भ ग्रंथ सूची
5.15 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री
5.16 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में हम लोग भक्ति कविता के आधार एवं जिस परिवेश में भक्ति कविता का जन्म होता है, की चर्चा करेंगे। साहित्य में भक्ति की धारा का प्रादुर्भाव सहसा नहीं होता। पूर्व परम्परा एवं युगीन परिस्थितियों दोनों मिलकर भक्ति आंदोलन और भक्ति काव्य को जन्म देती हैं। इस इकाई के अंतर्गत भक्तिकाल सीमांकन एवं नामकरण, भक्तिकालीन युग एवं परिवेश, भक्ति का अर्थ एवं स्वरूप भक्ति का उदय, भक्ति सम्बन्धी विभिन्न दार्शनिक सिद्धांत, निर्गुण भक्ति का दार्शनिक आधार, भक्ति आंदोलन, भक्तिकालीन कविता का उदय-की विस्तृत विवेचना की जाएगी। दरअसल यह इकाई भक्तिकालीन कविता की पूर्व पीठिका के तौर पर है। उपरोक्त विभिन्न पक्षों के क्रमवार विवेचन द्वारा भक्तिकालीन कविता की प्रवृत्तियों एवं धाराओं, उसकी पृष्ठभूमि को बेहतर ढंग से समझ पाना संभव होगा।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप -

- पूर्व मध्यकाल की समय-सीमा एवं नामकरण को जान सकेंगे।
- भक्तिकालीन राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों से परिचित हो सकेंगे।
- भक्ति के अर्थ एवं स्वरूप से अवगत हो सकेंगे।
- भक्तिकालीन कविता के दार्शनिक आधार को बतला सकेंगे।
- भक्ति आंदोलन के उदय, विकास एवं महत्व का विश्लेषण कर सकेंगे।
- भक्ति काव्य के उदय की व्याख्या कर सकेंगे।

5.3 भक्तिकाल: सीमांकन एवं नामकरण-

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में पूर्व-मध्यकाल की समय सीमा 1318 ई. से 1643 ई. तक निर्धारित की है। आचार्य शुक्ल के इस सीमांकन को प्रायः सभी ने स्वीकार किया है। आदिकालीन सिद्ध, नाथ, जैन साहित्य में दिखलाई पड़ने वाले भक्ति तत्व के आधार पर न तो इस काल की सीमा को पीछे खींचा जा सकता है और न ही रीतिकालीन, भक्तिकालीन रचनाओं के आधार पर इसे आगे बढ़ाया जा सकता है। क्योंकि सिद्ध, नाथ, जैन साहित्य में भक्ति का वह उन्मेष, वह तन्मयता नहीं दिखलाई पड़ती, जो भक्ति काव्य में निहित हैं। दूसरी तरफ रीतिकालीन भक्तिपरक रचनाएँ सरस तो हैं, किंतु उनमें अधिकांशतः भक्तिकाव्य का ही अनुकरण है। अतः उपलब्ध सामग्री के आधार पर आचार्य शुक्ल का सीमांकन ही सर्वथा उचित और ग्राह्य हैं। मोटे तौर पर हम पूर्व मध्यकाल को 14वीं सदी के मध्य

से 17वीं सदी के मध्य तक मान सकते है। क्योंकि आदिकालीन रचना प्रवृत्तियों का प्राधान्य 14वीं सदी के मध्य तक दिखलाई पड़ता है और 17वीं सदी के मध्य तक आते-आते साहित्य में भक्ति के स्थान पर रीति कालीन प्रवृत्तियों की प्रबलता दृष्टिगोचर होने लगती है।

पूर्वमध्यकाल का आचार्य शुक्ल ने भक्तितत्व की प्रधानता के आधार पर भक्ति काल नामकरण किया है। हम देखते हैं कि इस युग के कविता की मूल संवेदना भक्ति है। चाहे संतकाव्य हो या प्रेमाख्यानक काव्य, रामभक्ति मार्ग हो या कृष्ण भक्तिमार्ग -सबमें भक्ति की ही केन्द्रीयता है, भले ही भक्ति के स्वरूप में भिन्नता है। भक्ति के अतिरिक्त इस युग में वीरगाथा, नीति और रीतिनिरूपण की प्रवृत्ति भी मिलती है। किंतु भक्तिपरक रचनाओं की तुलना में ऐसी रचनाओं की संख्या कम है। नीति तो बहुधा भक्ति के साथ संयुक्त होकर आई है। अतः पूर्वमध्यकाल को भक्तिकाल कहना उचित ही है।

5.4 भक्तिकालीन युग एवं परिवेश

युगीन परिस्थितियाँ साहित्यिक प्रवृत्तियों को निर्मित करती है, उन्हें प्रेरित, प्रभावित करती हैं। रचनाकार जिस युग एवं परिवेश की उपज होता है। वह उससे उदासीन नहीं रह सकता। वह रचना में अपने युग के अभिव्यक्त ही नहीं करता, बड़ा रचनाकार युगीन सीमाओं का अतिक्रमण कर अपने युग को नए मूल्य-मान, नया स्वप्न-संकल्प भी देता है। पूर्व मध्यकाल राजनीतिक सत्ता, सामाजिक अवस्था, सांस्कृतिक परिवेश में बड़े परिवर्तनों और उलट-फेर का काल है। मुसलमानों के आक्रमण एवं मुसलमानी सत्ता की स्थापना से पूरे समाज पर एक गहरा प्रभाव पड़ा, नयी आर्थिक-सामाजिक स्थितियाँ निर्मित हुई जो भक्ति आंदोलन के उदय में सहायक हुई। अतः भक्ति कालीन कविता को समझने के लिए तत्कालीन राजनीतिक आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों का परिचय आवश्यक है। आइए हम क्रमवार इन्हें देखे-

5.4.1 राजनीतिक परिस्थिति

भक्तिकाल राजनीतिक दृष्टि से तुगलकवंश से लेकर मुगल बादशाह शाहजहाँ के शासन तक का काल है। दसवीं शताब्दी में पश्चिममोत्तर भारत में तुर्कों के कई आक्रमण हुए, तत्कालीन भारतीय राजाओं की आपसी फूट एवं प्रतिस्पर्धा के कारण धीरे-धीरे मुसलमानों का राज उत्तर भारत में स्थापित हो गया। पृथ्वीराज चौहान और मोहम्मद गोरी के बीच 1192 में लड़े गए तराइन के युद्ध में गोरी की विजय होती है। पृथ्वीराज उस समय का सबसे प्रतापी राजा था। भारतीय इतिहास में यह युद्ध काफी निर्णायक माना जाता है, इस युद्ध ने भारत में तुर्कों की सत्ता स्थापित करने की जमीन तैयार कर दी। 1194 के चंदावर युद्ध में कन्नौज के शासक जयचंद को भी गोरी ने परास्त कर दिया। अब तुर्कों की ताकत से टकराने वाला कोई नहीं था। गोरी विजित भारतीय क्षेत्रों का शासन अपने गुलाम सेनापतियों को सौंपकर वापस गजनी लौट गया। 1206 में तुर्की गुलाम कुतबुद्दीन ऐबक ने दिल्ली में गुलाम वंश की नींव डाली। उधर गजनी में मुहम्मद गोरी का उत्तराधिकारी बना, उसने दिल्ली पर अपना दावा पेश किया। तभी से दिल्ली सल्तनत ने गजनी से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। इससे मध्य एशिया की राजनीति से अलग दिल्ली

सल्तनत का अपना स्वतंत्र विकास हुआ। तुर्कों की अपनी सत्ता स्थापित करने में काफी मशक्कत करनी पड़ी। उन्हें तुर्की अमीरों के आतंरिक विरोध, राजपूत राजाओं और विदेशी आक्रमण से खतरा था। किंतु अन्ततः सभी बाधाओं पर काबू पा लिया गया और एक सुदृढ़ और विस्तृत तुर्की राज्य बना। बलबन गुलाम वंश का सबसे प्रभावशाली शासक सिद्ध हुआ। प्रसिद्ध कवि अमीर खुसरो एवं अमीर हसन उसी के दरबार में रहते थे।

1290 से 1320 तक दिल्ली सल्तनत पर खिलजी वंश का शासन रहा। अदाउद्दीन खिलजी (1296-1316) ने अपनी आक्रामक नीति से जहाँ दिल्ली सल्तनत को दक्षिण तक फैलाया वहीं बाजार नियंत्रण, राजस्व-व्यवस्था के पुर्नगठन द्वारा शासन-व्यवस्था को भी मजबूती प्रदान किया। अमीर खुसरों का उसका राजाश्रय प्राप्त था। 1320 में गयासुद्दीन तुगलक ने तुगलक वंश की नींव डाली। गयासुद्दीन के पश्चात् मुहम्मद बिन तुगलक उत्तराधिकारी बना। मध्यकालीन सुल्तानों में वह सर्वाधिक योग्य, शिक्षित और विद्वान था। अपनी दो योजनाओं (1) दिल्ली से दौलताबाद राजधानी परिवर्तन (2) सांकेतिक मुद्रा का प्रचलन के कारण वह इतिहास में प्रसिद्ध है। अफ्रीकी यात्री इब्नबतूता उसी के शासन काल में भारत आया था। उसी के शासनकाल में विजयनगर और बहमनी राज्य नामक दो स्वतंत्र राज्य अस्तित्व में आते हैं। मुहम्मद बिन तुगलक के पश्चात् फिरोज तुगलक दिल्ली सल्तनत की गद्दी पर बैठा। वह अपने सुधार-निर्माण कार्यों के लिए प्रसिद्ध है, उसने लगभग 300 नये नगरों की स्थापना की, जिनमें हिसार, फिरोजाबाद, फतेहाबाद, जौनपुर, फिरोजपुर आदि प्रमुख हैं। तुगलक वंश के पश्चात् 1398 में तैमूर का आक्रमण होता है, उसने दिल्ली को तहस-नहस कर दिया। दिल्ली सल्तनत पर क्रमशः सैय्यद और लोदी वंश का शासन रहा। अंतिम लोदी सुल्तान इब्राहिम शाह लोदी के समय में पंजाब के शासक दौलत खां लोदी के निमंत्रण पर बाबर ने भारत पर आक्रमण। पानीपत के प्रथम युद्ध 1526 ई. में उसने इब्राहिक शाह लोदी को पराजित कर मुगल वंश की नींव डाली। पानीपत के पश्चात् खानवा, चंदेरी और घाघरा के युद्धों में विजय हासिल कर उसने मुगल राज्य को सुरक्षित एवं सुदृढ़ बना दिया। बाबर एक सफल सेनानायक, साम्राज्य निर्माता ही नहीं अपितु एक साहित्यकार भी था, उसने 'बाबरनामा' नाम से अपनी आत्मकथा लिखी। 1530 में बाबर की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र हुमायूँ उत्तराधिकारी बना। उसका शासनकाल संकटों और चुनौतियों से भरा रहा। 1540 में बिलग्राम युद्ध में अफगान वंशीय शेरशाह सूरी ने हुमायूँ को पराजित कर आगरा, दिल्ली पर कब्जा कर लिया। हुमायूँ को सिंध भागना पड़ा। जहाँ उसे 15 वर्षों तक निर्वासित जीवन जीना पड़ा। शेरशाह एक कुशल योद्ध और शासक था। कुशल प्रशासन और केन्द्रीकृत व्यवस्था द्वारा उसने व्यापार को बढ़ावा दिया, उसने ग्रांड ट्रक रोड की मरम्मत करवाई, पाटिलपुत्र को पटना के नाम से पुनः स्थापित किया, डाक प्रथा का प्रचलन करवाया। 1545 में कालिंजर के किले को जीतने के क्रम में उसका असामयिक निधन हो गया। मौका पाकर 1555 में हुमायूँ पंजाब के शूरी शासक सिकंदर को पराजित कर पुनः दिल्ली पर कब्जा करने में सफल रहा। 1556 में पुस्तकालय की सीढ़ियों से गिरकर उसकी मृत्यु हो गई। उसी वर्ष पंजाब के कलानौर में 13 वर्ष की अल्पायु में हुमायूँ के पुत्र अकबर का राज्याभिषेक हुआ। 1556-60 तक बैरम खाँ उसका संरक्षक रहा। अकबर के शासनकाल में मुगल साम्राज्य

भलीभाँति भारत में स्थापित हो गया। उसका साम्राज्य पश्चिम में अफगानिस्तान से लेकर पूर्व में असम तक, उत्तर में कश्मीर से लेकर दक्षिण में अहमद नगर तक विस्तृत था। वह दूरदर्शी, उदार और साहित्य-कला का संरक्षक शासक था। अकबर के पश्चात् जहाँगीर (1605-1627) और शाहजहाँ (1628-58) बादशाह बनते हैं। इनका शासनकाल प्रायः शांतिपूर्ण रहा यह व्यापार-वाणिज्य साहित्य, कला, संस्कृति के उन्नति का काल था। सल्तनत काल में विजयनगर, बहमनी राज्य, जौनपुर, काश्मीर बंगाल, मालवा, गुजरात, मेवाड़, खानदेश स्वतंत्र राज्य भी थे, कालांतर में इन पर मुगल साम्राज्य का आधिपत्य हो गया।

5.4.2 आर्थिक परिस्थिति

सल्तनत काल एवं मुगल काल में स्थिर एवं केन्द्रीकृत व्यवस्था के कारण अर्थव्यवस्था में प्रगति हुई। कुछ अपवादों को छोड़ कर यह कालखण्ड प्रायः शांतिपूर्ण था। शासन व्यवस्था सुव्यवस्थित थी, राजस्व वसूली की एक नियमित व्यवस्था थी। सुचारू प्रशासन के लिए मुगल साम्राज्य का बँटवारा सूबों में, सूबों का सरकार में, सरकार का परगना या महाल में, महाल का जिला या दस्तूर में, दस्तूर ग्राम में बँटे थे। केन्द्रीय प्रशासन के साथ स्थानीय शासन व्यवस्था भी थी। ये परिस्थितियाँ आर्थिक प्रगति में सहायक सिद्ध हुई। अलाउद्दीन, शेरशाह सूरी, अकबर ने भूराजस्व प्रणाली को व्यवस्थित बनाया। अर्थव्यवस्था कृषि प्रधान थी। कृषि के विकास के लिए अलग से कृषि विभाग (दीवाने को ही) की स्थापना, उत्पादकता के हिसाब से भूमि का वर्गीकरण, सिंचाई हेतु नहरों का निर्माण कराया गया।

इस काल में आगरा, पटना, दिल्ली, जौनपुर, हिसार आदि कई नए नगरों का उदय हुआ। इससे कामगार, कारीगर वर्ग को रोजगार के लिए अवसर मिले और उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ। नए नगर व्यापार-वाणिज्य के केन्द्र के रूप में भी विकसित हुए। तुर्कों के आगमन से भारत में कई नयी तकनीकि भी आई, जैसे चरखा, धुनकी, रहत, कागज, चुम्बकीय कुतुबनुमा, समयसूचक उपकरण, तोपखाना आदि। इसका प्रभाव उद्योग-धंधे एवं व्यापार पर पड़ा। वस्त्र उद्योग, धातु खनन, हथियार निर्माण, कागज निर्माण, इमारती पत्थर का काम, आभूषण निर्माण उस समय के प्रमुख उद्योग धंधे थे। आगरा नील उत्पादन के लिए, सतगाँव रेशमी रजाईयों के लिए, बनारस सोने, चाँदी एवं जड़ी काम के लिए, ढाका मलमल के लिए प्रसिद्ध था।

इस काल में व्यापार-वाणिज्य की खूब उन्नति हुई। व्यापक पैमाने पर नयी सड़कों का निर्माण एवं पुरानी सड़कों की मरम्मत कराया गया। सड़कों के किनारे सराय बनवाये गए। राहगीरों एवं व्यापारियों की सुरक्षा का प्रबंध किया गया। इसका सीधा प्रभाव व्यापार पर पड़ा। देशीय व्यापार के साथ विदेशी व्यापार की स्थिति भी अच्छी थी। यहाँ से सूती एवं रेशमी वस्त्र, चीनी, चावल, आभूषण आदि का निर्यात होता था। देवल अंतर्राष्ट्रीय बंदरगाह के रूप में प्रसिद्ध था।

निस्संदेह मध्यकाल में उद्योग, व्यापार में प्रगति हुई, कृषि में सुधार हुआ। किंतु गाँवों में किसानों की स्थिति अच्छी नहीं थी। लगान और अकाल के कारण उन्हें काफी मुसीबतों का सामना करना पड़ता था। अकाल और भूख से बेहाल किसान की पीड़ा को तुलसी ने व्यक्त किया है- 'कलि बारहि बार दुकाल परै। बिनु अन्न दुखी सब लोग मरै।' उस समय यदि एक वर्ग खुशहाल था तो दूसरा वर्ग भूख, गरीबी, बेकारी से त्रस्त था, तुलसी लिखते हैं-

खेती न किसान को भिखारी को न भीख बलि,
बनिक को बनिज, न चाकर को चाकरी।
जीविका विहीन लोग सीघमान सोच बस,
कहै एक एकन सों 'कहाँ जाई का करी'।।

5.4.3 सामाजिक स्थिति

इस काल में हिंदू समाज वर्णों और जातियों में विभक्त था। सामाजिक व्यवस्था में ब्राह्मणों का सर्वोच्च स्थान था, शूद्रों की निम्न स्थिति थी। जातिगत श्रेष्ठता एवं छुआछूत की भावना तत्कालीन परिवेश में व्याप्त थी। मुसलमानों के आक्रमण एवं उनकी सत्ता स्थापित होने से परंपरागत भारतीय समाज को एक धक्का लगा। सामंतों एवं पुरोहितों की स्थिति कुछ कमजोर हुई। एक तरफ जहाँ परम्परागत सामाजिक संरचनाको बचाये रखने के लिए वर्णाश्रमधर्म की मर्यादा का कठोरता से पालन करने पर जोर दिया गया, वहीं दूसरी तरफ समानता और आपसी भाईचारे पर आधारित इस्लाम के प्रति हिंदू समाज की निचली जातियाँ आकर्षित हुई। बहुतों ने धर्मांतरण कर इस्लाम स्वीकार कर लिया। धर्मांतरण स्वेच्छा में भी हुआ और मुस्लिम शासकों द्वारा बलात् भी कराया गया। ऊँच-नीच की भावना सिर्फ हिंदू समाज में ही नहीं मुस्लिम समाज में भी विद्यमान थी। अफगानी, तुर्की, ईरानी एवं भारतीय मुसलमानों में नस्लगत श्रेष्ठता एवं प्रतिस्पर्धा की भावना थी। मुसलमान शासक भारत में आक्रांता के रूप में आए थे, हिंदुओं में उनके प्रति अलगाव, विरोध, शंका का भाव होना स्वाभाविक था। किंतु दोनों कौमों के बीच सांस्कृतिक आदान-प्रदान एवं सामंजस्य भी बढ़ रहा था। सूफियों का इस दृष्टि से महत्वपूर्ण योगदान है। मुस्लिम शासकों एवं राजपूत शासकों में वैवाहिक संबंध भी स्थापित हुए।

उस काल में सामान्यतः संयुक्त परिवार का प्रचलन था। तत्कालीन समाज में स्त्रियों की स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी। हिन्दू समाज में बाल विवाह, बहुपत्नी प्रथा, पर्दा प्रथा, सती प्रथा प्रचलित थी। मुस्लिम समाज में भी स्त्रियों की स्थिति हिंदू स्त्रियों की तरह ही थी। विदेशी यात्रियों के विवरणों से पता चलता है कि उस समय दास प्रथा का भी प्रचलन था।

5.4.4 सांस्कृतिक स्थिति-

संस्कृति किसी देश समाज की मूलभूत प्रवृत्तियों उसकी सौन्दर्यबोधात्मक एवं मूल्यबोधों क्रियाकलापों-उपलब्धियों, उसके आचार-विचार का समन्वित रूप हैं। धर्म, कला, साहित्य, संगीत, शिल्प आदि संस्कृति के विभिन्न तत्व हैं। मध्यकालीन भारतीय समाज

धर्मप्राण समाज है। हिंदू, मुस्लिम, बौद्ध, जैन, सिक्ख उस समय प्रचलित प्रमुख धर्म थे। बहुसंख्यक जनता हिंदू धर्मावलंबी थी। हिंदू धर्म भी शैव, शाक्त, वैष्णव आदि कई संप्रदायों में विभक्त था। इन विभिन्न संप्रदायों में परस्पर संघर्ष एवं सामंजस्य दोनों स्थितियाँ दिखलाई पड़ती हैं। मूर्तिपूजा, तीर्थाटन, अवतारवाद, बहुदेव उपासना, गौ एवं ब्राह्मण का सम्मान, शास्त्रों के प्रति श्रद्धा, कर्मफलवाद, स्वर्ग-नरक की अवधारणा, आदि हिंदू धर्म एवं समाज की विशेषता थी। पश्चिम भारत में जैनियों की बहुलता थी, बौद्ध धर्म को मानने वाले पूर्वी भारत में ज्यादा थे। बौद्ध धर्म तंत्रयान, मंत्रयान, ब्रजयान आदि शाखाओं में विभक्त था, उसका मूल स्वरूप विकृत हो गया था और वह कई प्रकार की रूढ़ियों, कर्मकाण्डों, अंधविश्वासों का शिकार हो गया था। फलतः उसका पहले जैसा प्रभाव और आकर्षण नहीं रह गया था। सिद्धों और नाथों का तत्कालीन समाज पर गहरा असर था। धर्म का जहाँ तक शास्त्रीय रूप था, वहीं उसका एक लोकवादी रूप भी था स्थानीय देवताओं की पूजा, जादू-टोना आदि इसी के अंतर्गत आता है। मध्यकाल में साधनाओं एवं संप्रदायों की एक बाढ़ सी दिखलाई पड़ती है। धर्म के आवरण में मिथ्याचार, अनाचार, व्यभिचार भी पनप रहा था, धर्मक्षेत्र में एक अराजकता-सी स्थिति उत्पन्न हो गयी थी। इन्हीं परिस्थितियों के बीच भक्ति आंदोलन का उदय और विकास होता है, जिसने भारतीय समाज को काफी गहरे तक प्रभावित किया।

इस काल में साहित्य, कला, वास्तु, संगीत में प्रगति दिखलाई पड़ती है। इस्लामी एवं भारतीय संस्कृति के मेल से कला की नयी शैलियों का जन्म होता है।

5.5 भक्ति का अर्थ एवं स्वरूप

भक्ति पूर्व-मध्यकालीन साहित्य का मूलभूत तत्व है। आइए हम भक्ति को समझने की कोशिश करते हैं। ईश्वर के प्रति श्रद्धा, प्रेम, समर्पण की भावना ही भक्ति हैं। 'भक्ति' शब्द की निष्पत्ति 'भज्' धातु से हुई है जिसका अर्थ है 'भजना'। अर्थात् ईश्वर का चिंतन-मनन, उसके गुणों का श्रवण-कीर्तन, उसकी सेवा करना। काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ आदि सांसारिक प्रवृत्तियों का शमन कर ईश्वर के प्रेम में डूबे रहना। भारतीय चिंतन परम्परा में ईश्वर-प्राप्ति, मोक्ष के तीन मार्ग बतलाए गए हैं-कर्म, ज्ञान और भक्ति। कर्म का सम्बन्ध व्रत, तप, जप, तीर्थ यज्ञादि कर्मकाण्डों से जिनका सम्यक् व्यवहार कर मनुष्य ईश्वर के सानिध्य-साक्षात्कार का लाभ प्राप्त करता है। ज्ञान का सम्बन्ध ईश्वर विषयक तत्व-चिंतन से है, इसमें सम्यक ध्यान-समाधि द्वारा व्यक्ति ब्रह्मानंद को प्राप्त करता है। भक्ति विशुद्ध भाव मूलक है, इसके लिए न तो कर्मकाण्ड अपेक्षित है और न ही तत्व-चिंतन। भक्ति मार्गमें ईश्वर के प्रति सच्ची श्रद्धा-समर्पण द्वारा ही मनुष्य मुक्तिपद को प्राप्त करता है। नारद भक्ति सूत्र में भक्ति को 'परम प्रेमरूपा' एवं 'अमृतस्वरूपा' कहा गया है- 'सात्वस्मिन परम प्रेमरूपा, अमृतस्वरूप चा।' तात्पर्य यह है कि ईश्वर के प्रति परम प्रेम जो अमृत के समान फलदायक है, वही भक्ति है। इस भक्ति को प्राप्त करने पर व्यक्ति सांसारिक इच्छाओं और बंधनों से ऊपर उठ जाता है, वह आनंदमग्न, आत्माराम हो जाता है। नारद मुक्ति सूत्र में

कहा गया है- ''उस परम प्रेमरूपा और अमृतस्वरूपा भक्ति को प्राप्त करके मनुष्य सिद्ध हो जाता है, अमर हो जाता है और तृप्त हो जाता है। उस भक्ति को प्राप्त करने के बाद मनुष्य को न किसी भी वस्तु की इच्छा रहती है न वह शोक करता है, न वह द्वेष करता है, न किसी वस्तु में ही आसक्त होता है। उस प्रेमरूपा भक्ति को प्राप्त करे वह प्रेम में उन्मत्त हो जाता है।'' 'शाण्डिल्य भक्ति-सूत्र' में 'ईश्वर में परम अनुरक्ति' को भक्ति कहा गया है- ''सा परानुक्तिरीश्वरे''। अर्थात् ईश्वर के प्रति अत्यंत गहरी निष्ठा-प्रेम की अनुभूति-अभिव्यक्ति ही भक्ति है। ईश्वर प्राप्ति के जो कर्म, ज्ञान, भक्ति तीन मार्ग बतलाए गए है, इनमें उत्कट राग की उपस्थिति भक्ति मार्ग में ही होती है। ज्ञान एवं कर्म मार्ग में प्रेम को केन्द्रीय महत्व नहीं दिया गया है। भक्ति पर व्यावहारिक लौकिक दृष्टि से विचार करते हुए आचार्य शुक्ल ने श्रद्धा और प्रेम के योग को भक्ति कहा है। भक्ति की व्याख्या करते हुए वह लिखते हैं- ''जब पूजा भाव की बुद्धि के साथ श्रद्धा-भाजन के सामीप्य लाभ की प्रवृत्ति हो, उसकी सत्ता के कई रूपों के साक्षात्कार की वासना हो, तब हृदय में भक्ति का प्रादुर्भाव समझना चाहिए। जब श्रद्धेय के दर्शन, श्रवण, कीर्तन, ध्यान आदि में आनंद का अनुभव होने लगे-जब उससे सम्बन्ध रखने वाले श्रद्धा के विषयों के अतिरिक्त बातों की ओर भी मन आकर्षित होने लगे, तब भक्ति रस का संचार समझना चाहिए।'' (चिंतामणि, भाग-1, पृ0 26) स्पष्ट है कि शुक्लजी के मत में भक्ति के लिए ईश्वर के प्रति सिर्फ प्रेम भाव ही नहीं पूज्य भाव भी होना चाहिए, भक्त ईश्वर की महिमा-महत्व से अभिभूत रहता है, वह उन्हें अपना सर्वस्व अर्पित कर, उन्हीं को अपना सर्वस्व मान लेता है।

भक्ति को ईश्वर प्राप्ति का सबसे सुगम माध्यम माना गया है। सहज, साध्य होने के कारण ही आचार्यों ने भक्ति को प्रमुखता दी है-'अन्य स्मात् सौलभ्यं भक्तौ।' शास्त्रों में कहा गया है कि कलियुग में केवल ईश्वर के नामस्मरण द्वारा ही जीव का उद्धार हो जाता है वह परम पद को प्राप्त कर लेता है। नारद भक्ति सूत्र में भक्ति को निष्काम कहा गया है, क्योंकि वह निरोध स्वरूप है। निरोध का अर्थ सांसारिक विषयों-प्रपंचों से विमुख होकर चित्त को पूर्णतया ईश्वरोन्मुख कर देना। भक्त मन, वचन, कर्म से अपना सर्वस्व अर्पित कर प्रभु को भजता है। उसके लिए शास्त्रीय विधि-विधान, लौकिक कर्मों का कोई महत्व नहीं है, भक्ति ज्ञानमूलक, कर्ममूलक न होकर भावमूलक है। नारद भक्ति-सूत्र में कहा गया है- 'वह प्रेमरूपा भक्ति, कर्म, ज्ञान और योग से भी श्रेष्ठकर है, क्योंकि वह फलरूपा है अर्थात् उसका कोई अन्य फल नहीं है, वह स्वयं ही फल है।?' भक्ति ही भक्त का चरम लक्ष्य है, वह साधन भी है और साध्य भी। इस भक्ति की प्राप्ति प्रभुकृपा से होती है। भक्ति के लिए प्रभु का गुण श्रवण और कीर्तन-गान अनिवार्य तत्व है। नारद के अनुसार उस परमात्मा की प्राप्ति के लिए सम्पूर्ण समपर्ण और विस्मरण में परम व्यापकता होनी चाहिए- 'नारदस्तु तदर्पिताऽखिला चारिता तद्विस्मरणे परम व्याकुलतेति।' भक्ति के स्वरूप के संदर्भ में नारद ने कहा है- 'प्रेम का स्वरूप अनिर्वचनीय है- गूंगे के स्वाद की तरह।.....वह प्रेम गुणरहित है, कामनारहित है, प्रतिक्षण बढ़ता रहता है, विच्छेद रहित है, सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर है और अनुभवरूप है। उस प्रेम को प्राप्त करके प्रेमी उस प्रेम को ही देखता है, प्रेम को ही सुनता है, प्रेम का ही वर्णन करता है और प्रेम का ही चिंतन करता है अर्थात् अपनी मन-बुद्धि इंद्रियों से केवल प्रेम का ही अनुभव करता हुआ प्रेममय हो जाता है।' आचार्य शुक्ल के अनुसार भक्ति

सांसारिक व्यक्ति के प्रति भी हो सकती है और ईश्वर के प्रति भी। ईश्वरीय भक्ति की विवेचना करते हुए उन्होंने लिखा है- 'भक्ति का स्थान मानव हृदय है- वहीं श्रद्धा और प्रेम के संयोग से उसका प्रादुर्भाव होता है। अतः मनुष्य की श्रद्धा के जो विषय ऊपर कहे जा चुके हैं, उन्हीं को परमात्मा में अत्यंत विशद रूप में देखकर उसका मन खींचता है और वह उस विशद-रूप विशिष्ट का सीमाप्य चाहता है, उसके हृदय में जो सौन्दर्य का भाव है, जो शील का भाव है, जो उदारता का भाव है, जो शक्ति का भाव है उसे वह अत्यंत पूर्ण रूप में परमात्मा में देखता है और ऐसे पूर्ण पुरूष की भावना से उसका हृदय गदगद हो जाता है और उसका धर्मपथ आनंद से जगमगा उठता है। धर्म-क्षेत्र या व्यवहार पथ में वह अपने मतलब भर ही ईश्वरता से प्रयोजन रखता है। राम, कृष्ण आदि अवतारों में परमात्मा की विशेष कला देख एक हिंदू की सारी शुभ और आनंदमयी वृत्तियाँ उनकी ओर दौड़ पड़ती है, उसके प्रेम, श्रद्धा आदि को बड़ा भारी अवलंब मिल जाता है। उसके सारे जीवन में एक अपूर्व माधुर्य और बल का संचार हो जाता है। उसके सामीप्य का आनंद लेने के लिए कभी वह उनके आलौकिक रूप-सौन्दर्य की भावना करता है, कभी उनकी बाल लीला के चिंतन से विनोद प्राप्त करता है, कभी-धर्म-वंदना करता है-यहाँ तक कि जब जी में आता है, प्रेम से भरा उलाहना भी देता है। यह हृदय द्वारा अर्थात् आनंद अनुभव करते हुए धर्म में प्रवृत्त होने हो सुगम मार्ग है।' (चिंतामणि भाग-1, पृष्ठ 31) भक्ति के इस स्वरूप-प्रकृति के कारण ही शुक्ल जी ने भक्ति को ''धर्म की रसात्मक'' अनुभूति'' कहा है। दरअसल भक्ति ईश्वर के प्रति समर्पण की एक रागयुक्त प्रवृत्ति, अवस्था है। भागवत पुराण में भक्ति के नौ साधनों-श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद्सेवन, अर्चना, वंदना, दास्य, संख्य तथा आत्मनिवेदन या शरणागति का उल्लेख मिलता है। इसे ही नवधा भक्ति कहा गया है। दरअसल ये प्रभु की भक्ति की विभिन्न प्रक्रियाएं हैं। परम्परा में भक्ति के दो रूप बतलाये गए है- गौणी और परा। गौणी भक्ति के अंतर्गत देवपूजा, भजन-सेवा आदि प्रवृत्तियाँ आती है। पराभक्ति को सर्वश्रेष्ठ और सिद्धावस्था का सूचक माना गया है। गौणी भक्ति को साधकर ही भक्त पराभक्ति की अवस्था में पहुँचता है। गौणी भक्ति के भी दो भेद हैं-वैधी और रागानुगा। वैधी भक्ति शास्त्रानुमोदित विधि विधान पर आधारित है औरा रागानुगा भक्ति का आधार प्रेम अथवा राग है। रामागनुगा भक्ति के दो रूप है-संबंध रूपा और कामरूपा। विभिन्न सांसारिक संबंधों-भावों का ईश्वरोन्मुखीकरण ही सम्बधरूपा भक्ति है। भक्त ईश्वर से विभिन्न संबंध-भाव निवेदित-स्थापित कर भक्ति करता है इसके अन्तर्गत पाँच भावों को स्वीकारा गया है-शांत, दास्य, सख्य, वात्सल्य और कांत या माधुर्य भाव। कामरूपा भक्ति कांत या माधुर्य भाव की भक्ति है इसके अंतर्गत भक्त प्रणय या दांपत्य भावना से प्रभु की भक्ति करता है।

अब आप भक्ति के तात्विक स्वरूप से परिचित हो चुके है अब हम भक्ति के उदय की पृष्ठभूमि को समझने का प्रयास करेंगे।

5.6 भक्ति का उदय-

भक्ति की प्रवृत्ति, पद्धति का सम्बन्ध सिर्फ भागवत् धर्म और भक्ति आंदोलन से ही नहीं है। भक्ति का एक क्रमिक विकास होता है। वैसे भक्ति के बीज वेदों में मिलते हैं। विभिन्न प्राकृतिक उपादनों का दैवीकरण, सुख-शांति समृद्धि की कामना से उनकी स्तुति वैदिक ऋचाओं की मूल विशेषता है। ईश्वर की कल्पना, आत्म निवेदन, शरणागत की भावना, दैन्य भाव, श्रद्धा का भाव आदि जो भक्ति की मूलभूत विशेषताएं हैं-ये बातें हमें वैदिक ऋचाओं में भी मिलती हैं। परमात्मा की माता-पिता, बंधु-सखा के रूप में अर्चना की गई है-'प्रभु! तुम्हीं हमारे पिता हो, तुम्हीं हमारी माता हो। हे अनंतज्ञानी! आपसे ही हम आनंद-प्राप्ति की अकांक्षा करते है-

'त्व हि नों पिता वसोत्वं माता शतक्रतो वभूविथ। अद्या ते सुम्नमीमहे (ऋग्वेद 8/98/11)।' पूरी तन्मयता और सर्वस्व सर्मपण की भावना को प्रकट करते हुए ऋग्वेद का ऋषि कहता है-'प्रभो ये हैं तेरे उपासक, तेरे भक्त। ये प्रत्येक स्तवन में, तेरे कीर्तन-गान में ऐसे तन्मय होकर बैठते हैं, जैसे मधुमक्षिकाएँ मधु को चारों ओर से घेर कर बैठ जाती हैं। तेरे अंदर बस जाने की कामना रखने वाले तेरे ये स्तोता अपनी समस्त कामनाओं को तुझे सौंपकर वैसे ही, निश्चिंत हो जाते हैं, जैसे कोई व्यक्ति रथ में निश्चिंत होकर बैठ जाता है।'

इमें हि ब्रह्मकृतः सुते सचा मधो न मक्ष आसते।
इन्द्रे कामं जरितारो वसूयवो रथे न पादमा दधुः।। (ऋ. 7/32/2)

वेदों मं ईश्वर की सर्वसमर्थता, उसकी महिमा का बखान, उसके प्रति श्रद्धा निवेदित किया गया हैं-

यो भूतं च भव्यं च सर्व श्चाधितिष्ठति
स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः (अथर्ववेद-10 /8/1)

अर्थात् भूत भविष्य और वर्तमान का जो स्वामी है, जो समस्त विश्व में व्याप्त हैं तथा जो निर्विकार आनद प्रदान करने वाला है, उस ईश्वर को मेरा प्रणाम।' उपनिषदों में तत्व-चिंतन की प्रधानता है- किंतु कहीं-कहीं पर भक्ति विषयक बातें भी मिलती है। ऐतरेय, श्वेताश्वतरोपनिषद में भक्ति को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया हैं, कठोपनिषद में कहा गया है- 'यह आत्मा उत्कष्ट शास्त्रीय व्याख्यान के द्वारा उपलब्ध नहीं किया जाता, मेघा के द्वारा प्राप्त, नहीं होता, बहुत पांडित्य के द्वारा भी नहीं प्राप्त होता। यह जिसको वरण करता है, उसी को प्राप्त होता है। जिसके सामने आत्मा अपने स्वरूप को व्यक्त करता है।'

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो, न मेधया न बहुना श्रुतेन
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष विवृणुते तनू, स्वाम।।'

यहाँ प्रभुकृपा का वर्णन है, जो कि भक्ति का आधार है। भगवत्कृपा से ही भक्ति की प्राप्ति होती और भक्ति से ईश्वर की प्राप्ति। भक्ति चिंतन में ईश्वर ही परमतत्व, जगत निर्माता, जगत नियंता, सृष्टि विनाशक है, उसी के द्वारा सृष्टि का सृजन होता है और उसी में सृष्टि विलीन हो

जाती है। छांदोग्य उपनिषद में कहा गया है 'सर्व खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शांत उपासीत।' अर्थात् 'जगत की सभी वस्तुएं ब्रह्म हैं, क्योंकि सभी ब्रह्म से ही उत्पन्न होती हैं, ब्रह्म में ही अवस्थान करती है तथा ब्रह्म में ही विलीन हो जाती है। इस प्रकार चिंतन करते हुए मन को शांत रखकर उपासना करनी चाहिए।' छांदोग्य उपनिषद में ही भक्ति को सबसे उत्कृष्ट और सर्वोत्तम रस कहा गया है- 'स एवं रसानां रसतमः परम परार्धे।

उपनिषदों के बाद भक्ति की प्रबल धारा भागवत धर्म के रूप में प्रकट हुई। भागवत धर्म के प्रवर्तन के साथ ही अवतारवाद की अवधारणा का जन्म हुआ बहुदेवोपासना और लीलागान का प्रचलन हुआ। इसमें ईश्वर को ज्ञान, बल, ऐश्वर्य, वीर्य, शक्ति और तेज-इन 6 गुणों से युक्त माना गया, जिनके द्वारा वह सृष्टि का निर्माण, भरण-पोषण और संहार करता है। अवतारवाद एवं भक्ति का पुराणों में विस्तृत वर्णन है। इनमें भागवत पुराण मुख्य है। दक्षिण के आलवार नयनार भक्तों ने भक्ति तत्व का प्रचार प्रसार किया, आठवीं सदी में शंकराचार्य के अद्वैत एवं मायावाद के कारण भक्ति का प्रवाह थोड़ा अवरूद्ध होता है। किंतु कालांतर में रामानुजाचार्य, निम्बाकाचार्य, विष्णुस्वामी, मध्वाचार्य, वल्लभाचार्य ने राम-कृष्ण की भक्ति को लोकप्रिय ही नहीं बनाया उसे एक सैद्धांतिक आधार प्रदान कर शास्त्रीय गरिमा भी दी।

इस प्रकार हम देखते है कि भक्ति का तत्व वेद उपनिषद महाभारत, पुराण आदि से होते हुए सतत् प्रवाहमान रहा, निरंतर विकसित होता रहा। भक्ति आंदोलन ने उसे व्यापक और लोकप्रिय बना दिया। अब आप भक्ति के उदय को समझ गए होंगे, वैष्णव आचार्यों द्वारा प्रतिपादित भक्ति विषयक सिद्धांतों एवं भक्ति आंदोलन की आगे चर्चा की जाएगी।

5.7 भक्ति संबंधी विभिन्न दार्शनिक सिद्धांत

भक्ति के दार्शनिक पक्ष की स्थापना भक्ति आंदोलन की देन है। 8-9वीं सदी में शंकराचार्य दार्शनिक स्तर पर बौद्धों, जैनों से टकराते हैं और वैदिक धर्म को पुनप्रतिष्ठित करते हैं। शंकर का दार्शनिक सिद्धांत अद्वैतवाद कहलाता है। उनके अनुसार ब्रह्म सत्य है और जगत मिथ्या। आत्मा परमात्मा दोनों एक हैं, दोनों में कोई भिन्नता नहीं है। किंतु सांसारिक माया के कारण मनुष्य आत्मा-परमात के अद्वैत का अनुभव नहीं कर पाता है। ज्ञान द्वारा ही अपने आत्मस्वरूप को जाना जा सकता है। वह ज्ञान मार्गी हैं और निर्गुण ब्रह्म के उपासक हैं। शंकर के अद्वैतवाद और मायावाद का परवर्ती वैष्णव आचार्यों द्वारा विरोध किया गया, उन्होंने ज्ञान की जगह भक्ति को प्रमुखता दी। शंकर ने माया वाद द्वारा जिस जगत को मिथ्या कहकर, खारिज कर दिया था, उस जगत को इन आचार्यों ने सत्य माना, ब्रह्म का अंश मानते हुए उसे प्रभु की लीला भूमि के रूप में देखा। आइए, अब हम भक्ति विषयक वैष्णव आचार्यों के सिद्धांतों से अवगत हों।

5.7.1 विशिष्टाद्वैतवाद

आचार्य रामानुजाचार्य ने अवतारी राम को उपास्य देव स्वीकार कर विशिष्टाद्वैत सिद्धांत की स्थापना की। उनकी दृष्टि में पुरुषोत्तम ब्रह्म सगुण और सविशेष है। ब्रह्म चित्त और अचित विशिष्ट है। ब्रह्म की तरह जीव और माया भी सत्य है। इस भक्ति मार्ग को श्री संप्रदाय भी कहते है। श्री अर्थात् लक्ष्मी इसकी आदि आचार्य हैं, जीव 'लक्ष्मी' की शरण में जाने से ही सगुण ब्रह्म अर्थात् विष्णु तक पहुँच सकता है। भक्तों पर अनुग्रह के निमित्त ही भगवान अवतार ग्रहण करते हैं। भक्ति ही मुक्ति का साधन है। जीव और ब्रह्म का सम्बन्ध शेष-शेषी भाव का है। जीव सेवक है ब्रह्म सेव्य। प्रपत्ति या शरणागति ही परमकल्याण का मार्ग है।

जीव, जगत, माया ब्रह्म से भिन्न हेाते हुए भी ब्रह्म के ही अंग है। रामानुज का मत शंकर की अपेक्षा उदार है। उन्होंने भक्ति को जाति भेद से ऊपर मानते हुए सभी मनुष्य की समानता-एकता का प्रतिपादन किया है। इस संप्रदाय का गहरा प्रभाव रामानंद पर पड़ा। गोस्वामी तुलसीदास की भक्ति भी सेव्य-सेवक भाव की है।

5.7.2 द्वैतवाद

इस मत का प्रवर्तन मध्वाचार्य (12वीं सदी) ने किया। इनके अनुसार जगत सत्य है, ईश्वर और जीव का भेद, जीव का जीव से भेद, जड़ का जीव से भेद वास्तविक है। जीव और जगत परतंत्र है तथा ईश्वर स्वतंत्र। जीवों के बीच ऊँच एवं नींच की तारतम्यता है, यह सांसारिक अवस्था में ही नहीं मोक्ष दशा में भी विद्यमान रहती है। जीव की अपनी वास्तविक सुखानुभूति ही मुक्ति है। जिसे अमला भक्ति द्वारा प्राप्त किया जाता है। समस्त जीव हरि के अनुचर हैं। वेद का समस्त तात्पर्य विष्णु ही है। इस संप्रदाय के आचार्य ब्रह्मा है, अतः इसे ब्रह्म संप्रदाय भी कहते है। रामानुज की तरह मध्वाचार्य भी भक्ति मार्ग में सबकी समानता के पक्षधर थे। इस संप्रदाय में कांत या माधर्य भाव की भक्ति है।

5.7.3 शुद्धाद्वैतवाद

इस संप्रदाय के आचार्य रूद्र है अतः इसे रुद्र संप्रदाय भी कहा गया है। इस संप्रदाय के आचार्य विष्णुस्वामी (13-14वी सदी) के अनुसार ईश्वर सच्चिदानंद स्वरूप है, जो सदैव अपनी संविद् शक्ति से युक्त रहता है और माया उसी के अधीन रहती है। उन्होंने नृसिंह को ईश्वर का प्रधान अवतार माना है। कुछ लोगों के मत में वे नृसिंह और गोपाल दोनों के उपासक थे।

विष्णु स्वामी की शिष्य परंपरा में ही वल्लभाचार्य (15वीं सदी) आते हैं। उन्होंने रूद्र संप्रदाय के दार्शनिक सिद्धांत 'शुद्धाद्वैत' का प्रवर्तन किया। उनके अनुसार ब्रह्म सर्वथा शुद्ध है। अपनी तीन शक्तियों-संघिनी, संवित तथा आह्लादिनी द्वारा वह क्रमशः सत्, चित् और आनंद का आविर्भाव करता है। ब्रह्म सत्य और नित्य है। उसकी उत्पत्ति नहीं होती। जीव भी नित्य हैं। जीव अणु है और ब्रह्म भूमा। शुद्ध, संसारी और मुक्त-जीव की तीन कोटियाँ हैं। जड़ जगत की उत्पत्ति एवं का विनाश नहीं होता उसका केवल आर्विभाव और तिरोभाव ही होता है। उन्होंने भगवान

के पोषण (अनुग्रह) को ही भक्ति की प्राप्ति का आधार माना है। इसीलिए उनके मत को पुष्टि मार्ग कहा गया। रागानुगा भक्ति ही पुष्टि भक्ति है जो साधन भक्ति से श्रेष्ठ है। श्रीकृष्ण ही परम ब्रह्म, पुरुषोत्तम और रसरूप है। इस संप्रदाय में कृष्ण के बालरूप की साधना को प्रमुखता दी गयी है।

5.7.4 द्वैताद्वैतवाद-

निम्बार्क (11वीं सदी) ने द्वैताद्वैतवाद का प्रवर्तन किया। उनके अनुसार जीव का ब्रह्म के साथ भेद और अभेद दोनों संबंध है। इसका मूल कारण अवस्था भेद है। जीव और ब्रह्म में अंश-अंशी संबंध है। जीव अल्पज्ञ अणु है। जीव ईश्वर का अंश होने से नित्य है। भक्ति ही मुक्ति का साधन है। इस संप्रदाय में राधा-कृष्ण को युगलोपासना को प्रमुखता दी गई है। इस संप्रदाय के आचार्य सनकादि होने से इसे सनकादि संप्रदाय भी कहते है। इस संप्रदाय की भक्ति सख्य भाव की है।

निम्नलिखित तालिका द्वारा उपरोक्त भक्ति विषयक सिद्धांतों को सरलता से याद किया जा सकता है।

दर्शन	**संप्रदाय**	**संस्थापक**	**भक्ति-भाव**
विशिष्टाद्वैतवाद	श्री	रामानुजाचार्य	दास्य
द्वैतवाद	ब्रह्म	मध्वाचार्य	कांत या माधुर्य
शुद्धाद्वैतवाद	रुद्र	विष्णुस्वामी/वल्लभाचार्य	वात्सल्य
द्वैताद्वैतवाद	सनकादि/निम्बार्क	निम्बार्काचार्य	सख्य

5.8 निर्गुण भक्ति का दार्शनिक आधार

निर्गुण भक्ति के अंतर्गत संत मत और सूफीमत आता हैं। दोनों भक्ति मार्ग में ईश्वर केा अजन्मा, अशरीरी, अगोचर माना गया है। आइए दोनों भक्ति मार्ग के दार्शनिक आधार का हम अध्ययन करें।

5.8.1 संतकाव्य का दार्शनिक आधार

संतमत का विकास वैष्णव धर्म, सिद्धों, नाथों, सूफी मत, शंकर के अद्वैतवाद से प्रेरणा-प्रभाव ग्रहण कर होता है। वैष्णवों से अहिंसा और प्रपत्ति भावना, सिद्धों-नाथों से जाति-पाति, कर्मकाण्ड, शास्त्र का नकार, काया योग, शून्य समाधि, शंकराचार्य से अद्वैत दर्शन, सूफियों से प्रेमतत्व को लेकर कबीर ने निर्गुण पंथ का प्रवर्तन किया। उन्होंने ब्रह्म को निर्गुण, निराकार, अजन्मा मानते हुए अवतारवाद, बहुदेववाद का खण्डन किया। परमतत्व एक ही है जो

सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक है। जीव अज्ञानता के कारण क्षणभंगुर संसार को सत्य समझ परमात्मा से विमुख रहता है। सद्गुरू की कृपा से व्यक्ति को आत्मज्ञान मिलता है, और ब्रह्मानंद की प्राप्ति होती है। उस परमात्मा की भक्ति के लिए न तो शास्त्रज्ञान अपेक्षित है और न ही बाह्य विधि-विधान। ब्रह्म, माया, जीव, जगत सम्बन्धी संत मत की अवधारणाएं शंकराचार्य से प्रभावित है।

5.8.2 सूफी मत

सूफी मत इस्लाम की ही एक शाखा है जिसका उदय इस्लाम के प्रवर्तन के ढाई-तीन सौ वर्षों बाद होता है। भारत में सूफियों का आगमन 12वीं सदी में माना जाता है। यह एक उदार, सहिष्णु मत है जो इस्लाम की शाखा होते हुए भी उससे बहुत मामलों में भिन्न हैं। 'सूफी' शब्द की व्युत्पत्ति कैसे हुई, इस पर विद्वानों में मतभेद है। कुछ लोग इसकी व्युत्पत्ति 'सफ' से मानते है जिसका अर्थ होता है पंक्ति। उनके अनुसार ईश्वर का प्रिय होने के कारण जो लोग कयामत के दिन सबसे पहली पंक्ति में खड़े होंगे, उन्हें सूफी कहते हैं। कुछ के अनुसार इसकी व्युत्पत्ति 'सूफ' शब्द से हुई, जिसका अर्थ है मस्जिद का चबूतरा। जो फकीर मस्जिद के चबूतरे पर सोकर अपनी रात गुजारते थे, सूफी कहलाए। कुछ लोगों के अनुसार 'सूफ' का अर्थ 'पवित्र' है। 'सूफ' ऊन के भी अर्थ में है। सादा और पवित्रता युक्त जीवन जीने वाले और ऊनी चोंगा पहनने वाले फकीरों को ही सूफी कहा जाने लगा। कुछ के अनुसार इसकी व्युत्पत्ति 'सोफिया' शब्द से हुई जिसका अर्थ होता है ज्ञान। परमात्मा का ज्ञान रखने वाले फकीरों को सूफी कहा गया। इस प्रकार सूफी शब्द की व्युत्पत्ति सम्बन्धी कई मत है। आचार्य शुक्ल के अनुसार ''प्रारंभ में सूफी एक प्रकार के फकीर या दरवेश थे जो खुदा की राह पर अपना जीवन ले चलते थे, दीनता और नम्रता के बड़ी फटी हालत में दिन बिताते थे, ऊन के कंबल लपेटे रहते थे, भूख-प्यास सहते थे और ईश्वर के प्रेम में लीन रहते थे।'' ('जायसी ग्रंथावली' की भूमिका, पृ0 168)। इस प्रकार सूफी वे फकीर थे जो सांसारिक भोग-विलास से दूर रहकर, सादा एवं त्यागपूर्ण जीवन जीते हुए हमेशा खुदा के ख्वाब-ख्याल में डूबे रहते थे। सूफियों के अनुसार खुदा सारी कायनात में व्याप्त है। उनका मत इस्लामी एकेश्वरवाद की अपेक्षा शंकर के अद्वैतवाद के ज्यादा करीब है। सूफी मत में साधना की चार अवस्थाएँ हैं- (1) शरीअत-अर्थात् शास्त्रानुसार विधि-निषेधों का सम्यक् पालन (2) तरीकत-वाह्य विधि-विधान से परे हटकर हृदय को शुद्ध रखकर ईश्वर का ध्यान। (3) हकीकत-साधना द्वारा तत्व-बोध की अवस्था। (4) मारिफत-आत्मा का परमात्मा में लीन होने की अवस्था, सिद्धावस्था। सूफीमत का मूल तत्व है प्रेम। परमात्मा के प्रेम में पूरी तरह लीन, उन्मुक्त होकर ही प्रेमस्वरूप परमात्मा को प्राप्त किया जा सकता हैं किंतु यह प्रेम-साधना सरल नहीं, अत्यंत कठिन है। सूफी कवि इश्क मिजाजी (लौकिक प्रेम) के जरिए इश्क हकीकी (अलौकिक) प्रेम का वर्णन करते हैं। उन्होंने परमात्मा को प्रेयसी रूप और आत्मा को प्रेमी रूप में चित्रित किया है। गुरुकृपा से ही परमात्मा का (प्रियतमा के सच्चे रूप का) ज्ञान होता है। प्रियतमा को प्राप्त करने के लिए प्रेमी को ढेर सारी मुसीबतों का सामना करना पड़ता है। माया या शैतान के कारण विघ्न-बाधाएँ उपस्थिति होती हैं। अन्ततः अपने सच्चे प्रेम के कारण गुरु और परमात्मा की कृपा से उसे सफलता मिलती है।

5.9 भक्ति आंदोलन

भक्ति आंदोलन मध्यकाल की एक महत्वपूर्ण घटना है। एक व्यापक सामाजिक, सांस्कृतिक प्रक्रिया जिसने भारतीय समाज की गहरे तक प्रभावित किया। बुद्ध के बाद का सबसे प्रभावी आंदोलन जो समूचे देश में फैला जिसमें ऊँच-नीच, स्त्री-पुरूष, हिंदू-मुस्लिम सभी की भागीदारी थी। अपने मूल रूप में यद्यपि यह एक धार्मिक आंदोलन था, किंतु सामाजिक रूढ़ियों, सामंती बंधनों के नकार का स्वर, एक सहिष्णु, समावेशी समाज की संकल्पना भी इसमें मौजूद थी। भक्ति काव्य इसी भक्ति आंदोलन की उपज है। आइए हम इसके विविध पक्षों-उदय एवं विकास, उत्पत्ति के कारणों, महत्व एवं प्रदेय की पड़ताल करें-

5.9.1 भक्ति आंदोलन उदय एवं विकास

मध्यकाल में लगभग 3-4 सौ वर्षों तक चलने वाले भक्ति आंदोलन का जन्म सहसा नहीं होता। भक्ति आंदोलन को हम दो भागों में विभक्त कर सकते 6-10 सदी और 10-16 सदी का कालखण्ड। भक्ति के बीज तो वैदिक काल में ही मिलते है। ब्राह्मण, उपनिषद, पुराण से होते हुए क्रमशः भक्ति का विस्तार होता है। और भागवत संप्रदाय के रूप भक्ति को एक व्यापक आयाम मिलता है। एक आंदोलन के रूप में भक्ति को प्रचारित-प्रसारित करने का श्रेय, दक्षिण के अलवार, नयनार भक्तों को है जिनका समय 6-10 सदी तक है। भक्ति आंदोलन का उदय दक्षिण से हुआ और वह क्रमशः उत्तर भारत में फैलता गया। हिन्दी में उक्ति है-'भक्ति द्राविड़ उपजी लाए रामानंद/प्रगट करी कबीर ने सप्तद्वीप नवखंड।' दोनों उद्धरणों से विदित होता है कि भक्ति का उदय द्रविड़ देश (तमिलनाडु) में हुआ। एक संस्कृत श्लोक से ज्ञात होता है कि द्रविड़ देश में उदय के पश्चात्, भक्ति का आगे विकास कर्नाटक, फिर महाराष्ट्र में हुआ और उसका पतन गुजरात देश में हुआ, फिर वृंदावन में उसे पुनर्जीवन, उत्कर्ष मिला। हिन्दी की अनुश्रुति में भक्ति को रामानंद द्वारा दक्षिण से उत्तर ले जाने और कबीर द्वारा प्रचारित-प्रसारित किए जाने का स्पष्ट संकेत है। स्पष्ट है कि संस्कृत श्लोक का सम्बद्ध कृष्ण भक्ति से और हिन्दी अनुश्रुति का सम्बन्ध रामभक्ति से है। बहरहाल आलवारों नयनारों का प्रमुख विरोध बौद्ध और जैन धर्म से था। उन दिनों दक्षिण में इन दोनों धर्मों का काफी प्रभाव था, किन्तु अपने मूल स्वरूप को खोकर ये धर्म कर्मकाण्डीय जड़ता और तमाम तरह की विकृतियों के शिकार हो गए थे। ऐसे समय में आलवार (विष्णुभक्त) और नयनार (शिव भक्त) संतों ने जनता के बीच भक्ति को प्रचारित करने का कार्य किया। महाराष्ट्र में भक्ति आंदोलन को ज्ञानदेव, नामदेव ने आगे बढ़ाया। इनकी भक्ति सगुण-निर्गुण के विवादों से परे थी। ज्ञानदेव की भक्ति पर उत्तर भारत के नाथ पंथ का भी गहरा प्रभाव था। आगे चलकर महाराष्ट्र में तुकाराम और गुरु रामदास हुए। आठवीं सदी में शंकराचार्य ने बौद्धधर्म का प्रतिवाद करते हुए वेदों, उपनिषदों की नई व्याख्या कर वैदिक धर्म को पुनः प्रतिष्ठित किया। उनका विरोध अलवार एवं नयनार से भी था। उन्होंने अद्वैतवाद, मायावाद का प्रवर्तन कर ज्ञान को, सर्वोपरि महत्ता दी। शंकराचार्य का विरोध परवर्ती वैष्णव आचार्यों रामानुज, मध्वाचार्य, विष्णुस्वामी, वल्लभाचार्य, निम्बार्क ने किया। ये लोग सगुण ब्रह्म के उपासक और भक्ति द्वारा

मुक्ति को मानने वाले थे। शंकराचार्य जहाँ वर्णाश्रम व्यवस्था के समर्थक थे वहीं इन आचार्यों का भक्तिमार्ग भेदभाव रहित था।

रामानुज के शिष्य राघवानंद ने भक्ति को उत्तर भारत में प्रचारित किया। इनके शिष्य रामानंद हुए, जिन्होंने भक्ति मार्ग को और भी उदार बनाकर सगुण-निर्गुण दोनों की उपासना का उपदेश दिया। इनके शिष्यों में सगुण भक्त और निर्गुण संत दोनों हुए। इनके बाहर शिष्य प्रसिद्ध है- रैदास, कबीर, धन्ना, सेना, पीपा, भवानंद, सुखानंद, अनंतानंद, सुरसुरानंद, पद्मावती, सुरसुरी। रामानंद ने रामभक्ति मार्ग को प्रशस्त किया, जिसमें आगे चलकर तुलसीदास हुए। श्री कृष्ण भक्तिमार्ग को वल्लभाचार्य, विष्णुस्वामी, निम्बार्क, हितहरिवंश, विट्ठलनाथ ने आगे बढ़ाया निर्गुण भक्तिमार्ग में कबीर सर्वोपरि है, उन्होंने, वैष्णव सम्प्रदाय से ही नहीं, सिद्धों, नाथों और महाराष्ट्र के संतज्ञानेश्वर, नामदेव से बहुत कुछ ग्रहण कर निर्गुण पंथ का उत्तर भारत में प्रवर्तन किया।

भारत में इस्लाम के आगमन के साथ सूफी मत का भी प्रवेश हुआ। सूफी मत इस्लाम की रूढ़ियों से मुक्त एक उदारवादी शाखा है। इसके कई संप्रदाय है-चिश्ती, कादिरा, सुहरावर्दी, नक्शबंदी, शत्तारी। भारत में चिश्ती और सुहरावर्दी संप्रदाय का विशेष प्रसार हुआ। हिंदू-मुस्लिम के सांस्कृतिक समन्वयीकरण में सूफी मत काफी सहायक हुआ।

इस प्रकार भक्ति आंदोलन दक्षिण भारत से शुरु होकर समूचे भारत में फैला और शताब्दियों तक जन सामान्य को प्रेरित-प्रभावित करता है। उसका एक अखिल भारतीय स्वरूप था, उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम सभी जगहों पर हम इस आंदोलन का प्रसार देखते हैं, सभी वर्ग, जाति, लिंग, समुदाय, संप्रदाय, क्षेत्र की इसमें भूमिका, सहभागिता थी। महाराष्ट्र में ज्ञानदेव, नामदेव, तुकाराम, रामदास, गुजरात में नरसी मेहता, राजस्थान में मीरा, दादू दयाल, उत्तर भारत में, कबीर, रामानंद, तुलसी, सूर जायसी, रैदास, पंजाब में गुरु नानक देव, बंगाल में चण्डीदास, चैतन्य, जयदेव असम में शंकरदेव सक्रिय थे। भक्ति आंदोलन में दौरान कई संप्रदायों का जन्म हुआ, जिन्होंने मानववाद के उच्च मूल्यों का प्रसार किया, सामान्य जन-जीवन में स्फूर्ति एवं जागरण का संचार किया।

5.9.2 भक्ति-आंदोलन के उदय के कारण-

भक्ति आंदोलन का उदय मध्यकालीन इतिहास की एक प्रमुख घटना है। इसका उदय अकस्मात नहीं होता है बल्कि बहुत पहले से ही इसके निर्माण की प्रक्रिया चल रही थी, जिसे युगीन परिस्थितियों ने गति प्रदान किया। ग्रियर्सन ने भक्ति आंदोलन को ईसाईयत की देन माना है- उनका यह मत अप्रमाणिक, अतार्किक है। आचार्य शुक्ल ने इसे तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों का परिणाम मानते हुए पराजित हिंदू समाज की सहज प्रतिक्रिया माना है, वह लिखते है-'देश में मुसलमानों का राज्य प्रतिष्ठित हो जाने पर हिंदू जनता के हृदय में गौरव, गर्व और उत्साह के लिए वह अवकाश न रह गया। उसके सामने उनके देव-मंदिर गिराए जाते थे, देव, मूर्तियाँ तोड़ी जाती थीं और पूज्य पुरुषों का अपमान होता था और वे कुछ भी नही कर सकते थे।

ऐसी दशा में अपनी वीरता के गीत न तो वे गा ही सकते थे न बिना लज्जित हुए सुन सकते थे। आगे चलकर जब मुस्लिम साम्राज्य दूर तक स्थापित हो गया तब परस्पर लड़ने वाले स्वतंत्र राज्य भी नहीं रह गये। इतने भारी राजनैतिक उलटफेर के पीछे हिंदू जन समुदाय पर बहुत दिनों तक उदासी-सी छाई रही। अपने पौरुष से हताश लोगों के लिए भगवान की शक्ति और कारण की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था।' (हिन्दी साहित्य का इतिहास-आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. 60)। इस प्रकार शुक्ल जी भक्ति आंदोलन के उदय केा इस्लाम के आक्रमण से क्षत-विक्षत, अपने पौरुष से हताश हिन्दू जाति के पराजय बोध से जोड़ते हैं। भक्ति काल के उदय सम्बन्धी शुक्ल जी के मत से असहमति जताते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं कि-'मैं जोर देकर कहना चाहता हूँ कि अगर इस्लाम नहीं आया होता तो भी इस हिंदी साहित्य का बारह आना वैसा ही होता, जैसा कि आज है।' (हिंदी साहित्य की भूमिका) आचार्य द्विवेदी भक्तिआंदोलन पर इस्लामी आक्रमण का प्रभाव तो स्वीकार करते हैं, किंतु भक्ति आंदोलन को उसकी प्रतिक्रिया नहीं मानते। बहरहाल दोनों आचार्यों के मतों में भिन्नता के बावजूद इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है कि भक्ति आंदोलन का एक सम्बन्ध इस्लामी आक्रमण से भी है। द्विवेदी जी भक्ति आंदोलन को भारतीय पंरपरा का स्वाभाविक विकास मानते है, इसे उन्होंने शास्त्र और लोक के द्वन्द्व की उपज माना है जिसमें शास्त्र पर लोकशक्ति प्रभावी साबित हुई, और भक्ति आंदोलन का जन्म हुआ। इसके मूल में वह बाहरी कारणों की जगह भीतरी शक्ति की ऊर्जा देखते हैं-'भारतीय पांडित्य ईसा की एक शताब्दी बाद आचार-विचार और भाषा के क्षेत्रों में स्वभावतः ही लोक की ओर झुक गया था। यदि अगली शताब्दियों में भारतीय इतिहास की अत्यधिक महत्वपूर्ण घटना अर्थात् इस्लाम का प्रमुख विस्तार न भी घटी होती तो भी वह इसी रास्ते जाता। उसके भीतर की शक्ति उसे इसी स्वाभाविक विकास की ओर ठेले जा रही थी।' (हिंदी साहित्य की भूमिका, पृ0-15)। द्विवेदी जी, मध्यकालीन भक्ति साहितय के विकास के लिए बौद्ध धर्म के लोक धर्म में रूपांतरित होने और प्राकृत-अपभ्रंश की श्रृंगार प्रधान कविताओं की प्रतिक्रिया को देखते है। इस संदर्भ में रामस्वरूप चतुर्वेदी का मत उल्लेखनीय है-'अच्छा होगा कि प्रभाव और प्रतिक्रिया दोनों रूपों में इस्लाम की व्याख्या सहज भाव और अकुंठ मन से किया जाए। तब आचार्य शुक्ल और आचार्य द्विवेदी के बीच दिखने वाला यह प्रसिद्ध मतभेद अपने-आप शांत हो जाएगा। भक्ति-काव्य के विकास के पीछे बौद्ध धर्म का लोक मूलक रूप है और प्राकृतों के श्रृंगार काव्य की प्रतिक्रिया है तो इस्लाम के सांस्कृतिक आतंक से बचाव की सजग चेष्टा भी है।' (हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, पृ0-33) वह मध्यकालीन भक्तिकाव्य के उदय में इस्लाम की आक्रामक परिस्थिति का गुणात्मक योगदान स्वीकार करते हैं। भक्ति आंदोलन के उदय के पीछे तत्कालीन आर्थिक, सामाजिक परिस्थितियाँ भी कार्यरत थी, इसका विवेचन के दामोदरन, इरफान हबीब, रामविलास शर्मा, मुक्तिबोध ने किया है। इस्लामी राज्य की उत्तर भारत में स्थापना और उसकी स्थिरता के कारण व्यापार वाणिज्य का तेजी, से विकास होता है, नये उद्योग-धंधे ही नहीं, स्थापित होते, नए-नए नगरों का भी निर्माण होता है, इसके फलस्वरूप भारत का जो कामगार वर्ग था, जिसमें प्रायः निचली जातियों के लोग अधिक थे की आर्थिक स्थिति में सुधार होता और उनमें एक आत्मसम्मान,

अपनी सम्मानजनक सामाजिक स्थिति को पाने की भावना बलवती होती है। यह अकारण नहीं है कि भक्ति आंदोलन में इन निचली जातियों की भागीदारी सर्वाधिक है। इस्लामी राज्य स्थापित से होने से परम्परागत सामाजिक ढाँचें को एक धक्का लगता है, सामंतों एवं पुरोहितों का प्रभुत्व-प्रभाव कम होता है। कह सकते है भक्ति आंदोलन के उदय में तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक-सांस्कृतिक परिस्थितियाँ सभी अपना योगदान दे रही थी। अत: भक्ति आंदोलन के उदय में कई कारणों का संयुक्त योगदान है।

5.9.3 भक्ति आंदोलन का महत्व-

भक्ति आंदोलन मध्यकाल का एक व्यापक और प्रभावी आंदोलन था, जिसने भारतीय समाज को गहरे स्तर पर प्रभावित किया। इसने एक ओर जहाँ सत्य शील, सदाचार, करूणा, सेवा जैसे उच्च मूल्यों को प्रचारित किया वहीं समाज के दबे-कुचले वर्ग को भक्ति का अधिकारी, बनाकर उनके अंदर आत्मविश्वास का संचार भी किया। भक्ति आंदोलन की प्रगतिशील भूमिका को रेखांकित करते हुए शिवकुमार मिश्र लिखते है-'इस आंदोलन में पहली बार राष्ट्र के एक विशेष भूभाग के निवासी तथा कोटि-कोटि साधारण जन ही शिरकत नहीं करते, समग्र राष्ट्र की शिराओं में इस आंदोलन की ऊर्जा स्पंदित होती है, एक ऐसा जबर्दस्त ज्वार उफनता है कि उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम सब मिलकर एक हो जाते है, सब एक दूसरे को प्रेरणा देते है, एक-दूसरे से प्रेरणा लेते है, और मिलजुल कर भक्ति के एक ऐसे विराट नद की सृष्टि करते हैं, उसे प्रवहमान बनाते हैं, जिसमें अवगाहन कर राष्ट्र के कोटि-कोटि साधारण जन सदियों से तप्त अपनी छाती शीतल करते हैं, अपनी आध्यात्मिक तृषा बुझाते हैं, एक नया आत्म् विश्वास, जिंदा रहने की, आत्म सम्मान के साथ जिंदा हरने की शक्ति पाते हैं।' (भक्ति-आंदोलन और भक्तिकाव्य-पृ. 11) भक्ति आंदोलन एक व्यापक लोकजागरण था।

5.10 भक्ति कालीन कविता का उदय-

भक्तिकाव्य भक्ति आंदोलन की उपज है। सबसे पहले हमें निर्गुण पंथ दिखलाई पड़ता हैं, जिनमें कबीर प्रमुख हैं। कबीर रामानंद के शिष्य हैं। कबीर के पहले महाराष्ट्र में नामदेव हिंदी में रचना कर चुके थे, उनमें निर्गुण और सगुण दोनों की उपासना है। कबीर ने निर्गुण पंथ का प्रवर्तन किया। उन पर अद्वैतवाद, वैष्णवी अहिंसावाद, प्रप्रत्तिवाद, सिद्ध, नाथ मत का पूरा प्रभाव था। उन्होंने निर्गुण ब्रह्म की उपासना पर जोर देते हुए, बहुदेववाद, शास्त्रों एवं कर्मकाण्डों का विरोध किया। उनकी भक्ति भावमूलक हैं, जिसकी उपलब्धि सद्गुरू की कृपा से होती है। कबीर की ही परंपरा में रैदास, रज्जब, दादू आदि संत कवि आते हैं। सूफी मत पर आधारित प्रेमाख्यानक काव्य तब प्रकाश में आता है जब भारत में सूफी मत का प्रसार होता हैं। सूफी फकीरों में निजामुद्दीन ओलिया और ख्वाजामुइनुद्दीन चिश्ती प्रमुख हैं। सूफी संत कवियों में कुतुबुन, मंझन, मलिजक मुहम्मद जायसी, उसमान आदि प्रमुख हैं। इन सूफी संतों ने प्रचलित हिंदू कथाओं को, आधार बनाकर ईश्वरीय प्रेम का निरूपण किया है। रामभक्ति की शुरुआत रामानंद से होती है। जिसे चरमोत्कर्ष पर गोस्वामी तुलसीदास ले जाते हैं। उत्तर भारत में कृष्ण

भक्ति का प्रसार वल्लभाचार्य ने किया। पुष्टिमार्गी अष्टछाप के कवियों ने कृष्णकाव्य का प्रणयन किया इनमें सूरदास और नंददास प्रमुख है। अष्टछाप कवियों के पूर्व संस्कृत में जयदेव और मैथिल में विद्यापति ने कृष्ण काव्य की रचना की थी। आगे की इकाई में भक्ति काव्य की विभिन्न शाखाओं के उद्भव एवं विकास का विस्तृत विवेचन किया जाएगा।

अभ्यास प्रश्न

1. लघु उत्तरीय प्रश्न

1. आलवर भक्तों में महिला भक्त थीं?
2. द्वैताद्वैत का प्रवर्तन किसने किया?
3. शंकराचार्य के अद्वैतवाद का विरोध करने वाले प्रथम वैष्णव आचार्य हैं?
4. गुजरात के प्रमुख भक्त कवि हैं?
5. नवधा भक्ति का उल्लेख किस ग्रंथ में हैं?
6. भक्ति आंदोलन को ईसाईयत की देन किसने माना है?
7. भक्ति आंदोलन को भारतीय परंपवरा का स्वाभाविक विकास किस आलोचक ने माना है?
8. नामदेव की भक्ति किस प्रकार हैं?

5.11 सारांश

हिंदी साहित्य का पूर्वमध्यकाल (14वीं सदी के मध्य से 17वीं सदी के मध्य तक) के साहित्य की मूल संवेदना भक्ति होने के कारण भक्तिकाल कहा गया। भक्ति के आदि बीज वेदों में मिलते हैं, ब्राह्मण, ग्रंथों, उपनिषद, पुराणों से होते हुए भागवत धर्म में भक्ति को व्यापक आयाम मिलता है। कालांतर में वैष्णव आचार्यों रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य, निम्बार्क, मध्वाचार्य ने भक्ति को दार्शनिक आयाम देते हुए भक्ति मार्ग को उदार बनाया। दक्षिण के आलवार भक्तों ने राम, कृष्ण की उपासना पर जोर दिया और दक्षिण भारत में एक आंदोलन की तरह भक्ति आंदोलन का प्रचार किया। दक्षिण से भक्ति आंदोलन का प्रसार उत्तर भारत में होता है रामानंद, वल्लभाचार्य के माध्यम से। भक्ति आंदोलन एक व्यापक आंदोलन था जिसमें सभी वर्ग, जाति, क्षेत्र, भाषा की भूमिका थी। मूलतः धार्मिक आंदोलन होते हुए भी भक्ति आंदोलन का एक सामाजिक आयाम भी है। तत्कालीन राजनीति, सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियाँ और पहले चली आ रही लोकपरम्परा, भक्ति आंदोलन के उदय का कारण बनती है। भक्ति काव्य इसी आंदोलन की उपज है। इसी की कोख से, संत काव्य, सूफी प्रेमाख्यान काव्य, रामकाव्य, कृष्ण भक्ति काव्य का जन्म होता है। जिसे कबीर, जायसी, सूर, तुलसी अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचाते हैं।

5.12 शब्दावली

(1) अवतारवाद- वैष्णव संप्रदाय में ईश्वर के अवतार की कल्पना की गई। ईश्वर धर्म और धरा की रक्षा के लिए धरती पर जन्म लेता है। विभिन्न शास्त्रों में अवतारों की संख्या भिन्न-भिन्न है, कहीं 7, कहीं 10 कहीं 24 अवतारों का उल्लेख मिलता है। राम और कृष्ण प्रमुख अवतार है, जिनकी भक्ति का मध्यकालीन भक्ति काव्य में वर्णन मिलता है।

(2) प्रपत्ति भावना- प्रपत्ति का अर्थ है शरणागति। प्रभु के चरणों में अपना सर्वस्व अर्पित कर देना। प्रपत्ति को भक्ति का प्रमुख साधन माना गया हैं।

(3) अनात्मवाद- भारतीय चिंतन परंपरा में आत्मा सम्बन्धी दो विचारधारा है- आत्मवाद और अनात्मवाद या नैरात्म्यवाद। आत्मवाद के अनुसार आत्मा नित्य, अजर-अमर, चेतन है। हिंद-धर्म-दर्शन आत्मवादी है। अनात्मवाद के अनुसार या तो आत्मा है ही नहीं और यदि है तो वह नश्वर और परिवर्तनशील है।

(4) मायावाद- शंकराचार्य के अनुसार आत्मा, परमात्मा दोनों में अद्वैत संबंध है। किंतु माया के कारण मनुष्य दोनों की अद्वैतता का अनुभव नहीं कर पाता। माया के कारण ही मनुष्य सांसारिक प्रपंचों और जगत केा सत्य मान परमात्मा से विमुख रहता है। इस माया के नाश द्वारा ही मनुष्य को परमपद की प्राप्ति हो सकती है। माया के बंधनों से मुक्ति ज्ञान से होती है।

(5) बहुदेवोपासना- बहुदेववाद हिंदू धर्म की विशेषता है। हिंदू धर्म में ईश्वर के कई रूपों की मान्यता है। दअसल बहुदेववाद अवतारवाद की देन है।

(6) नवधाभक्ति-भागवत पुराण में भक्ति के नौ साधनों का उल्लेख है। ये नौ साधन हैं-श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद सेवन, अर्चना, वंदना, दास्य, संख्य, आत्मनिवेदन। यही नवधा भक्ति है।

5.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. लघु उत्तरीय प्रश्न

1. अंडाल
2. निम्बार्क
3. रामानुजाचार्य
4. 'नरसी मेहता
5. भागवत पुराण
6. ग्रियर्सन
7. हजारी प्रसाद द्विवेदी
8. सगुण-निर्गुण

5.14 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. द्विवेदी, हजारी प्रसाद - सूर साहित्य, राजकमल प्रकाशन।
2. द्विवेदी, हजारी प्रसाद - हिन्दी साहित्य उद्भव और विकास, राजकमल प्रकाशन।
3. द्विवेदी, हजारी प्रसाद - हिन्दी साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन।
4. शुक्ल, रामचंद्र - हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा।
5. मिश्र, शिव कुमार- भक्ति आंदोलन और भक्ति काव्य, अभिव्यक्ति प्रकाशन।

5.15 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास - रामस्वरूप चतुर्वेदी
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास - सं. नगेंद्र
3. भारतीय चिंतन परम्परा - के0 दामोदरन
4. हिन्दी साहित्य कोश-भाग-1 - सं. धीरेन्द्र वर्मा
5. भक्ति आंदोलन के सामाजिक आधार - सं. गोपेश्वर सिंह
6. भक्ति काव्य का समाज दर्शन - प्रेमशंकर

5.16 निबन्धात्मक प्रश्न

(1) भक्ति विषयक वैष्णव आचार्यों के मतों का परिचय दीजिए?

(2) भक्ति आंदोलन के उदय एवं विकास पर प्रकाश डालिए?

(3) 'अगर इस्लाम नहीं आया होता तो भी हिन्दी साहित्य का बारह आना वैसा ही होता जैसा आज है।' इस कथन का आशय स्पष्ट करते हुए भक्ति आंदोलन के उदय के कारणों की व्याख्या कीजिए।

(4) भक्ति आंदोलन की भूमिका का मूल्यांकन कीजिए।

इकाई 6 भक्तिकालीन कविता: प्रक्रिया एवं विकास

इकाई की रूपरेखा

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 भक्ति काव्य का वर्गीकरण
6.4 भक्ति काव्य की सामान्य विशेषताएँ
6.4.1 निर्गुण भक्ति काव्य की विशेषताएँ
6.4.2 सगुण भक्ति काव्य की विशेषताएँ
6.5 भक्ति काव्य: प्रक्रिया एवं विकास
6.5.1 संत काव्य
6.5.2 प्रेममार्गी सूफी काव्य
2.5.3 राम भक्ति काव्य
6.5.4 कृष्ण भक्ति काव्य
6.6 भक्ति काव्य का महत्व
6.7 सारांश
6.8 शब्दावली
6.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.10 संदर्भ ग्रंथ सूची
6.11 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री
6.12 निबन्धात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में भक्ति कालीन कविता के वर्गीकरण, सगुण-निर्गुण भक्ति काव्य की विशेषताओं, भक्तिकाव्य की विभिन्न धाराओं की परम्परा और विकास, भक्ति काव्य की उपलब्धि इत्यादि की चर्चा की जाएगी। ब्रह्म के स्वरूप के आधार पर सगुण-निर्गुण शाखा में विभक्त भक्तिकाव्य का चार शाखाओं-संत काव्य, प्रेममार्गी, सूफी काव्य, राम भक्ति काव्य, कृष्ण भक्ति काव्य के रूप में विकास होता है। भक्ति के आधार और प्रक्रिया में भिन्नता के बावजूद इन शाखाओं में एक गहरी समानता भी है। उपास्य के प्रति उत्कट राग अर्थात् भक्ति, नैतिक जीवन पद्धति, उच्चकोटि की मनुष्यता, साधना और काव्य का लोकोन्मुख रूप पूरे भक्ति काव्य की सामान्य विशेषता है। सौन्दर्य बोधात्मक एवं मूल्यबोधात्मक दोनों दृष्टि से भक्तिकाव्य की उपलब्धियाँ सराहनीय है। इस इकाई में इन्हीं बातों पर प्रकाश डाला जाएगा।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप -

- भक्तिकाव्य के विभाजन, उसकी विविध शाखाओं से अवगत हो सकेंगे।
- भक्तिकाव्य की क्या विशेषताएँ रही हैं? सगुण-निर्गुण भक्ति काव्य में समानता-असमानता क्या हैं? इन प्रश्नों का उत्तर पा सकेंगे?
- भक्ति काव्य की विभिन्न शाखाओं की प्रक्रिया और विकास की व्याख्या कर सकेंगे।
- भक्ति काव्य के महत्व को समझ सकेंगे।

6.3 भक्ति काव्य का वर्गीकरण

भक्तिकाव्य की दो धाराएँ हैं निर्गुण भक्ति और सगुण भक्ति काव्य। निर्गुण भक्ति काव्य और सगुण भक्ति में मुख्य अंतर भक्ति के आधार को लेकर है। निर्गुण शाखा में भक्ति का अवलंब अगोचर, अजन्मा, अशरीरी, इंदियातीत, अगम्य, निराकार, परमेश्वर है, जबकि सगुण शाखा में उपास्य गोचर, साकार, शरीरी है, वह अवतरित होता है। डा. नगेंद्र द्वारा संपादित 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में आचार्य परशुराम चतुर्वेदी निर्गुण भक्ति, सगुण भक्ति का साम्य-वैषम्य उद्घाटित करते हुए लिखते हैं- 'सगुण भक्ति में जहाँ लीलावतार को आराध्य स्वीकार किया गया हैं, वहीं निर्गुण भक्ति में ब्रह्ममानुभूति को स्थान दिया गया है। सगुण भक्ति में जहाँ भगवद्अनुग्रह का भरोसा होता हैं, वहीं निर्गुण भक्ति में आत्मविश्वास का बल रहता है। सगुण भक्ति जहाँ बाह्य लालित्य की महिमा से मंडित है, वही निर्गुण भक्ति अंतः सौन्दर्य की गरिमा से दीप्त। सगुण भक्ति जहाँ साकार तथा सविशेष के प्रति होती है, वहीं निर्गुण भक्ति निराकार और निर्विशेष के प्रति। सगुण भक्ति में जहाँ स्वकीया तथा परकीया दोनों भावों का समावेश है, वहीं निर्गुण भक्ति में

शक्तिरूपा नारी के प्रति निष्ठावान रहते हुए भी उसके रमणी रूप अथवा परकीया भाव के प्रति आकर्षण का अभाव है। सगुण भक्ति में जहाँ किसी देव लोक की कल्पना की गयी हैं, वहीं निर्गुण भक्ति में विश्वात्मा प्रभु के विश्वव्यापी अस्तित्व में आस्था प्रकट की गयी है। सगुण भक्त के लिए जहाँ भगवान का उपयुक्त धाम भक्त का हृदय है, वहीं निर्गुण भक्त के लिए अभेदमूलक दृष्टि द्वारा आत्मसाक्षात्कार का महत्व है। निर्गुण भक्त सत्य के शोधक हैं, भक्ति अथवा ऐश्वर्य के आराधक नहीं। मोक्षकामी निर्गुण भक्त संसार को सत्कर्मों द्वारा स्वर्ग बनाना चाहते हैं, वे किसी काल्पनिक 'परलोक' के अभिलाषी नहीं। सगुण और निर्गुण भक्त दोनों ही उपासना-भेद से वैष्णव हैं। निर्गुण भक्त जहाँ नारायण की उपासना करता है, वहीं सगुण भक्त विष्णु के लीलावतारों की भक्ति। सगुण भक्ति में लीला का महात्म्य है और निर्गुण भक्ति में लय का महत्व। सगुण भक्त जहाँ वर्णव्यवस्था के आलोचक नहीं, वहीं निर्गुण भक्त उसके तीव्र विरोध तक जान पड़ते हैं। परंतु प्रेमा भक्ति दोनों को स्वीकार्य है।..... वास्तव में सगुण-निर्गुण का भेद जितना स्तर जन्य है उतना वर्गगत नहीं।' (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ0 101-102) इस प्रकार हम देखते है कि सगुण भक्ति एवं निर्गुण भक्ति में मूल अंतर ईश्वर की परिकल्पना की भिन्नता के कारण है। इससे दोनों काव्य की विषय वस्तु, जीवन-जगत संबंधी उनके दृष्टिकोण में अंतर दिखलाई पड़ता है। निर्गुण भक्ति काव्य दो वर्गों में विभक्त है- ज्ञानाश्रयी शाखा (संतकाव्य) और प्रेमाश्रयी शाखा (सूफी प्रेमाख्यानक काव्य)। संत मत में ब्रह्म ज्ञान को प्रमुखता दी गई है, जबकि प्रेममार्गी सूफी काव्य में तीव्र प्रेमानुभूति का महत्व है। सगुण भक्ति काव्य विष्णु के अवतारों के आधार पर दो धाराओं में विकसित होता है। राम, कृष्ण विष्णु के प्रमुख आधार है, भक्ति आंदोलन के दौरान इन दो अवतारों की भक्ति का व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ। इस तरह सगुण भक्ति काव्य के भी दो रूप हैं-राम भक्ति काव्य और कृष्ण भक्ति काव्य। भक्ति काव्य की विभिन्न शाखाओं को निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं-

6.4 भक्तिकाव्य की सामान्य विशेषताएँ

भक्ति काव्य हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग है। गुण एवं परिमाण, उदात्त भाव-भूमि एवं प्रभावी अभिव्यक्ति प्रेरक आदर्शों-मूल्यों की उपस्थिति, मानवीयता का उच्च धरातल, युगबोध, लोकोन्मुखता इत्यादि सभी दृष्टियों से यह काव्य एक प्रतिमान की तरह दिखलाई पड़ता है। अपने इन्हीं गुणों के कारण ही भक्तिकाव्य भारतीय समाज का पथप्रदर्शक रहा है, उसे आध्यात्मिक तृप्ति और रसानुभूति कराता रहा है। इस भक्ति काव्य की चार शाखाएँ है-संत काव्य, प्रेम मार्गी सूफी काव्य, राम भक्ति काव्य, कृष्ण भक्ति काव्य। इन चारों शाखाओं का अपना-अपना निजी वैशिष्ट्य है, अपनी विशेष प्रवृत्ति है। किन्तु कुछ ऐसी प्रवृत्तियाँ, विशेषताएँ भी है जो समूचे भक्तिकाव्य में दिखलाई पड़ती है। निर्गुण भक्ति काव्य, सगुण भक्ति काव्य और इनकी विभिन्न शाखाओं का एक समान धरातल है, और वह धरातल है भक्ति। सबमें ईश्वर के प्रति उत्कट राग, अनन्य, निष्ठा, सत्य-शील-सदाचार युक्त जीवन पर जोर, संसार में रहते हुए सांसारिक प्रपंचों, माया-मोह के बंधनों से असंपृक्त-उदासीन रहने का उपदेश, मानुष सत्य को प्रमुखता, शास्त्रों-

कर्मकाण्डों से मुक्त भाव भगति पर बल, गुरु महिमा का बखान, अहं का पूर्ण-विगलन, लोक सम्पृक्ति मिलती है। आइए अब हम भक्ति काव्य की विशेषताओं की चर्चा करें।

(1) ईश्वर के उत्कट प्रेम एवं अनन्य निष्ठा- ईश्वर के प्रति उत्कट राग, अनन्य निष्ठा, सर्वस्व समर्पण की भावना भक्ति काव्य की सभी धाराओं में विद्यमान है। सभी भक्त कवि भगवत्प्रेम में पूर्णतया अनुरक्त, विह्वल दिखलाई पड़ते है। कबीर प्रियतम परमात्मा के विरह में व्याकुल होकर कहते हैं-

आँखड़ियाँ झाँई पड़ी, पंथ निहारि निहारि।
जीभड़ियाँ छाला पड़याँ, राम पुकारि पुकारि।

सूफी काव्य में तो 'प्रेम तत्व' को ही सर्वाधिक महत्ता दी गई हैं। मीरा गिरधर गोपाल को अपना सर्वस्व मान, उनके प्रेम में बावरी हो उठती है- हे री मैं तो प्रेम दीवानी, मेरा दरद न जाने कोई।' सूर की गोपियाँ कृष्ण के प्रति इतना समर्पित हैं कि वे उद्धव के मुक्ति रूपी मणि के प्रलोभन को ठुकराकर कृष्ण की विहाग्नि में तपना स्वीकार करती हैं। उद्धव के लाख समझाने-बुझाने के बावजूद गोपियाँ के प्रेम पर कोई असर नहीं होता, हरि तो उनके लिए 'हारिल की लकड़ी' के समान हैं। तुलसी के तो एकमात्र बल, एकमात्र भरोसा उनके प्रभु राम हैं-

एक भरोसो एक बल, एक आस विश्वास।
एक राम घनश्याम हित चातक तुलसीदास।।

(2) अहं का विगलन-भक्त कवि परमात्मा के पास अपने अहं को पूर्णतया विसर्जित करके जाते हैं। प्रभु के समक्ष उनका अपना कोई अस्तित्व नहीं, प्रभु की सेवा, उनका सेवक बनने में ही वे अपनी सार्थकता देखते हैं। कबीर अपने को 'राम का गुलाम', 'राम का कुत्ता' कहते है।

सूर का कहना है-

'सब कोउ कहत गुलाम श्याम को सुनत सिरात हिये।'

तुलसी कहते हैं-

राम सो बड़ो है कौन, मोसों कौन छोटो?
राम सो खरो है कौन, मोसों कौन खोटो?'

(3) सांसारिक विषय-वासनाओं के प्रति उदासीनता- भक्त कवि प्रभु भक्ति में सबसे बड़ी बाधा माया-मोह को मानते हैं। माया-मोह के बंधन में फँसकर मनुष्य जीवन, जगत को सत्य, शाश्वत मानकर सांसारिकता में लिप्त और परमात्मा से विमुख रहता है। भक्त कवियों के यहाँ सांसारिक विषय-वासनाओं को निस्सार माना गया है, उनसे अलिप्त रहने का उपदेश दिया गया है। यह निर्वेद का भाव कबीर, सूर, तुलसी, जायसी सभी के यहाँ मिलता है। जीवन की क्षण भंगुरता की ओर इशारा करते हुए कबीर कहते हैं -

माली आवत देखिकै कालियाँ करीं पुकार।
फूली-फूली चुनि लई, काल्हि हमारी बारि।।

जिस शरीर और जीवन को मनुष्य ने सत्य समझ लिया है उसकी वास्तविकता क्या है, इसे बतलाते हुए सूर ने लिखा है-

जा दिन मन पंछी उड़ि जैहैं।
ता दिन तेरे तन तरुवर के सबै पात झरि जैहैं।।

(4) गुरु महिमा- गुरु की महत्ता निर्गुण, सगुण दोनों भक्त कवियों ने स्वीकार की है। दरअसल गुरु ही सत्य का बोध कराता है, मनुष्य को ईश्वर प्राप्ति का मार्ग बतलाता है। वह पथ प्रदर्शक हैं, सच्चा हितैषी है। इसीलिए कबीर ने गुरु को भगवान से भी ऊँचा दर्जा दिया है।

गुरु गोविंद दोउ खड़े काके लागूँ पाय।
बलिहारी गुरु आपने गोविंद दियो बताय।।

मानस में तुलसी गुरु की वंदना करते हुए लिखते हैं -

'बंदौ गुरु पद कंज, कृपा सिंधु नर रूप हरि।'

(5) नामस्मरण का महत्व- भक्त कवियों ने पूर्ण श्रद्धा और विश्वास के साथ प्रभु का नाम जपने को भक्ति का सबसे सरलतम रूप माना है। मात्र नाम-स्मरण से मनुष्य प्रभु की कृपा का पात्र बन जाता, भव-बंधन से मुक्त हो जाता है। इसीलिए राम-नाम को तत्व मानते हुए कबीर ने कहा है- 'कबीर सुमिरण सार है और सकल जंजाल।' नाम की महिमा का उल्लेख करते हुए उन्होंने लिखा है-

आदि नाम पारस अहै, मन है मैला लोह।
परसत ही कंचन भया, छूटा बंधन मोह।।

नाम स्मरण को प्रमुखता देकर भक्त कवियों ने भक्ति को शास्त्रों और कर्मकाण्डों को जकड़बंदी से मुक्त कर दिया उसे सरल और लोकग्राह्य बना दिया।

(6) संतों के प्रति श्रद्धा एवं सत्संग पर बल- भक्ति काव्य में पवित्रतायुक्त सीधा-सरल जीवन जीने वाले परमात्मा की भक्ति में लीन, सांसारिकता से उदासीन साधु पुरुषों के प्रति असीम श्रद्धा-सम्मान प्रकट किया गया है। रैदास लिखते हैं वह गाँव, स्थान, कुल, घर-परिवार धन्य है जहाँ साधु पुरुष का जन्म होता है-

जिहि कुल साधु बैस्नौ होइ।
बरन अबरन रंक नहिं ईसुर, बिमल बासु जानीऐ जग सोइ।।

× × ×

होई पुनीत भगवंत भजन ते आपु तारि तारै कुल दोइ।

धनिसो गाउँ, धनि सो ठाउँ, धनि पुनीत कुटुम सब लोइ।।

जिस प्रकार पुष्प के सम्पर्क से सब अंग समान रूप से सुवासित होते हैं, उसी तरह संतों की संग भी होता है, तुलसी के अनुसार-

बंदहु संत समान चित हित अनहित नहिं दोय।
अंजलि गत सुभ सुमन जिमि सम सुगंध कर होय।।

(7) सत्य-शील-सदाचार युक्त जीवन जीने का उपदेश- भक्त कवियों ने जीवन को धर्मानुसार अर्थात् सत्य-शील सदाचार का सम्यक पालन करते हुए प्रभु के प्रति समर्पित जीवन जीने का उपदेश दिया है। समस्त सृष्टि को प्रभु की अभिव्यक्ति मानकर सभी के प्रति कल्याण की भावन एवं कर्म होना चाहिए। ये कवि स्वार्थ की जगह परमार्थ, संग्रह की जगह त्याग, भोग की जगह भक्ति को महत्व देने वाली जीवन-पद्धति के प्रचारक-प्रसारक हैं।

(8) मानवतावादी दृष्टि- भक्त कवियों ने भक्तिमार्ग में सभी मनुष्यों को समान मानते हुए, वर्गगत, वर्णगत भेद भाव का विरोध किया है। सभी मनुष्य परमात्मा के अंश हैं, चाहे ब्राह्मण हो या शूद्र, राजा हो या रंक-सबमें उसी परमात्मा का वास है। 'जाति-पाति पूछै न कोई। हरि को भजै सो हरि का होई।' भक्ति काव्य का मूलमंत्र है। मनुष्य सत्य को भक्ति आंदोलन के दौरान सर्वप्रमुखता दी गई, बंग्ला के भक्त कवि चण्डीदास ने कहा है-

शुनह मानुष भाई
शबार ऊपरे मानुष शतो
ताहार ऊपरे नाई।

कबीर अत्यंत तीखे ढंग से जाति-पाँतिगत भेद-भाव का विरोध करते हैं। यद्यपि तुलसी के यहाँ वर्णाश्रमधर्म के प्रति एक आस्था है, किंतु उन्होंने भी सभी मनुष्यों को समान माना है- तभी तो वह कहते हैं-'सिया राम मय सब जग जानी करहु प्रनाम जोरि जुग पानि।' दरअसल भक्त कवि परस्पर राग-विश्वास पर आधारित एक उदार और मानवीय समाज के अभिलाषी है।

(9) लोकोन्मुखता- गहरी लोक सम्पृक्ति भक्त कवियों की विशेषता है। वे जन सामान्य के बीच से आए थे और उन्हीं के बीच रहकर काव्य रचना की। उन्होंने धर्म और भक्ति को सहज-सरज रूप देकर लोक ग्राह्य बनाया। 'नाम स्मरण' को प्राथमिकता देने वाली उनकी भक्ति साधन विहीन और निरक्षर जनता जो शास्त्रोक्त कर्मकाण्डों को सम्पन्न करने तथा शास्त्रों का अध्ययन-मनन करने में असमर्थ थी, के लिए अत्यंत सुगम थी। यही नहीं सदियों से उपेक्षित-वंचित वर्ग को भक्ति का अधिकारी घोषित कर उन्होंने भक्तिमार्ग को अत्यंत उदार और मानवीय बना दिया। रागमूलक जिस भक्ति का कबीर, जायसी, सूर, तुलसी, मीरा ने प्रचार किया उससे जनसामान्य केा आध्यात्मिक तृप्ति ही नहीं मिलती है, उसके जीवन में एक सरसता का संचार भी होता है, उसे शक्ति एवं स्फूर्ति मिलती है। भक्ति काव्य लोक मंगलकारी है। यही नहीं लोक संस्कृति एवं

लोक परिवेश का भी इन रचनाओं जीवंत चित्रण हुआ। जायसी के 'पद्मावत' में अवध की लोक संस्कृति और सूर के यहाँ ब्रज की लोक संस्कृति सजीव हो उठी है। भक्त कवि अपनी बात को प्रकट करने के लिए उस समय की प्रचलित लोक भाषाओं का आश्रय लेते हैं, लोक से ही उपमानों, बिम्बों, प्रतीकों का चुनाव करते हुए सहज-सरस शैली में अपनी बात रखते हैं। वास्तव में भक्ति काव्य लोक भाषा में रचित और लोक को संबोधित कविता है। सामंती अभिजात्य और रूढ़ियों को नकार यहाँ लोक की प्रतिष्ठा हुई है। अपनी लोक धर्मी चेतना के कारण ही भक्ति काव्य इतना सरस और प्रभावी बन पड़ा है।

इस प्रकार हम देखते है कि विभिन्न धाराओं में विकसित होने वाले भक्ति काव्य की कुछ आधारभूत विशेषताएं हैं जो सभी धाराओं में समान रूप से दिखलाई पड़ती है। अब आगे हम निर्गुण भक्ति काव्य और सगुण भक्तिकाव्य की विशेषताओं की चर्चा करेंगे।

6.4.1 निर्गुण भक्तिकाव्य की विशेषताएँ

निर्गुण अर्थात् गुणातीत, निराकार, अशरीरी, अजन्मा, अव्यक्त, इन्द्रियातीत ब्रह्म की उपासना को लेकर चलने वाले भक्ति मार्ग को निर्गुण भक्ति मार्ग और उसके साहित्य को निर्गुण भक्ति काव्य कहा गया है। कबीर, रैदास, दादू, कुतुबन, मंझन, जायसी आदि इस धारा के प्रमुख कवि हैं। निर्गुण भक्ति मार्ग भी दो भागों में विभक्त है- ज्ञानश्रयी शाखा अथवा संत काव्य और प्रेमाश्रयी शाखा अथवा प्रेममार्गी सूफी काव्य। एक में ब्रह्मज्ञान, तत्वचिंतन को प्रमुखता दी गयी तो दूसरे में तीव्र प्रेमानुभूति को। आईए हम निर्गुण भक्ति काव्य की विशेषताओं को देखते हैं-

(1) निर्गुण ब्रह्म की उपासना- निर्गुण भक्ति मार्ग में ईश्वर को साकार और अवतारी न मानकर निराकार, अजन्मा माना गया है। परम तत्व एक हैं, वहीं जगत का नियंता, जगत का स्वामी है। ब्रह्म को निर्गुण कहने का अभिप्राय उसकी गुणहीनता से नहीं है। निर्गुण का अर्थ है 'गुणातीत'। वह परमात्मा गुणों से परे है। उसका कोई स्वरूप कोई आकार-प्रकार नहीं। वह इंद्रियातीत परमेश्वर अनिर्वचनीय है, अज्ञेय है। निर्गुण भक्ति मार्ग में अवतारवाद और बहुदेववाद का खण्डन, निर्गुण ब्रह्म की संकल्पना के कारण ही है। उस निर्गुण ब्रह्म की प्राप्ति, ब्रह्मानंद की अनुभूति भक्ति द्वारा ही संभव है। कबीर ने अपनी भक्ति भावना को प्रकट करने के लिए दांपत्य रूपकों को सहारा लिया है। वह राम को अपना 'भरतार' और अपने को उनकी 'बहुरिया' मानते है। जायसी ने इश्कमिजाजी में इश्क हकीकी को दिखलाया है। कहने का तात्पर्य यह है कि निर्गुण कवि लौकिक प्रेम सम्बन्धों का सहारा लेकर ईश्वरीय प्रेम को प्रकट करते है। यद्यपि संतमत में तत्वबोध का महत्व है जो सद्गुरु की कृपा से लब्ध होता है, किंतु संत कवियों ने भी परमात्मा को प्राप्त करने के लिए उत्कट राग, अनन्य निष्ठा को ही सर्वाधिक महत्व दिया है।

(2) **धार्मिक सामाजिक रूढ़ियों का विरोध-** निर्गुण भक्ति मार्ग में शास्त्रीय विधि-विधान कर्मकाण्ड, बाह्याचार, अंधविश्वास, ऊँच-नीच के भेद का विरोध मिलता है। धार्मिक-

सामाजिक रूढ़ियों-कट्टरताओं से मुक्त जिस भक्ति का निर्गुण कवियों ने प्रतिपादन किया है वह बाध्याचारमूलक न होकर भावमूलक है, आंतरिक है। इस भक्ति के लिए शास्त्र ज्ञान भी अपेक्षित नहीं है। निष्कलुष मन-हृदय से परमात्मा के प्रति सच्ची निष्ठा सच्चा और निष्काम प्रेम ही इस भक्ति का आधार है।

(3) **मानव-मात्र की एकता-** समता का प्रतिपादन-निर्गुण कवि ब्राह्मण-शूद्र, हिन्दू-मुस्लिम के भेद को नहीं मानते। उनकी दृष्टि में सभी मनुष्य समान है, क्योंकि एक ही परमात्मा के अंश हैं। कबीर कहते हैं- 'एक जोति थैं सब उपजा कौन ब्राहमन कौन सूदा।' दरअसल निर्गुण भक्ति मार्ग जाति-संप्रदाय के भेदों से परे है। यहाँ राम-रहीम को एक माना गया है। मनुष्य को मनुष्य के रूप में देखा गया है, ब्राह्मण-शूद्र, हिन्दू-मुसलमान के रूप में नहीं। सूफी कवि जायसी, मंझन, कुतुबन ने लोकप्रचलित, हिंदू-कथाओं को आधार बनाकर अपना काव्य सृजन किया है जो उनकी उदार दृष्टि का परिचायक हैं। इससे हिन्दू-मुस्लिम की भावात्मक एकता का पथ प्रशस्त हुआ।

(4) **रहस्यवाद-** रहस्यवाद निर्गुण भक्ति काव्य की एक मुख्य विशेषता है। दरअसल रहस्यवाद कोई विचारधारा नहीं, यह एक अनुभूति है, जिसकी विशेषता है- अगम्य, अगोचर, अज्ञेय, अनिर्वचनीय ब्रह्म के प्रति जिज्ञासा, उसके अस्तित्व में विश्वास, समूची सृष्टि में उसी परमतत्व की व्याप्ति देखना, उससे रागात्मक सम्बन्ध जोड़ना और अन्ततः एकात्म की अनुभूति। इस प्रकार रहस्यवाद के अंतर्गत अगोचर ब्रह्म अनुभूति के दायरे में आता है। आचार्य शुक्ल ने जायसी के रहस्यवाद का विवेचन करते हुए रहस्यवाद के दो भेद किए हैं-साधनात्मक रहस्यवाद और भावात्मक रहस्यवाद। तंत्र-मंत्र, योगादि द्वारा ब्रह्म की सत्ता का साक्षात्कार और ब्रह्मानंद की अनुभूति साधनात्मक रहस्यवाद के अंतर्गत आता है। तीव्र-गहन प्रेमानुभूति की स्थिति, परमात्मा से रागात्मक सम्बन्ध की स्थापना-भावात्मक रहस्यवाद की विशेषता है। जायसी के पद्मावत में भावात्मक रहस्यवाद की प्रधानता है। कबीर के यहाँ यौगिक क्रिया द्वारा ब्रह्मानुभूति का वर्णन होने से साधनात्मक रहस्यवाद है। दूसरी तरफ जब वे अपने को राम का बहुरिया कहते हुए ब्रह्म को राग के धरातल पर उतारते हैं, तो वहाँ भावात्मक रहस्यवाद की उत्पत्ति होती है।

6.6 सगुण भक्ति काव्य की विशेषताएँ

सगुण भक्ति मार्ग में ईश्वर को साकार-इंद्रियगम्य, सविशेष माना गया है। तुलसी, सूर, आदि इसी के अंतर्गत आते है। सगुण भक्ति काव्य की निम्नलिखित विशेषताएं हैं-

(1) अवतारवाद में विश्वास-

सगुण भक्त कवियों का दृढ़ विश्वास है कि परमात्मा, अधर्म के नाश और धर्म की स्थापना के लिए जीव रूप धारण कर अवतरित होता है। वह लीला के लिए अवतरित होता है, उसकी लीलाएँ लोकरंजन और लोक रक्षण के निमित्त होती है। सगुण भक्ति काव्य में नारायण के दो अवतारों-राम, कृष्ण की लीलाओं का विस्तृत वर्णन किया गया है। सगुण भक्ति काव्य ईश्वर की लीलाओं का गान है।

(2) ब्रह्म के सगुण - निर्गुण दोनों रूपों की मान्यता-सगुण भक्ति काव्य में ब्रह्म के सगुण निर्गुण दोनों रूपों को स्वीकार किया गया है। धर्म और धरा के कल्यार्थ ही निर्गुण ब्रह्म सगुण रूप धारण करता है। तुलसीदास कहते हैं - 'सगुनहि सगुनहि नहि कछु भेदा।' सूर भी निर्गुण-सगुण दोनों रूपों को मानते हैं-' 'आदि सनातन हरि अविनाशी, निर्गुण-सगुण धरे तन दोइ।' किन्तु निर्गुण ब्रह्म 'रूप-रेख-गुन-जाति-जुगुति विहीन' है, वह मन और वाणी से परे है, वह 'गुंगे के गुड़' की तरह है। इसलिए सूर सगुन लीला के पद गाते हैं। दरअसल सुगम्यता के कारण ही तुलसी, सूर ने सगुण भक्ति को स्वीकारा है, महत्व दिया है।

(3) भक्ति का एक विशिष्ट स्वरुप- सगुण भक्ति के दो रुप दिखलाई पड़ते हैं, वैधी भक्ति और रागानुगा भक्ति। वैधी भक्ति में जहाँ शास्त्रानुमोदित विधि-निषेधों के सम्यक अनुशीलन पर बल है, वहीं रागानुगा के अंतर्गत शांत, दास्य, सख्य, वात्सल्य और कांत या माधुर्य भाव की भक्ति है। सगुण भक्ति में रागानुगा भक्ति को महत्व दिया गया हैं। अलग-अलग भक्तों ने भिन्न-भिन्न भाव से प्रभु को भजा है। किसी के यहाँ दास्य भाव है तो कहीं वात्सल्य भाव । भागवत पुराण की नवधा भक्ति-श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद सेवन, अर्चना, वंदना, दास्य, संख्य तथा आत्मनिवेदन या शरणागति- की भी सूर, तुलसी, मीरा की भक्ति-पद्धति में स्पष्ट तौर पर देखा जा सकता है।

आगे सगुण भक्ति काव्य की शाखाओं-राम भक्ति काव्य एवं कृष्ण भक्ति काव्य की विस्तृत चर्चा की जाएगी।

6.5 भक्तिकाव्य: प्रक्रिया एवं विकास

6.5.1 संत काव्य

संतकाव्य जिसे ज्ञानाश्रयी शाखा कहा जाता है, इसकी शुरुआत महाराष्ट्र के संत कवि नामदेव से होती है। भक्ति आंदोलन के क्रमिक विकास का अवलोकन करने पर विदित होता है कि आलवारों की भक्ति का प्रसार दक्षिण के बाद महाराष्ट्र में होता है। महाराष्ट्र के संत कवि नामदेव (1270-1350) ने मराठी और हिन्दी दोनों में रचना की है, उनके यहाँ सगुण-निर्गुण दोनों भक्ति की प्रवृत्तियाँ मिलती है। ज्ञानदेव के कारण उन पर नाथपंथ का भी प्रभाव था। उन्होंने एक

ऐसे भक्ति मार्ग के लिए रास्ता निर्मित किया, जो हिन्दू-मुसलमान दोनों के लिए हो। उत्तर भारत में भक्ति का प्रचार-प्रसार करते हैं, रामानंद। जो रामानुजाचार्य की शिष्य परम्परा में आते हैं। रामानंद का समय 14वीं सदी माना जाता है। रामानंद का भक्ति मार्ग उदार था, उसमें न जातिगत, संकीर्णता है और न ही निर्गुण-सगुण का विवाद। स्वयं ब्राह्मण होते हुए भी बिना किसी भेद-भाव के उन्होंने निम्न जाति के लोगों को भी दीक्षा दिया। उनके शिष्यों में कबीर, रैदास, धन्ना, सेना, पीपा प्रसिद्ध है। रामानंद के शिष्यों में निर्गुण संत भी हैं और सगुण भक्त भी। एक निश्चित मत के रूप में संत काव्य के प्रवर्तक निस्संदेह कबीर हैं (15वीं सदी) हैं। कबीर ने जिस निर्गुण पंथ का प्रवर्तन किया है, उसकी परंपरा नामदेव से शुरू होती है। सिद्धों, नाथों, वैष्णवों, सूफियों से वह बहुत कुछ ग्रहण करते हैं। आचार्य शुक्ल लिखते हैं- 'निर्गुण पंथ के लिए राह निकालने वाले नाथपंथ के योगी और भक्त नामदेव थे। जहाँ तक पता चलता है 'निर्गुण मार्ग के निर्दिष्ट प्रवर्तक कबीरदास ही थे जिन्होंने एक ओर तो स्वामी रामानंद जी के शिष्य होकर भारतीय अद्वैतवाद की कुछ स्थूल बातें ग्रहण की और दूसरी ओर योगियों और सूफी फकीरों के संस्कार प्राप्त किए। वैष्णवों से उन्होंने अहिंसावाद और प्रपत्तिवाद लिये। इसी से उनके तथा 'निर्गुणवाद' वाले दूसरे संतों के वचनों में कहीं भारतीय अद्वैतवाद की झलक मिलती है तो कहीं योगियों के नाड़ी चक्र की, कहीं सूफियों के प्रेमतत्व की, कहीं पैगम्बरी कट्टर खुदाबाद की और कहीं अहिंसावाद की। अतः तात्त्विक दृष्टि से न तो हम इन्हें पूरे अद्वैतवादी कह सकते हैं और न एकेश्वरवादी। दोनों का मिलाजुला भाव इनकी बानी में मिलता है। इनका लक्ष्य एक ऐसी सामान्य भक्ति पद्धति का प्रचार था जिसमें हिन्दू और मुसलमान दोनों योग दे सकें और भेदभाव का कुछ परिहार हो। बहुदेवोपासना, अवतार और मूर्तिपूजा का खण्डन ये मुसलमानी जोश के साथ करते थे और मुसलमानों की कुरबानी (हिंसा) नमाज, रोजा, आदि की असारता दिखाते हुए, ब्रह्म माया, जीव, अनहदनाद, सृष्टि, प्रलय आदि की चर्चा पूरे हिन्दू ब्रह्म ज्ञानी बनकर करते थे। सारांश यह है कि ईश्वरपूजा की उन भिन्न-भिन्न बाह्य विधियों पर ये ध्यान हटाकर, जिनके कारण धर्म में भेदभाव फैला हुआ था, ये शुद्ध ईश्वर प्रेम और सात्विक जीवन का प्रसार करना चाहते थे।' (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ0 45-46) दरअसल संत काव्य धार्मिक-सामाजिक रूढ़ियों-विषमताओं के खिलाफ एक प्रतिक्रिया हैं, इसकी पृष्ठभूमि हमें सिद्धों-नाथों के यहाँ दिखलाई पड़ती है। परम्परागत वर्णाश्रम व्यवस्था जिसमें एक बड़े वर्ग को हाशिये पर ढकेल दिया गया था, उस निचले वर्ग की व्यापक हिस्सेदारी हमें संत मार्ग में दिखलाई पड़ती हैं। मुक्तिबोध लिखते हैं- 'पहली बार शूद्रों ने अपने संत पैदा किए। अपना साहित्य और अपने गीत सृजित किए। कबीर रैदास, नाभा, सेना नाई आदि महापुरुषों ने ईश्वर के नाम पर जातिवाद के विरूद्ध आवाज बुलंद की।' (नयी कविता का आत्म संघर्ष तथा अन्य निबंध पृ0 88)

कबीर के अतिरिक्त रैदास, दादू, रज्जब, सुंदरदास, मलूकदास, हरिदास निरंजनी, धर्मदास, गुरुनानक, चरणदास, बाबरी साहिब, जगजीवन दास, तुलसी साहब, भीखा साहब, पलटू साहब, अक्षर अनन्य इत्यादि अन्य संत हैं जिन्होंने संत काव्य परम्परा को आगे बढ़ाया। भक्ति आंदोलन के दौरान निर्गुण पंथी कई सम्प्रदाय भी अस्तित्व में आये जैसे नानक पंथ, कबीर पंथ, निरंजनी संप्रदाय, दादू पंथ इत्यादि। संतमत एक लोक परम्परा है। संतों ने लोक भाषा, जिसे

सधुक्कड़ी कहा गया है, का प्रयोग किया है, वे दोहा और गेय पदों में अपनी बात कहते है, बिल्कुल सीधे-सादे ढंग से। उनकी वाणियों में सरलता जन्य सरसता है। उलटवासियों का प्रयोग भी हुआ है जो सिद्धों नाथों के प्रभाव-स्वरुप है। संत काव्य के प्रमुख रचनाकार और रचनाएँ निम्नलिखित हैं-

रचनाकार	**रचना**
कबीर	बीजक (धर्मदास द्वारा संकलित)
नानक	जपुजी, असा दी वार, रहिरास, साहिला, नसीहत
नामा	
हरिदास निरंजनी	अष्टपदी जोग पग्रंथ, ब्रह्मस्तुति, हंसप्रबोध ग्रंथ, निरपखमूल ग्रंथ, पूजायोग ग्रंथ, समाधिजोग, ग्रंथ, संग्रामजोग ग्रंथ
संतदास एवं जगन्नाथ दास (संग्रहकर्त्ता)	'हरडे वाणी- (दादू की वाणियों का संग्रह)
रज्जब	'अंगवधू' (दादू की वाणियों का संग्रह)
मलूकदास	ज्ञानबोध, रतनखान, भक्तिविवेक, ज्ञानपरोछि, बारहखड़ी, रामअवतार लीला, ब्रजलीला, ध्रुवचरित, विभवविभूति, सुखसागर, शब्द
सुंदरदास	ज्ञानसमुद्र, सुंदरविलास
रज्जब	सुब्बंगी
गुरु अर्जुनदेव	सुखमनी, बावनअखरी, बारहमासा
निपट निरंजन स्वामी	शांत सरसी, निरंजन-संग्रह

6.5.2 प्रेममार्गी सूफी काव्य-

सूफी मत से प्रभावित 'प्रेम' को वर्ण्य विषय बनाकर चलने वाली निर्गुणपंथी काव्य धारा ही प्रेममार्गी सूफी काव्य है, जिसे प्रेमाश्रयी शाखा भी कहा जाता है। सूफी मत इस्लाम का एक उदारवादी रूप है। भारत में सूफियों का आगमन 12वीं सदी में माना जाता है। सूफी कवियों ने प्रेम के दो रूप माने है- इश्क मिजाजी और इश्क हकीकी। इश्क मिजाजी अर्थात् लौकिक प्रेम, स्त्री-पुरुष का सामान्य प्रेम। इश्क हकीकी अर्थात् ईश्वरीय प्रेम। उन्होंने, लौकिक प्रेमकथाओं का चित्रण करते हुए ईश्वरीय सत्ता की ओर संकेत किया है, ईश्वरीय प्रेम की व्यंजना की है। उनके यहाँ नायक आत्मा के प्रतीक रूप में और नायिका, परमात्मा के प्रतीक के रूप में आती है। नायक का नायिका से मिलन कई सारी मुसीबतों का सामना करने के उपरांत होता है। प्रायः इन कवियों ने प्रचलित लोक कथाओं को चुना है, उनके प्रबंधों में ऐतिहासिक यथार्थ और कल्पना का योग है।

कथा का विकास वे लोक कथा पद्धति के सूत्रों का इस्तेमाल करते हुए कहते हैं। हजारी प्रसाद द्विवेदी करते हैं- 'कथानक को गति देने के लिए सूफी कवियों ने प्रायः उन सभी कथानक रूढ़ियों का व्यवहार किया है जो परम्परा से भारतीय कथाओं में व्यवहृत होती रही है, जैसे-चित्र दर्शन, स्वप्न द्वारा अथवा शुक-सारिका आदि द्वारा नायिका का रूप देख या सुनकर उस पर आसक्त होना, पशु-पक्षियों की बातचीत से भावी घटना का संकेत पाना, मंदिर या चित्रशाला में प्रिय युगल का मिलन होना, इत्यादि। कुछ नई कथानक रूढ़ियाँ ईरानी साहित्य से आ गयी हैं, जैसे प्रेम व्यापार में परियों और देवों का सहयोग, उड़ने वाली राजकुमारियाँ, राजकुमार का प्रेमी को गिरफ्तार करा लेना, इत्यादि। परन्तु इन नई कथानक शैलियों को भी कवियों ने पूर्ण रूप से भारतीय वातावरण के अनुकूल बनाने का प्रयत्न किया है। अधिकांश सूफी, काव्यों का मूल आधार भारतीय लोक-कथाएँ हैं।'' (हिन्दी साहित्य: उद्भव और विकास, पृ0 163) इन कवियों ने फारसी की मसनवी शैली की पद्धति पर अपने काव्य का प्रणयन किया है। ग्रंथारंभ में ईश्वर और मुहम्मद साहब की स्तुति, गुरु-स्मरण ग्रंथ के रचनाकाल का उल्लेख, तत्कालीन बादशाह का उल्लेख इत्यादि मसनवी शैली की विशेषता है। इन कवियों की शैली भले ही फारसी हो लेकिन कथावस्तु से लेकर भाषा तक उस पर भारतीय परिवेश की छाप है। इन काव्यों की आत्मा भारतीय है। सिर्फ लोक प्रचलित भारतीय लोक कथाओं का आधार ही ग्रहण नहीं किया गया है, भारतीय दर्शन और योग-साधना का भी गहरा प्रभाव, दिखलाई पड़ता है।

सूफी कवियों ने प्रबंधात्मक काव्य की रचना की है। प्रायः दोहा-चौपाई की शैली और अवधी भाषा इन काव्यों की विशेषता है। रहस्यवाद की प्रवृत्ति भी दिखलाई पड़ती है। आत्मा-परमात्मा के प्रेम का निरुपण होने के कारण भावात्मक रहस्यवाद तो है ही, इसके अतिरिक्त यौगिक साधना सम्बन्धी बातें होने के कारण साधनात्मक रहस्यवाद भी आया है। सूफियों के रहस्यवाद के संदर्भ में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी लिखते हैं- 'सूफियों का रहस्यवाद अद्वैतवाद भावना पर आश्रित है। रहस्यवादी भक्त परमात्मा को अपने प्रिय के रुप में देखता है और उससे मिलने के लिए व्याकुल रहता है। जिस प्रकार मेघ और समद्र के पानी में कोई भेद नहीं है, दोनों एक ही हैं, उसी प्रकार भक्त भगवान में कोई भेद नहीं है दोनों एक ही हैं। फिर भी मेघ का पानी, नदी का रुप धारण करके समुद्र के पानी में मिल जाने को आतुर रहता है। उसी श्रेणी की आतुरता भक्त में भी होती है। सूफी, कवियों ने अपने प्रेम कथानकों की प्रेमिका को भगवान का प्रतीक माना है। जायसी भी सूफियों की इस भक्ति भावना के अनुसार अपने काव्य में परमात्मा को प्रिया के रुप में देखते हैं, और जगत् के समस्त रूपों को उसकी छाया से उद्भाषित बताते हैं। उनके काव्य में प्रकृति उस परम प्रिय के समागम के लिए उत्कंठित और व्याकुल पाई जाती है।'' (हिन्दी साहित्य: उद्भव और विकास, पृ0 167)

सूफी काव्य का जहाँ एक धार्मिक-आध्यात्मिक आशय है, वहीं उसका एक लौकिक पक्ष भी है। जिस प्रेम का इन कवियों ने निरुपण किया वह अत्यंत मार्मिक है। शुक्ल जी लिखते हैं- 'सूफियों के प्रेम प्रबंधों में खंडन-मंडन की बुद्धि को किनारे रखकर, मनुष्य के हृदय को स्पर्श करने का ही प्रयत्न किया गया है जिससे इनका प्रभाव हिन्दुओं और मुसलमानों पर समान रूप

से पड़ता है।' (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ0 21) इन कवियों ने लोक तत्वों का प्रचुर मात्रा में उपयोग किया हैं। लोकपक्ष की दृष्टि से यह काव्य अत्यंत समृद्ध है। मुसलमान होते हुए सूफी कवियों ने जिस खुले मन से हिन्दू लोक कथाओं, धार्मिक मतों-विश्वासों का सर्जनात्मक उपयोग किया है, वह उनकी उदारता, उनके सेकुलर चरित्र का प्रमाण है। हिन्दू-मुसलमान के बीच नजदीकी लाने, सांस्कृतिक आदान-प्रदान की प्रक्रिया को तीव्र करने में इन सूफी कवियों का योगदान महत्वपूर्ण है।

सूफी काव्य परंपरा में जायसी का सबसे महत्वपूर्ण स्थान है। जायसी कृत 'पद्मावत' में सूफी काव्य की सभी विशेषताओं को बखूबी देखा जा सकता है। सपनावति, मुगुधावति, मिरगावति, मधुमालती, प्रेमावती जायसी द्वारा उल्लेखित इन प्रेमाख्यानकों में केवल मिरगावति और मधुमालती ही प्राप्त हुए हैं, बाकी अप्राप्य हैं। बहरहाल, यह तो स्पष्ट हे कि जायसी के पूर्व में प्रेमाख्यानक काव्य रचे गए है। जायसी के अतिरिक्त इस परम्परा में कुतुबन, मुल्ला दाऊद, मंझन, उसमान, शेखनवी, कासिम शाह, नूरमुहम्मद आदि कवि भी हैं। प्रेममार्गी सूफी काव्य परम्परा की प्रथम कृति कौन सी, इसे लेकर विद्वानों में मतभेद है। आचार्य शुक्ल के अनुसार कुतुबन कृत 'मृगावती' इस धारा की प्रथम कृति है। हजारीप्रसाद द्विवेदी ईश्वरदास की 'सत्यवती कथा' को, राम कुमार वर्मा मुल्ला दाऊद कृत 'चंदायन' को पहली कृति मानते हैं हिन्दी के प्रमुख प्रेमाख्यानक काव्य निम्नलिखित है।

ग्रंथ	**रचनाकार**
हंसावली (1370 ई.)	असाइत
चंदायन (1379 ई.)	मुल्ल दाऊद
लखमसेन पद्मावती कथा (1459)	दामोदर कवि
सत्यवती कथा (1501)	ईश्वरदास
मृगावती (1503)	कुतुबन
माधवानल कामकंदला (1527)	गणपति
पद्मावत (1540)	जायसी
मधुमालती (1545)	मंझन
रूपमंजरी (1568)	नंददास
प्रेमविलास प्रेमलता की कथा (1556)	जटमल
छिताईवार्ता (1590)	नारायण दास
माधवानल-कामकंदला (1584)	आलम

चित्रावली (1613)		उसमान
रसरतन (1618)		पुहकर
ज्ञानदीप (1619)		शेखनवी
नल-दमयंती (1625)	नरपति व्यास	
नल चरित्र (1641)	कुंद सिंह	
हंस जवाहिर (1731)	कासिम शाह	
इंद्रावती (1744)	नुरमुहम्मद	
अनुराग बाँसुरी (1764)	नुरमुहम्मद	
कथा रतनावली, कथा कनकावती, कथा कंवलावति, कथा मोहिनी, कथा कलंदर इत्यादि (रचनाकाल 1612-1664 ई. तक)	जान कवि	

6.5.3 रामभक्ति काव्य-

आदिकाल से ही राम काव्य की एक दीर्घ परम्परा रही है। दरअसल उच्चतर मानवीय मूल्यों पर आधारित राम का व्यक्तित्व एवं जीवन हमेशा रचनाकारों को आकृष्ट करता रहा है। भारतीय संस्कृति के वह केन्द्रीय चरित्र हैं। राम एक ऐतिहासिक चरित्र हैं या मिथकीय यह विवाद का मुद्दा भले हो, किन्तु भारतीय समाज-संस्कृति में राम की अत्यंत गहरी और व्यापक उपस्थिति एक यथार्थ है। बहरहाल आदिकवि बाल्मीकि कृत आदिग्रंथ 'रामायण' में सर्वप्रथम रामकथा का निरूपण किया गया है। बाल्मीकि के पूर्व रामकथा की वाचिक और लिखित परम्परा निश्चित तौर पर रही होगी। लेकिन अभी तक इसका कोई प्रमाण नहीं उपलब्ध हुआ है। 'रामायण' का रचनाकाल चौथी सदी ई. पू0 माना जाता है। रामायण का भिन्न क्षेत्रों-समाजों, भाषाओं में भिन्न-भिन्न रूप में रूपांतर-विकास हुआ है। भारत में ही नहीं विदेशों में भी रामकथा का खूब प्रचार-प्रसार हुआ। संस्कृत, पालि, प्राकृत, तमिल, तेलगु, कन्नड़, गुजराती, बंग्ला, हिन्दी, काश्मीरी, असमी, नेपाली आदि कई भाषाओं में रामकथा का प्रणयन हुआ। इनमें कालिदास कृत 'रघुवंश' भवभूति कृत 'उत्तर रामचरित', कम्बन कृत 'तमिल रामायण', कृत्तिवास कृत बंग्ला में 'कृतिवासीय रामायण' तुलसीदास कृत 'रामचरित मानस', माधव कन्दलि कृत 'असमिया रामायण' इत्यादि को विशेष ख्याति मिली।

हिन्दी में राम काव्य परम्परा में सर्वोच्च स्थान गोस्वामी तुलसीदास का है। उन्होंने रामकथा को व्यापक फलक पर प्रतिष्ठित कर जनता का कंठहार बना दिया। समन्वय का विराट चेष्टा और लोकमंगल के विधान के कारण तुलसी को अपार लोकप्रियता मिली। आचार्य शुक्ल

के अनुसार 'जगत् प्रसिद्ध स्वामी शंकराचार्य जी ने जिस अद्वैतवाद का निरुपण किया था वह भक्ति के सन्निवेश के उपयुक्त न था। यद्यपि उसमें ब्रह्म की व्यावहारिक सगुण सत्ता का भी स्वीकार था, पर भक्ति के सम्यक प्रसार के लिए जैसे दृढ़ आधार की आवश्यकता थी वैसा दृढ़ आधार स्वामी रामानुजाचार्य जी (सं. 1073) ने खड़ा किया। उनके विशिष्टाद्वैत वाद के अनुसार चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म के ही अंश जगत् के सारे प्राणी हैं जो उसी से उत्पन्न होते हैं और उसी में लीन होते हैं। अतः इन जीवों के लिए उद्धार का मार्ग यही है कि वे भक्ति द्वारा उस अंशी का सामीप्य लाभ करने का प्रयत्न करें। रामानुज जी की शिष्य परंपरा देश में बराबर फैलती गयी और जनता भक्ति मार्ग की ओर अधिक आकर्षित होती रही। रामानुज जी के श्री संप्रदाय में विष्णु या नारायण की उपासना है। इस संप्रदाय में अनेक साधु महात्मा बराबर होते गये।' (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 75)। रामानुजाचार्य की शिष्य परम्परा में रामानंद हुए। वे काशी के राघवानंद जी के शिष्य थे। वास्तव में रामभक्ति को प्रतिष्ठित करते का श्रेय उन्हीं को है। उन्होंने भक्ति को शास्त्रीय घेरे बंदी से मुक्त कर लोक ग्राह्य बनाया, भक्ति मार्ग को सभी के लिए खुला रखा। आचार्य शुक्ल लिखते हैं-"तत्वतः रामानुजाचार्य जी के मतावलंबी होने पर भी अपनी उपासना पद्धति का उन्होंने विशेष रूप रखा। उन्होंने उपासना के लिए बैकुंठ निवासी विष्णु का स्वरूप न लेकर लोक में लीला विस्तार करने वाले उनके अवतार राम का आश्रय लिया। इनके इष्टदेव राम हुए और मूल मंत्र हुआ राम नाम। सगुण ब्रह्म के आग्रही होते हुए भी रामानंद ने निर्गुण भक्ति को भी प्रोत्साहन दिया। रामानंद कृत दो ग्रंथ मिलते हैं- 'वैष्णवमताब्जभास्कर और श्री रामार्चन पद्धति। दोनों संस्कृत में हैं। प्रसिद्ध प्रार्थना 'आरती कीजै हनुमान लला की' उन्हीं द्वारा रचित है। रामानंद जी की ही शिष्य परम्परा में तुलसीदास आते हैं। तुलसी के अतिरिक्त रामभक्ति काव्य पंरपरा में अग्रदास, ईश्वरदास, नाभादास केशवदास भी हुए, किन्तु किसी को तुलसी जैसी ख्याति नहीं मिली। रामभक्ति धारा में दास्य-भाव की भक्ति प्रधान है, किन्तु कालांतर में अग्रदास के सखी सम्प्रदाय रामचरणदास द्वारा प्रवर्तित स्वसुखी शाखा और जीवाराम प्रवर्तित तत्सुखी शाखा द्वारा रामभक्ति में रसिक भावना का समावेश होता हैं। इन शाखाओं की कोई उल्लेखनीय काव्यात्मक उपलब्धि नहीं है।

रामभक्ति शाखा के प्रमुख रचनाकार और उनकी रचनाएँ हैं-

रचनाकार	**रचना**
1. विष्णुदास	महाभारत कथा, रूक्मिणी मंगल, स्वर्गारोहण, स्नेहलीला
2. रामानंद	वैष्णव मताब्ज भाष्कर, श्री रामार्चन पद्धति, रामरक्षास्रोत।
3. अग्रदास	ध्यान मंजरी, अष्टयाम, रामभजनमंजरी, उपासना-बावनी, पदावली।
4. ईश्वरदास	भरत मिलाप, अंगदपैज
5. तुलसीदास	दोहावली, कवित्त रामायण, गीतावली, रामचरितामानस, रामाज्ञा प्रश्नावली, विनय पत्रिका, रामलला नहछू, पार्वती मंगल, जानकी मंगल, बरवै रामायण, वैराग्य संदीपनी, कृष्ण गीतावली
6. नाभादास	भक्तमाल, अष्टयाम

7. केशवदास	रामचंद्रिका
8. प्राणचंद चौहान	रामायण महानाटक
9. माधवदास चारण	राम रासो, अध्यात्म रामायण
10. हृदयराम	हनुमन्नाटक
11. नरहरि बारहट	पौरुषेय रामायण
12. लालदास	अवध विलास

6.5.4 कृष्ण भक्ति काव्य-

ईश्वरीय रूप में श्रीकृष्ण का प्रादुर्भाव कब हुआ, इस संदर्भ में निश्चित तौर पर कुछ नहीं कहा जा सकता। पुराण काल में श्रीकृष्ण एक प्रमुख ईश्वर अवतार के रूप में प्रतिष्ठित होते हैं। भागवत पुराण में कृष्ण की बाल और कैशोर वय की लीलाओं का विस्तृत वर्णन हुआ है। गोपियों के साथ उनके प्रणय-प्रसंग का वर्णन मनोहारी है। ध्यान देने योग्य है कि भागवत में कहीं भी राधा का उल्लेख नहीं मिलता। कृष्ण की प्रेयसी के रूप राधा 12वीं सदी के संस्कृत कवि जयदेव के 'गीत गोविंद' में आती है। जयदेव के पश्चात् बंग्लाकवि चंडीदास और मैथिल कवि विद्यापति के यहाँ राधा-कृष्ण की प्रेम-लीला का विशद वर्णन मिलता है। विद्यापति के यहाँ राधा-कृष्ण का प्रेम तो अत्यंत मांसल हो उठा है। बहरहाल भागवत में वर्णित लीलाएँ ही कृष्ण भक्ति काव्य का आधार रही हैं। दक्षिण के आलवार भक्तों ने भी कृष्णोपासना का प्रसार किया, उनकी भक्ति में माधुर्य भाव की प्रधानता है। कृष्ण भक्ति को शास्त्रीय आधार देकर प्रचारित-प्रसारित करने वालों में दो वैष्णव आचार्यों निम्बाकाचार्य (12-13 वीं सदी) और वल्लभाचार्य (15-16 वीं सदी) का महत्वपूर्ण योगदान हैं।

वल्लभ ने देश भर घूम-घूमकर और विद्वानों से शास्त्रार्थ कर कृष्ण भक्ति का प्रचार किया। अंत में ब्रज में उन्होंने अपनी गद्दी स्थापित की। उन्होंने श्री कृष्ण के लीलागान का उपदेश दिया। वल्लभ के पुत्र विट्ठलनाथ ने 'अष्टछाप' की स्थापना की। इसमें चार वल्लभाचार्य के शिष्य- कुंभनदास, सूरदास, परमानंददास, कृष्णदास और चार विट्ठलनाथ जी के शिष्य - कुंभनदास, सूरदास, परमानंददास और कृष्ण दास- सम्मिलित हैं। अष्टछाप के कवि पुष्टिमार्गी भक्त है, जिन्होंने कृष्ण की लीलाओं को विषय वस्तु बनाकर काव्य प्रणयन किया। इनमें सूरदास, सर्वाधिक महत्वपूर्ण है, उन्हें 'पुष्टिमार्ग का जहाज' कहा जाता है। 'सूरसागर' में कृष्ण की बाल और कैशोर वय की लीला के अंतर्गत उन्होंने वात्सल्य और श्रृंगार का जितना सूक्ष्म, स्वाभाविक और मार्मिक अंकन किया है वह समूचे हिन्दी साहित्य में अद्वितीय है। राग और रस के जिस आनंदोत्सव को सूर ने सूरसागर में दिखलाया है वह सहृदय को हमेशा आहलादित करता रहा है। उनकी कविता में समूचा ब्रज अपने पूरे व्यक्तित्व के साथ सजीव हो उठा है।

राधा वल्लभ संप्रदाय, हरिदासी संप्रदाय (सखी संप्रदाय), गौड़ीय संप्रदाय का भी कृष्ण भक्ति काव्य में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। राधा वल्लभ संप्रदाय में श्री कृष्ण से भी ज्यादा राधा को महत्व दिया गया है। राधावल्लभ संप्रदाय की मान्यताओं को स्पष्ट करते हुए विजेन्द्र स्नातक

लिखते हैं- 'राधावल्लभ संप्रदाय में श्रीकृष्ण का प्रमुख स्थान नहीं है, राधा ही प्रमुख है। श्रीकृष्ण आनुवांशिक रूप से वर्णित हैं, किन्तु इस वर्णन में कृष्ण के भीतर सभी शक्तियों का समाहार अवश्य लक्षित होता है। वृंदावन विहारी कृष्ण ही रसिक किशोर रूप में एकमात्र नित्यबिहारी पुरुष हैं। उनकी पराप्रकृति श्री राधा हैं, जो चित्-अचित् विशिष्ट अह्लादिनी निजशक्ति रूपा हैं। सारा चराचर जगत् इन्हीं रसिक युगलकिशोर का प्रतिबिम्ब हैं। भगवान कृष्ण पूर्ण पुरुषोत्तम परात्पर ब्रह्म के भी आदि कारण और ईश्वरों के भी ईश्वर है। श्रीकृष्ण का वृंदावनविहारी, मधुरावासी और द्वारकावासी के रूप में वर्णन मिलता है। ऐश्वर्य, ज्ञान, शक्ति और पराक्रम को अंतर्लीन कर, प्रेम और माधुर्य की साक्षात् मूर्ति बनकर वे गोप-गोपियों के साथ लीलारत रहते हैं। वे राधापति होकर रस राज श्रृंगार के सौन्दर्यमंडित रूप का विस्तार करने वाले हैं। इस सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण का उपास्य नाम 'राधावल्लभ' है। (हिन्दी साहित्य का इतिहास- सं. डा. नगेन्द्र, पृ0 186) हितहरिवंश, दामोदरदास (सेवकजी), हरिराम व्यास चतुर्भुजदास, ध्रुवदास, नेही नागरीदास आदि इस संप्रदाय के प्रमुख काव्य भक्त कवि हैं। स्वामी हरिदास द्वारा प्रवर्तित सखी संप्रदाय में निकुंज बिहारी श्री कृष्ण को सर्वोपरि महत्ता दी गई है। चित्त को श्रृंगार रस से सराबोर कर श्रीकृष्ण की लीलाओं का दर्शन ही सखी (भक्त) को अभीष्ट है। इस संप्रदाय के प्रमुख कवि हरिदास, जगन्नाथ गोस्वामी, बीठल विपुल, बिहारिनदास आदि हैं। गौड़ीय संप्रदायय का प्रवर्तन चैतन्य महाप्रभु ने किया। उन्होंने गोलोक की लीलाओं, सहित ब्रज में बिहार करने वाले ब्रजेन्द्र कुमार श्री कृष्ण को उपास्य माना है। उनकी भक्ति माधुर्य भाव या कांता भाव की है। रामराय, गदाधर भट्ट, चंद्रगोपाल, भगवत मुदित, माधवदास 'माधुरी' आदि इस संप्रदाय के प्रमुख कवि है। इनके अतिरिक्त कई संप्रदाय निरपेक्ष कवि भी हुए जिनमें रसखान और मीरा का विशेष स्थान है।

कृष्ण भक्ति काव्य में मुख्यतया श्री कृष्ण कृष्ण की लीलाओं का ही चित्रण है। यथा- श्रीकृष्ण जन्म, पूतनावध, दधि-माखनचोरी, बाल कृष्ण की विविध चेष्टाएँ, गोदोहन, गोचारण, कालिया दमन, गोवर्धन-धारण, दान लीला, मान लीला, चीर हरण लीला, रास लीला, श्री कृष्ण मथुरा गमन, कंस वध, कुब्जा प्रसंग, भ्रमर गीत प्रसंग इत्यादि। श्री कृष्ण के लोक रक्षक रूप की अपेक्षा उनके लोक रंजक रूप को प्रमुखता दी गयी हैं। वात्सल्य और श्रृंगार इन कवियों के प्रधान क्षेत्र हैं। कृष्ण भक्ति काव्य में भ्रमरगीत प्रसंग काअपना एक अलग महत्व है। भ्रमरगीत गोपियों की निष्ठा और व्यथा के मार्मिक दस्तावेज के रूप में आता है, जहाँ उनकी वचनविदग्धता, वाक चातुरी भी प्रकट होती है। कृष्ण भक्ति काव्य के संदर्भ में, आचार्य शुक्ल कहते हैं- सब संप्रदायों के कृष्ण भक्त भागवत में वर्णित कृष्ण की ब्रजलीला को ही लेकर चले क्योंकि उन्होंने अपनी प्रेमलक्षणा भक्ति के लिए कृष्ण का मधुर रूप ही अपनाया। पर्याप्त महत्त्व की भावना से उत्पन्न श्रद्धा या पूज्य बुद्धि का अवयव छोड़ देने के कारण कृष्ण के लोकरक्षक और धर्मसंस्थापक स्वरूप को सामने रखने की आवश्यकता उन्होंने न समझी। भगवान के मर्मस्वरूप को इस प्रकार किनारे रख देने से उसकी ओर आकर्षित होने और आकर्षित करने की प्रवृत्ति का विकास कृष्ण भक्तों में न हो पाया। फल यह हुआ कि कृष्ण भक्त कवि अधिकतर फुटकर श्रृंगारी पदों की रचना में ही लगे रहे। उनकी रचनाओं में न तो जीवन के अनेक गंभीर

पक्षों के मार्मिक रूप स्फुरित हुए, न अनेकरूपता आयी। ..... राधाकृष्ण की प्रेम लीला ही सब ने गायी।' (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ0 104) कृष्ण भक्ति काव्य का माधुर्य भाव कालांतर में अतिशय श्रृगारिकता में तब्दील हो जाता है, और रीतिकाल का जन्म होता है। कृष्ण भक्तिकाव्य प्रायः मुक्तकों के रूप में मिलता है, प्रबंध काव्य कम लिखे गए। भाषा प्रायः ब्रज रही है।

कृष्ण भक्ति काव्य के प्रमुख कवि और उनकी रचनाएँ इस प्रकार हैं-

रचना	**रचनाकार**
सूरदास	सूर सागर, साहित्य लहरी, सूर सूरावली
नंददास	अनेकार्थ मंजरी, मान मंजरी, रस मंजरी, रूप मंजरी, विरह मंजरी, प्रेम बाहरखड़ी, श्याम सगाई, सुदामा चरित, रूक्मिणी मंगल, भंवरगीत, रामपंचाध्यायी, सिद्धांत पंचाध्यायी, गोवर्धनलीला, दशमस्कंधभाषा, नंददास पदावली
हितहरिवंश	हित चौरासी, स्फुटवाणी, संस्कृत में-राधा सुधनिधि, यमुनाष्टक
चतुर्भुज दास	भक्ति प्रताप, द्वादशयज्ञ, हित जू को मंगल
हरिदास	सिद्धांत के पद, केलिमाल
मीरा	गीत गोविंद की टीका नरसी जी का मायरा, राग सोरठ कापद, मलार राग, राग गोविंद, सत्यभामानु रूसणं, मीरा की गरबी, रूक्मणी मंगल, नरसी मेहता की हुण्डी, चरीत, स्फुट पद
रसखान	सुजान रसखान, प्रेमवाटिका, दानलीला, अष्टयाम

6.6 भक्तिकाव्य का महत्व

भक्ति काव्य हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग है। यह सिर्फ आध्यात्मिक परितोष ही नहीं प्रदान करता, सन्मार्ग पर चलने की, एक उदार-मानवीय समाज निर्मित करने की प्रेरणा भी प्रदान करता है। भक्त कवियों ने भक्ति को सहज-सरल बनाकर उसे शास्त्र-पुरोहित-कर्मकाण्ड-बाह्याचार की जकड़बंदी से मुक्त किया, इससे सामान्य मनुष्य भी भक्ति का अधिकारी बन सका। भक्ति काव्य वर्गगत-वर्णगत-संप्रदायगत भेदभाव के ऊपर मानुष सत्य को महत्व देता है। जिस सत्य-शील-सदाचार युक्त जीवन पद्धति की इन कवियों ने वकालत की है वह मनुष्य के जीवन को नैतिक बनाता है। इस काव्य, विशेषकर संत कवियों ने जिस तरह जातिगत भेद भाव को अर्थहीन साबित करते हुए मानव मात्र की एकता-समता का प्रतिपादन किया हैं उससे सदियों से वंचित-उपेक्षित वर्ग को एक नया बल मिलता है। सूफी कवियों ने हिन्दू-मुस्लिम की भावात्मक एकता

को प्रोत्साहित किया। रामकाव्य से समाज को जीवन-मानवीय सम्बन्धों का आदर्श मिलता है। तुलसी ने विविध प्रवृत्तियों में समन्वय की जो चेष्टा की है, वह अंततः लोक मंगलकारी सिद्ध होता है। कृष्णभक्ति काव्य से समाज में राग-रस का संचार होता हैं। भक्तिकाव्य ने कला, संगीत को गहरे स्तर पर प्रभावित किया। कृष्ण भक्ति काव्य ने संगीत, विविध राग-रागनियों के विकास में बड़ा भारी योग दिया। भक्त कवियों ने संस्कृत, फारसी को न अपनाकर लोकभाषा को अपनाया, इससे लोक भाषाओं का साहित्यिक विकास होता है। साहित्यिक भाषा के रूप में अवधी और व्रज भक्तिकाव्य की ही देन है। उच्चादर्शों से परिचालित होने के कारण ही भक्ति काव्य इतना प्रेरक और प्रभावी सिद्ध हुआ। भक्तिकाव्य के महत्व को रेखांकित करते हुए प्रेमशंकर लिखते हैं- 'भक्तिकाव्य की लंबी यात्रा का कारण देवत्व नहीं है, इसके विपरीत उसकी मानवीय चिंता है, जो उसे आज भी किसी बिंदु पर प्रासंगिकता देती है, उसे और उसे खारिज कर पाना उनके लिए भी कठिन , जो स्वयं को भक्तिमार्गी कहने से बचना चाहते हैं। भक्तिकाव्य का समाजशास्त्र है, समय-समाज से उसकी टकराहट जो कभी कबीर की तरह जुझारू दिखाई देती है, और अन्यत्र संयत, पर असंतोष सबमें है। समाजदर्शन है- नए विकल्प की खोज, नए मूल्य-संसार की तलाश। रामकृष्ण तो माध्यम हैं, वास्तविक लक्ष्य है, रचना स्तर पर उच्चतर भावलोक की प्राप्ति। समाजशास्त्र और समाज दर्शन के लिए भक्तिकाव्य ने जिस अभिव्यक्ति कौशल का आश्रय लिया, वह स्वतंत्र चर्चा का विषय है। पर रचना की प्रमाणिकता के लए इन सजग कवियों ने पूरा मुहावरा लोकजीवन से ही प्राप्त किया- भाषा, छंद आदि। भक्तिकवियों में मध्यकालीन लोकजीवन की उपस्थिति और एक वैकल्पिक मूल्य-संसार की तलाश उसकी सामर्थ्य का प्रमाण है। भक्तिकाव्य में समाजदर्शन मिलकर अपने रचना-संसार को ऐसी दीप्ति देते हैं कि उसे कालजयी काव्य कहा जाता है। उसका वैशिष्ट्य यह है कि वह अपने समय से संघर्ष करता हुआ?, उसे पार करने की क्षमता का प्रमाण देता है और लोक को सीधे ही संबोधित करता है, पूरे आत्मविश्वास के साथ। उसका वैकल्पिक भाव-विचार-लोक उसका 'काव्य-सत्य' है, जिसे व्यापक स्वीकृति मिली।' (भक्तिकाव्य का समाजदर्शन, पृ0 88)

अभ्यास प्रश्न

1. लघु उत्तरीय प्रश्न

1. अष्टछाप की स्थापना किसने की?
2. रासपंचाध्यायी के रचयिता हैं?
3. कबीर की वाणियों का संग्रह हैं?
4. तुलसी द्वारा रचित कितने ग्रंथ माने जाते हैं?
5. तुलसी की भक्ति किस प्रकार की है?
6. 'मृगावती' के रचनाकार है?
7. रत्नसेन किस प्रेमाख्यानक काव्य का नाटक है?
8. 'भक्त माल' के रचयिता है?

6.7 सारांश

भक्तिकाव्य दो धाराओं में विभक्त है- निर्गुण भक्त काव्य और सगुण भक्ति काव्य। इनका भी क्रमशः संतकाव्य, प्रेममार्गी सूफी काव्य और रामभक्ति काव्य, कृष्णभक्ति काव्य में विभाजन हुआ है। भक्ति काव्य की विविध धाराओं की विभिन्नता के बावजूद, ऐसी कुछ समान विशेषताएँ हैं जो समूचे भक्ति काव्य में दिखलाई पड़ती हैं यथा-भक्ति, गुरुमहिमा, नाम स्मरण का महत्व, सत्य-शील-सदाचार पर बल, लोकधर्मिता इत्यादि। निर्गुण सगुण भक्ति में मुख्य भेद उपास्य के स्वरुप भक्ति, के आधार को लेकर है। निर्गुण भक्ति में ब्रह्म को निराकार, अजन्मा, अशरीरी, इंद्रियातीत माना गया है जबकि सगुण भक्ति में ब्रह्म सविशेष, साकार इंद्रिय गम्य है। अवतारवाद में निर्गुण संतों की कोई आस्था नहीं है, जबकि सगुण भक्त ईश्वर के अवतारों में विश्वास करते हैं। भक्तिकाव्य का उदय एवं विकास भक्ति आंदोलन के दौरान होता है। सिद्ध, नाथ, दक्षिण के आलवार, महाराष्ट्र के नामदेव, वैष्णव आचार्यों, सूफियों इन सभी की प्रेरणा प्रभाव स्वरुप संतकाव्य, प्रेममार्गी सूफी काव्य, रामभक्ति, कृष्ण भक्तिकाव्य का विकास होता है। भक्ति काव्य की इन चारों शाखाओं के क्रमशः प्रतिनिधि रचनाकार कबीर जायसी, तुलसीदास और सूरदास है। भक्तिकाव्य की मूल संवेदना भक्ति है, वह समाज की आध्यात्मिकक तृषा को तृप्ति प्रदान करता है, उसकी प्रवृत्तियों का परिष्कार कर उसे ईश्वरोन्मुख होने की प्रेरणा देता है। भक्ति काव्य का सबसे बड़ा महत्व उसकी मानवीयता और लोकधर्मिता के कारण है।

6.8 शब्दावली

उलटबाँसी-लोक व्यवहार से उल्टी बात। उलटबाँसी के अंतर्गत ऐसी बातों का कथन होता है, जो व्यावहारिक जीवन में दिखाई पड़ने वाली बातों के विपरीत होती है। इसमें घुमा-फिराकर, प्रतीकों का सहारा लेकर अभीष्ट अर्थ को प्रकट किया जाता है। इससे कथन में चमत्कार आ जाता है। उलटबाँसी शैली सिद्धों नाथों की विशेषता थी। संत कवियों विशेषकर कबीरदास ने इस शैली को अपनाया है।

अंतस्साधना-अंतस्साधना का अर्थ है, वह साधना जो भीतर ही भीतर की जाती है, जिसमें बाह्य पूजा-विधान, कर्मकाण्ड इत्यादि की कोई आवश्यकता नहीं होती है। अंतस्साधना के दो रूप हैं-एक के अंतर्गत यौगिक क्रियाएँ-कुण्डलिनी-जागरण, चक्र-भेदन, शून्य समाधि इत्यादि आती हैं। दूसरे के अंतर्गत पूरी तन्मयता के साथ प्रभु का चिंतन-मनन, नामस्मरण आता है। संत कवियों ने बाह्यसाधना का विरोध किया है और अंतस्साधना को महत्व दिया है।

रहस्यवाद-अव्यक्त, निराकार, ब्रह्म की जिज्ञासा, आत्मा-परमात्मा के एकात्म की अनुभूति रहस्यवाद है। इसके अंतर्गत अनुभवातीत ब्रह्म को अनुभव के दायरे में लाया जाता है, साधना

की विविध स्थितियों का निरूपण आता है। शुक्ल जी रहस्यवाद के दो भेद मानते हैं- साधनात्मक रहस्यवाद और भावात्मक रहस्यवाद।

सधुक्कड़ी भाषा- संतों की भाषा को सधुक्कड़ी कहा गया है। दरअसल सधुक्कड़ी भाषा विभिन्न भाषाओं-बोलियों-भोजपुरी, अवधी, राजस्थानी, खड़ी बोली, पंजाबी, अरबी-फारसी का एक मिश्रित रूप है। संतों की धूमंतू प्रवृत्ति के कारण उनकी भाषा में विविध क्षेत्रों, बोलियों के शब्द मिलते हैं।

पुष्टि-पुष्टि का अर्थ है पोषण, अनुग्रह। बल्लभाचार्य ने भगवत्नुग्रह अर्थात् पुष्टि की प्राप्ति को भक्त का लक्ष्य माना है। इसे प्रेमालक्षण भक्ति द्वारा प्राप्त किया जाता है। 'पुष्टि' पर बल देने के कारण ही बल्लभ के भक्ति मार्ग को पुष्टिमार्ग कहा गया है।

अष्टछाप-पुष्टिमार्ग भक्त कवियों को अष्टछाप के कवि कहा जाता है। अष्टछाप की स्थापना वल्लभाचार्य के पुत्र विट्ठलनाथ ने की। इसमें चार वल्लभाचार्य के शिष्य और चार विट्ठलनाथ जी के शिष्य हैं। ये आठ कवि हैं- कुंभनदास, सूरदास, परमानंददास, कृष्णदास, गोविंदस्वामी, नंददास, छीतस्वामी और चतुर्भुजदास। कृष्ण की लीलाओं का गान श्रीनाथ जी के अष्टयाम की सेवा इनका कार्य था। ये आठ कवि 'अष्टसखा' भी कहलाते हैं।

6.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. लघु उत्तरीय प्रश्न

1. विट्ठलनाथ
2. नंददास
3. बीजक
4. 12
5. दास्य भाव की
6. कुतुबन
7. पद्मावत
8. नाभादास

6.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

6. द्विवेदी, हजारी प्रसाद - सूर साहित्य, राजकमल प्रकाशन।
7. द्विवेदी, हजारी प्रसाद - हिन्दी साहित्य उद्भव और विकास, राजकमल प्रकाशन।
8. द्विवेदी, हजारी प्रसाद - हिन्दी साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन।
9. शुक्ल, रामचंद्र - हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा।
10. मिश्र, शिव कुमार- भक्ति आंदोलन और भक्ति काव्य, अभिव्यक्ति प्रकाशन।

11. मुक्तिबोध, गजानन माधव- नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबंध, राजकमल प्रकाशन।

6.11 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. हिन्दी साहित्य औरसंवेदना का विकास - रामस्वरूप चतुर्वेदी
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास - सं. नगेन्द्र
3. हिन्दी साहित्य कोश- भाग-1 - सं. धीरेन्द्र वर्मा
4. भक्ति काव्य का समाज दर्शन - प्रेमशंकर
5. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास - बच्चन सिंह

6.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. निर्गुण सगुण भक्ति के साम्य-वैषम्य पर प्रकाश डालिए तथा भक्ति काव्य के महत्व का उद्घाटन कीजिए ?
2. भक्ति काव्य की विविध शाखाओं का परिचय दीजिए तथा भक्तिकाव्य की सामान्य विशेषताएँ बताईए ?

इकाई 7 भक्तिकालीन कविता: विविध शाखाएँ

इकाई की रूपरेखा

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 संतकाव्य
  7.3.1 प्रमुख प्रवृत्तियाँ
  7.3.2 प्रमुख कवि
  7.3.3 उपलब्धियाँ
7.4 प्रेममार्गी सूफी काव्य
  7.4.1 प्रमुख प्रवृत्तियाँ
  7.4.2 प्रमुख कवि
  7.4.3 उपलब्धियाँ
7.5 रामभक्ति काव्य
  7.5.1 प्रमुख प्रवृत्तियाँ
  7.5.2 प्रमुख कवि
  7.5.3 उपलब्धियाँ
7.6 कृष्ण भक्ति काव्य
  7.6.1 प्रमुख प्रवृत्तियाँ
  7.6.2 प्रमुख कवि
  7.6.3 उपलब्धियाँ
7.7 सारांश
7.8 पारिभाषिक शब्दावली
7.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
7.10 संदर्भ ग्रंथ सूची
7.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
7.12 निबंधात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

यह इकाई भक्तिकालीन कविता की विविध शाखाओं-संत काव्य, प्रेममार्गी सूफी काव्य, राम भक्ति काव्य, कृष्ण भक्ति काव्य पर आधारित है। उपास्य के स्वरुप, ईश्वर की संकल्पना के आधार पर भक्ति काव्य को दो वर्गों -निर्गुण भक्ति काव्य और सगुण भक्ति काव्य में बाँटा जाता है। फिर इनका भी वर्गीकरण उपरोक्त चार शाखाओं में किया गया है। इसके पूर्व की इकाईयों में हम लोगों ने 'भक्तिकालीन कविता का उदय' और 'भक्तिकालीन कविता: प्रक्रिया और विकास' की चर्चा की। इन दोनों इकाईयों को पढ़ने के पश्चात् आप भक्तिकालीन कविता के बारे में काफी कुछ जान गये होंगे। अब तक हम लोगों ने भक्तिकालीन कविता के आधार, भक्ति कालीन कविता के विकास की चर्चा की है, अब हम भक्तिकालीन कविता की विविध शाखाओं की चर्चा करेंगे। इन शाखाओं की प्रवृत्तियों, विशद प्रमुख कवि, महत्व का क्रमवार विवेचन किया जाएगा।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप -

- संत काव्य, प्रेममार्गी सूफी काव्य, रामभक्ति काव्य, कृष्ण भक्तिकाव्य से अवगत हो सकेंगे।
- भक्तिकालीन कविता की विभिन्न शाखाओं की प्रमुख प्रवृत्तियाँ क्या रही है, इस प्रश्न का उत्तर पा सकेंगे।
- विभिन्न शाखाओं के प्रमुख कवियों जैसे कबीर, जायसी, सूरदास, तुलसीदास, मीरा, रसखान से परिचित हो सकेंगे।
- विभिन्न भक्तिकालीन शाखाओं के महत्व को समझ सकेंगे।

7.3 संत काव्य

निर्गुण पंथ की ज्ञानाश्रयी शाखा को संत काव्य कहा गया। संताकाव्य उन संतों द्वारा रचा गया जिन्होंने निर्गुण ब्रह्म के प्रति भक्ति भाव रखते हुए बहुदेववाद, अवतारवाद, शास्त्र एवं पुरोहित, मिथ्याडम्बरों का विरोध किया और जातिगत, संप्रदायगत भेदभाव को नकारते हुए सभी मनुष्यों को समान, एक ही ईश्वर का अंश बतलाया। ये संत सीधा-सादा जीवन जीते थे, संसार, घर-गृहस्थी में रहकर भी सांसारिकता से अलिप्त थे। प्रायः ये संत समाज के निचले तबके से थे, उस तबके से जो वर्णाश्रमव्यवस्था में नीच, अछूत घोषित था। वास्तव में संत मत ब्राह्मण धर्म, व्यवस्था के सामानांतर चलने वाली बौद्धों, सिद्धों-नाथों की लोक परम्परा की अगली कड़ी है। इस धारा का प्रादुर्भाव अपने पूर्व की परम्परा से बहुत कुछ ग्रहण कर होता है। एक तरफ संतों पर यदि उपनिषदों के तत्व-चिंतन, वैष्णव धर्म के अहिंसावाद व प्रपत्तिवाद, शंकर के मायावाद,

रामानंद का प्रभाव है तो दूसरी तरफ इन संतों ने बौद्धों के दुखवाद, सिद्धों-नाथों की रहस्यवादिता, शून्य समाधि, योग गुरु महिमा, शास्त्र-पुरोहित-बाह्यायाडम्बर, जाति-पाँति का विरोध, इस्लाम के एकेश्वरवाद, सूफियों के प्रेम-दर्शन को भी ग्रहण किया है। इन सबके योग से ही संतमत का निर्माण होता है। संतमत के प्रवर्तक कबीर है, वैसे मराठी कवि नामदेव की रचनाओं में भी निर्गुण भक्ति के तत्व है। किंतु संतकाव्य की प्रवृत्तियों की अत्यंत सशक्त उपस्थिति पहली बार हमें कबीर के यहाँ ही दिखलाई पड़ती है। संत काव्य के वह प्रवर्तक ही नहीं, केन्द्रीय रचनाकार भी हैं। समूचा संत काव्य उन्हीं की मान्यताओं, वाणियों से आच्छादित है। कबीर की परम्परा को आगे रैदास, दादू दयाल, नानक, रज्जब, मलूकदास, जंभनाथ, सुंदरदास इत्यादि संत विकसित करते है। और देखते ही देखते इस संत धारा में कई संप्रदाय उठ खड़े होते है जैसे-कबीर पंथ, लाल पंथ, दादू पंथ, विश्नोई संप्रदाय, उदासी संप्रदाय, नानक पंथ, बाबालाली संप्रदाय, बावरी पंथ, निरंजनी संप्रदाय सत्यनामी संप्रदाय इत्यादि। आइए अब संतकाव्य की प्रवृत्तियों को देखें।

7.3.1 प्रवृत्तियाँ –

(क) निर्गुण ब्रह्म में विश्वास:- संत कवियों ने ब्रह्म के निर्गुण अर्थात् निराकार, अजन्मा, अशरीरी, निर्विशेष, अव्यक्त, अगोचर रूप को स्वीकार किया है। इस निर्गुण ईश्वर को उन्होंने राम, केशव, गोविंद, भगवान, निरंजन, माधव, हरि आदि कहकर भजा है। वह परमतत्व, परमेश्वर अकथनीय, अनिर्वचनीय है। रैदास कहते है-

जैसो मैं आगे कहि आयो, फिर समझो वैसो नहिं पायो।
जो कछु कहियो नाहीं नाहीं, सो सब देखा बांके माहीं।
अकथ कथा कछु, कही न जाई, जो भाखौं, सो ही मुरखाई।'

वह निर्विकार, अविनाशी है, अतर्क्य है, रैदास कहते हैं-

निश्चल निराकार अतिअनुपम निरभै गति गोविंदा।
अगम अगोचर अक्षर, अतरक, निर्गुण अति आनंदा।
सदा अतीत ज्ञान विवर्जित, निर्विकार अविनाशी।।

उस अविगत ब्रह्म को लखा नहीं जा सकता, जो अनादि है, अनंत है उसे बतलाने में वाणी असमर्थ हैं इसीलिए कबीर ने कहा हैं- 'निर्गुण राम जपहु रे भाई, अविगत की गति लखी न जाई।' उसका वर्णन नहीं किया जा सकता, सिर्फ उसे अनुभव किया जा सकता है, कबीर कहते हैं-

पारब्रह्म के तेज का कैसा है उनमान।
कहिबे कूँ सोभा नहीं, देख्या ही परवान।।'

वही परम पुरुष है, जो समस्त सृष्टि में व्याप्त है, सर्वत्र उपस्थित है- 'पूरण ब्रह्म बसै सब ठाहीं।' उस ईश्वर का इस घट अर्थात् शरीर में भी निवास है, किन्तु मनुष्य अज्ञानतावश उसका

अनुभव, उसका साक्षात्कार नहीं कर पाता। जिस तरह कस्तूरी मृग के नाभि में रहती हैं, किन्तु उसकी तलाश में मृग जंगल-जंगल भटकता है, उसी तरह मनुष्य भी ईश्वर की खोज में भटकता है, -कस्तूरी कुंडल बसै, मृग ढँढ़ै मन माहिं।'

(ख) अवतारवाद एवं बहुदेववाद का खण्डन- संत कवि ब्रह्म को अशरीरी, अजन्मा मानते है, उनकी दृष्टि में परम तत्व एक है। ईश्वर समस्त चराचर जगत में व्याप्त है, उसकी अनेक सत्ता नहीं है, वह एक ही हैं। इन मान्यता के कारण के संत कवि न तो अवतारवाद में विश्वास करते है और न ही बहुदेववाद में। कबीर के अनुसार निर्गण राम ही राम नाम का मर्म है-'दशरथ सूत तीहि लोक बखाना, राम नाम का मरम है आना।' रैदास भी कहते हैं जिस दशरथ सुत राम के फेर में संसार पड़ा हुआ है, वह तो राम है ही नहीं-'राम कहत सब जगत भुलाना सो यह राम न होई।' संतों ने ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि कई देवताओं के अस्तित्व को नहीं माना। उनकी दृष्टि में परमपुरुष एक ही है। कबीर कहते हैं-

'अक्षय पुरुष एक पेड़ है, निरंजन बाकी डार।
त्रिदेवा शाखा भये पात भया संसार।।

दरअसल संतों ने अनुभव किया कि बहुदेववाद एवं अवतारवाद के कारण धर्म क्षेत्र में कई तरह के अंधविश्वास, मिथ्याडम्बर प्रचलित हो गए है नए-नए संप्रदाय बन गये हैं, और उनमें परस्पर कटुता-प्रतिद्वन्द्विता व्याप्त रहती है। इस तरह वे अवतारवाद एवं बहुदेववाद को कई प्रकार की विकृतियों की जड़ मानते है इसीलिए वह एक ईश्वर की बात करते हैं। जब ईश्वर एक होगा तब न संप्रदाय गत परस्पर श्रेष्ठता का भाव होगा और न ही आपसी वैमनस्यता। अवतारवाद एवं बहुदेववाद का खण्डन एवं एक ईश्वर की संकल्पना निस्संदेह संतों पर इस्लाम के प्रभाव के कारण है। इसे उपनिषेदों के दर्शन से भी जोड़कर देखा जा सकता है।

(ग) मानसिक भक्ति- संतों की उपासना पद्धति पूर्णतया मानसिक, अभ्यांतरिक है। जिसे अंतस्साधना भी कहते है। इस साधना पद्धति में स्थूल एवं बाह्य साधनों का कोई महत्व नहीं है। इस साधना पद्धति में न तो शास्त्रज्ञान की बोझिलता है, न योग की दुरुहता, न कर्मकाण्डों-बाह्याचारों का तामझाम। इसमें तो केवल भाव अपेक्षित है। प्रभु के प्रति सच्ची श्रद्धा, उत्कट राग और मन-वचन कर्म की निष्कलुषता होनी चाहिए। यह 'भाव भगति' है जिसे निरक्षर एवं साधनहीन भी साध सकता हैं, यदि उसके अंदर प्रभु के प्रति भाव है। सरल होते हुए भी यह अत्यंत कठिन साधना है, क्योंकि संसार में लिप्त चित्त को ईश्वरोन्मुख करना सहज नहीं है।

(घ) नाम स्मरण का महत्व- संत कवियों ने 'नाम स्मरण' को सवाधिक महत्व दिया है। 'सच्चा सुमिरन' ही भवबंधन को काटने वाला है, ब्रह्म का साक्षात्कार कराने वाला है। विषय-वासनाओं से चित्त को विमुख कर पूरी एकाग्रता एवं तन्मयता के साथ प्रभु के नाम का जप उसका स्मरण ही 'सुमिरण' है। सच्चा सुमिरण कैसा है, इसे बतलाते हुए कबीर कहते हैं-

सहजो सुमिरन कीजियै, हिरदै माहिं छिपाई।
होठ होठ सूं ना हिले सकै नहिं कोई पाई।।

नाम स्मरण से ही भला होगा, किसी और माध्यम से नहीं-'**कबीर कहता जात है सुनता है सब कोय/राम कहे भला होयगा, नहिं तर भला न होय।'** दादू भी हृदय में 'नाम' को संजोकर रखने को कहते है, क्योंकि वह समस्त सांसारिक सुखों से भी अनमोल है, वह कहते हैं-

दादू नीका नांव है सो तू हिरदै राखि।
पाखण्ड परपंच दूर करि सुनि साधु जन की साखि।'

कालिकाल में मुक्ति मात्र नाम स्मरण से मिल जायेगी, रैदास कहते हैं-

सुत जुग, सत, भेता जगी, द्वापर पूजा चार।
तीनों जुग तीनों हढ़े, कलि केवल नाम-आधार।।'

'नाम स्मरण' भाव-भगति का ही रूप हैं। 'नाम स्मरण' पर सर्वाधिक जोर देकर संतों ने भक्ति क्षेत्र में जहाँ एक ओर शास्त्र और पुरोहित की भूमिका को अनावश्यक बना दिया, वहीं दूसरी ओर भक्ति का एक ऐसा सरल और लोकग्राह्य रूप प्रस्तुत कर दिया जो मिथ्याडम्बरो-बाह्याचारों से मुक्त थी। दरअसल 'नाम स्मरण' भक्ति का सरलतम रूप हैं।

(ङ) गुरु महिमा- संतों ने गुरु के प्रति अत्यंत श्रद्धा व्यक्त की है। सद्गुरु ही विषय-वासनाओं की निरर्थकता का बोध कराता है, वह ज्ञानदीप जलाता है जिससे भीतर-बाहर उजियारा हो जाता है, हृदय में प्रभु प्रेम रुपी बीज रोपता है। सद्गुरु बड़े सौभाग्य से मिलता है। उस व्यक्ति का जीवन सार्थक हो जाता है, जिसे सद्गुरू मिलता है। इसीलिए कबीरदास कहते-

गुरु गोविंद दोऊ खड़े काके लागूँ पाय।
बलिहारी गुरु अपने गोविंद दियो बताय।।

सदगुरू अपनी दीक्षा, अपने उपदेश से शिष्य को प्रभु प्रेम से सराबोर कर देता है, जिससे शिष्य रसमग्न हो जाता है, उसे ब्रह्मानंद की अनुभूति होने लगती है, वह आत्माराम हो जाता है। तभी तो कबीर कहते हैं-

सद्गुरु हमसे रीझकर कह्या एक प्रसंग।
बादल बरसा प्रेम का भीज गया सब अंग।।

संतों के यहाँ दिखलाई पड़ने वाली गुरु महिमा सिद्धों-नाथों का प्रभाव है। सिद्धों-नाथों के यहाँ भी गुरु के के प्रति अत्यंत श्रद्धा भाव प्रकट किया गया है।

(च) मिथ्याडम्बरों एवं रूढ़ियों का विरोध- संत कवियों ने व्रत, तप, तीर्थ, यज्ञ, रोजा, नमाज, मूर्तिपूजा, अंधविश्वास, आदि का विरोध किया है। वे जहाँ कहीं भी, छल, छद्म, झूठ-फरेव देखते हैं उसका विरोध करते है। उनकी दृष्टि में भक्ति के लिए बाह्याडम्बर नहीं भाव अनिवार्य है। उनके

विरोध के केन्द्र में शास्त्र एवं पुरोहित हैं, क्योंकि बार-बार शास्त्रों का हवाला देकर पुरोहित लोग समाज में मिथ्याडम्बर एवं अंधविश्वास फैलाते हैं, समाज में ऊँच-नीच का भेदभाव पैदा करते हैं। वे 'कागद लेखी' पर नहीं 'आँखिन देखी' पर विश्वास करते है। प्रेम को पोथी ज्ञान से श्रेयस्कर मानते हैं- कबीर कहते हैं-**'पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय/ढाई आखर प्रेम का पढ़ै सो पंडित होय।'**

भक्ति शास्त्र के ज्ञान और बाध्य विधि-विधान से नहीं प्रेम से ही संभव होती है। प्रेम से ही परमेश्वर को साधा जा सकता है। अतः साधना पथ में किसी भी प्रकार का आडम्बर व्यर्थ है, बकवास है। कबीर ने हिंदू-मुस्लिम, ज्ञानी-योगी, पंडित-मौलवी किसी को नहीं बख्शा है, बाह्याडम्बरों की भर्त्सना करते हुए वह कहते है-

'दुनिया कैसी बावरी, पाथर पूजन जाय।
घर की चकिया कोई न पूजे, जेहि का पीसा जाय।
कनवा फराय जोगी जटवा बढ़िलै
ढ़ाढ़ी बढ़ाय जोगी होय गैलें बकरा
जंगल जाय जोगी धुनिया रमालै
काम जराय जोगी बन गैले हिजरा।'

इसी तरह इस्लाम की रूढ़ियों पर प्रहार करते हुए कहते हैं'-

'कांकर पाथ जोरि के मस्जिद लई बनाय
ता चढ़ि मुल्ला बाग दे, बहिरा हुआ खुदाय।'

इसी तरह रैदास भी बांह्याचारों को भक्ति न मानते हुए कहते हैं-

'ऐसी भक्ति न होई रे भाई, राम नाम बिन जो कछू करिये, सो सब भरम कहाई।।
भक्ति न निद्रा साधै, भक्ति न बैराग बाँधे, भक्ति नहीं सब बेद बड़ाई।।
भक्ति न मुण्ड मुँड़ाई, भक्ति न माल दिखाई, भक्ति न चरन धुवांये, भक्ति न गुनी कहाये।।

(छ) जातिगत एवं साम्प्रदायिक भेदभाव-वैमनस्य का विरोध- संतकवि मनुष्य मात्र की एकता-समता के प्रचारक-प्रसारक हैं। उन्होंने मनुष्य को मनुष्य के रूप में देखा है ब्राह्मण-शूद्र या हिंदू-मुसलमान के रूप में नहीं। उनकी दृष्टि में मनुष्य जन्म से नहीं कर्म से अपने आचरण से श्रेष्ठ बनता है। कबीर कहते हैं 'जांति-पांति पूछै नहिं कोई, हरि को भजे सो हरि का होई।' परमतत्व परमेश्वर समस्त चराचर जगत में व्याप्त है, सभी मनुष्यों में उसी का अंश विद्यमान है। इसीलिए भेदभाव निरर्थक हैं। अपने-अपने ईश्वर को बड़ा बतलाने वाले हिंदू-मुसलमान दोनों को कबीर फटकारते हैं और राम-रहीम की एकता की बात करते हैं। ईश्वर एक ही है, भले उसके नाम भिन्न-भिन्न हो। अतः सांप्रदायिक भेदभाव को छोड़कर भाईचारे के साथ रहना चाहिए। जांति-पांति के विरोध की प्रेरणा संत कवि सिद्धों-नाथों से पाते हैं। सिद्धों-नाथों की तरह संतों में भी अधिकांश

समाज के निचले वर्ग से आये थे, जातीय भेदभाव के को उन्होंने झेला था। इसी कारण उनकी वाणियों में जाति व्यवस्था के नकार का इतना गहरा स्वर मिलता है।

(ज) सांसारिकता के प्रति उदासीनता- संत कवि सांसारिक विषय वासनाओं, सांसारिक सम्बन्धों को खोखला,, निस्सार मानते है। माया के बंधन में ही फँसकर मनुष्य उचित-अनुचित का भेद भूल जाता है, नश्वर जीवन और संसार को वास्तविक मान लेता है, फलतः उसे अपने वास्तविक स्वरुप का बोध नहीं हो पाता और वह भवबंधन में जकड़ता चला जाता है। इसीलिए संतों ने सांसारिक सुख-सुविधाओं, नेह-नातों से उदासीन रहने का उपदेश दिया है, इस काया और माया की नश्वरता और नि-स्सारता का बोध उनमें बराबर बना रहता है। रैदास कहते हैं-

जल की भीति पवन का थम्भा, रकत बूँद का गारा।
हाड़ मांस की नाड़ी को पिंजर, पंखी बसै बिचारा।।
प्रानी किआ' मेरा किआ तेरा, जैसे तरुवर पंखि बसेरा।
राखउ कंधउ सारउ नीवां, साढ़े तीन हाथ तेरी सीवां।
बंके बाल पाग सिर डेरी, इहु तन होइओ भसम की ढेरी
ऊँचे मंदर सुंदर नारी, राम नाम बिनु बाजी हारी।।

ध्यान देने वाली बात है कि संत कवि, सांसारिक से अनासक्त होने की बात करते है, किंतु घर-परिवार को त्यागकर जंगल जाकर धूनी रमाने की बात नहीं करते हैं। संसार में रहते हुए सांसारिक प्रपंचों से बचकर परमात्मा की भक्ति ही उन्हें काम्य है। चाहे कबीर हों या रैदास, सभी अपना-अपना व्यवसाय, काम-धाम करते हुए भक्ति करते हैं। उनकी भक्ति एवं जीवन में कर्मण्य जीवन का संदेश निहित है।

(झ) रहस्यवादी प्रवृत्ति- संतकाव्य में रहस्यात्मक प्रवृत्ति भी मिलती है। योग साधना के प्रभाव के कारण इड़ा-पिंगला, कुण्डलिनी जागरण, चक्रभेदन, सहस्रार चक्र, अनहद नाद, शून्य चक्र, गगन गुफा, उल्टी गंगा जैसी यौगिक शब्दावली संतों के यहाँ मिलती है। कहीं ब्रह्म के स्वरूप, उसकी महिमा का वर्णन है तो कहीं साधना की प्रक्रिया का। आत्मा-परमात्मा के सम्बन्ध का उद्घाटन करते हुए कबीर कहते हैं-

'जल में कुंभ कुंभ में जल भीतर बाहर पानी।
फूटा कुंभ जल जलहिं समाना, यह तत् कहो गयानी।।'

साधनात्मक रहस्यवाद को रैदास के यहाँ भी देखा जा सकता है, वह कहते हैं कि मैं अपनी साधना द्वारा गंगा को उलट कर जमुना में मिला दूँगा, और बिना जल के ही स्नान करूँगा-

उल्टी गंग जमुन में ल्याऊँ, बिन ही जल मज्जन कहा पाऊँ।
लोचन भरि भरि बिम्ब निहारुँ, ज्योति विचारि न और निहारुँ।'

सूफियों के प्रभाव स्वरुप संतों के यहाँ भावनात्मक रहस्यवाद भी दिखलाई पड़ता है, जब संत कवि दांपत्य रूपकों द्वारा आत्मा-परमात्मा के सम्बन्धों को प्रकट करते हैं, कबीर राम को पति और स्वयं को दुल्हिन मानते हुए कहते हैं-

दुलहिन गावउ मंगलचार, हम घर आये हो राजाराम भतार।
रामदेव मोहे व्याहन आये मैं जोबन मतमाती
रामदेव संग भांवर लेहूं, धनि धनि भाग हमार।
सुर तैंतीस कोटि आये, मुनिवर सहस उठासी।
कहैं कबीर हम ब्याह चलै हैं, पुरुष एक अविनाशी।।

प्रियतम परमात्मा के विछोह से व्याकुल होकर रैदास कहते हैं-

'कह रैदास स्वामी ते बिछुरै एक पलक जुग जाई।
भोर भयो मोहि इक टक जोवत तलफत रजनी जाई।।'

(ञ) नारी के प्रति दृष्टिकोण- संतों ने नारी को माया, 'महा ठगिनी' के रूप में देखा। नारी संसर्ग के कारण व्यक्ति का विवेक भ्रष्ट हो जाता है, वह परमात्मा से विमुख हो जाता है और नारी संसर्ग जन्य सुख को ही वास्तविक सुख मान लेता है। नारी माया है, मोह फाँस में बाँधकर वह साधक को साधनाच्युत कर देती है, उसे दिग्भ्रमित कर विषय-वासनाओं में उलझा देती है। इसीलिए संतों ने नारी से दूर रहने की बात कही है कबीर कहते हैं- **नारी की झाई परत अंधा होत भुजंग/कबिरा तिनकी कौन गति जे नित नारी के संग।** लेकिन नारी के पवित्रता रूप की वह सराहना करते हैं, उसके प्रति सम्मान का भाव रखते हैं-

'पतिव्रता मैली भली, काली कुचित कुरुप।
पतिव्रता के रुप पे वारों कोटि सरुप।।'

नारी के प्रति संतों के दृष्टिकोण को हम प्रगतिशील एवं उदार नहीं कह सकते हैं। संतों की तमाम प्रगतिशील भूमिकाओं के बावजूद यह उनकी एक खामी है। इस मामले में वह युगीन सीमाओं का अतिक्रमण नहीं कर पाते। दरअसल संत कवि जिस मध्यकालीन समय और समाज की उपज हैं वह समाज नारी को या तो भोग्या मानता है या पथभ्रष्टा। नारी को साधना पथ में बाधक, चरित्र को भ्रष्ट बनाने वाली नारी सम्बन्धी तत्कालीन समाज की जो सोच है, संत कवि उससे उबर नहीं पाते।

(ट) अभिव्यंजना पक्ष- संतों ने लोक भाषा का प्रयोग किया है, उनकी भाषा अनगढ़ और सरल हे। उसका कोई एक निश्चित रूप नहीं, उसमें अवधी, भोजपुरी, ब्रज, खड़ी बोली, राजस्थानी, अरबी, फारसी का मिश्रण है। विभिन्न बोलियों-भाषाओं के शब्दों का मिश्रण होने के कारण ही उनकी भाषा को 'सधुक्कड़ी भाषा' कहा गया है। सामान्यतः संत कवि निरक्षर थे, 'मसि कागद छुयो नहीं' वाली कबीर की बात सभी संतों पर लागू होती है। कविताई उनका उद्देश्य भी नहीं हैं, इसलिए उनके यहाँ कलात्मक सजगता, कलात्मक परिपूर्णता नहीं है। किंतु

भक्ति की तन्मयता, सीधी-सच्ची बात के कारण उनकी कविता असरदार बन पड़ी है। शैली की दृष्टि से कहीं उपदेशात्मक शैली है तो कहीं वर्णनात्मक शैली। तत्व चिंतन के समय गुरु-गंभीर शैली है तो सामाजिक कुरीतियों, बाह्याडम्बरों पर प्रहार करते, समय हास्य-व्यंग्यात्मक शैली है। भक्ति की विह्वलता के क्षणों में संतों की वाणी अत्यंत भावात्मक हो उठती है। अपने अभिप्राय को प्रकट करने के लिए जब-तब वे प्रतीकों का भी सहारा लेते है, बहुधा वे लोक जीवन से प्रतीकों को चुनते है। उलटवासियों में हमें अत्यंत प्रतीकात्मक एवं गूढ़ अर्थ व्यंजक भाषा दिखलाई पड़ती है। उनकी उलटवासियाँ कौतूहलजनक हैं। अलंकार भी संत काव्य में खूब मिलते हैं किन्तु ये पूर्वनियोजित नहीं होते, अलंकार अत्यंक स्वाभाविक रूप में आये हैं। रूपक, उपमा, दृष्टांत, उत्प्रेक्षा, श्लेष, यमक और अनुप्रास अलंकार संत काव्य में ज्यादा प्रयुक्त हुए हैं। रस की दृष्टि से शांत रस की प्रधानता है, वैसे दाम्पत्य रूपकों द्वारा भक्ति की व्यंजना में श्रृंगार रस, ब्रह्म की विराटता के वर्णन में अद्भुत रस, कर्मकाण्डों पर प्रहार करते समय हास्य रस, देह की क्षणभंगुरता, और प्रेतादि के वर्णन में वीभत्स रस, माया से जूझते हुए साधनापथ पर अग्रसर साधक के वर्णन में वीर रस को देखा जा सकता है। संत काव्य मुख्यतः साखी और 'सबद' के रूप में है। साखी की रचना दोहों में है, सबद गेय पदों में है। संत सुंदरदास ने सवैयों का भी प्रयोग बड़ी कुशलता से किया है। छंद की दृष्टि सुंदरदास की रचनाएँ परिपक्व हैं। छंदशास्त्र का ज्ञान न होने के कारण संतों की रचनाओं में काफी अशुद्धियाँ भी मिलती हैं।

7.3.2 प्रमुख कवि

(1) कबीरदास- कबीर निर्गुण पंथ के प्रवर्तक है, अपने सरोकार एवं तेवर के कारण वह मध्यकाल के सबसे विद्रोही, प्रगतिशील और आधुनिक कवि है। उनके जन्म और जीवन के सम्बन्ध में अनेक जनश्रुतियाँ प्रचलित हैं। उन्हें एक विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न माना जाता जिसे नीरु नामक जुलाहे ने पाला-पोसा। उन्हें रामानंद का शिष्य बतलाया जाता है, मुस्लिमों के अनुसार सूफी फकीर शेख तकी उनके गुरु थे। विद्वानों ने कबीर के जीवन को 1398-1518 ई. तक माना है। कबीर मुख्यतः संत है, तत्वज्ञानी हैं, उन्होंने निर्गुण ब्रह्म की भक्ति की। उनकी भक्ति पर वैष्णवों की अहिंसा व प्रपत्ति-भावना, शंकर के अद्वैतवाद, सूफियों के प्रेमतत्व एवं सिद्धों नाथों का प्रभाव है। कबीर की भक्ति बाह्याचार मूलक न होकर आभ्यंतरिक है। उत्कट राग, अनन्यता, निष्कामता इस भक्ति के अनिवार्य अंग है। कबीर शास्त्रज्ञान की जगह स्वानुभूत ज्ञान को महत्व देते है, वह प्रेम को पोथी ज्ञान से श्रेयस्कर कहते है-पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ पंडित भया न कोय/ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय।'

कबीर ने बाह्याचारों, कर्मकाण्डों-मंदिर, मस्जिद, व्रत-तप, रोजा-नमाज, मूर्तिपूजा, तीर्थ, यज्ञ का विरोध किया है। यही नहीं वह जातिगत भेदभाव और सांप्रदायिक वैमनस्यता का भी विरोध करते हुए मानव मात्र की एकता-समता का प्रतिपादन करते है। यही कबीर की कविता का विद्रोही और प्रगतिशील पक्ष है। वह चाहते है समाज में धर्म के नाम पर जो कुरीतियाँ, बाह्याडम्बर व्याप्त है वह समाप्त हो। सांसारिक प्रलोभनों में फंसा हुआ व्यक्ति सन्मार्ग पर अग्रसर हो, वह नैतिक व उदार बने। इसीलिए वह घर फूँकने की बात करते है। सत्य-शील-सदाचार युक्त

जीवन पर बल देते है। कबीर एक साहसी कवि है, बहुत कुछ को नकार देने का साहस है उनके पास। निर्भय होकर उन्होंने अपने समय और समाज के अन्तर्विरोधों केा सामने रखा। उनके रचनाकार व्यक्तित्व के कई आयाम है, जो उनकी रचनाओं में प्रकट होता है। डा. रामचंद्र तिवारी लिखते हैं- 'गुरु के चरणों में प्रणत कबीर, आराध्य के प्रति दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य भाव की व्यंजना करने वाले भक्त और रहस्यसाधक कबीर, सारे भेद-प्रभेदों से ऊपर उठकर समरस भाव में लीन सिद्ध कबीर, अखण्ड आत्म-विश्वास के साथ पंडित और 'शेख' पर चोट करने वाले व्यंग्यकार कबीर, अवधूत योगी की शक्ति और दुर्बलता दोनों से परिचित उसके समर्थ और सर्तक आलोचक कबीर, साधारण हिन्दू गृहस्थ के अंधविश्वासों पर निर्मम प्रहार करने वाले मस्त मौला कबीर और कथनी-करनी की एकता, निर्वैरता, निष्कामता, अनासक्तता, संतोष, निग्रह, दया, प्रेम, अहिंसा का उपदेश देने वाले सुधारक कबीर तथा अनुभव के सत्य को पाथेय बनाकर जीवन-पथ पर आगे बढ़ते हुए किसी से समझौता न करने वाले अक्खड़ कबीर के दर्शन हमें उनकी वाणियों में एक साथ होते हैं।' (कबीर-मीमांसा, पृष्ठ 151)

कबीर की भाषा सधुक्कड़ी है। भाषा पर उनका जबरदस्त अधिकार है, इसीलिए हजारी प्रसाद द्विवेदी उन्हें भाषा का डिक्टेटर कहते है। 'बीजक' उनकी वाणियों का संग्रह है, जिसे उनके शिष्य धर्मदास ने संग्रहीत किया है। बीजक में 'साखी', 'सबद' और रमैनी है। कबीर मूलतः कवि नहीं है, 'मसि कागद छुयो नहीं, कलम गहयों नहीं हाथ' कहने वाले कबीर कहते हैं, 'तुम जिनि जानो गीत है, वे निज ब्रह्म-विचार' अपनी इस स्वीकारोक्ति के बावजूद कबीर हमारे सामने एक समर्थ कवि के रूप में आते हैं। उनकी कविता के कुछ नमूने नीचे दिए जा रहे है-

1. इस तन का दीवा करौं, बाती मेल्यूँ जीव
लोही सींचौ तेल ज्यूँ, कब मुख देखौं, पीव।।

2. बिरह भुवंगम तव बसै, मंत्र न लागै कोइ।
नाम वियोगी ना जिवै, जिवै न बौरा होइ।।

3. संतों भाई आई ग्यान की आंधी रे
भ्रम की टाटी सबै उड़ानी माया रहै न बाँधी रे।।
दुचिते की दोई थूँनि गिरानी बलेंडा टूटा।
त्रिसना छांनि परी धर ऊपरि दुरमति भाँडा फूटा।।

4. कह हिन्दु मोहि राम पियारा, तुरुक कहैं रहिमाना।
आपस में दोउ लरि मुये, मरम न काहु जाना।।

(2) रैदास- मध्यकालीन संतों में रैदास का स्थान महत्वपूर्ण है। वह कबीर की परम्परा में आते हैं। किंतु वह कबीर की तरह विद्रोही, आक्रामक, नहीं है। वह शांत, संयत और विनम्र है, कबीर की तरह उनकी वाणियों में डाँट-फटकार, हास-उपहास, व्यंग्य-प्रहार नहीं मिलता। उनके जीवन-काल के विषय में विद्वानों में मतभेद हैं। संभवतः उनका समय 14वीं-15वीं सदी रहा है। उनका

जन्म काशी में माना जाता है। वह चमार जाति के थे और जूता बनाने का काम करते थे। जिसका साक्ष्य उनकी रचनाओं से मिलता है। वह रामानंद के शिष्य और मीरा के गुरु कहे जाते हैं। अनुभूति की तरलता और अभिव्यक्ति की सरलता रैदास की वाणियों की विशेषता है। सिक्खों के धर्म ग्रंथ 'गुरु ग्रंथ साहिब' में उनकी रचनाएँ मिलती हैं। उनकी कवताि का एक नमूना द्रष्टव्य है-

अब कैसे छूटै राम, नाम रट लागी।
प्रभु जी तुम चंदन हम पानी, जाकी अंग अंग बास समानी।
प्रभुजी तुम घन बन हम मोरा, जैसे चितवत चंद चकोरा।
प्रभुजी तुम दीपक हम बाती, जाकी जोति बरै दिन राती।
प्रभुजी तुम मोती हम धागा, जैसे सोने मिलत सुहागा।
प्रभुजी तुम स्वामी हम दासा, जैसी भक्ति करै रैदासा।

(3) नानक- नानक (1469-1538) नानक पंथ के प्रवर्तक हैं। उनका जन्म लाहौर के निकट तलवंडी नामक स्थान पर हुआ था, जो ननकाना साहब के नाम से प्रख्यात है। उनके दो पुत्र हुए- श्रीचंद ओर लक्ष्मीचंद। आगे चलकर श्रीचंद ने 'उदासी संप्रदाय' का प्रवर्तन किया। नानक घुमंूत प्रवृत्ति के थे, चारों ओर खूब भ्रमण किया। उनकी रचनाएं **गुरु ग्रंथ साहिब** में संकलित है। उनकी कविता का एक नमूना नीचे दिया जा रहा हैं-

जो नर दुख में दुख नहिं मानै।
सुख सनेह अरू मय नहिं जाके, कंचन माटी जानै।।
नहिं निंदा नहिं अस्तुति जाके, लोभ, मोह अभिमाना।
हरष सोक ते रहै नियारो, नाहि मान अपमाना।।
आसा मनसा सकल त्यागि कै जग तें रहै निरासा।
काम, क्रोध जेहि परसे नाहि न तेहिं घट ब्रह्म निवासा।।
गुरु किरपा जेहि नर पै कीन्हीं, तिम्ह यह जुगुति पिछानी।
नानक लीन भयो गोविंद सों, ज्यों पानी संग पानी।।'

(4) दादू दयाल- दादू पर कबीर का गहरा प्रभाव है, उन्होंने 'दादू पंथ' नाम से अपना एक अलग पंथ चलाया। उनके जन्म और जाति के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। उनका जन्म गुजरात के अहमदाबाद में हुआ, कुछ लोग उन्हें धुनिया जाति का मानते हैं, तो कुछ लोग ब्राह्मण। उनका समय 16वीं सदी है। उनके अनुयायियों में रज्जब, सुंदरदास, प्रागदास, जनगोपाल, जगजीवन जैसे प्रसिद्ध संत हैं। 'हरडे वाणी' नाम से उनकी रचनाओं का संकलन संतदास एवं जगन्नाथदास ने किया। 'अंगवधू' भी उनकी रचना है। वह प्रतिभाशाली कवि थे, निर्गुण उपासक होते हुए भी उन्होंने ईश्वर के सगुण रूप को भी स्वीकारा है। उनकी भाषा ब्रज हैं जिसमें राजस्थानी एवं खड़ी बोली का मिश्रण है। शैली सरल एवं सरस है। उनकी कविता का एक नमूना द्रष्टव्य हैं-

भाई रे! ऐसा पंथ हमारा।
द्वै पख रहित पंथ गह पूरा अबरन एक आधारा।
बाद विवाद काहु सो नाहीं मैं हूँ जग थें न्यारा।
समदृष्टि सूँ भाई सहज में आपहिं आप विचारा।
मैं, तै, मेरी यह मति नाहीं निरबैरी निरबिकारा।।
काम कल्पना कदे न कीजै पूरन ब्रह्म पियारा।
एहि पथि पहुँचि पार गहि दादू सो तब सहज संभारा।।

(5) मलूकदास- मलूकदास (1574-1682) का जन्म इलाहाबाद (उ0प्र0) में हुआ था। रतन खान और ज्ञानबोध इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। आत्मबोध, निर्गुण ब्रह्म की भक्ति, वैराग्य आदि इनकी रचनाओं के मूल विषय है। इनकी भाषा अवधी एवं ब्रज है, जिसमें अन्य बोलियों-भाषाओं का भी मिश्रण है।

(6) सुंदरदास- सुंदरदास (1596-1689) दादू के शिष्य थे, इनका जन्म जयपुर में धौंसा में हुआ। संत कवियों में सुंदरदास सर्वाधिक शिक्षित थे। इसी कारण उनकी रचनाओं में एक कलात्मक परिपक्वता दिखलाई पड़ती है। ज्ञान समुद्र और सुंदरविलास उनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। तत्वज्ञान, निगुर्णोपासना, विरक्ति आदि इनकी रचनाओं के प्रधान विषय हैं।

(7) रज्जब- संत रज्जब (1567-1689) दादू के शिष्य हैं, इनका पूरा नाम रज्जब अली खाँ था। 'अंगवधू' नाम से उन्होंने दादू की रचनाओं को संकलित किया।

1.3.3 उपलब्धियाँ -

संत कवियों का सबसे बड़ा महत्व भक्ति को सरज-सरल बनाने में है। वे निचली जातियों से आए थें, उनकी जाति-पांति विरोधी और मानवतावादी विचारों से सदियों से अस्पृश्य, उपेक्षित वर्ग में एक स्फूर्ति और आत्मविश्वास का संचार हुआ। जातिभेद का विरोध करने वाले, राम-रहीम की एकता की बात करने वाले संतों की वाणियों सं समाज में मानववाद का प्रसार हुआ। संत कवियों ने सत्य-शील-सदाचार से युक्त, सांसांरिक प्रपंचों से उदासीन एंव कर्मण्य जीवन का संदेश दिया, इससे समाज को एक नैतिक जीवन जीने की प्रेरणा मिली। यही नहीं उन्होंने साहित्य को लोक से जोड़ा, उनके साहित्य से जहाँ लोक को एक प्रेरणा व शक्ति मिली, वहीं लोक से जुड़कर साहित्य भी समृद्ध हुआ। संत काव्य की एक बहुत की क्रांतिकारी और प्रगतिशील भूमिका रही है।

7.4 प्रेममार्गी सूफी काव्य

निर्गुण भक्ति काव्य की दूसरी धारा जिसे प्रेमाश्रयी शाखा कहा जाता है: मुस्लिम सूफी कवियों द्वारा निर्मित है। इसमें प्रेम मुख्य तत्व है। इसमें लौकिक प्रेम कथाओं को आधार बनाकर

अलौकिक प्रेम की व्यंजना की गयी है। संत काव्य जहाँ-मुक्तक के रूप में है, वहीं प्रेममार्गी सूफी काव्य प्रबंधात्मक है। आइए इस काव्य की प्रवृत्तियों की चर्चा करें।

1.4.1 प्रमुख प्रवृत्तियाँ-

(क) कथा वस्तु- इन काव्यों में प्रेमकथा का चित्रण मिलता है। इन प्रेम कथाओं का आधार, पौराणिक, कथा, लोक कथा या ऐतिहासिक कुछ भी हो सकता है। प्रायः कवियों ने लोक-प्रचलित कथाओं को लिया है। लोकप्रचलित कथानक रूढ़ियों द्वारा कथा को बुना गया है जैसे- नायिका का 'वती' नाम का होना जैसे- पद्मावती, नायिका का सम्बन्ध किसी द्वीप जैसे मलयद्वीप, सिंहलद्वीप का होना, चित्रदर्शन, गुणश्रवण, स्वप्नदर्शन द्वारा नायक के हृदय में प्रेमोत्पत्ति, नायिका की खोज में नायक का साधु-संयासी के रूप में घर से निकलना एवं विभिन्न विघ्न बाधाओं का सामना करना, किसी मंदिर या फुलवारी में नायक-नायिका का मिलन, नायिका के पिता, भाई या प्रेमी से नायक का द्वन्द, देवताओं या किसी सिद्ध की सहायता से नायक को सफलता मिलना इत्यादि। इन काव्यों में इतिहास और कल्पना का मेल दिखलाई पड़ता है। रहस्य, रोमांच, संघर्ष, घटना बहुलता आदि इन कथाओं की विशेषता है।

(ख) भाव व्यंजना- इन कथाओं का आधार प्रेम होने के कारण श्रृंगार रस की प्रधानता है। संयोग, वियोग दोनों पक्ष यहाँ देखे जा सकते हैं। वियोग वर्णन अधिक है। बारहमासा में हम वियोग की अत्यंत मार्मिक व्यंजना पाते हैं। नायक को कई तरह के कष्टों-चुनौतियों से जूझना पड़ता है, जहाँ उसके शौर्य-साहस का पता चलता है।

(ग) चरित्र प्रधानता- प्रेमाख्यानक काव्य चरित्र प्रधान हैं। नायक और नायिका दोनों प्रायः उच्चकुल के और विशेष गुणों से युक्त होते है। नायक-नायिका के मार्ग में विघ्न-बाधा उत्पन्न करने वाले चरित्र भी हैं। इसके अतिरिक्त कई मानवेतर चरित्र भी यहाँ दिखलाई पड़ते हैं, जिनकी पूरी कथा में बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका होती हैं, जैसे-पक्षी, अप्सरा, राक्षस, देवता इत्यादि।

(घ) अलौकिक प्रेम का संकेत- इन कथाओं का आधार लौकिक है, नायक-नायिका का प्रेम लौकिक धरातल पर विकसित होता हैं, किन्तु इन कथाओं में जब-तब ईश्वरीय सत्ता की ओर संकेत, अलौकिक प्रेम की व्यंजना भी दिखलाई पड़ती है। नायक आत्मा का और नायिका परमात्मा का प्रतीक रहती है। इसी कारण इन कथाओं में प्रतीकात्मक आ गई है और भावात्मक रहस्यवाद की सृष्टि हुई है।

(ङ) वस्तु वर्णन शैली- इन काव्यों में नायिका के सौन्दर्य, बारह मासा, प्रकृति के विभिन्न दृश्यों, सरोवर, पनघट, युद्ध, बारात, ज्योनार इत्यादि का ब्यौरेवार वर्णन मिलता है। वर्णन प्रायः अतिश्योक्ति पूर्ण रहता है, इन वर्णनों में कवि की कल्पनाशीलता भी प्रकट हुई है।

(च) अभिव्यंजना पक्ष- इन प्रबंध काव्यों पर फारसी की मसनवी शैली का प्रभाव है। प्रायः दोहा-चौपाई शैली का प्रयोग किया गया है। रचनाकारों ने प्रायः अवधी भाषा को अपनाया है,

किंतु कुछ प्रेमाख्यानक ब्रज-राजस्थानी भाषा में भी रचे गए है। समासोक्ति, उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक इत्यादि इस काव्य में बहुप्रयुक्त अलंकार है।

1.4.2 प्रमुख कवि -

(1) मुल्ला दाऊद- मुल्ला दाऊद ने 'चंदायन' नानम प्रेमाख्यानक काव्य की रचना की है इसमें लोरिक तथा चंदा की प्रेमकथा है। चंदायन से एक दोहा उद्धृत है-

पियर पात जस बन जर, रहेउँ काँप कुंभलाई।
विरह पवन जो डोलेउ, टूट परेउँ घहराई।।'

(2) कुतुबन- कुतुबन ने 'मृगावती' की रचना की है, जिसमें चंद्रनगर के राजा गणपति देव के राजकुमार और कंचनपुर के राजा रूपमुरारि की कन्या मृगावती की प्रेमकथा का वर्णन है। ग्रंथ का समापन मृगावती और रूक्मिनी के सती होने से होता है-

रुकमिनि पुनि वैसहि मरि गई। कुलवंती सत सों सति भई।।
बाहर वह भीतर वह होई। घर बाहर की रहै न जोई।।
विधि कर चरित न जानै आनू। जो सिरजा सो जाहि निआनू।।

(3) मंझन- मंझन कृत प्रेमाख्यानक है 'मधुमालती'। इसमें कनेसर नगर के राजा सूरजभान के पुत्र मनोहर और महारस नगर की राजकुमारी मधुलालती के प्रेम का वर्णन है। कल्पना का सुंदर प्रयोग, विस्तृत एवं हृदयग्राही वर्णन, अलौकिक प्रेम की व्यंजना इस कृति की विशेषता है। पद्मावत के पहले मधुलालती की बहुत अधिक प्रसिद्धि थी। जैन कवि बनारसीदास ने अपनी आत्मकथा में इसका उल्लेख किया है।

(4) मलिक मुहम्मद जायसी- जायसी सूफी कवियें में सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं। वह शेरशाह सूरी के समकालीन थे। उनकी तीन पुस्तकें हैं-पद्मावत, अखरावट और आखिरी कलाम। 'अखरावट' में वर्णमाला के एक-एक अक्षर को लेकर तत्वज्ञान सम्बन्धी चौपाईयां हैं। 'आखिरी कलाम' में कयामत का वर्णन है। 'पद्मावत' जायसी की सर्वाधिक लोकप्रिय रचना है। शुक्लजी के शब्दों में- 'जायसी की अक्षय कीर्ति का आधार है 'पद्मावत', जिसके पढ़ने से यह प्रकट हो जाता है कि जायसी का हृदय कैसा कोमल और 'प्रेम की पीर' से भरा हुआ था। क्या लोकपक्ष में, क्या अध्यात्म पक्ष में, दोनों ओर उसकी गूढ़ता, गंभीरता और सरसता विलक्षण दिखाई देती है।' (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ0 65)। पद्मावत में चित्तौड़ के राजा रत्नसेन और सिंहल द्वीप के राजा गंधर्व सेन की कन्या पद्मावती के प्रेम का निरूपण है। कथा के उत्तरार्द्ध का एक ऐतिहासिक आधार भी है। पद्मावत की कथा प्रतीकात्मक है एक साथ यह लौकिक एवं अलौकिक दोनों धरातलों पर चलती है। पात्रों की प्रतीकात्मकता को स्पष्ट करते हुए जायसी लिखते हैं-

तन चितउर मन राजा कीन्हा। हिय सिंघल, बुधि पदमिनि चीन्हा।।

गुरु सुआ जेइ पंथ देखावा। बिनु गुर जगत को निरगुन पावा।।
नागमती यह दुनिया धंधा। बाँचा सोइ न एहि चित बंधा।।
राघव दूत सोई सैतानू। माया अलाउदीं सुलतानू।।

कथा का अंत दुखांत है। रत्नसेन के शव के साथ उसकी दोनों रानियां नागमती और पद्मावती सती हो जाती है। पद्मावती के सौन्दर्य, नागमती के विरह, रत्नसेन के साहस, शौर्य और अवध की लोक संस्कृति की सर्जनात्मक प्रस्तुति में जायसी को अद्भुत सफलता मिली है। उत्कृष्ट कवितत्व एवं भावव्यंजना के कारण ही जायसी हिंदी के श्रेष्ठ महाकाव्यकार माने जाते हैं।

(5) उसमान- उसमान ने 'चित्रावली' की रचना की है। वह जहाँगीर के समकालीन और गाजीपुर (उ0प्र0) के रहने वाले थे। 'चित्रावली' में नेपाल के राजकुमार सुजान और रूपनगर की राजकुमारी चित्रावली के प्रेम का वर्णन है। चित्रावली के रचनाविधान पर जायसी का गहरा असर है।

7.4.3 उपलब्धियाँ-

सूफी कवियों ने हिंदू घरों में प्रचलित लोक कथाओं को आधार बनाकर काव्य प्रणयन किया जिसमें हिंदू-देवी-देवताओं, रीति-रिवाजों, विश्वासों का भी उदारतापूर्वक निरूपण हैं। इससे हिंदू-मुस्लिम के बीच सांस्कृतिक सामंजस्य को बल मिला। इन कवियों की दृष्टि सेक्युलर रही है। त्याग, साहस-शौर्य, संघर्ष से भरे जिस प्रेम को इन कवियों ने सिरजा है उससे आम जनता का सिर्फ मनोरंजन ही नहीं होता, अलौकिक आशयों से युक्त होने के कारण उसे रुहानी सुकून भी मिलता है। ये कवि ईश्वर प्रेम के साथ मानववाद का भी प्रचार करते है। लोकतत्त्व की दृष्टि से यह काव्य महत्वपूर्ण है, तत्कालीन परिवेश के सांस्कृतिक अध्ययन की दृष्टि से ये रचनाएँ उपादेय हैं। साहित्यिक भाषा के रूप में अवधी के निरंतर विकास में इन कवियों का योगदान अविस्मरणीय है। साहित्यिक भाषा के रूप में अवधी का जो चरमोत्कर्ष तुलसीदास के यहाँ दिखलाई पड़ता है उसकी भूमिका इन्हीं सूफी कवियों ने निर्मित की थी।

7.5 रामभक्ति काव्य

राम कथा आदिकाल से ही रचनाकारों को आकर्षित करती रही है। हिंदी में राम भक्ति काव्य की शुरुआत रामानंद से होती है, जिसे आगे चलकर तुलसीदास अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचाते हैं।

7.5.1 प्रमुख प्रवृत्तियाँ-

(1) भक्ति का स्वरूप- राम भक्त कवियों ने विष्णु के अवतार दशरथनंदन राम को अपना उपास्य माना है। उनके अनुसार दुष्टों के दलन और साधुओं की रक्षा के लिए ही प्रभु का अवतार होता है। लोमंगल ही अवतार का कारण है। रामभक्तों की भक्ति दास्य भाव की है। प्रभु के चरणों में भक्त अपना सर्वस्व अर्पित कर भक्ति करता है। कालांतर में रामभक्ति में रसिक भावना का

समावेश होता है। रामभक्ति में वैधी भक्ति अर्थात् शास्त्र सम्मत विधि निषेधके पालन को भी स्वीकार किया गया है। भक्ति के क्षेत्र में उदार होते हुए भी तुलसी के यहाँ शास्त्र और वर्णाश्रम व्यवस्था के प्रति एक आदर का भाव है।

(2) समन्वय भावना- रामभक्ति काव्य में समन्वय की चेष्टा निहित है। सगुण-निर्गुण, शैव-शाक्त, वैष्णव, लोक-परलोक, शास्त्र-लोक, गार्हस्थ्य और वैराग्य इत्यादि का तुलसी समन्वय करते हैं। यह समन्वय लोक मंगल के निमित्त है।

(3) लोकपक्ष- रामभक्ति काव्य में लोकमंगल, लोक धर्म, लोकरक्षा, लोकचिंता, लोक मानस की प्रधानता है। नारायण को यहाँ एक ऐसे नर के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जो शक्ति-शील-सौन्दर्य का प्रतिमान है, जो कालिकाल के दुखों को हरने वाला है। राम कथा के माध्यम से तुलसी राजा, पति, पत्नी, भाई, सेवक, शिष्य का आदर्श प्रस्तुत करते है, जनता के अंदर दैहिक, दैविक, भौतिक तापों से मुक्त, सर्वसुखद रामराज्य का स्वप्न पैदा करते हैं। यही नहीं तुलसी ने अपने समय के दुख-दारिद्रय और अकाल का भी मार्मिक अंकन किया है। **'कलि बारहि बार अकाल परै', 'खेती न किसान को भिखारी को भीख बलि', 'नहिं दारिद्रय सम दुख जग माहीं'** जैसी पंक्तियाँ इसकी प्रमाण हैं। दुख-दारिद्रय का जितना वर्णन अकेले तुलसी ने किया है, उतनी अन्य किसी मध्यकालीन कवि ने नहीं किया है।

(4) नारी एवं शूद्र के प्रति दृष्टिकोण- रामभक्ति काव्य में शूद्र एवं नारी विषय दृष्टि अन्तर्विरोध युक्त है। एक तरफ तुलसी राम का निषाद राज और शवरी के प्रति प्रेम दिखलाते है, रामचरित मानस में शम्बूक-प्रसंग को स्थान नहीं देते हैं तो दूसरी तरफ उनके यहाँ **'पूजहिं विप्र सकल गुण हीना', 'ढोल गंवार शूद्र पशु नारी सकल ताड़ना के अधिकारी'** जैसी उक्तियाँ भी हैं। तुलसी राम के समकक्ष सीता को स्थान देते है- **'सिया राम भय सब जग जानी',** वही दुसरी ओर गुलामी को नारी की दुर्दशा का कारण मानते है, इतना ही नहीं तुलसी नारी को सकल अवगुणों की खान कहते है, स्वतंत्रता से भ्रष्ट हो जाने के कारण उसकी स्वतंत्रता का निषेध भी करते हैं।

(5) अभिव्यंजना पक्ष- राम भक्ति काव्य प्रबंध और मुक्तक दोनों रूपों में मिलता है। प्रायः अवधी और ब्रज दोनों में रामकथा का प्रणयन किया गया। अवधी में 'रामचरित मानस' और ब्रज में 'रामचंद्रिका' प्रसिद्ध है। काव्यत्व की दृष्टि से रामभक्ति काव्य समृद्ध है। गेय शैली में भी रामकाव्य को रचा गया। दोहा, चौपाई, छप्पय, कुण्डलियाँ, सोरठा-सवैया, घनाक्षरी, तोमर आदि रामभक्ति काव्य में बहु प्रयुक्त छंद हैं।

7.5.2 प्रमुख कवि-

(1) स्वामी रामानंद- रामानंद का जन्म काशी में हुआ था। इनका समय 15वीं सदी है। रामानंद के शिष्यों में सगुण मार्गी एवं निर्गुणमार्गी दोनों शामिल है। उन्होंने राम की उपासना को सर्वाधिक

महत्व दिया। **'आरती कीजै हनुमान लला की, दुष्ट दलन रघुनाथ कला की'** प्रसिद्ध प्रार्थना उन्हीं की रचना है। गोस्वामी तुलसीदास रामानंद की ही शिष्य परम्परा में आते हैं।

(2) अग्रदास- अग्रदास कृष्णदास पयहारी के शिष्य हैं। इन्होंने सखी भावना से राम की भक्ति की है। रामभक्ति परम्परा में रसिक-भावना का समावेश इन्हीं की देन है। ध्यानमंजरी, अष्टयाम, रामभजन मंजरी, इत्यादि इनकी रचनाएं हैं।

(3) नाभादास- नाभादास अग्रदास के शिष्य हैं। 'भक्तिमाल' और अष्टयाम इनकी रचनाएं है। इनकी भी भाषा अग्रदास की तरह ब्रज है।

(4) ईश्वरदास- रामकथा विषयक ईश्वरदास की दो रचनाएँ हैं- 'भरतमिलाप' और 'अंगद पैज'

(5) गोस्वामी तुलसीदास- गोस्वामी तुलसीदास राम भक्ति धारा के सबसे लोकप्रिय रचनाकार हैं। इनके जन्म और जीवन के सम्बन्ध में कई जनश्रुतियाँ है। आचार्य शुक्ल ने तुलसी विरचित बारह ग्रंथों का उल्लेख किया है-दोहावली, कवित्त रामायण, गीतावली, रामचरित मानस, रामाज्ञा प्रश्नावली, विनय पत्रिका, रामललानहछू, पार्वती मंगल, जानकी मंगल, बरवै रामायण, वैराग्य संदीपनी, कृष्ण गीतावली। रामचरित मानस उनकी कीर्ति का आधार है। 'लोकमंगल' तुलसी के काव्य का केन्द्र बिंदु है। उनकी रचनाओं से भक्त हृदयों की तृप्ति ही नहीं मिलती, समाज को अपना आदर्श भी मिलता है। तुलसी के राम चरित मानस के महत्व का उद्घाटन करते हुए हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है- 'भारत वर्ष का लोकनायक वही हो सकता है जो समन्वय करने का अपार धैर्य ले कर आया हो। भारतीय जनता में नाना प्रकार की परस्पर विरोधिनी संस्कृतियां, साधनाएँ, जातियाँ, आचार, विचार और पद्धतियाँ प्रचलित हैं। तुसलीदास स्वयं नाना प्रकार के सामाजिक स्तरों में रह चुके थे। उनका सारा काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है। उसमें केवल लोक और शास्त्र का ही समन्वय नहीं है अपितु गार्हस्थ्य और वैराग्य का, भक्ति और ज्ञान का भाषा और संस्कृति का, निर्गुण और सगुण का, पुराण और काव्य का, भावावेग और अनासक्त चिंता का समन्वय हुआ है। 'रामचरित मानस' के आदि से अंत तक दो छोरों पर जाने वाली पराकोटियों को मिलाने का प्रयत्न है। तुलसी ने अवधी और ब्रज दोनों भाषाओं में साधिकार लिखा है। प्रबंध कला, चरित्र-चित्रण, अलंकार विधान, समर्थ भाषा, लोक की गहरी समझ, भक्ति की तन्मयता, उच्च मूल्यों की प्रतिष्ठा, शैलीगत वैविध्य, सभी दृष्टियों तुलसी में अद्वितीय हैं। शुक्ल जी कवि तुलसी का महत्व बतलाते हुए कहते है कि "हम निःसंकोच कह सकते हैं कि यह एक कवि ही हिंदी को प्रौढ़ साहित्यिक भाषा सिद्ध करने के लिए काफी है।" (हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. 95)

(6) केशवदास- केशवदास (1555-1617) की रामभक्ति विषयक रचना 'रामचंद्रिका' है। 39 प्रकाशों में विभक्त इस महाकाव्य पर प्रसन्नराघव, हनुमन्नाटक, अनर्घराघव, कादंबरी और नैषध का प्रभाव है। कहा जाता है कि उन्होंने रामचंद्रिका की रचना तुलसी की प्रतिस्पर्धा में की। केशव दरबारी कवि हैं, चमत्कारप्रियता, पांडित्य प्रदर्शन उनकी विशेषता है। रामचंद्रिका में वह छंदों, अलंकारों के नियोजन में ही उलझकर रह जाते हैं, रामकथा के मर्म का उद्घाटन नहीं कर पाते हैं।

7.5.3 उपलब्धियाँ -

राम भक्ति काव्य ने निराशा, अवसाद, कुंठा से भरी जनता के सामने राम जैसे सर्वसमर्थ, त्राणकर्त्ता को प्रस्तुत कर उसे शक्ति और सांत्वना प्रदान किया। जीवन को धर्म भाव से जीने की प्रेरणा प्रदान की। तुलसी ने रामचरित मानस द्वारा जो आदर्श प्रस्तुत किया, उसी के आधार पर उत्तर भारत की रीति-नीति निर्मित होती है। उनके द्वारा समन्वय के प्रयत्न से बिखराव एवं वैमनस्य की क्षीण स्थितियों को एक संतुलित मार्ग का पथ प्रशस्त हुआ। साहित्य की दृष्टि से राम भक्ति काव्य ने भाव और भाषा का मानक प्रस्तुत किया, साहित्य को लोकमंगल से जोड़ा। अवधी और ब्रज दोनों को साहित्यिक परिपूर्णता प्रदान करने में रामभक्त कवियों ने अविस्मरणीय योगदान दिया।

7.6 कृष्ण भक्ति काव्य

विष्णु के अवतारी रूप कृष्ण को लेकर पूर्वमध्यकाल में प्रचुर मात्रा में काव्य रचा गया। कृष्ण के ईश्वरीय रूप की प्रतिष्ठा भागवत में होती है। जिसका रचनाकाल 6वीं और 9वीं सदी के बीच माना जाता है। दक्षिण के आलवार भक्तों के यहाँ भी कृष्णभक्ति प्रचलित थी। वल्लभाचार्य और मध्वाचार्य ने कृष्ण भक्ति को शास्त्रीय आधार दिया और उसे जनता में प्रचारित किया। कृष्ण भक्ति काव्य का आधार भागवत पुराण है। भागवत में वर्णित कृष्ण की लीलाओं की अत्यंत सरस प्रस्तुति कृष्ण भक्ति काव्य में की गई है। आइए कृष्ण भक्ति काव्य की प्रवृत्तियों का हम अध्ययन करें।

7.6.1 प्रमुख प्रवृत्तियाँ-

(क) लीला गायन- कृष्णभक्तिकाव्य में अवतारी कृष्ण की विविध लीलाओं का गान किया गया है। ये लीलाएं मुख्यतः कृष्ण के शिशु रूप एवं किशोर वय की है। जैसे-बालकृष्ण की विविध चेष्टाएँ, माखनचोरी, गोदोहन, गोचारण, पूतना वध, कालिया दमन, दान लीला, मान लीला, चीरहरण, लीला, रास लीला, मथुरा गमन, कंस वध, कुब्जा प्रसंग, उद्धव संदेश इत्यादि। लीलागान के क्रम में वात्सल्य, सख्य और माधुर्य भाव की भक्ति प्रकट हुई है। वस्तुतः लीलागान ही कृष्ण भक्त कवियों का उद्देश्य है। कृष्ण की लीलाओं के चित्रण में इन कवियों की कल्पनाशीलता और सहृदयता अत्यंत प्रभावशाली रूप में प्रकट हुई है। इस मामले में कृष्ण भक्त कवियों में सूर अद्वितीय है। वात्सल्य और श्रृंगार की विविध मनोदशाओं, सूक्ष्म स्थितियों का उन्होंने बहुत बारीक और विशद् अंकन किया है, कोई भी पक्ष उनसे छूटा नहीं है। ईश्वर रूप श्रीकृष्ण की लीलाओं को उन्होंने लौकिक धरातल पर चित्रित किया है, जो बहुत ही आत्मीय लगता है। समूचे कृष्ण भक्ति काव्य में राग और रस की अजस्र धारा प्रवाहित होती है।

(ख) लोकरंजन- कृष्ण की लीलाओं का उद्देश्य लोकरंजन है। कृष्ण भक्त कवियों ने कृष्ण के लोकरंजनकारी, लीला पुरुषोत्तम रूप को ही सर्वाधिक महत्व दिया है। उनके योगी और योद्धा

रूप के चित्रण में उनका मन कम रमता है। इसी कारण कृष्ण भक्ति काव्य में वात्सल्य एवं श्रृंगार का चित्रण अधिक है।

(ग) शास्त्रज्ञान की अनावश्यकता- कृष्ण भक्त कवियों ने भक्ति के लिए शास्त्रज्ञान को अनावश्यक माना है। उनकी भक्ति रागानुगा भक्ति है। इस भक्ति के लिए हरि के प्रति उत्कट राग, सच्ची समर्पणशीलता अपेक्षित है न कि ज्ञान। भ्रमरगीत प्रसंग में तो गोपियों द्वारा ज्ञान का खण्डन, शास्त्र की उपेक्षा की गई, और प्रेम को वरेण्य, सर्वथा मंगलकारी माना गया है।

(घ) निर्गुण-सगुण दोनों की स्वीकृति- कृष्ण भक्ति काव्य में ब्रह्म के निर्गुण रूप को स्वीकार करते हुए अवतारी कृष्ण को परमब्रह्म परमेश्वर के रूप में देखा गया है। निर्गुण ब्रह्म की साधना दुस्साध्य है, निर्गुण ब्रह्म अनुभवातीत है, 'गूंगे के गुड़' के समान है, इसीलिए इन भक्तों ने ब्रह्म के सगुण रूप को स्वीकार कर लीला गान किया है। ब्रह्म लीला के लिए ही धरती पर अवतरित होता है।

(ङ) अभिव्यंजना पक्ष- कृष्ण भक्ति का मुख्य केन्द्र ब्रज क्षेत्र रहा है, इसीलिए अधिकांशतः कृष्ण भक्ति परक काव्य ब्रजभाषा में रचा गया। कृष्ण के समग्र जीवन की अपेक्षा उनके जीवन के कुछ पक्षों पर केन्द्रित होने के कारण मुक्तक काव्य की रचना ज्यादा हुई। कृष्ण भक्ति काव्य गीति शैली में रचा गया। इसमें गीतिकाव्य की सभी प्रवृत्तियों भावात्मकता, संक्षिप्तता, संगीतात्मकता, सुकोमल पदावली इत्यादि विद्यमान है। छंद की दृष्टि से यहाँ कवित्त, सवैया, छप्पय, कुण्डलिया, गीतिका, हरिगीतिका का प्रयोग अधिक हुआ है।

7.6.2 प्रमुख कवि-

(1) सूरदास - कृष्ण भक्त कवियों में सर्वाधिक ऊँचा स्थान सूरदास का है। उनका जन्म 1478 में 'सीही' नामक गाँव में हुआ और देहावसान 1583 ई. में हुआ। उनके अंधत्व को लेकर अनेक किंवदंतियाँ प्रचलित है। उन्होंने बल्लभाचार्य से दीक्षा ली। बल्लभाचार्य से दीक्षित होने के पूर्व उनकी भक्ति दास्य भाव की थी। बल्लभ ने उनसे लीलागान करने कहा। उन्हें 'पुष्टिमार्ग का जहाज' कहा जाता है। उनकी मृत्यु पर दुखी होकर विट्ठलनाथ ने कहा था- **'पुष्टिमारग को जहाज जात है सो जोको कछु लेना होय सो लेउ।'** सूरदास की तीन रचनाएं हैं-सूरसागर, साहित्यलहरी और सूरसारावली। सूरसागर की रचना भागवत की तरह द्वाद्वश स्कंधों में हुई है। 'साहित्य लहरी' में उनके दृष्टिकूट पदों का संग्रह है जिसमें प्रतीकात्मक शैली में राधा-कृष्ण के प्रेम का वर्णन है। अलंकार निरूपण की दृष्टि से भी यह ग्रंथ महत्वपूर्ण है। 'सूरसारावली' की प्रामाणिकता संदिग्ध है। सूरसागर ही सूर की सर्वाधिक प्रसिद्ध कृति है। कृष्ण भक्ति ही इसका मुख्य विषय है। सूर का ध्यान कृष्ण के लोकरंजनकारी रूप पर अधिक है। इसमें कृष्ण के बालकाल से लेकर कैशोरवय तक की विविध लीलाओं का अत्यंत हृदयहारी चित्रण हुआ है। आचार्य शुक्ल का कहना है-'इनके सूरसागर में वास्तव में भागवत के दशम स्कंध की कथा संक्षेपतः इतिवृत के रूप में थोड़े से पदों में कह दी गई हैं। सूरसागर में कृष्णजन्म से लेकर श्रीकृष्ण के मथुरा जाने तक की कथा अत्यंत विस्तार से फुटकल पदों में गायी गयी हैं। भिन्न-भिन्न

लीलाओं के प्रसंग को लेकर इस सच्चे रसमग्न कवि ने अत्यंत, मधुर और मनोहर पदों की झड़ी-सी बाँध दी है। इन पदों के सम्बन्ध में सबसे पहली बात ध्यान देने की यह है कि चलती हुई ब्रजभाषा में सबसे पहली साहित्य रचना होने पर भी वे इतने सुडौल और परमार्जित हैं। यह रचना इतनी प्रगल्भ और काव्यपूर्ण है कि आगे होने वाले कवियों की श्रृंगार और वात्सल्य की उक्तियाँ सूर की जूठी-सी जान पड़ती है। अतः सूरसागर किसी चली आती हुई गीतिकाव्य परंपरा का-चाहे वह मौखिक ही रही हो-पूर्ण विकास सा प्रतीत होता है।' (हिन्दी-साहित्य का इतिहास, पृ0-108) नवीन प्रसंगों की उद्भवना, भावात्मकता, अन्तर्मन का उद्घाटन, विभिन्न काव्यांगों का सुंदर प्रयोग, गीतात्मकता, प्राजंल एवं प्रवाहपूर्ण भाषा, ब्रज के लोक जीवन की जीवंत प्रस्तुति, अपूर्व रसात्मकता के कारण सूरसागर हिन्दी साहित्य की एक श्रेष्ठकृति है जो सूरदास को महाकवि के रूप में प्रतिष्ठित करती है। सूरसागर 'जीवनोत्सव' का काव्य है और सूरदास भावाधिपति हैं। बालकृष्ण की विविध लीलाएँ नंद-यशोदा का वात्सल्य, गोपियों का निर्मल और उमंग से भरा प्रेम, भ्रमरगीत-सूरसागर के उत्कृष्ट प्रसंग हैं। सूरसागर में शांत, दास्य, वात्सल्य, सख्य और माधुर्य भाव की भक्ति देखी जा सकता है वैसे प्रमुखता वात्सल्य और माधुर्य भक्ति की है।

(2) नंददास- साहित्यिकता की दृष्टि से अष्टछाप के कवियों में सूरदास के बाद नंददास का स्थान आता है। उनकी रचनाएं है-अनेकार्थ मंजरी, मानमंजरी, रसमंजरी, रूपमंजरी, विरह मंजरी, प्रेम बारह खड़ी, श्याम सगाई, सुदामाचरित, रूक्मिणी मंगल, भंवर गीत, रासपंचाध्यायी, सिद्धांत पंचाध्यायी, दशमस्कंधभाषा, गोवर्धनलीला, नंददासपदावली। 'भंवरगीत' और 'रासमपंचाध्यायी' उनकी श्रेष्ठ कृतियाँ हैं। उनकी भाषा अत्यंत परमार्जित है। प्रसंगानुकूल सटीक शब्दों के चयन के कारण नंददास को 'जड़िया' कहा जाता है।

(3) हितहरिवंश- हितहरिवंश (1505-1552) का जन्म उ0प्र0 के सहारनपुर जिले के देवबंद में हुआ। 'हितचौरासी' उनका प्रसिद्ध ग्रंथ है। उनकी भक्ति माधुर्य भाव की है। उन्होंने राधावल्लभ संप्रदाय का प्रवर्तन किया। सरसता और भाषा का प्रांजल रूप उनकी रचनाओं की विशेषता है।

(4) स्वामी हरिदास- स्वामी हरिदास (1535-1578) ने सखी सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया, जिसे टट्टी संप्रदाय भी कहा जाता है। हरिदास एक प्रसिद्ध संगीतज्ञ थे। अकबर के दरबारी तानसेन को इन्हीं का शिष्य बतलाया जाता है। 'सिद्धांत के पद' और 'केलिमाल' उनकी रचनाएं है।

(5) मीराबाई- मीराबाई (1504-1558) चित्तौड़ के राजघराने की थी। उनका विवाह चित्तौड़ के राणा सांगा के पुत्र भोजराज से हुआ, था किंतु कुछ ही वर्षों बाद वह विधवा हो गयी। मीरा रचित ग्यारह ग्रंथ बतलाये जाते है, जिनमें केवल 'स्फुट पद' ही प्रामाणिक है। गिरधर गोपाल के प्रति अगाध प्रेम ही मीरा की रचनाओं का मुख्य विषय है। उनकी रचनायें मध्यकालीन सामंती परिवेश में नारी की पीड़ा और उसकी मुक्ति की आकांक्षा को भी प्रकट करती हैं। उनकी भाषा राजस्थानी मिश्रित ब्रज है।

(6) रसखान- रसखान (1533-1618) ने अत्यंत सरस और मार्मिक रचनाएँ की हैं। उन्हें वल्लभ संप्रदाय में दीक्षित बतलाया जाता है। सुजान रसखान, प्रेम वाटिका, दान लीला, अष्टयाम-उनकी रचनाएं है। मुस्लिम होकर भी उन्होंने कृष्ण भक्तिपरक रचनाएं लिखी, यह उनकी उदारता का प्रमाण है।

7.6.3 उपलब्धियाँ-

कृष्ण भक्ति कवियों ने अपनी रचनाओं में कृष्ण की लीलाओं का गान किया है, उससे समाज में रागात्मकता का संचार होता है, उससे जीवन के प्रति चाह बढ़ती है। विविध संप्रदायों द्वारा कृष्ण भक्ति का विभिन्न रूपों में पल्लवन होता है जिससे साहित्य समृद्ध होता है। साहित्य और संगीत को जोड़ने में इन कवियों का योगदान महत्वपूर्ण है। विभिन्न राग-रागनियों में रचित कृष्ण काव्य में संगीत का विकास होता है। कृष्ण भक्ति काव्य की भाव सम्पदा और परमार्जित अभिव्यक्त से साहित्यिक दृष्टि से ब्रज भाषा समृद्ध होती है और वह मध्यकाल की सर्वप्रधान काव्य भाषा बन जाती है।

अभ्यास प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. 'जड़िया' नाम से विख्यात कृष्ण भक्त कवि हैं?
2. पुष्टिमार्ग के जहाज कहे जाते हैं?
3. जायसी के किस ग्रंथ में कयामत का वर्णन है?
4. 'आरती कीजै हनुमान लला की' के रचनाकार हैं?
5. 'अष्टयाम' के रचयिता हैं?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. रामभक्ति काव्य की प्रवृत्तियों का परिचय दीजिये?
2. संतकाव्य के प्रगतिशील आयाम को स्पष्ट कीजिए।
3. प्रेममार्गी सूफी काव्य के प्रमुख कवियों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

7.7 सारांश

भक्ति काव्य की चार धाराएँ है- संत काव्य, प्रेममार्गी सूफी काव्य, रामभक्ति काव्य और कृष्ण भक्ति काव्य। निर्गुण ब्रह्म की उपासना, अवतारवाद-बहुदेववाद का खंडन, नाम-महिमा, गुरु-महिमा, बाह्याडम्बरों एवं जाति-पांति का विरोध, सत्य-शील-सदाचार पर बल, लोकभाषा का प्रयोग इत्यादि संतकाव्य की प्रवृत्तियाँ है। कबीर, रैदास, दादू, रज्जब, नानक इत्यादि प्रमुख संत कवि है। प्रेममार्गी सूफी काव्य की प्रवृत्तियाँ हैं-लौकिक प्रेम कथाओं का आश्रय, लोकप्रचलित कथानक रूढ़ियों का प्रयोग, मसनवी शैली, प्रेम को सर्वोपरि महत्ता, लौकिक प्रेम में ईश्वरीय प्रेम की झलक, प्रबंधात्मकता, दोहा-चौपाई शैली, अवधी भाषा का प्रयोग। जायसी,

मंझन, कुतुबन, उसमान प्रमुख सूफी कवि हैं। विष्णु के अवतार राम की उपासना, ब्रह्म के सगुण-निर्गुण दोनों रूपों की स्वीकृति, दास्य भक्ति, शास्त्र एवं वर्णाश्रम व्यवस्था के प्रति आदर का भाव, लोकमंगल, समन्वय भावना, अवधी एवं ब्रज भाषा का प्रयोग-रामभक्ति काव्य की प्रवृत्तियाँ है। रामानंद ईश्वरदास, अग्रदास, तुलसीदास, नाभादास, केशवदास आदि इस धारा के प्रमुख कवि हैं। विष्णु अवतार श्रीकृष्ण की उपासना, लीलागान, लोकरंजन, ब्रह्म के सगुण-निर्गुण दोनों रूपों की स्वीकृति, शास्त्रज्ञान की अनावश्यकता, रामानुगा भक्ति, गीतिशैली, मुक्तक काव्य रूप एवं ब्रज भाषा का प्रयोग-कृष्ण काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ है। सूरदास, नंददास, हितहरिवंश, स्वामी हरिदास, मीरा, रसखान इस धारा के प्रमुख कवि है।

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप भक्ति कालीन कविता की विभिन्न शाखाओं से परिचित हो गए होंगे।

7.8 शब्दावली

1. अनहदनाद- विभिन्न चक्रो का भेदन करते हुए कुण्डलिनी जब अनाहत चक्र में पहुँचती है तब साधक को अनहदनाद सुनाई पड़ता है। और ब्रह्मानंद की अनुभूति होती है। अनहद नाद 'शब्द ब्रह्म' है जो समग्र विश्व में अखण्ड रूप में व्याप्त है।

2. अजपाजाप- बिना जीभ हिलाये, बाह्य साधनों का सहारा लिए बिना मन ही मन किए जाने वाला जाप अजपाजाप है। यह नाम स्मरण की उच्चतम आध्यात्मिक स्थिति है।

3. लोकमंगल एवं लोकरंजन- यह आचार्य शुक्ल की शब्दावली है, जिसका प्रयोग वह क्रमशः तुसली एवं सूर के संदर्भ में करते है। लोकमंगल का मूल भाव करुणा है, इसमें लोक रक्षा का भाव छिपा, रहता है। लोकरंजन का मूल भाव प्रेम है। कृष्ण भक्ति काव्य में लोकरंजन की प्रधानता है और रामभक्ति काव्य में लोक मंगल की।

(4) दृष्टकूट पद- सूर के 'साहित्य लहरी' में 'दृष्टिकूट पद' मिलते हैं। दृष्टकूट पद अर्थ गोपन शैली में रचे गए हैं जिसमें राधा-कृष्ण के प्रेम का वर्णन किया गया है।

7.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. नंददास
2. सूरदास
3. आखिरी कलाम
4. रामानंद
5. नाभादास

7.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. शुक्ल, रामचंद, हिंदी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा।
2. तिवारी, रामचंद्र, कबीर मीमांसा, विश्वविद्यालय प्रकाशन।

7.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. मिश्र, शिव कुमार, भक्ति आंदोलन और भक्ति काव्य
2. शुक्ल, रामचंद्र, हिंदी साहितय का इतिहास
3. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, हिन्दी साहित्य की भूमिका
4. पाण्डेय, मैनेजर, भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य
5. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, कबीर
7. सिंह, सं. उदयभानु, तुलसीदास
8. साही, विजयदेव नारायण, जायसी

7.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. निगुर्ण भक्ति काव्य के प्रगतिशील पक्षों का उदघाटन कीजिए।
2. सगुण भक्ति काव्य अपने काव्यात्मक औदात्य की दृष्टि से हिंदी की श्रेष्ठ कविता है। इसे तर्क द्वारा सिद्ध कीजिए।

इकई 8 रीतिकालः परिचय एव आलोचना

इकाई की रूपरेखा

8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्देश्य
8.3 रीतिकाल परिचय
8.3.1 पृष्ठभूमि एव प्रवर्त्तक का प्रश्न
8.3.2 काल-विजान
8.3.3 नामकरण
8.3.4 वर्गीकरण
8.3.5 प्रवृत्तियाँ
8.4 रीतिकालः आलोचनात्मक संदर्भ
8.4.1 दरबारीपन
8.4.2 वर्ण्य- संकोच: नकल या मौलिकता
8.4.3 काव्यात्मक प्रतिमान
8.5 रीतिकालीन कविताः भाषाई संदर्भ
8.6 रीतिकाल: मूल्यांकन
8.7 सारांश
8.8 शब्दावली
8.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
8.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
8.11 सहायक उपयोगी पाठ सामग्री
8.12 निबन्धात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य के इतिहास के उत्तर-मध्यकाल को 'रीतिकाल' की संज्ञा प्रदान की गई है। मध्यकालीन कविता के दो भाग है, जिसमें एक को भक्तिकाल कहा गया और दूसरे को रीतिकाल। भक्तिकाल अपनी विषय वस्तु एवं अभिव्यक्ति में अलग ढंग का काव्य है, तो रीतिकाल अलग ढंग का। कालगत मजबूरी न हो तो भक्तिकाल एवं रीतिकाल को एक साथ विवेचित करने का भी कोई औचित्य नहीं है। भक्तिकाल लोक संवेदना से युक्त काव्य है तो रीतिकाल राजाश्रय प्राप्त काव्य। एक भक्तित्व से युक्त है तो दूसरा श्रृंगारिक तत्व से। रीतिकालीन साहित्य के बारे में तटस्थ मूल्यांकन भी कम ही हुए हैं। एक वर्ग के आलोचक जहाँ इसे घोर सामंती छाया का काव्य मानते हैं तो दूसरा वर्ग इसे साहित्यिक दृष्टि से श्रेष्ठ काव्य कहता है। इन दो अतिवादों के बीच रीतिकालीन कविता के पुनर्मूल्यांकन के प्रयास भी समय-समय पर होते रहें हैं। इस इकाई के माध्यम से हम रीतिकालीन कविता की प्रवृत्तियों एवं उसके साहित्यिक मूल्यांकन का प्रयास करेंगे।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- रीतिकाल के काल-सीता, नामकरण से परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- रीतिकालीन प्रवृत्तियों से परिचित हो सकेंगे।
- रीतिकालीन समाज, संस्कृति का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- रीतिकाल के वर्गीकरण एवं स्वरूप से परिचित हो सकेंगे।
- रीतिकाल के प्रमुख कवियों से परिचित हो सकेंगे।
- रीतिकाल की उपलब्धि एवं सीमा को जान सकेंगे।

8.3 रीतिकाल परिचय

'रीतिकाल' मध्यकाल का प्रमुख काव्यान्दोलन था। भक्ति काल के बाद रीतिकालीन साहित्य का आगमन और फिर रीतिकालीन साहित्य के बाद पुनर्जागरणकालीन चेतना का उदय, यह चक्र कई इतिहासकारों के लिए पहेली सा है। लेकिन जो इतिहासकार साहित्य के समाज शास्त्रीय पद्धति से उसका अध्ययन करता है, उसके लिए रीतिकालीन साहित्य सामंती समाज को समझने का एक प्रामाणिक माध्यम भी बन जाता है। इस दृष्टि से रीतिकालीन कविता का अपना अलग महत्व है। इस इकाई में हम रीतिकालीन कविता को उसकी संपूर्णता में समझने को प्रयास करेंगे। रीतिकालीन साहित्य की विशेषता से पूर्व आइए हम उसकी पृष्ठभूमि को समझने का प्रयास करें।

8.3.1 पृष्ठभूमि

भारतीय मध्यकाल में भक्तिकाल का साहित्य जहाँ अपने औदात्य में प्रसंशित काव्य रहा है, वहीं रीतिकाल विषय-वस्तु के स्तर पर हमें उतना संतुष्ट नहीं कर पाता। इसके कई कारण हैं, जिसका अध्ययन हम आगे करेंगे। कई आलोचकों ने यह प्रश्न उठाया है कि भक्तिकाल जैसे श्रेष्ठ साहित्यिक काल के बाद रीतिकाल का आगमन कैसे और क्यों हुआ? साहित्य में क्या इतिहास-संस्कृति या समाज में परिवर्तन अचानक नहीं होता। लम्बी ऐतिहासिक प्रक्रिया के बाद कोई परिवर्तन होता है। इतिहास के राजनीतिक दृष्टिकोण से यदि हम देखें कि क्या कोई बड़ा (आधाभूत) परिवर्तन हुआ है तो इसका उत्तर हमें नहीं में मिलेगा। पूरे मध्यकाल की चेतना राजनीतिक दृष्टि से सामंती ही है, हाँ उसके स्वरूप में परविर्तन अवश्य हुआ है। रीतिकाल तक आते-आते सम्पूर्ण देश पर (प्रायः) मुगलकालीन सल्तनत स्थापित हो चुकी होती है। छोटे-छोटे हिन्दु राजा मुगल दरबार में 'कर' भेजकर भोग-विलीस में रत होते हैं। राजाश्रय प्राप्त कवियों का प्रधान ध्येय कामोद्दीप्त राजाओं के लिए उपभोग के चित्र खड़ा करना हो गया, कविता के मल्य पीछे चले गये। भक्तिकाल से रीतिकाल में रूपान्तरण पर टिप्पणी करते हुए रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है.....''भक्ति की अनुभूति की सद्यनना को व्यक्त करने के लिए बहुत बार राधा-कृष्ण के चरित्र, और दाम्पत्य जीवन के विविध प्रतीकों का सहारा लिया गया। ..... कालान्तर में राधा-कृष्ण के चरित्र अपने रूप में हट गए और वे महज़ दाम्पत्य जीवन के प्रतीक -रूप में अवशिष्ट रह गए। प्रेम और भक्ति की संपृक्त अनुभूति में से भक्ति क्रमशः क्षीण पड़ती गई, और प्रेम का श्रृंगारिक रूप केन्द्र में आ गया। भक्तिकाल के रीति- काल में रूपान्तरण की यही प्रक्रिया है।" (हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, पृष्ठ - 56) राजनीतिक दृष्टि से मुगलसत्ता की प्रतिष्ठा और हिन्दु राजाओं का लडा़ई से अलग होना, मनोवैज्ञानिक रूप से श्रद्धा तत्व के अभाव में प्रेम का वासनामय होना, परम्परा की दृष्टि से प्राकृत-संस्कृत की श्रृंगारिक रचना इत्यादि वे कारण थे, जो रीतिकाल के उदय होने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

8.3.2 काल-विभाजन

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रीतिकाल का काल-विभाजन करते हुए इसे 1643 ई. से लेकर 1843 ई. तक स्थिर किया है। चिंतामणि त्रिपाठी से लेकर अन्तिम बड़े रीतिकालीन कवि पद्माकर के रचनाकर्म को यह काल- समेटे हुए है। मोटे तौर पर प्रमुख आलोचकों ने रीतिकाल का काल विभाजन इस प्रकार किया है-

समय सीमा	आलोचक
1643-1843 ई.	रामचन्द्र शुक्ल
1700- 1900 ई.	हजारी प्रसाद द्विवेदी
1700-1868 ई.	डा. नगेन्द्र
1650-1850 ई.	रामस्वरूप चतुर्वेदी
1650- 1850 ई.	रामविलास शर्मा/ बच्चन सिंह

1624- 1832 ई. मिश्रबंधु

काल-विभाजन संबंधी प्रमुख आलोचकों के मतों को देखने पर यह बात सहज ही ध्वनित होती है कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का काल-विभाजन ही मोटे तौर पर स्वीकृत रहा है।

रीतिकाल के काल-विभाजन को संशोधित रूप में 1650 ई. से 1850 ई. के बीच मान लिया गया है। 1643 ई. से चिन्तामणि त्रिपाठी के माध्यम से रीतिकालीन प्रवृत्ति अखंड रूप से चली और पद्माकर की मृत्यु 1832 ई. के बाद समाप्त होती है। 1842- 43 ई. से राजा लक्षमण सिंह और राजा शिवप्रसाद सितारे 'हिन्द' का रचनाकाल प्रारंम्भ हो जाता है, अतः मोटे तौर पर 1850 ई. से रीतिकाल का समापन काल एवं आधुनिक काल का प्रारम्भ वर्ष मान लिया गया है।

रीतिकाल के प्रवर्त्तन के प्रश्न पर हिन्दी साहित्य के इतिहास में मतैक्य नहीं है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी रीतिकाल के प्रवर्त्तन का श्रेय चिंतामणि त्रिपाठी को दिया है। उन्होंने लिखा है- '' इसमें संदेह नहीं कि काव्यरीति का सम्यक् समावेश पहले पहल आचार्य केशव ने किया। पर हिन्दी में रीतिग्रन्थों की अविरल और अखंडित परम्परा का प्रवाह केशव की 'कविप्रिया' के प्रायः 50 वर्ष पीछे चला और वह भी एक भिन्न आदर्श को लेकर, केशव के आदर्श को लेकर नहीं।'' केशवदास का समय 1590 से प्रारम्भ होता है, जो कविप्रिया, रसिकप्रिया का रचनाकाल भी है। आचार्य शुक्ल के अतिरिक्त रीतिकाल के प्रवर्त्तक पर अन्य आचार्यों का मत इस प्रकार है-

केशव - जगदीश गुप्त, श्यामयुन्द दास, डा. नगेन्द्र
विद्यापति - विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
कृपाराम - भगीरथ मिश्र

इन सभी मतों का समन्वय करते हुए रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है- ''हिन्दी रीतिकाल परम्परा का आरंभ कहाँ से होता है, इस संबंध में कई दृष्टिकोण उपस्थित किए गए हैं। कालक्रम की दृष्टि से कृपाराम (रचनाकाल – 1541 ई.) का नाम पहले आता है, रचनाकार – व्यक्तित्व की समृद्ध की दृष्टि से केशव दास का (1555-1617 ई.) और आगे अखंड परम्परा चलने के विचार से चिंतामणि का (रचनाकाल - 1643 ई. के आस-पास)। रीतिकाव्यधारा अधिक सजग और व्यस्थित रूप से चलने के कारण यहाँ प्रवर्त्तन की बात कुछ अधिक स्पष्ट रूप से उठती है। कई काव्यशास्त्रीय पक्षों, और प्रबंध तथा मुक्तक शैलियों का प्रतिनिधित्व करने के कारण भक्ति से रीतिकाव्यधारा में रूपान्तरण का श्रेय अधिकतर केशवदास को दिया जाता है। वे कालक्रम से भक्तिकाल में है, पर प्रवत्ति की दृष्टि से रीतिकाल में। "(हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास', पृष्ठ - 63) आधुनिक आलोचकों ने रीतिकाल का सम्यक् निरूपण करने के कारण केशवदास को ही रीतिकाल का प्रवर्त्तक मान है।

8.3.3 नामकरण

रीतिकाल के नामकरण के प्रश्न पर टिप्पणी करते हुए डा. बच्चन सिंह ने लिखा है '' इस काल का नाम रीतिकाल रखने का श्रेय रामचन्द्र शुक्ल को है। प्रवृत्ति की दृष्टि से इससे बेहतर नाम की कल्पना नहीं की जा सकती ।'' (हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास' पृष्ठ 179) नामकरण के औचित्य पर चर्चा करते हुए हिन्दी साहित्य कोश, भाग 1 में टिप्पणी की गई है-" इस काल के काव्य की प्रभुत्व धारा का विकास कविता की रीति के आधार पर हुआ। यह 'रीति' शब्द संस्कृत के काव्यशास्त्रीय 'रीति' शब्द से भिन्न अर्थ रखनेवाला है। .....संस्कृत की रीति संबंधी यह धारण हिन्दी काव्यशास्त्र के कुछ ही ग्रन्थों में ग्रहण की गई है। परन्तु रीति को काव्य - रचना की प्रणाली के रूप में ग्रहण करने की अपेक्षा प्रणाली के अनुसार काव्य- रचना करना, रीति का अर्थ मान्य हुआ। इस प्रकार रीतिकाल का अर्थ हुआ ऐसा काव्य जो अलंकार, रस, गुण, ध्वनि, नायिका भेद आदि की काव्यशास्त्रीय प्रणालियों के आधार पर रचा गया हो। इनके लक्षणों के साथ या स्वतंत्र रूप से इनके आधार पर काव्य लिखने की पद्धति ही 'रीति' नाम से विख्यात हुई। '' (पृष्ठ- 563) रीतिकालीन काव्य रचना की विशेष पद्धति क्या थी? इस प्रश्न को थोडा़ और अच्छे ढंग से समझ लेना चाहिए। रीतिकाल के अधिकांश कवि, आचार्य - कवि थे। वे राजकुमार- राजकुमारियों को शास्त्रीय ज्ञान देने के लिए शिक्षक नियुक्त किए गए थे। अतः पहले वे शास्त्रीय ढंग से किसी विषय के लक्षण बताया करते थे और फिर व्यावहारिक रूप से लक्षण को स्पष्ट रकने लिए उदाहरण के रूप में स्व-निर्मित कविता की रचना किया करते थे। इस प्रकार लक्षण- उदाहरण की यह विशेष पद्धति ही 'रीतिकाल' नामकरण का आधार बनी। 'रीतिकाल' का नामकरण इसी आधार पर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने किया है। बावजूद इसके कई आलोचकों ने इस नामकरण से असहमति व्यक्त की है। उनका तर्क है कि 'रीतिकाल' नामकरण से इस युग की किसी प्रवृत्ति का बोध नहीं होता । रीतिकाल के अतिरिक्त इस युग का नामकरण अन्य आलोचकों ने अपने तर्की के अनुसार किया है , उसे हम इस आरेख के माध्यम से देख सकते हैं-

नामकरण	**आलोचक**
अलंकृत काल	मिश्रबंधु
कलाकाल	डा. रामाशंकर शुक्ल 'रसाल'
श्रृंगार काल	विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
रीतिकाल	ग्रियर्सन
मुक्तक काल	नन्ददुलारे बाजपेयी
दरबारीकाल	राहुल सांस्कृत्यायन
रीतिकाल	रामचन्द्र शुक्ल, डा. नगेन्द्र, रामस्वरूप चतुर्वेदी, बच्चन सिंह

रीतिकाल में रस की दृष्टि से श्रृंगार रस की प्रधानता रही, अलंकरण की वृत्ति के कारण अलंकारों का प्रयोग ज्यादा हुआ तथा दरबारी वृत्ति के प्रायः रचनाकार थे, अतः उपरोक्त

नामकरण भी अपनी सार्थकता अवश्य रखते हैं। किन्तु 'रीतिकाल; नामकरण अपनी वैज्ञानिकता एवं प्रसिद्धि के कारण बहुमान्य रहा है। अतः यहाँ हम भी इसी नामकरण को उचित मानते हैं।

8.3.4 वर्गीकरण

रीतिकाल का मूल स्वरूप दरबारीकाल और श्रृंगारिक रहा है, किन्तु उसके स्वरूप में काफी भिन्नता देखने को मिलती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सर्वप्रथम रीतिकाल का विभाजन किया है। शुक्ल जी ने स्पष्ट ढंग से रीतिकाल को दो भागों में विभाजित किया है-

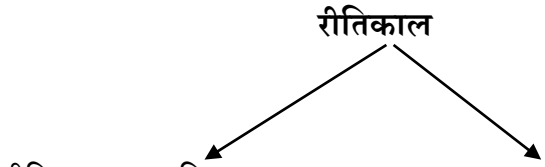

शुक्ल जी के अनुसार रीतिकाल की मुख्य प्रवृत्ति रीति निरूपण की रही है। लेकिन कुछ कवियों ने रीति पद्धति का पालन नहीं किया है, इसलिए उन्होंने उन कवियों को 'अन्य कवि' कहा है। विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने रीतिकाल का सबसे पूर्व, वैज्ञानिक विभाजन करने हुए इसे रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध इत्यादि कहा है। डा. नगेन्द्र ने इसे और स्पष्ट ढंग से विभक्त करते हुए रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त नाम दिया है। डा. बच्चन सिंह ने रीतिकालीन कविता का विभाजन करते हुए इसे रीतिचेतस और काव्य चेतस नाम दिया है। रीतिबद्ध कविता के साथ ही उन्होंने मुक्त रीति नामक विभाजन और किया है और उसे पुनः क्लासिकल (बिहारी) और स्वच्छन्द (घनानन्द) के उप-विभाजनों में बाँट दिया है। वस्तुतः रीतिकालीन कविता के मुख्यतः तीन विभाजन ही सर्वमान्य रहे हैं, जिसे हम इस आरेख के माध्यम से देख सकते हैं-

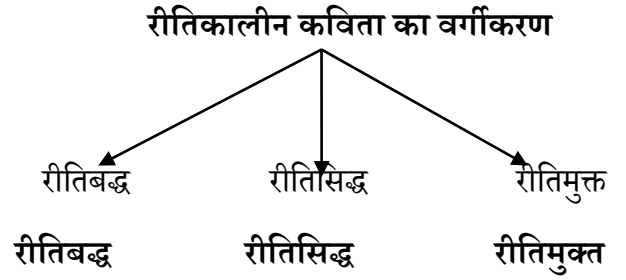

रीतिकाल कविता संबंधी उपरोक्त विभाजन का आधार यह है कि जिन कवियों ने लक्षण ग्रन्थों की रचना की है, वे रीतिबद्ध कहलाये। जिन कवियों ने लक्षण ग्रन्थों के आधार पर उदाहरणों की रचना की, वे रीतिसिद्ध कहलाये तथा जिन कवियों ने रीतिकालीन लक्षण-उदाहरण से इतर स्वच्छन्द रूप से प्रेमपरक कविताएँ लिखी है वे रीतिमुक्त कहलाये।

8.3.5 प्रवृत्तियाँ

जैसा कि हमने अध्ययन किया कि रीतिकालीन साहित्य राजश्रय प्राप्त साहित्य रहा है। राजश्रय प्राप्त साहित्य के निर्माण की पृष्ठभूमि में राजाओं की इच्छा, उनकी रूचि एवं उनके हित साधन की प्रवृत्ति प्रेरक रूप में रहती है। रीतिकालीन साहित्य की प्रवृत्ति भी सामंती कारणों से पचिचालित हुई है। संक्षेप में यहाँ हम रीतिकालीन साहित्य की प्रवृत्ति समझने की कोशिश करेंगे।

- **रीति-निरूपण की प्रवृत्ति :** रीतिकाल कविता की सबसे बडी़ पहचान यह है कि कविता करने की एक विशेष पद्धति का पालन अधिकांश कवियों ने किया है, उसी को रीति-निरूपण कहा गया है। पहली पंक्ति में लक्षण एवं द्वितीय पंक्ति में उदाहरण लिखना इसी पद्धति के अंतर्गत आते हैं। रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि वाग्धारा बँधी हुई नालियों में कहने लगी। कविता कहने की बँधी हुई रीति का पालन करने का दुष्परिणाम यह हुआ कि कवियों द्वारा चुने गए वर्ण्य- विषयों में संकोच हो गया। रूप-विधान के चुनाव से साहित्य कैसे संकुचित होता है, इसका अच्छा उदाहरण है- रीतिकालीन कविता।
- **श्रृंगारिकता की प्रवृत्ति -** रीतिकाल में रस की दृष्टि से श्रृंगार रस की ही अधिकता रही। इसी का लक्ष्य कर विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इस काल को 'श्रृंगार काल' कहा था। अन्य रसों वीर रस की दृष्टि से भूषण का काव्य महत्वपूर्ण है, लेकिन वह उस युग की मूल प्रवृत्ति से मेल नहीं खाता है। श्रृंगार प्रवृत्ति के मूल में सामंतो की उपभोगपरक दृष्टि की मुख्य भूमिका रही है। इस काल के कवियों ने भी राजाओं को कामोद्दीप्त करना। अपनी कविता का प्रधान लक्ष्य मान लिया था। श्रृंगारिकता की प्रवृत्ति के मुख्य वर्ण्य विषय बने-नायिका भेद, नखशिख एवं ऋतु-वर्णन। 'पानिप अमल की झलक झलकन लागी/काई-सी गइ है लरिकाई कढ़ि अंग ते ।।' जैसे वाक्य रीतिकालीन कविता में यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। डॉ. बच्चन सिंह ने लिखा है- ''नगर के बाहर के उनके उपवनों में भारतीय और पारसी पुष्पों की बहार थी। कमलो से सुशाभित और भ्रमरों से मुखरित स्वच्छ सरोवरों मै स्नान करती हुई सुन्दरियों के अनावृत्त सौन्दर्य को देखकर कवियों की सरस्वती फूट पड़ती थी''
- **सहजता बनाम अलंकरण-** भक्तिकालीन सहजता की प्रतिक्रिया रीतिकालीन अलंकरण के रूपमें हुई । मिश्रबंन्धु जैसे इतिहासकारों ने इस काल की कविता में अलंकारों के आधिक्य को देखकर ही इसे 'अलंकृत' काल कहा है। केशवदास जैसे बड़े कवि की कविता अलंकारों के आधिक्य से दुरूह हो गई है। भूषण जैसे प्रतिभाशाली कवियों में भी अलंकार का निरर्थक प्रयोग हुआ है। कविता में अलंकार जहाँ सौन्दर्य की वृद्धि करे वहाँ तक तो ठीक है, लेकिन जहाँ वह केवल सजावट के लिए लाये गये हों, वहाँ कविता की आत्मा मर जाये तो आश्चर्य ही क्या? अलंकरण की इस प्रवृत्ति को आचार्य शुक्ल ने- हाथी-दाँत के टुकड़े पर महीन बेलबूटे कहा है। भूषण का प्रसिद्ध ग्रन्थ 'शिवराजभूषण' अलंकार ग्रन्थ ही है। केशव की कविप्रिया और मतिराम की 'ललित

ललाम ' में अलंकार विवेचन ही है। अलंकार निरूपण की दृष्टि से जसवन्त सिंह का 'भाषा भूषण' रीतिकाल का आधार ग्रन्थ रहा है।

- **सामंती चित्र और दरबारीपन-** रीतिकालीन-कविता की प्रेरक शक्ति सामंतवाद और दरबारीपन रहे हैं। राहुल सांकृत्यायन, रामविलास शर्मा जैसे आलोचक रीतिकाल की मुख्य प्रवृत्ति 'दरबारीपन' मानते हैं। इसमें आश्रयदाता राजा की प्रशस्ति पर बल होता है। भूषण का ग्रन्थ शिवराज भूषण, छत्रसालदशक राजप्रशस्ति और दरबारी मनोवृत्ति का अच्छा उदाहरण है। तुसली जहाँ इस बात के लिए सतर्क थे कि उनकी लेखनी से प्राकृत लोगों का गुनगान न हो जाये ('कीन्हे प्राकृतजन गुन गाना/सिर धुनि गिरा लागि पछताना') वहीं इस काल के कवियों ने गर्व से अपने को दरबारी कवि बताया है। सामंती उपभोग चित्रों पर टिप्पणी करते हुए बच्चन सिंह ने लिखा है- ''सामंती दिनचर्या का वर्णन देव ने अपने अष्टयाम में किया है। ऋतु के अनुकूल मादक द्रव्य एकत्र करने में कोई चूक नहीं होती थी। वसंत और वर्षा अपने-आप उद्दीपन है। ग्रीष्म में बर्फ, शीतल पाटी, अंगूरी आसव, खस की टाटी, और ऊँचीहीं कुच है , तो शिशिर में गिलमैं, गुनीजन, गलीचा, सेज, सुराही , सुबाला आदि..... यह सब सामंती शान के आदर्श थे। जीवन-दर्शन के इस सोपान पर कवि अपनी कल्पना के बल पर पहुँच जाता था। इन आदर्शों से गाँव का कोई नाता नहीं था। इसलिए नागर संस्कृति में बिहारी ने गाँव की हँसी उडा़ने में कोई कसर नहीं की है। सारे इतिहास ग्रन्थों को निचोड़ने पर भी सामंती परिवेश का इतना यर्थाथ एवं जीवन्त चित्रण कहीं नहीं मिलेगा।''

अभ्यास प्रश्न 1

रिक्त स्थान पूर्ति कीजिए।

1. रीतिकाल का समय ..... ईसवीं के बीच है।
2. रीतिकालीन साहित्य पर..... ने सबसे पहले वैज्ञानिक दृष्टि से विचार किया।
3. रीतिकाल को श्रृंगार काल ..... ने कहा है।
4. चिन्तामणि त्रिपाठी से रीतिकाल का प्रवर्त्तन ..... ने माना है।
5. कृपाराम से रीतिकाल का प्रवर्त्तन..... ने माना है।

अभ्यास प्रश्न 2

निम्नलिखित शब्दों पर 8-10 पंक्तियों में टिप्पणी लिखिए।

1. रीतिकाल की पृष्ठ भूमि
2. रीतिकालः नामकरण की समस्या
3. रीतिकाल की प्रवृत्ति

8.4 रीतिकालः आलोचनात्क संदर्भ

रीतिकालीन काव्य प्रकृति पर चर्चा करते हुए रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है - '' रीतिकाल में कवि ईश्वर और मनुष्य दोनों का मनुष्य रूप में चित्रण करता है (भक्तिकाल में ईश्वर की नर- लीला का चित्रण है।) यहाँ भक्तिकाल और (रीतिकाल की प्राथमिकता के बीच अन्तर स्पष्ट दिखाई देता है। भक्त तुलसीदास लिखते हैं-

''कवि न होउँ नहिं चतुर कहावउँ। मति अनुरूप राम गुन गावउँ।''

पर आचार्य भिखारीदास का कहना है-

आगे के सुकबि रीझिहें तों कविताई न तौ,
राधिका - कन्हाई सुमिरन को बहानें है।''

कहने का अर्थ यह है कि दोनों काव्य आन्दोलनों की प्रेरणा भूमि अलग है। आइए अब हम रीतिकालीन कविता को आलोचनात्मक संदर्भी में समझने का प्रयास करें।

8.4.1 दरबारीपन

दरबारीपन स्थिति नहीं प्रवृत्ति है। जब कोई कवि, लेखक आपने आश्रयदाता की अतिश्योक्तिपूर्ण प्रशंसा अपने संकुचित स्वार्थ के लिए करता है, जब कोई कवि/ लेखक सामजिक गतिशीलता से विमुख होकर किसी आधिपत्यकारी ताकतों के हित में लिखता है तो उसे हम दरबारीपन कह सकते हैं। दरबारीपन के लिए जरूरी नहीं कि कवि/ लेखक राज दरबार में बैठकर ही लिखे। हाँलाकि रीतिकालीन कविता राजाश्रय और दरबार में ही लिखी गई है। रीतिकालीन साहित्य की उपयोगिता का मूल्यांकन करते हुए हिन्दी साहित्य कोश में लिखा गया है ''यह काव्य समाज को प्रगति प्रदान करने में समर्थ नहीं है। रीतिकाव्य और कुछ प्रबन्धकाव्यों में भी हमें व्यापक जीवन-दर्शन वहीं मिलता, इसमें कोई सन्देह नहीं। ..... आश्रयदाता की प्रशंसा में उठी हुई काव्य- स्फूर्ति का सामाजिक तो नहीं परन्तु ऐतिहासिक महत्व अवश्य है। आश्रयदाता की प्रशंसा कला और काव्य के संरक्षण और आश्रय के कारण भी थी और इसके लिए उनकी उदार भावना सराहनीय है। ये राजाश्रय, जिनमें रीतिकालीन कलाकृतियों का विकास हुआ , कवि- दूर से प्रति-भावों को अपने गुणों और कला-प्रेम के कारण खींच सके। अतः मध्ययुगीन राजाश्रय ने कला, काव्य के संरक्षण और प्रेरणा के लिए महत्तवपूर्ण कार्य किया है, यह हमें मानना पड़ेगा।''

8.4.2 वर्ण्य-संकोचः नकल या मौलिकता

रीतिकालीन कविता के वर्ण्य-संकोच पर प्रायः आलोचकों में आपत्ति की है। 200 वर्षों तक कविता श्रृंगार नायिका -भेद, अलंकरण एवं रीति-निरूपण के इर्द-गिर्द घूमती रही है। इस वर्ण्य-संकोच के कारण जहाँ यह कविता सामजिक गतिशीलता में अपना काम जोड़ने से रह गई, वहीं दूसरी ओर कविता के कुछ सुन्दर चित्र भी इकट्ठे हुए। रामस्वरूप चतुर्वेदी ने

रीतिकालीन कविता पर टिप्पणी करते हुए लिखा है- ''संस्कृत का काव्यशास्त्र, प्राकृत-अपभ्रंश की श्रृंगारी और पुस्तक-परंपरा, मध्यकालीन हिन्दी कृष्णभक्ति काव्य और उत्तर भारत के मंदिरों तथा दरबारों में विकसित शास्त्रीय संगीत- इन सबका रचनात्मक संपर्क रीतिकाल में हुआ। तब यह स्वाभाविक था कि इन कवियों के लिए मौलिकता का एक ही क्षेत्र सूक्ष्म परिकल्पना का रह जाए। आश्रयदाता की प्रशंसा तथा श्रृंगार -वर्णन के समय बहुत बार यह परिकल्पना अतिरंजना के आवेश में ऊहा का रूप धारण कर लेती है।.....पर बहुत जगहों पर यह परिकल्पना आत्मीय अनुभूति में डूब कर अनुपम काव्य-लय की सृष्टि करती है जो रीतिकाव्य की श्रेष्ठतम् उपलब्धि है। पंडितों के अलावा ऐसे छंन्द ग्रामीण अंचलों तक के मध्य-वित्त परिवार में लोगों को कंठस्थ रहे हैं, 'हजारा' जैसे संकलन इसके कारण और प्रमाण है। '' आगे रामस्वरूप चतुर्वेदी लिखते हैं कि - ''इनकी मौलिकता काव्य- पक्ष में है, आचार्यत्व में नहीं। और हिन्दी कविता के इतिहास के लिए यह अच्छा ही है। क्योंकि यदि आचार्यत्व की मौलिकता होती तो फिर इन्हें हिन्दी आलोचना और काव्यशास्त्र के संदर्भ में देखा- परखा जाता। कविता के संदर्भ में नहीं। "रीतिकालीन कविता-सिद्धान्त की मौलिकता पर टिप्पणी करतेहुए रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है- ''आचार्यत्व के लिए जिस सूक्ष्म विवेचन या पर्यालोचन शक्ति की अपेक्षा होती है उसका विकास नहीं हुआ। कवि लोग एक ही दोहे में अपर्याप्त लक्षण देकर अपने कविकर्म में प्रवृत्ति हो जाते थे। काव्यागां का विस्तृत विवेचन, तर्क द्वारा खंडन-मंडन, नये-नये सिद्धान्तों का प्रतिपादन आदि कुछ भी न हुआ। "रीतिकालीन आचार्यों ने किसी मौलिक सिद्धान्त की रचना नहीं की लेकिन क्या इनकी कविता का कोई मूल्य नहीं है? इस पर टिप्पणी करते हुए आचार्य शुक्ल लिखते हैं- ''इन रीतिग्रंथों के कर्ता भावुक, सहृदय और निपुण कवि थे। उनका उद्देश्य कविता करना था, न कि काव्यांगों का शास्त्रीय पद्धति पर निरूपण करना। अतः उनके द्वारा बड़ा भारी कार्य यह हुआ कि रसों (विशेषतः श्रृंगाररस) और अलंकारों के बहुत ही सरस और हृदयग्राही उदाहरण अत्यन्त प्रचुर परिमाण में प्रस्तुत हुए। ऐसे सरस और मनोहर उदाहरण संस्कृत के सारे लक्षणों से चुनकर इकट्ठा करें तो भी उनकी इतनी अधिक संख्या न होगी।''

8.4.3 काव्यात्मक प्रतिमान

रीतिकाल पर आचार्य रामचन्द्र ने सर्वप्रथम वस्तुनिष्ठ ढंग से विचार किया। शुक्ल जी की दृष्टि में रीतिकाल के समानान्तर भक्तिकालीन साहित्य था, इसलिए वे भक्तिकालीन काव्यात्मक (नैतिकता एवं लोकबद्धता) प्रतिमान के धरातल पर रीतिकाल का मूल्यांकन करते हैं, जिसका परिणाम यह रहा कि वे रीतिकालीन साहित्य को सहानुभूति न दे सके। इसका असर यह हुआ कि रीतिकालीन साहित्य के प्रति वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन का अभाव ही रहा। जैसा कि हिन्दी साहित्य कोश भाग एक में लिखा गया है- '' रीतिकालीन काव्य के सम्बन्ध में सामान्यतः दो प्रकार के मत हैं- एक उसे नितान्त हेय और पतनोन्मुख काव्य कहकर उसके प्रति घृणा और द्वेष का भाव जगाता है और दूसरा उस पर अत्यधिक रीझकर केवल उसे ही काव्य मानता है और अन्य रचनाओं, जैसे भक्ति और आधुनिक युग की कृतियों को उत्तम काव्य में परिगणित नहीं करता। वस्तुतः ये दोनों ही दृष्टिकोण पक्षपातपूर्ण है। रीतिकालीन काव्य पर जो दोष लगाये जाते

हैं, वे ये हैं- अश्लीलता, समाज को प्रगति प्रदान करने की अक्षमता, आश्रयदाता की प्रशंसा, विलासप्रियता और रूढ़िवादिता। रीतिकालीन समस्त काव्य को दृष्टि में रखकर जब हम इन दोषों पर विचार करते हैं तो हम कह सकते हैं कि ये समस्त दोष उस युग के काव्य या समस्त रीतिकाव्य पर लागू नहीं किए जा सकते हैं। साथ ही, इन दोषों में से अधिकांश प्रत्येक युग के काव्य में किसी-न-किसी अंश में पाये जाते हैं।'' (पृष्ठ - 564) पीछे हमने पढ़ा कि रीतिकालीन कविता को दो स्वरूप हैं। एक, सैद्धान्तिक स्वरूप, जिसमें कवियों ने लक्षण देकर काव्य की सैद्धान्तिक विवेचना की हैं दूसरे, व्यावहारिक स्वरूप, जिसमें कवियों ने कविताओं की रचना की है। लक्षण-मुक्त कविता ही रीतिकालीन साहित्य का प्राणतत्व है। रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है, ''रीतिकालीन काव्य की विशिष्टता इस बात में है कि उसकी मूल प्रेरणा ऐहिक है।" (हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, पृष्ठ - 56) डा. नगेन्द्र ने भी काव्यात्मक प्रतिमान के आधार पर रीतिकालीन कविता को महत्तवपूर्ण माना है। श्रृंगारिक चित्रों की सरसता जैसी रीतिकालीन साहित्य में देखने को मिलता है, वैसी अन्य किसी साहित्य में नहीं। एक -दो उदाहरण देखें-

कुन्दन को रँगु फीको लगै झलकै अति अंगन चारू गुराई।
आँखिन में अलसानि चितौनि में मंजु विलासन की सरसाई।।
को बिनु मोल बिकात नहीं मतिराम लहै मुसकानि मिठाई।
ज्यों -ज्यों निहारियों नेरे है नैननि त्यों-त्यों खरी निखरै सी निकाई।।

फाग की भीर अभीरन तें गहि गोविन्दैं लैगई भीतर गोरी।
भाई करी मन की 'पद्माकर' ऊपर नाय अबीर की झोरी।।
छीन पितंबर कम्मर तें सु बिदा दई मीड़ि कपोलन रोरी।
नैन नचाइ, कह्यो मुसक्याइ, लला, फिर आइयो खेलन होरी।।

8.5 रीतिकालीन कविताः भाषाई संदर्भ

रीतिकालीन कविता की भाषा प्रधानतः ब्रजभाषा ही रही है। ब्रजभाषा श्रृंगार एवं नीति के सर्वथा अनुकूल पड़ती है। समरसता की दृष्टि से तो रीतिकालीन कविता की प्रशंसा अधिकांश आलोचकों ने की है, लेकिन व्याकरणिक दृष्टि से यह कविता हमें बहुत संतुष्ट नहीं कर पाती। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा हैः '' रीतिकाल में एक बड़े भारी अभाव की पूर्ति हो जानी चाहिए थी, पर वह नहीं हुई। भाषा जिस समय सैकड़ों कवियों द्वारा परिमार्जित होकर प्रौढ़ता को पहुँची उसी समय व्याकरण द्वारा उसकी व्यवस्था होनी चाहिए थी कि जिससे उस च्युतसंस्कृति दोष का निराकरण होता जो ब्रजभाषा काव्य में थोडा़ बहुत सर्वत्र पाया जाता है। और नहीं तो वाक्य दोषों का पूर्ण रूप से निरूपण होता जिससे भाषा में कुछ और सफाई आती।'' (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 169) शुक्ल जी ने भाषा अव्यवस्था का कारण ब्रज और अवधी इन दोनों काव्यभाषाओं का कवि इच्छानुसार सम्मिश्रण भी था। इस सम्बन्ध में बच्चन सिंह ने टिप्पणी की हैः ''पर रीतिकाल में हिन्दी का भौगौलिक क्षेत्र पहले से व्यापक हो गया। .....

अतः उनकी बोलियों में स्थानीय बोलियों का भी सन्निवेश हो गया। इससे ब्रजभाषा और भी समृद्ध हुई। '' (हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, पृष्ठ 186) यानी शुक्ल जी की दृष्टि में रीतिकालीन भाषा में व्याकरणिक दोष है वहीं बच्चन सिंह ने भाषाई विस्तार को रीतिकालीन कविता का गुण कहा है। इन सबसे अलग रामस्वरूप चतुर्वेदी ने रीतिकालीन भाषा की तुलना भक्ति काल की भाषा से की है। एक ओर भक्ति कवि भाखा (लोकभाषा) में रचना करने पर गर्व करते हैं **(भाखाबद्ध करब मैं सोई। मोरे मन प्रबोध जेहिं होई - तुलसी)** तो दूसरी ओर केशवदास भाखा में रचना करने के कारण लज्जित है। रामस्वरूप चतुर्वेदी की इस संदर्भ में टिप्पणी है ''रीतिकालीन काव्य भाषा का सामान्य रूप क्रमशः अधिकाधिक स्थिर और शास्त्रीय होता गया। रीतिकालीन भाषा के क्रमशः जड़ होने के पीछे एक कारण यह भी था कि जहाँ अन्य युगों में काव्यभाषा के कई आधार कवियों को विकल्प रूप में सुलभ थे- खडी़ बोली - ब्रजभाषा - अवधी-वहाँ रीतिकाल में आकर काव्यभाषा का एक ही आधार प्रतिष्ठित हो गया- ब्रजभाषा। स्वभावतः कबीर और सूर के समय से लेकर भिखारीदास तक ब्रजभाषा के पुनर्नवीकरण की प्रक्रिया कितनी बार संभव हो सकती थी?'' (हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, पृष्ठ - 57)

अभ्यास प्रश्न 3

सत्य/असत्य बताइए -

1. रीतिकालीन कविता राजाश्रय में लिखी गई है।
2. रीतिकालीन को अलंकृत काल मिश्रबधुओं ने कहा है।
3. लक्षण ग्रन्थों का सम्यक समावेश हिन्दी कविता में आचार्य केशव ने किया है।
4. कृपाराम की 'हिततरंगिणी' रीतिकाल की पहली रचना मानी जाती है।
5. रीतिकाल की कविता का समय मुगल काल का समय है।

8.6 रीतिकालः मूल्यांकन

आपने अध्ययन किया कि रीतिकालीन कविता का लक्ष्य सामजिक जागरण करना या समाज को गतिशील करना नहीं था, बल्कि इसका लक्ष्य सामंतों का मनोरंजन करना या राजकुमार/राजकुमारियों को शिक्षा देना था या जीवकोपार्जन करना । इस दृष्टि से नैतिकता की तुला पर कोई चाहे तो इस काव्य को खा़रिज कर सकता है, जैसा कि रामचन्द्र शुक्ल ने किया है। लेकिन यह देखने पर यह काव्य उतना हेय नहीं है, बल्कि कहीं-कहीं यह हमारी मदद भी करता है। डा. बच्चन सिंह ने रीतिकाल का मूल्यांकन करते हुए लिखा हैः '' मुगल शैली के मिनिएचर चित्रों की भाँति रीतिकालीन काव्यों- विशेषतः श्रृंगारिक काव्यों की बिंब चेतना अनेक मुद्राओं में अभिव्यक्त हुई है। मुद्राओं का इतना वैविध्य भक्तिकालीन काव्य में नहीं मिलेगा। "रीतिकाल का समय मोटे तौर पर भारतीय इतिहास में मुगलकाल का समय है। हम जानते हैं कि मुगलकाल में चित्रकला, वास्तुकला एवं संगीत का प्रचुर विकास हुआ था। रीतिकाल के काव्यों में

मूर्तिमता, चित्र , बिंब, ध्वनि इल्यादि पर मुलकालीन ललित कलाओं का पर्याप्त प्रभाव है। सामंती जीवन के चित्र उकेरने की दृष्टि से रीतिकाल जैसे परिचायक मिलना कठिन है। डा. बच्चन सिंह ने लिखा है कि सारे इतिहास ग्रन्थों को निचोड़ने पर भी सामंती परिवेश का इतना यर्थाथ एवं जीवंत चित्रण कहीं नहीं मिलेगा। इस प्रकार का मन्तव्य इतिहासकार हरिशचन्द्र वर्मा ने व्यक्त किया है। उन्होंने लिखा है कि मुगलकाल की सभ्यता - संस्कृति को समझने के लिए रीतिकालीन साहित्य से अच्छा परिचायक दूसरा कोई नहीं है। रीतिकालीन काव्य के मूल्यांकन के प्रश्न पर विचार करते हुए रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है '' रीतिकालीन काव्य का आकर्षण समाज में क्यों बना रहा? इस प्रश्न से आलोचक और इतिहासकार बार-बार उलझते हैं और घूम फिरकर एक ही सामधान उभरता है इस काव्य की श्रृंगारिकता को गाढ़े रेखांकित करके। .....एक सामान्यतः धर्म-भीरू समाज को काव्यास्वाद की यह बहुत बड़ी सहूलियत मिल गई। रीतिकालीन श्रृंगार-चित्रण की यह अपने में विशिष्टता है। .....आकर्षण का एक दूसरा कारण यह है कि रीतिकालीन काव्य भले राजाश्रय में लिखा गया हो, ये ग्रन्थ आश्रयदाताओं को समर्पित हों या उनका नामकरण इन कृपालु शासकों के नाम पर हुआ है और वे उनकी साहित्य-शिक्षा के लिए रचे गए हों, पर इन मुक्तकों में अंकित जीवन प्रायः शत्-प्रतिशत् सामान्य ग्रहस्थ घरों का है। ये नायक- नायिकाएँ राजा-रानियाँ-राजकुमारियाँ नहीं है, वरन् साधारण गोप- गोपियाँ या खाते-पीते घरों की युवतियाँ हैं, जिन्हें उस युग का मध्य वर्ग कहा जा सकता है। '' (हिन्दी साहित्य संवेदना का विकास, पृष्ठ - 58)

8.7 सारांश

इस इकाई के माध्यम से अब तक आप रीतिकालीन कविता के स्वरूप एवं प्रवृत्ति से परिचित हो चुके हैं। इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आपने जाना कि-

- हिन्दी साहित्य का 'उत्तर रमध्यकाल' (1650- 1850 ई.) रीतिकाल कहलाता है।
- इस काल की कविता का विकास कविता की रीति के आधार पर हुआ। काव्य-रचना की प्रणाली के रूप में रीति को ग्रहण किया गया है। कवि अपनी कविता में पहले काव्य के लक्षण लिखता था और फिर उसको स्पष्ट करने के लिए उदाहरण की रचना करता था। लक्षण-उदाहरण की यह विशिष्ट पद्धति ही 'रीति' है। और इसी कारण इस काव्य धारा को 'रीतिकाल' कहा गया है।
- रीतिकाल के विकास में कई तत्वों का योगदान है। संस्कृत काव्यशास्त्र के सिद्धान्त, प्राकृत-अपभ्रंश की श्रृंगारी और मुक्तक परम्परा, मध्यकालीन हिन्दी कृष्णभक्ति काव्य, उत्तर भारत के मंदिरों तथा दरबारों में विकसित संगीत, तत्कालीन राजनीतिक वातावरण, जिसमें हिन्दु राजा युद्ध से अलग होकर उपभोग की ओर मुड़े, भक्तिकाल के भक्ति-आस्था की श्रृंगार में प्रतिक्रिया इत्यादि तत्वों का प्रभाव एवं प्रेरणा रीतिकालीन कविता पर देखा जा सकता है।

- रीतिकालीन कविता राजदरबार में लिखा गया है। अतः इसका उद्देश्य राजाओं की रूचि से जुड़ा रहा है। श्रृंगारिक चित्र, अलंकरण की वृत्ति ा, दरबारीपन एवं रीति-निरूपण रीतिकालीन कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ हैं।
- रीतिकालीन कविता के मुख्यतः तीन भेद किए गये हैं। रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध एवं रीतिमुक्त
- रीतिकालीन साहित्य नैतिकता की दृष्टि से या मानवीय मूल्यों के औदात्य की दृष्टि से हमें भले ही सन्तुष्ट न कर पाये, लेकिन मुगलकालीन सामंती क्रियाकलापों का यह प्रामाणिक दस्तावेज है।

8.8 शब्दावली

रीतिबद्ध - काव्य रचना की बँधी हुई परिपाटी पर काव्य रचना करना।

दरबारीपन - सामंत/ राजा को प्रसन्न करने के लिए लिखा गया काव्य।

अखण्ड - बिना अवरोध के चलने वाली प्रवृत्तियाँ

प्रशस्ति - किसी की प्रशंसा बढ़ा-चढ़ा करना।

पुनर्जागरण - नवीन चेतना का उदय

रूपान्तरण - स्वरूप बदलने की प्रक्रिया।

8.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. 1650- 1850 ई. 2. रामचन्द्र शुक्ल 3. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
4. रामचन्द्र शुक्ल 5. भगीरथ मिश्र

अभ्यास प्रश्न 3

1. सत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. सत्य 5. सत्य

8.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. शुक्ल, रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
2. चतुर्वेदी, रामस्वरूप, हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास,लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
3. सिंह, बच्चन, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. वर्मा धीरेन्द्र, हिन्दी साहित्य कोश, प्रथम- (सं) ज्ञानमण्डल प्रकाशन, वाराणसी।

8.11 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास- सं. डा. नगेन्द्र, मयूर पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।
2. रीतिकाल की भूमिका - डा. नगेन्द्र

8.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. रीतिकालीन कविता के नामकरण की समस्या पर विस्तार से विचार कीजिए?
2. रीतिकालीन कविता का मूल्यांकन कीजिए।

इकाई -9 हिन्दी गद्य का उद्भव व विकास

इकाई की रूपरेखा

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 गद्य साहित्य
9.4 हिन्दी गद्य की पृष्ठ भूमि
9.4.1 ब्रज भाषा में गद्य
9.4.2 खड़ी बोली में गद्य
9.5 हिन्दी गद्य का उद्भव व विकास
9.5.1 हिन्दी गद्य के उद्भव व विकास के कारण
9.5.2 प्रारम्भिक गद्य लेखन
9.5.3 अंग्रेजों की भाषा नीति
9.6 भारतेन्दु युग
9.7 द्विवेदी युग
9.8 प्रेमचन्द और उनके पश्चात्
9.9 सारांश
9.10 शब्दावली
9.19 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.12 उपयोगी पाठ्य सामग्री
9.13 निबंधात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हिन्दी गद्य के उद्भव एवं विकास के विषय में चर्चा की गयी है। हिन्दी साहित्य इतिहास के आधुनिक युग से पूर्व का साहित्य मुख्यतः कविता में है। इससे पूर्व गद्य की कुछ रचनाएँ अवश्य प्राप्त हुई हैं, लेकिन हिन्दी साहित्य परम्परा में उनका विशेष महत्व नहीं है गद्य का वास्तविक लेखन आधुनिक युग से हुआ, ऐसा क्यों हुआ तथा गद्य के विकास की स्थिति क्या रही, हम इस इकाई में इसी विषय पर विचार करेंगे।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई में हिन्दी गद्य के उद्भव व विकास पर प्रकाश डाला गया है। इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आपः

- गद्य एवं पद्य में अन्तर कर सकेंगे।

- हिन्दी गद्य के उद्भव व विकास के विषय में जान सकेंगे।
- ब्रज भाषा तथा खडी़ बोली के गद्य के सम्बन्ध में जानकारियाँ प्राप्त कर सकेंगे।
- अंग्रेजी शासन काल में भाषा सम्बन्धी विभिन्न दृष्टिकोणों को समझ सकेंगे।
- खडी़ बोली की प्रारम्भिक स्थितियों का उल्लेख कर सकेंगे।
- भारतेन्दु तथा द्विवेदी युग के गद्य साहित्य के उद्भव और विकास का उल्लेख कर सकेंगे।
- प्रेमचन्द एवं उनके पश्चात् के गद्य साहित्य के उद्भव व विकास पर संक्षेप में प्रकाश डाल सकेंगे।
- विभिन्न गद्यकारों के योगदान का उल्लेख कर सकेंगे।

9.3 गद्य साहित्य

आपने अब तक अनेक उपन्यास कहानी और निबन्ध पढ़े होंगे, किन्तु क्या कभी आपने विचार किया है कि साहित्य की इन विधाओं का विकास कैसे हुआ? इस इकाई के अन्तर्गत हम इस विषय पर चर्चा करेंगे कि गद्य का उद्भव और विकास कैसे हुआ ? आपने कबीरदास, तुलसीदास, सूरदास, केशवदास आदि की रचनाएँ पढ़ी होंगी, इससे आपको अनुभव हुआ होगा कि कबीर, तुलसीदास, सूरदास और केशवदास की रचनाएँ उपन्यास और कहानी से भिन्न प्रकार की रचनाएँ हैं। साहित्य की भाषा में कबीर, तुलसीदास, आदि की रचनाओं को छन्दोबद्ध रचना या कविता कहा जाता है, जबकि उपन्यास, कहानी, निबन्ध आदि को गद्य । इस अन्तर को और अधिक स्पष्ट रूप में जानने के लिए आप कबीरदास की इन पंक्तियों को पढिए ।

वकरी पाती खात है, ताकी काढ़ी खाल,
जो बकरी को खात है, तिनको कौन हवाल।।

अब नीचे दी गयी इन पंक्तियों की तुलना कबीरदास की उपरोक्त रचना से कीजिये। निम्नलिखित पंक्तियाँ डॉ0 पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल के निबन्ध कबीर और गाँधी से उद्धृत की गयी है।

‘‘यदि कबीर अपनी ही कविता के समान सीधी सादी भाषा में उल्लिखित आदर्श हैं तो गाँधी उसकी और भी सुबोध क्रियात्मक व्याख्या, यदि प्रत्येक व्यक्ति इस विशद व्याख्या की प्रतिलिपि बन सके तो जगत का कल्याण हो जाय।"

उपरोक्त दोनों उदाहरणों की तुलना करने पर आप स्पष्ट रूप से जान जायेंगे कि भाषा के इन दो प्रयोगों में क्या भिन्नता है? छन्दोबद्ध कविता में गेयता तथा लय होती है, जबकि गद्य में भाषा व्याकरण के अनुरूप होती है। आरम्भ में समस्त संसार के साहित्य में काव्य रचना का प्रमुख स्थान था। भारत में रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्य इसी काव्य कला के अनुपम

उदाहरण हैं। काव्य के अतिरिक्त नाटकों में काव्य भाषा का प्रयोग अधिक हुआ। प्रश्न यह कि आधुनिक युग से पहले गद्य की अपेक्षा कविता में ही रचना क्यों होती थी? उत्तर है कि कविता को गेयता, छन्दबद्धता और लय के कारण याद रखना सरल था। प्राचीन काल में मुद्रण कला का अभाव था, इसलिए पीढ़ी-दर-पीढ़ी साहित्य को मौखिक परम्परा से आगे बढ़ाने में कविता भाषा सहायक थी। प्राचीन काल में गद्य में भी साहित्य रचना होती थी लेकिन इन रचनाओं की संख्या सीमित थी। उस युग में भावों की अभिव्यक्ति के लिए जहाँ काव्य रचना की जाती थी वहाँ सैद्धान्तिक निरूपण के लिए गद्य का प्रयोग होता था। इसका सबसे अच्छा उदाहरण संस्कृत साहित्य का लक्षण ग्रन्थ '' काव्य प्रकाश'' है जिसमें भावों को प्रकट करने के लिए कविता का प्रयोग हुआ है तो सिद्धान्त निरूपण के लिए संस्कृत गद्य का।

अब आपके मन में रह रहकर यह प्रश्न उत्पन्न हो रहा होगा कि आधुनिक युग में कविता की प्रमुखता होने पर भी गद्य में लेखन क्यों आरम्भ हुआ। इसके क्या कारण थे? आदि काल में परस्पर विचार- विनिमय के लिए एक भिन्न प्रकार की भाषा का प्रयोग होता था। यह सामान्य बोल-चाल की भाषा थी, जो कि कविता भाषा से भिन्न थी। भाषा के इसी रूप को गद्य कहा गया था। भाषा का यह रूप जो उसकी व्याकरणिक संरचना के सबसे अधिक निकट हो, गद्य कहलाता है, जबकि पद्य में व्याकरणिक नियमों की नहीं छन्द, लय और भावों की प्रधानता होती है। गद्य लेखन पूर्व था लेकिन मुद्रण प्रणाली के अस्तित्व में आने के पश्चात् ही प्रचलन में आया। आज सभी पत्र पत्रिकाओं और पुस्तकों के लेखन में इस गद्य भाषा का प्रयोग हो रहा है।

9.4 हिन्दी गद्य की पृष्ठभूमि

हिन्दी गद्य साहित्य का उद्भव और विकास कैसे हुआ? इस पर चर्चा करने के साथ-साथ ही हम अब यहाँ पर यह भी विचार करेंगे कि हिन्दी गद्य किस भाँति विकसित होकर वर्तमान स्वरूप को प्राप्त हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी से पूर्व हिन्दी भाषा में गद्य रचनाएँ अधिक नहीं थी। उस समय ब्रजभाषा साहित्य की भाषा थी। जिसमें भाव-विचार की अभिव्यक्ति के लिए कविता भाषा का ही प्रयोग होता था लेकिन बोलचाल की भाषा गद्य थी। ब्रजभाषा के बोल-चाल के इस रूप का प्रयोग गद्य रचनाओं में होता था। हिन्दी गद्य विकास की दृष्टि से इन रचनाओं का महत्वपूर्ण स्थान है। इसलिए इन प्रारम्भिक रचनाओं के इस रूप से परिचय होना भी अनिवार्य है।

9.4.1 ब्रजभाषा गद्य:

जैसा कि आप जानते हैं कि विद्वानों की भाषा सामान्य जन की भाषा से भिन्न होती है। जिस समय ब्रजभाषा में कविता का सृजन हो रहा था, उसी समय जन सामान्य पारस्परिक बोल-चाल में ब्रजभाषा के गद्य रूप का प्रयोग करता था। लेकिन जब किसी संत महात्मा या कवि को अपने पंथ, सम्प्रदाय या मत के शुभ सन्देश सामान्य जनता तक पहुँचाने होते थे, वे अपनी कविता भाषा को छोड़कर ब्रजभाषा की बोल चाल की भाषा का ही प्रयोग करते थे। उनकी यही

बोल चाल की भाषा धीरे-धीरे साहित्य की गद्य भाषा भी बनी। इसके साथ ही अनेक काव्य ग्रन्थों को सामान्य जनता तक पहुँचाने के लिए विद्वानों ने टीकाएं भी लिखीं, ये टीकाएं भी गद्य भाषा में होती थीं। इस युग की गद्य- रचना का एक उदाहरण दृष्टव्य है।

"सो वह पुरूष सम्पूर्ण तीर्थ स्थान करि चुकौ, अरू सम्पूर्ण पृथ्वी ब्राहमननि को दे चुको, अरू सहस्र जज्ञ कटि चुकौ, अरू देवता सब पूजि चुकौ, पराधीन उपरान्ति बन्धन नहीं, सुआधीन उपरान्त मुकति नाहीं, चाहि उपरान्त पाप नाहीं, अचाहि उपरान्त पुति नाहीं", (हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास- बाबू गुलाब राय -पृष्ठ 110)

उपरोक्त रचना अंश 'गोरख-सार' का गद्यांश है, जिसे संवत् 1400 की रचना माना जाता है। इसके अतिरिक्त महाप्रभु बल्लभाचार्य के पुत्र गोसाई विट्ठलनाथ जी ने ब्रज भाषा गद्य में 'श्रृगार मण्डन' लिखा, इनके बाद इनके पौत्र गोकुल नाथ ने ब्रजभाषा में चौरासी बैष्णव की वार्ता' तथा दो सौ बावन बैष्णवन की वार्ता'' लिखी, इनमें बैष्णव भक्तों की महिमा व्यक्त करने वाली कथाऐं लिखी हैं। इन सबकी गद्य भाषा व्यस्थित एवं बोल चाल रूप में हैं। इस भाषा का एक उदाहरण प्रस्तुत है।

''सो श्री नंदगाम में रहा हतो, सो खंडन, ब्राहमण शास्त्र पढयों हतो, सो जितने पृथ्वी पर मत हैं सबको खण्डन करतो, ऐसो वाको नेम हतो। याही से सब लोगन ने वाको नाम खण्डन पाखो हतो,'' (हिन्दी साहित्य का इतिहास- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल)

इसी भाँति 1660 विक्रम संम्वत् के आस-पास भक्त नाभादास की ब्रजभाषा गद्य में लिखी 'अष्टयाम' नामक रचना प्रकाश में आयी, इसकी भाषा सामान्य बोलचाल की है। उस युग में ब्रजभाषा में गद्य की रचना कम ही होती थी। लेकिन इसका मुख्य कारण था। ब्रजभाषा में गद्य की क्षमता का विकास न हो पाना, क्योंकि ब्रजभाषा एक सीमित क्षेत्र में बोली जाती थी। इसलिए वह ब्रज मण्डल के बाहर सम्पर्क भाषा के रूप में विकसित नहीं हो पायी, जिससे इसमें गद्य का विकास उस तरह नहीं हो पाया जिस तरह से होना चाहिए था। इसी कारण खड़ी बोली ही गद्य भाषा को विकसित करने में अधिक सार्थक हुई।

9.4.2 खड़ी बोली में गद्य

ब्रजभाषा गद्य भाषा की परम्परा आगे न बढ़ाने के कारण खड़ी बोली में गद्य का विकास होने लगा, इसका सबसे बड़ा कारण था खड़ी बोली का जन साधारण की भाषा होना, ब्रजभाषा के पश्चात् इस भाषा में साहित्य का सृजन होने लगा, चूँकि खड़ी-बोली का क्षेत्रफल बड़ा था। इसलिए यह धीरे-धीरे पद्य और गद्य भाषा बनने लगी। फिर तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों ने भी खड़ी बोली के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।

14वीं शताब्दी में खड़ी बोली दिल्ली के आस पास की भाषा थी। इसलिए मुगलकाल में यह शासन और जनता की सम्पर्क भाषा बनी। चूँकि मुगलों की मातृ भाषा फारसी थी,

इसलिए जब यह खड़ी बोली के सम्पर्क में आयी तो इसकी शब्दावली खड़ी बोली में प्रवेश करने लगी और इससे फारसी मिश्रित खड़ी बोली का जन्म हुआ, शिक्षित लोग इस भाषा को फारसी लिपि में लिखने लगे, तब इस नई शैली को हिन्दवी, रेख्ता और आगे चलकर उर्दू नाम दिया गया। कवियों ने इस भाषा में शायरी आरम्भ कर दी, चौदवीं शताब्दी में अमीर खुसरो ने खड़ी बोली में रची गयी एक पहेली दृष्टव्य है-

एक थाल मोती से भरा, सबके ऊपर औंधा धरा।
चारों ओर वह थाली फिरे, मोती उससे एक न गिरे।।

अमीर खुसरों के पश्चात् खड़ी-बोली का विकास दक्षिण राज्यों के रचनाकारों ने किया। दक्खिनी हिन्दी के रूप में वहाँ 14 वीं शताब्दी से 18 वीं शताब्दी तक अनेक ग्रन्थों की रचनाऐं हुई, जिनमें गद्य रचनाओं का भी मुख्य स्थान है। ख्वाजा बन्दा नवाज़ गैसू दराज (1322-1433) शाह मीराँ जी (-1496) बुरहानुद्दीन जानम (1544-1583) और मुल्ला वजही जैसे साहित्यकारों ने काव्य रचनाओं के साथ गद्य ग्रन्थ भी लिखे। मुल्ला वजही ने 1635 ई0 में अपने प्रसिद्ध गद्य-ग्रन्थ ''सब रस'' की रचना की जिसका आरम्भ इस प्रकार से होता है-

''नकल-एक शहर था। शहर का नाउं सीस्तान, इस सीस्तान के बादशाह का नाउं अक्ल, दीन और दुनिया का सारा काम उस तै चलता, उसके हुक्मवाज जरी कई नई हिलता..... वह चार लोकों में इज्जत पाए''। (दक्खिनी हिन्दीः विकास और इतिहास- डॉ0 परमानन्द पांचाल)।।

इसी दक्खिनी हिन्दी का एक रूप खड़ी बोली भी थी । यो तो यह खड़ी बोली प्रारम्भ में कबीर, खुसरो, कवि गंग और रहीमदास की कविता की भाषा बन चुकी थी, लेकिन गद्य भाषा के रूप में इसका प्रयोग अंग्रेज पादरी और अफसरों ने किया क्योंकि वे इस गद्य भाषा के माध्यम से जनता तक पहुँचता चाहते थे। सन् 1570 में मुगल बादशाह के दरबारी कवि गंग की प्रसिद्ध रचना ''चंद छन्द बरनन की महिमा'' में हिन्दी खडी़ बोली के जिस गद्य रूप के दर्शन होते हैं वह शिष्ट और परिष्कृत खडी़ बोली का गद्य है।

''इतना सुनके पातसाह जी श्री अकबर साह जी आध सेन सोना नरहा चारक को दिया। इनके डेढ़ सेर सोना हो गया, रास वचना पूरा भया, आम खास बारखास हुआ।'' (हिन्दी साहित्य का इतिहास - रामचन्द्र शुक्ल - पृष्ठ 281)

प्रस्तुत उदाहरण से ऐसा लगता है यह आज की शुद्ध परिमार्जित गद्य रचना है इसके पश्चात् खड़ी बोली ने साहित्य में अपना स्थान बना लिया और इससे तेजी से गद्य का विकास हुआ।

अभ्यास प्रश्न

आपने अब तक खडी़ बोली गद्य के प्रारम्भिक स्वरूप का परिचय प्राप्त किया। आपका ज्ञान जानने के लिए अब नीचे कुछ बोध प्रश्न दिये गये हैं। इनका उत्तर दीजिये। पाठ के अन्त में इन प्रश्नों के उत्तरों से अपने उत्तरों का मिलान कीजिये, इससे आपको ज्ञात होगा कि आपने ठीक उत्तर दिये हैं या नहीं।

(1) प्राचीन काल में साहित्य की रचना कविता में होती थीं, नीचे दिये कारणों में तीन सही और एक गलत है, गलत कारण के सामने (×) का निशान लगायें।

1. कविता में गेयता होती है, इससे इसको याद रखना सरल है।
2. प्राचीन काल में मुद्रण की आधुनिक प्रणाली का विकास नहीं हुआ था।
3. कविता अभिव्यक्ति का सबसे अक्षम रूप है।
4. प्राचीन काल में पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाश नहीं होता था।

(2) भक्त नाभादास की ''अष्टयाम'' की रचना निम्नलिखित विक्रम सम्वत् में हुई। सही विकल्प के सामक्ष (√) चिह्न लगाए।

1. विक्रम सम्वत् 1400 में ( )
2. विक्रम सम्वत् 1500 में ( )
3. विक्रम सम्वत् 1660 में ( )
4. किक्रम सम्वत् 1700 में ( )

(3) नीचे कुछ पुस्तकों के नाम दिये गये हैं। उनके रचनाकारों का नाम लिखिए।

1. श्रृंगार मण्डन ( )
2. चौरासी बैष्णव की वार्ता ( )
3. सब रस ( )
4. चंद छन्द बरनन की महिमा ( )

9.5 हिन्दी ग़द्य का उद्भव व विकास

खड़ी बोली गद्य का जो रूप वर्तमान में हमारे समक्ष है वह सहजता से विकसित नहीं हुआ, अपितु इसके इस रूप निर्माण में अनेक परिस्थितियों, संस्थाओं और व्यक्तियों की महत्वपूर्ण भूमिका रही, जिनकी चर्चा हम यहाँ करने जा रहे हैं।

9.5.1 हिन्दी गद्य के उद्भव व विकास के कारण

भारत में अंग्रजी साम्राज्य की स्थापना से यहाँ परिवर्तनों की जो श्रृंखला प्रारम्भ हुई, इसका भारतीय जनजीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा; इनमें से कई परिवर्तनों का सीधा-सीधा सम्बन्ध

हिन्दी गद्य विकास से भी है। इनका संक्षिप्त विवरण नीचे दिये जा रहा है। जैसा आप जानते हैं भारत एक धर्म निरपेक्ष देश है। यहाँ हिन्दु, मुस्लमान, ईसाई सभी परस्पर मिलकर इस देश के विकास में अपना योगदान देते हैं। दक्षिण भारत के केरल और पूर्वी भारत के छोटे-छोटे राज्यों में ईसाई धर्म को मानने वालों की संख्या काफी है। आज से कई सौ वर्ष पूर्व ईसाई धर्म प्रचारक इस देश में आये। जब भारत पर अंग्रेजों का साम्राज्य हुआ तो इन ईसाई धर्म प्रचारकों ने अपनी गतिविधियाँ तेज कर दी, इनकी इन्ही गतिविधियों ने हिन्दी गद्य के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। चूँकि उस युग में जन सामान्य की बोल चाल की भाषा हिंदी गद्य थी। इसलिए इन धर्म प्रचारकों ने जनता में अपने धर्म का प्रचार करने के लिए छोटी-छोटी प्रचार पुस्तकों का निर्माण हिन्दी गद्य में किया। इसी क्रम में 'बाइबिल' का हिन्दी गद्यानुवाद प्रकाशित हुआ। जिससे हिंदी गद्य का काफी विकास हुआ।

नवीन आविष्कार- अंग्रेजों ने अपनी स्थति को और सुदृढ़ करने के लिए मुद्रण, यातायात और दूरसंचार के नये साधनों का प्रयोग किया। ईस्ट इंडिया कम्पनी ने सन् 1844 से सन् 1856 तक इस देश में रेल और तार के साधन जोड़ दिये थे। यातायात के तेज संसाधनों से पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ। अनेक पुस्तक प्रकाशित हुई जिससे हिन्दी गद्य लेखन का भी तीव्रता से विकास हुआ।

शिक्षा का प्रसार- सन् 1835 में लार्ड मैकाले ने भारत में शिक्षा प्रसार के लिए अंग्रेजी शिक्षा पद्धति को जन्म दिया। इससे पूर्व इस देश की शिक्षा फारसी और संस्कृत के माध्यम से दी जाती थी। लार्ड मैकाले की शिक्षा पद्धति से जहाँ-जहाँ भी शिक्षा दी जाती थी, उन स्कूल कॉलेजों में हिन्दी, उर्दू पढ़ाने की विशेष व्यवस्था होती थी। सन् 1800 ई0 में स्थापित फोर्ट विलियम कॉलेज में सन् 1824 में हिन्दी पढ़ाने का विशेष प्रबन्ध हुआ। इससे पूर्व सन् 1823 में आगरा कॉलेज भी स्थापना हुई जिसमें हिन्दी शिक्षा का विशेष प्रबन्ध हुआ। इसने कॉलेजों में हिन्दी शिक्षा समुचित रूप से संचालित हो इसके लिए हिन्दी के अच्छे पाठ्यक्रम बनाये। इस शिक्षा विस्तार से भी हिन्दी गद्य का अच्छा विकास हुआ।

समाज सुधार आन्दोलन- 19 वीं शताब्दी समाज सुधार की शताब्दी थी। इस सदी में भारतीय समाज में व्याप्त बुराइयों को समाप्त करने के लिए अनके आन्दोलन हुए। चूँकि समाज सुधार के आन्दोलनों को जिन नेताओं ने संचालित किया उन्हें जनता तक अपनी बात पहुँचाने के लिए भाषा की आवश्यकता पड़ी । 'ब्रहम समाज' के संस्थापक राजा राममोहन राय ओर आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द ने अपने-अपने मतों को समाज तक पहुँचाने के लिए जिस भाषा का प्रयोग किया वह हिन्दी भाषा थी। इसी से हिन्दी गद्य को एक नया रूप मिला।

पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन- मुद्रण की सुविधा से पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन होने लगा जिनके माध्यम से अनके गद्य लेखक लिखने लगे। 30 मई सन् 1826 ई0 में कलकत्ता से पंडित जुगल किशोर शुक्ल ने 'हिन्दी' के प्रथम पत्र 'उदन्त-मार्तण्ड' का प्रकाशन प्रारम्भ किया। यह हिन्दी का साप्ताहिक पत्र था। हिन्दी के पाठकों की संख्या कम हाने के कारण यह 4 दिसम्बर सन्

1827 को बन्द हो गया। इस पत्र के माध्यम से भी हिन्दी गद्य का विकास हुआ। 9 मई सन् 1829 को कलकत्ता से हिन्दी के दूसरे पत्र 'बंगदूत' का प्रकाशन हुआ। इसी तरह कोलकाता से प्रजामित्र' सन् 1845 में 'बनारस' से 'बनारस अखबार, सन् 1846 में 'मार्तण्ड' जैसे समाचार पत्रों का प्रकाशन हुआ। इन सबकी गद्य भाषा हिन्दी थी। इस तरह 19वीं सदी के पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध में हिन्दी पत्र पत्रिकाओं की बाढ़ सी आ गयी। इन्ही पत्र पत्रिकाओं ने हिन्दी गद्य को और अधिक विकसित और परिमार्जित किया।

9.5.2 प्रारम्भिक गद्य लेखन

सन् 1803 ई0 में फोर्ट विलियम कालेज कलकत्ता के हिन्दी उर्दू प्राध्यापक जॉन गिलक्राइस्ट ने हिन्दी और उर्दू में पुस्तकें लिखवाने के लिए कई मुंशियों की नियुक्ति की । इन मुंशियों में 'नियाज' मुंशी इंशा अल्ला खाँ जैसे हिन्दी-उर्दू के विद्वान थे जिन्होंने हिन्दी गद्य को एकरूपता प्रदान की।

मुंशी सदासुखलाल नियाज- जन्म सं. 1803 मृत्यु सं. 1881 - दिल्ली निवासी मुंशी सदासुखलाल, फारसी के अच्छे कवि और लेखक थे। इन्होंने 'बिष्णु पुराण' के उपदेशात्मक प्रसंग को लेकर एक पुस्तक लिखीं इसके पश्चात् मुंशी जी ने श्रीमद्भागवत कथा के आधार पर 'सुख सागर' की रचना की जिसकी गद्य व्यवस्थित और निखरी हुई है। इनकी इस गद्य भाषा का एक उदाहरण निम्नवत् है-

''मैत्रेय जी ने कहा'' हे विदुर प्रचेता लोग साधु व बैष्णव की बड़ाई व परमेश्वर के मिलने के उपाय महादेव जी से सुनकर आनन्द पूर्वक बीच पढ़ने वाले स्रोतों को व करने ध्यान नारायण जी को लीन हुए। जब उनको इस हजार वर्ष हरि भजन करते बीत गये तब परमेश्वर ने प्रसन्न होकर दर्शन देके बड़े हर्ष से उन्हें वरदान दिया''(हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास- बाबू गुलाब राय - पृष्ठ 112)

मुंशी इंशा अल्ला खाँ- (जन्म सं0 1818- मृत्यु सं0 1857) मुर्शिदाबाद में जन्म लेने वाले मुंशी इंशा अल्ला खाँ उर्दू के बहुत अच्छे शायर थे। इन्होंने सम्वत् 1855 और सम्वत् 1860 के मध्य 'उदयभान चरित' या रानी केतकी की कहानी' लिखी। इनकी गद्य भाषा संस्कृत मिश्रित हिन्दी थी। इनकी गद्य भाषा का एक उदाहरण इस प्रकार है-

''कोई क्या कह सके, जितने घाट दोनों नदियों के थे। पक्के चाँदी के से होकर लोगों को हक्का-बक्का कर रहे थे। नवाड़े, बन्जरे, लचके, मोरपंखी, श्याम सुन्दर, राम सुन्दर और जितनी ढब की नावे थी। सुनहरी, रूपहरी, सजी-सजाई। कसी-कसाई सौ-सौ लचके खतियाँ फिरतियाँ थी''(हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास- बाबू गुलाब राय - पृष्ठ 114)

श्री लल्लू लाल जीः- (जन्म सं0 1820- मृत्यु सं0- 1882) आगरा निवासी लल्लू जी 'लाल' गुजराती ब्राहमण थे। फोर्ट विलियम कॉलेज में नियुक्ति के बाद इन्होंने सम्वत् 1860 में भागवत पुराण के दशम् स्कंध के आधार पर प्रेम सागर नामक ग्रन्थ का हिन्दी गद्य में सृजन किया। इसके

अतिरिक्त इन्होंने ' वैताल पच्चीसी'' 'सिहासन बत्तीसी' ,'माधव विलास' तथा 'सभा विलास' नामक ग्रन्थ भी लिखे। इनकी गद्य भाषा का एक उदाहरण निम्नवत् है।

''महाराज इसी नीति से अनेक-अनेक प्रकार की बात कहते-कहते और सुनते-सुनते जब सब रात व्यतीत भई और चार घड़ी पिछली रही तब नन्दराय जी से उधौ जी ने कहा कि महाराज अब दधि मथनी की विरियाँ हुई, जो आकी आज्ञा पाऊँ तो युमना स्नान कर आऊँ'' (प्रेम सागर)

पंडित सदलामिश्रः- (जन्म सम्वत् 1825-मृत्यु सं. 1904) बिहार निवासी पंडित सदलमिश्र ने अपनी पुस्तक ''नासिकेतोपाख्यान'' फोर्ट विलियम कॉलेज में लिखी। इनकी भाषा लल्लू जी लाल; की तरह ही ब्रज भाषा के शब्दों से ओत प्रोत है। जिसको एक उदाहरण प्रस्तुत है-

''इस प्रकार नासिकेत मुनि यम की पुरी सहित नरक वर्णन कर फिर जौन-जौन कर्म किए से जो भोग होता ळै सो ऋषियों को सुनाने लगे कि गौ, ब्राहमण माता -पिता , मित्र, बालक, स्त्री, स्वामी, वृद्ध, गुरू, इनका जो बध करते हैं वे झूठी साक्षी भरते, झूठ ही कर्म में दिन रात लगे रहते हैं।" (नासिकेतोपाख्यान)

9.5.3 अंग्रेजों की भाषा नीति

अंगेजों के भारत आगमन से पूर्व यहाँ की राज भाषा फारसी थी। लार्ड मैकाले के प्रयत्नों से सन् 1835 में अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार हुआ। सन् 1836 तक अदालतों की भाषा फारसी थी लेकिन अंग्रजों ने अपनी भाषाई नीति के अन्तर्गत सन् 1836 में सयुक्त प्रान्त के सदर बोर्ड अदालतों की भाषा 'हिन्दी' कर दी, लेकिन इसके पश्चात् अंग्रेजों की ओर से हिन्दी के विकास के लिए कुछ और नहीं किया गया। ऐसे समय में राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' और राजा लक्ष्मणसिंह के द्वारा हिन्दी के विकास के लिए जो कार्य किए गये वे उल्लेखनीय है-

राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द- (जन्म सं. 1823- मृत्यु सं. 1895) राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्दी शिक्षा विभाग में निरीक्षक के पद पर थे। ये हिन्दी के प्रबल पक्षधर थे इसलिए ये इसे पाठ्यक्रम की भाषा बनाना चाहते थे। चूँकि उस समय साहित्य के पाठ्यक्रम के लिए कोई पुस्तकें नहीं थी इसलिए इन्होंने स्वयं कोर्स की पुस्तकें लिखी और इन्हें हिन्दी पाठ्यक्रमों में स्थान दिलाया। इन्ही के प्रयत्नों से शिक्षा जगत ने हिन्दी को कोर्स की भाषा बनाया। इस बाद उन्होंने बनारस से 'बनारस अखबार निकाला। इसीके द्वारा राजा शिवप्रसाद ''सितारे हिन्द'' ने हिन्दी का प्रचार प्रसार किया। ये विशुद्ध हिन्दी में लेख लिखते थे। राजा जी ने स्वयं हिन्दी कोर्स लिए पुस्तके ही नहीं लिखी अपितु पंडित श्री लाल और पंडित बंशीधर को भी इस कार्य के लिए प्रेरित किया। इसके अतिरिक्त इन्होंने 'वीरसिंह का वृतान्त' आलसियों का कोड़ा जैसी रचनाओं का सृजन भी किया। इनकी गद्य भाषा कितनी प्रभावशाली और सरल थी, इसका उदारहण ''राजा भोज का सपना'' का यह गद्यांश है।

''वह कौन सा मनुष्य है जिसने महाप्रतापी राजा भोज का नाम न सुना हो। उनकी महिमा और कीर्ति तो सारे जगत में व्याप्त रही है। बड़े-बड़े महिपाल उसका नाम सुनते ही काँप उठते और बड़े-बड़े भूपति उसके पाँव पर अपना सिर नवाते।''

राजा जी उर्दू के पक्षपाती भी थे। सन् 1864 में इन्होंने ''इतिहास तिमिर नाशक'' ग्रन्थ लिखा।

राजा लक्ष्मण सिंह (जन्म सम्वत् 1887- मृत्यु सम्वत् 1956)-आगरा निवासी राजा लक्ष्मणसिंह हिन्दी और उर्दू को दो भिन्न-भिन्न भाषाएँ स्वीकारते थे। फिर भी ये हिन्दी उर्दू शब्दावली प्रधान गद्य भाषा का प्रयोग करते थे। राजा लक्ष्मणसिंह ने कालिदास के 'मेघदूतम' अभिज्ञान शांकुन्तलम् और रघुवंश का हिन्दी अनुवाद किया। इन्होंने हिन्दी के गद्य विकास के लिए सन् 1841 में 'प्रजा हितैषी' पत्र भी सम्पादित और प्रकाशित किया। इनकी गद्य भाषा कितनी उत्कृष्ट कोटि की थी। प्रकाशित उदाहरण अभिज्ञान शाकुन्तलम् का यह अनुदित ग़द्य है-

अनसुया (हौले प्रियबंदा से) सखी मैं भी इसी सोच विचार में हूँ। अब इससे कुछ पूछूँगी। (प्रकट) महात्मा तुम्हारे मधुर वचनों के विश्वास में आकर मेरा जी यह पूछने को चाहता है क तुम किस राजवंश के भूषण हो और किस देश की पुजा को विरह में व्याकुल छोड़ कर यहाँ पधारे हो? क्या कारण है? (हिन्दी साहित्य का इतिहास- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पृष्ठ-300)

राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' और राजा लक्ष्मण सिंह के अलावा कई अनेक प्रतिभाशाली लेखकों ने हिन्दी गद्य के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। जिन गद्य लेखकों ने अंग्रेजी से हिन्दी अनुवाद किए तथा कई पाठ्य पुस्तकें लिखी उनमें , श्री मथुरा प्रसाद मिश्र, श्री ब्रजवासी दास, श्री रामप्रसाद त्रिपाठी श्री शिवशंकर, श्री बिहारी लाल चौबे, श्री काशीनाथ खत्री, श्री रामप्रसाद दूबे आदि प्रमुख हैं। इसी अवधि में स्वामी दयान्द सरस्वती ने ''सत्यार्थ प्रकाश'' जैसे ग्रन्थ की हिन्दी गद्य में रचना करके हिन्दू धर्म की कुरीतियों को समाप्त किया। हिन्दी गद्य के विकास में जिन और लेखकों का नाम बड़े आदर से लिया जाता है उनमें से बाबू नवीन चन्द्र राय तथा श्री श्रद्धाराम फुल्नौरी हैं।

बाबू नवीन चन्द्र राय ने सन् 1863 और सन् 1880 के मध्य हिन्दी में विभिन्न बिषयों की पुस्तकें लिखी और लिखवाई, साथ ही ब्रहम समाज के सिद्धान्तों का प्रचार प्रसार करने के लिए सन् 1867 में ज्ञानप्रदायिनी पत्रिका का प्रकाशन किया। इसी तरह श्री श्रृद्धानन्द फुल्लौरी ने 'सत्यामृत प्रवाह', 'आत्म चिकित्सा', तत्वदीपक, 'धर्मरक्षा', उपदेश संग्रह' पुस्तकें लिखककर हिन्दी गद्य के विकास एक नयी दिशा प्रदान की।

अभ्यास प्रश्न

(4) हिन्दी गद्य विकास के कारण थे-

1. ईसाई धर्म प्रचारकों का योगदान ( )
2. मुद्रण प्रणाली का प्रारम्भ ( )
3. समाज सुधार आन्दोलन ( )
4. उपरोक्त सभी ( )

(5) 'सत्यार्थ प्रकाशन' की रचना की-

1. स्वामी विवेकानन्द ने ( )
2. राजा राय मोहन राय ने ( )
3. स्वामी दयानन्द सरस्वती ने ( )
4. पंडित श्रद्धाराम फुल्लौरी ने ( )

(6) पंडित जुगल किशोर शुक्ल ने कोलकाता से एक पत्र निकाला।

1. बंगदूत
2. मार्तण्ड
3. उदन्त मार्तण्ड
4. प्रजामित्र

(7) कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तलम् का हिन्दी में अनुवाद किया।

1. जान गिल क्राइस्ट ने ( )
2. राजा शिप्रसाद सितारे हिन्द ने ( )
3. राजा लक्ष्मण सिंह ने ( )
4. इंशा अल्ला खाँ ने ( )

(8) नीचे लिखे प्रश्नों का उत्तर हाँ या नहीं में दीजिये।

1. लल्लू लालजी फोर्ट विलियम कालेज से सम्बद्ध थे। हाँ/ नहीं
2. मुंशी सदासुख लाल ने ' प्रेमसागर' की रचना की हाँ/ नहीं
3. पंडित सदलामिश्र ने 'नासिकेतोपाख्यान की रचना की। हाँ/ नहीं
4. पंडित लक्ष्मण सिंस ने राजा भोज का सपना लिखा हाँ/ नहीं

लघु उत्तरीय

1. अंग्रेजों की भाषा नीति पर प्रकाश डालिये (मात्र तीन पंक्तियाँ)
2. हिन्दी गद्य के विकास में पत्र पत्रिकाओं की भूमिका पर प्रकाश डालिये (मात्र तीन पंक्तियों में)

9.6 भारतेन्दु युग (सन् 1868-1900)

19 वीं सदी के उत्तरार्द्ध तक हिन्दी गद्य का व्यापक प्रसार हुआ और इससे साहित्य रचना के पर्याप्त अवसर प्राप्त हुए। इसी अवधि में महान साहित्यकार भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने हिन्दी साहित्य संसार में प्रवेश किया। जिनके प्रयत्नों से हिन्दी गद्य को नयी दिशा प्राप्त हुई। भारतेन्दु हरिशचन्द्र का जन्म 2 सितम्बर सन् 1850 ई. को बनारस के एक धनी परिवार में हुआ। इनके साहित्य प्रेमी पिता श्री गोपाल चन्द्र ने नहुष वध नाटक तथा कुछ कविताऐं लिखी। पिता के इन्ही संस्कारों की छाप भारतेन्दु हरिशचन्द्र पर पड़ी इसलिए इन्होंने मात्र ग्यारह वर्ष की अवस्था में काव्य रचना प्रारम्भ कर दी। विभिन्न भाषाओं के जानकार भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने युवावस्था में कई नाटक और काव्यों के लेखन के अतिरक्ति 'कविवचन सुधा; हरिशचन्द्र मैगजीन' तथा हरिशचन्द्र चन्द्रिका' नामक पत्रिकाओं का भी सम्पादन किया। इन्ही पत्रिकाओं के माध्यम से हिन्दी के अनेक गद्य लेखक प्रकाश में आये। भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने उस युग तक प्रयुक्त खड़ी बोली के गद्य को परिमार्जित किया। साथ ही भारतेन्दु जी ने गद्य के विभिन्न क्षेत्रों नाटक, निबन्ध, समालोचना आदि विधाओं में नयी परम्परा का सूत्रपात किया। 35 वर्ष की अल्पायु में हिन्दी साहित्य के लिए किए गये इनके कार्यों को हिन्दी गद्य विकास की दिशा में सर्वाकृष्ट कार्य स्वीकारा जाता है। ये अपनी भाषा के विकास के प्रबल पक्षधर थे। इनका यह मानना था।

'' निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिनु निज भाषा शान के, मिटत न हिय को शूल''।

भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने ''वैदिक हिंसा, हिंसा न भवति'', प्रेम योगिनी, विषस्य विषऔषधम्, श्री चन्द्रावली नाटिका, भारत दुर्दशा, नील देवी और अंधेर नगरी जैसे मौलिक नाटक लिखे। इनके अनुदित नाटक हैं- ''विद्यासुन्दर, पाखण्ड विडम्बन, मुद्राराक्षस, सत्य हरिशचन्द्र, कर्पूर मंजरी, दुर्लभ बुंध आदि। स्वयं लेखन के अतिरिक्त भारतेन्दु ने अपने समय के अनेक लेखकों को गद्य लेखन के लिए प्रेरित किया । इससे लेखकों की एक ऐसी मंडली बनी जिसने भारतेन्दु की इस परम्परा को आगे बढ़ाया। भारतेन्दु की इसी परम्परा को ओग बढ़ाने वाले लेखकों में थे- पंडित प्रतापनारायण मिश्र, पंडित बालकृष्ण भट्ट, पंडित बद्री नारायण चौधरी प्रेमधन, श्री जगन्नाथ दास 'रत्नाकर', श्री बालमुकुन्द गुप्त, श्रीनिवासदास, श्री राधाकृष्ण दास आदि। इन सभी लेखकों ने गद्य की निबन्ध, नाटक, उपन्यास, एकांकी आदि विधाओं पर लेखनी चलायी।

पं0 प्रताप नारायण मिश्र ने कालि कौतुक व रूकमणि परिणय, हठी हमीर और गौ संकट जैसे नाटकों का सृजन किया। इसके अतिरिक्त पेट, मुच्छ, दान, जुआ आदि विषयों पर निबन्ध लिखे। इसके अतिरिक्त ब्राहमण' पत्रिका का प्रकाशन कर हिन्दी गद्य विधा को आगे बढ़ाया। पंडित बालकृष्ण भट्ट इसी श्रखंला की दूसरी कड़ी थे, जिन्होंने सम्वत् 1934 में 'हिन्दी प्रदीप' मासिक पत्रिका का प्रकाशन किया। इन्होंने विभिन्न विषयों पर निबन्ध प्रकाशित किए। पंडित भट्ट ने पदमावती, शिशुपाल वध, चन्द्रसेन', जैसे नाटक सौ अजान एक सुजान, नूतन ब्रहमचारी,

जैसे उपन्यास और आँख, नाक, कान जैसे विषयों पर ललित निबन्ध लिखे। पंडित बद्रीनारायण चौधरी ने इसी युग में, 'आनन्द कांदविनी, मासिक और 'नीरद' जैसे साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन किया। भारत सौभाग्य' वीरांगना रहस्य जैसे नाटक लिखकर चौधरी जी ने हिन्दी गद्य विधा को एक नया रूप प्रदान किया। भारतेन्दु युग के जिन प्रतिष्ठित साहित्यकारों की रचनाओं की आज भी प्रशंसा की जाती है वे हैं, श्री बालमुकुद गुप्त , लाल श्रीनिवास दास, श्री राधाकृष्ण दास, श्री बालकुकुद गुप्त ने हिन्दी गद्य की निबन्ध विधा को अत्यधिक समृद्धि प्रदान की। इनकी शिवशम्भू के चिट्ठे प्रसिद्ध रचना है। लाल श्रीनिवास दास ने इसी अवधि में 'प्रह्लाद चरित्र, तप्ता संवरण, रणधीर प्रेम मोहनी, संयोगिता स्वयंवर जैसे नाटक और 'परीक्षा- गुरू जैसा उपन्यास लिखा। श्री राधाकृष्णदास इस युग के प्रसिद्ध नाटकार थे। जिन्होंने दुःखिनी बाला, 'महारानी पदमावती, महाराणा प्रताप' सतीप्रताप जैसे नाटक तो 'निस्सहाय हिन्दु' जैस उपन्यास की रचना की।

भारतेन्दु युग के इन रचनाकारों के साहित्य के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि इन्होंने हिन्दी गद्य के विकास के लिए नाटक, निबन्ध , उपन्यास, आदि सभी विधाओं में साहित्य की सर्जना की । राष्ट्रीय भावना से परिपूर्ण इन लेखकों ने मौलिक साहित्य के अतिरिक्त अनेक अनुवाद भी किए। भारतेन्दु युग में जहाँ हिन्दी गद्य साहित्य को एक नयी दिशा मिली। वहाँ भाषाई संस्कार भी मिला।

अभ्यास प्रश्न

(9) भारतेन्दु हरिशचन्द्र के पिता का नाम था-

1. पंडित प्रतापनारायण मिश्र
2. चौधरी ब्रदीनारायाण
3. श्री गोपाल चन्द्र
4. श्री राधा कृष्ण दास

(10) भारतेन्दु युग में निम्नलिखित विधा का विकास हुआ।

1. निबन्ध गद्य विधा का।
2. नाटक गद्य विधा का।
3. उपन्यास गद्य विधा का।
4. उपरोक्त समस्त गद्य विधाओं का।

(11) भारतेन्दु हरिचन्द्र ने हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि के लिए प्रकाशित की।

1. ब्राह्मण पत्रिका
2. कविवचन सुधा पत्रिका
3. हिन्दीप्रदीप पत्रिका
4. आनन्द कादंवनी

(12) नीचे दी गयी रचनाओं के समक्ष उनके लेखकों के नाम लिखिए।

1. नीलदेवी -
2. हठी हमीर -
3. शिशुपाल वध -
4. संयोगिता स्वयंवर -

9.7 द्विवेदी युग (सन् 1900-1920)

पूर्व में हम यह चर्चा कर चुके हैं कि भारतेन्दु हरिचन्द्र जैसे प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति से प्रेरणा प्राप्त कर अनेक लेखकों ने हिन्दी गद्य को समृद्ध किया। इस मंडली ने हिन्दी साहित्य के अनेक अध्येता और हिन्दी गद्य विकास और प्रचार के लिए अनेक मौलिक और अनुदित ग्रन्थ तैयार किए। इतना सब कुछ होने पर भी इस युग के गद्य लेखकों की गद्य भाषा में कई त्रुटियाँ मिलती हैं। इन कमियों को दूर करने के लिए जिस प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार ने अपनी लेखनी उठाई उन्हें साहित्य संसार पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम से जानता है। इन्होंने अपनी साहित्यिक पत्रिका 'सरस्वती' के माध्यम से हिन्दी भाषा का परिमार्जन किया।

हिन्दी की प्रसिद्ध पत्रिका 'सरस्वती' का प्रकाशन इंडियन प्रेस इलाहाबाद द्वारा सन् 1900 से प्रारम्भ किया गया। इस पत्रिका ने सन् 1903 से सन् 1920 तक आचार्य महावीर द्विवेदी के सम्पादकत्व में जितनी प्रतिष्ठा प्राप्त की उतनी अन्य सम्पादकों के सम्पादकत्व में नहीं। 'सरस्वती' पत्रिका ने उस समय राष्ट्रीय वाणी को दिशा देने के साथ-साथ ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में प्रवेश कर यह सिद्ध किया कि हिन्दी भाषा में भी कठिन से कठिन विषयों को प्रस्तुत करने की क्षमता है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा सम्पादित इस पत्रिका ने हिन्दी को गद्य की सभी विधाओं से सम्पन्न करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। तथा इसमें व्याप्त अनगढ़पन और अराजकता को समाप्त कर इसे एक सुन्दर और सुगढ़ भाषा में प्रस्तुत किया।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का जन्म सन् 1861 तथा मृत्यु 1938 में हुई थी। ये एक कवि होने के साथ-साथ एक निबन्धकार और समालोचक भी थे। इनका एक और सबसे बड़ा कार्य यह था कि इन्होंने 'सरस्वती' में प्रकाशन के लिए आने वाली रचनाओं की भाषा को सुधार कर उसे शुद्ध और एक रूप किया। आचार्य द्विवेदी की इच्छा थी कि खड़ी बोली हिन्दी अपना मानक रूप ग्रहण करें क्योकि इसके बिना किसी महान साहित्य की रचना करना सम्भव नहीं।

द्विवेदी जी ने उस युग की राष्ट्रीय चेतना और नव जागरण की भावना को पूर्ण आत्मसात किया। उन्होंने साहित्य के मध्य युगीन आदर्शों का विरोध तथा रीतिकालीन भाव बोधों और कलारूपों को अस्वीकार किया। इन्होंने अपने युग के साहित्यकारों से साहित्य को

समाज से जोड़ने के लिए निवेदन किया। इन्होंने स्पष्ट घोषणा की कि किसी भी देश की उन्नति अगर देखनी हो तो उस देश के साहित्य को अवलोकन करना चाहिए। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' के माध्यम से प्रेमचन्द, मैथलीशरण गुप्त, माधव मिश्र, बालमुकुन्द गुप्त, नाथूराम शर्मा, शंकर, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, श्री पद्मसिंह शर्मा और अयोध्या सिंह उपाध्याय ''हरिऔध' के साहित्य को समाज तक पहुँचाया।

द्विवेदी ने गद्य की विभिन्न विधाओं में साहित्य लिखा गया। इस युग में निबन्ध, नाटक , उपन्यास, कहानी, आलोचना जैसी गद्य विधाओं ने अपना स्वतन्त्र रूप, ग्रहण किया जिनके माध्यम से अनेक साहित्यकार और रचनाएँ प्रकाश में आयीं। इसी काल में कहानी, उपन्यास के क्षेत्र में प्रेमचन्द, नाटक के क्षेत्र में जयशंकर प्रसाद, निबन्ध के क्षेत्र में बालमुकुन्द गुप्त, सरदार पूर्णसिंह, रामचन्द्र शुक्ल तथा आलोचना के क्षेत्र में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने ऐतिहासिक कार्य किए। इसके साथ ही इस काल में जीवनी, आत्मकथा, संस्मरण या यात्रा वृतान्त जैसी कई नयी गद्य विधाओं में भी लेखन कार्य प्रारम्भ हुआ।

नाटक- हिन्दी नाटकों का प्रारम्भ भारतेन्दु हरिचन्द्र ने अनेक नाटक लिख कर किया। भारतेन्दु युग के प्रायः सभी लेखकों ने नाटक लिखे। इसी का प्रभाव द्विवेदी युग पर भी पड़ा और उस युग में भी कई नाटक लिखे गये। इस युग में अंग्रेजी, बंगला और संस्कृत के नाटक अनुदित होकर हिन्दी में आये। अनुदित नाटकों में बंगला नाटककार द्विजेन्द्रलाल राय, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, गिरिश बाबू, विद्या विनोद, अंग्रजी नाटकार, शेक्सपियर, संस्कृत के नाटककार, कालिदास, भवभूति आदि नाटककारों के नाटकों के हिन्दी अनुवाद प्रकाश में आये। मौलिक नाट्य लेखन में पंडित किशोरीलाल गोस्वामी- चौपट चेपट, और मयंक मंजरी, अयोध्या प्रसाद उपाध्याय 'हरिऔध'- रूक्मणी परिणय और प्रधुम्न विजय बाबू शिवनन्दन सहाय सुदमा नाटक, जैसे नाटक लिखे गये, ये सभी सामान्य नाटक थे जिनपर फारसी थियेटर का प्रभाव पड़ा, लेकिन साहित्यक दृष्टि से ये उच्चकोटि के नाटक नहीं थे। नाटाकों के क्षेत्र में जयशंकर प्रसाद ने उच्च कोटि का कार्य किया जो कि उच्चकोटि की साहित्यकता से ओत प्रोत हैं।

उपन्यास- उपन्यास आधुनिक युग का महाकाव्य कहलाता है। हिन्दी में जैसे ही गद्य का विकास हुआ, उपन्यास विधा भी अस्तित्व में आयी। भारतेन्दु युग से पूर्व श्रृद्धाराम फुल्लौरी ने 'भाग्यवती' उपन्यास लिखकर हिन्दी में उपन्यास विधा का प्रारम्भ किया। इसके बाद भारतेन्दु युग में लाला श्री निवासदास ने 'परीक्षा गुरू' उपन्यास की रचना की। भारतेन्दु युग में श्री राधाकृष्ण दास का 'निःसहाय हिन्दु' पंडित बालकृष्ण भट्ट का 'नूतन ब्रह्मचारी' (सन् 1892) श्री लज्जाराम शर्मा का 'स्वतन्त्र रमा और परतन्त्र लक्ष्मी' (सन् 1899) और धूर्त रसिकलाल, (सन् 1907) जैसे उपन्यास काफी लोकप्रिय हुए। द्विवेदी युग के उपन्यास कारों में सबसे समादृत श्री देवकीनन्दन खत्री हैं। जिन्होंने 'चन्द्रकान्ता' और चन्द्रकान्ता सन्नति' जैसे ऐयारी और तिलस्मी उपन्यासों के माध्यम से जिस गद्य भाषा का प्रयोग किया, वह उर्दू हिन्दी मिश्रित भाषा है। द्विवेदी युग में पंडित किशोरी लाल गोस्वामी ने करीब छोटे-छोटे 65 उपन्यास लिखे। साथ ही इन्होंने 'उपन्यास' नामक एक मासिक पत्र भी निकाला। इनके उपन्यासों में 'चपला' 'तारा' तरूण,

तपस्विनी, रजिया वेग़म, लीलावती, लवंगलता आदि उपन्यास प्रसिद्ध हैं। इसी युग में 'हरिऔध' जी ने 'ठेठ हिन्दी का ठाठ', और अधखिला फूल, लज्जाराम मेहता ने हिन्दु धर्म, आदर्श दम्पत्ति◌ा, बिगड़े का सुधार,आदि उपन्यास लिखे।

कहानी- वैसे तो भारत में कहानी 'कथा' के रूप में आदिकाल से ही चली आ रही थी। किन्तु जिसे वर्तमान की कहानी कहा जाता है। उसका यह स्वरूप काफी नहीं है। वैसे तो समीक्षक मुंशी इंशा अल्ला खाँ की लिखी ''रानी केतकी की कहानी'' को हिन्दी की प्रथम कहानी के पद पर विभूषित करते हैं लेकिन इसमें वर्तमान की कहानी के स्वरूप का अभाव है। इसके पश्चात् राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द ने 'राजा भोज का सपना' की रचना की, लेकिन ये सभी कहानी लेखन के छोटे प्रयास थे। हिन्दी कहानी की रचना का प्रारम्भ बीसवीं शदी के प्रथम दशक में हुआ। जबकि हिन्दी के प्रसिद्ध कहानीकार मुंशी प्रेमचन्द और जयशंकर प्रसाद ने कहानी लिखना प्रारम्भ किया। सन् 1911 में प्रसाद जी की ग्राम कहानी प्रकाशित हुई तो सन् 1915 में चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की प्रसिद्ध कहानी ''उसने कहा था'' का प्रकाशन हुआ। सन 1915-16 से पूर्व मुंशी प्रेमचन्द ने उर्दू में कई कहानियाँ लिखी। इस तरह द्विवेदी युग में जिन कहानीकारों ने कहानियाँ लिख उनमें श्री विश्म्भर नाथ शर्मा, कौशिक, श्री सुदर्शन, श्री राधिका रमण प्रसाद सिंह, श्री जी.पी0 श्रीवास्तव, आचार्य चतुरसेन, आदि कहानीकार मुख्य हैं।

निबन्ध और समालोचना- निबन्ध और समालोचना हिन्दी गद्य की अभिन्न गद्य विधाएँ हैं। जिनका विकास भारतेन्दु युग से होने लगा था। भारतेन्दु युग के निबन्धों में जहाँ राष्ट्र और समाज के प्रति चिन्ता व्यक्त की गयी, वहाँ इनमें तीखा व्यंग्य और विनोद भी दिखाई दिया। द्विवेदी युग के निबन्धकारों में श्री बालमुकुन्द गुप्त ने इसी शैली को अपनाकर अपने निबन्धों को चर्चित किया। इनकी प्रसिद्ध रचना ''शिवशम्भू का चिट्ठा'' इसी शैली के निबन्धों से ओत प्रोत कृति है। इनके अतिरिक्त, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, पंडित माधव मिश्र, सरदार पूर्णसिंह, बाबू श्याम सुन्दरदास, पंडित चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, बाबू गुलाब राय, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्विवेदी युग के ही निबन्धकार हैं। जिनकी निबन्ध भाषा और परिमार्जित है।

द्विवेदी युग में ही समालोचना का आरम्भ हुआ। वैसे इसका सूत्रपात भारतेन्दु काल में हो चुका था। इसकी सूचना इमें 'आनन्द कादंबिनी' से मिलती है। जिसमें कि लाला श्रीनिवास दास के नाटक 'संयोगिता स्वयंवर' की विशद आलोचना प्रकाशित हुई थी। किन्तु समालोचना का वास्तविक प्रारम्भ द्विवेदी युग से हुआ। इसी युग में आलोचना के सैद्धान्तिक पक्ष से सम्बन्धित कई लेख प्रकाशित हुए। वैसे भारत में समीक्षा की काई परम्परा नहीं थी यहाँ के विद्वान समीक्षा के नाम पर किसी भी कृति के गुण दोषों पर ही प्रकाश डालते थे लकिन द्विवेदी युग में ही इसका आरम्भ हुआ। इस युग की प्रथम समीक्षा कृति महावीर प्रसाद द्विवेदी की 'कालिदास की निरंकुशता' थी। जिसमें उन्होंने लाल सीताराम बी0ए0 के अनुवाद किए नाटकों के भाषा तथा भाव सम्बन्धी दोष बड़े विस्तार से प्रदर्शित किए। इस युग में आचार्य द्विवेदी के अतिरिक्त जिन अन्य लेखकों ने समीक्षा साहित्य को गतिप्रदान की उनमें मिश्र बन्धु, बाबू श्याम सुन्दर दास, पदम सिंह शर्मा, डॉ0 पीताम्बर दत्त बडथ्वाल, श्री कृष्ण विहारी मिश्र, बाबू गुलाब

राय जैसे समीक्षक है। लेकिन समीक्षा के क्षेत्र में जो युगांतकारी कार्य आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने किया उसे द्विवेदी युगीन कोई दूसरा समीक्षक नहीं कर सका।

अभ्यास प्रश्न

(13) हिन्दी भाषा और साहित्य को नई दिशा देने वाली पत्रिका 'सरस्वती' के सम्पादक थे।

1. बाबू गुलाबराय
2. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
3. आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी
4. बाबू श्याम सुन्दरदास

(14) द्विवेदी जी के साहित्य में निम्नलिखित चार प्रवृत्तियों में से एक सही नहीं है।

1. पद्य और गद्य की भाषागत एकता
2. राष्ट्रीय भावना और नवजागरण को प्रोत्साहन
3. रीतिकालीन भावबोध का समर्थन
4. समाज के अनुकूल साहित्य रचने की प्रेरणा

(15) नीचे कुछ रचनाओं के नाम दिये गये हैं। इनके रचना कारों के नाम लिखिये।

1. ठेठ हिन्दी का ठाठ
2. ग्राम
3. तरूण तपस्विनी
4. प्रेमा

लघु उत्तरीय प्रश्न

3. भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग के निबन्धों की दो भिन्नताएँ बताइए।
4. द्विवेदी युग के संन्दर्भ में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की भूमिका का विवेचन चार पंक्तियों में कीजिये।

9.8 प्रेमचन्द और उनके पश्चात्

द्विवेदी के पश्चात् जिन साहित्यकारों ने गद्य साहित्य को नयी दिशा प्रदान की, मुंशी प्रेमचन्द भी उनमें से एक हैं। मुंशी प्रेमचन्द ने यद्यपि लेखन का कार्य द्विवेदी युग से ही आरम्भ कर लिया था लेकिन इनकी रचनाओं में एक नवीनता के दर्शन होते हैं। इसीलिए इनकी उपन्यास और कहानी विधाओं से एक नये युग का प्रारम्भ होता है। प्रेमचन्द ने इस युग में कहानी, उपन्यास, नाटक, निबन्ध और जीवनियाँ लिखी। इनकी इन सभी विधाओं में समाज और दशा की वास्तविक स्थिति के दर्शन होते हैं। प्रेमचन्द ने अपने जीवन में लगभग 300 कहानियों की

रचना की। इनकी ये सभी कहानियाँ मानसरोवर के आठ भागों में संकालित हैं। इनमें से ईदगाह, कफन, शंतरंज के खिलाड़ी, पंचपरमेश्वर, अलग्योझा, बड़े घर की बेटी, पूस की रात', नमक का दरोगा, ठाकुर का कुआँ, श्रेष्ठ कहानियाँ हैं।

उपन्यास के क्षेत्र में प्रेमचन्द उपन्यास सम्राट कहलाते हैं। इस विधा में इन्होंने देश की सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक समस्याओं का यथार्थ चित्रण किया है। इनके रंगभूमि, कर्मभूमि, सेवासदन, गबन जैसे उपन्यास देश की इन्ही समस्याओं को उजागर करते हैं। प्रेमचन्द के इस युग में उपन्यास साहित्य को समृद्ध करने में जिन साहित्यकारों का योगदान रहा है उनमें जयशंकर प्रसाद, आचार्य चतुरसेन, विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक, बेचेन पाण्डेय, इलाचन्द्र जोशी, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', भगवती प्रसाद वाजपेयी, भगवती चरण वर्मा, उपेन्द्रनाथ 'अश्क' जैनेन्द्र अज्ञेय, यशपाल, नागार्जुन, फणीश्वर नाथ रेणु, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, अमृतलाल नागर मुख्य हैं। इसी तरह प्रेमचन्द के समकालीन जिन कहानीकारों ने हिन्दी कहानी को एक नयी दिशा प्रदान की, उनमें उपरोक्त उपन्यासकारों के साथ-साथ अमृराय, मन्मथनाथ,गुप्त, रांगेय राघव, मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, मार्कण्डेय, उषा प्रियवंदा, मन्नू भंडारी, कृष्णा सोवती का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है।

प्रेमचन्द युग के नाटकों में जयशंकर प्रसाद के नाटय आदर्शवादी नाटक हैं,। इसलिए जयशंकर प्रसाद को इस युग का युग प्रवर्तक नाटककार माना जाता है। इनके ऐतिहासिक नाटकों में राष्ट्रीय चेतना और भारतीय संस्कृति की झलक सर्वत्र दिखायी देती है। कामना, जनमेजय का नाग यज्ञ, राजश्री, विशाखा, अजातशत्रु, स्कंदगुप्त, चन्द्र गुप्त और ध्रुवस्वामिनी इनके बड़े और महत्व वाले नाटक हैं। जयशंकर प्रसाद के अतिरिक्त इस युग के अन्य नाटककारों में प्रमुख हैं श्री जगदीश चन्द्र माथुर- कोणार्क, पहला राजा, शारदीय, मोहन राकेश- आषाढ़ का एक दिन, लहरों के राजहंस, और आधे अधूरे, इनके अतिरिक्त हरिकृष्ण प्रेमी, उदयशंकर भट्ट, गोविन्द बल्लभ पन्त, लक्ष्मी नारायण मिश्र, सेठ गोविन्द दास, जगन्नाथ दास मिलिन्द, लक्ष्मी नारायण लाल, विष्णु प्रभाकर, ब्रजमोहन शाह, रमेश बक्षी, मुद्राराक्षस, इन्द्रजीत भाटिया भी उच्चकोटि के नाटकार हैं।

प्रेमचन्द युग में नाटकों के अतिरिक्त एकांकी भी लिखे गये। जिन्हें उपरोक्त नाटकारों के अतिरिक्त कुछ एकांकीकारों में डॉ0 रामकुमार वर्मा का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। पृथ्वीराज की आँखें, रेशमी राई, कौमुदी महोत्सव, राजरानी सीता इनके प्रसिद्ध एकांकी हैं। प्रेमचन्द के युग में नाटक, उपन्यास, काहनी, एकांकी, के अतिरिक्त निबन्ध, आलोचना, आत्मकथा, जीवनी, संस्मरण आदि गद्य विधाओं की भी पर्याप्त प्रगति हुई। इस युग के निबन्धकारों में आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, बाबू गुलाब राय, वासुदेव शरण अग्रवाल सदगुरूशरण अवस्थी, शांतिप्रिय द्विवेदी, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ0 नगेन्द्र, विद्यानिवास मिश्र, कुवेरनाथ राय, विष्णुकान्त शास्त्री, आदि निबन्धकार मुख्य हैं। प्रेमचन्द जी के युग में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने जिस समालोचना साहित्य का श्री गणेश किया उसी को आगे बढाने में आचार्य नन्द दुलारे बाजपेयी, डॉ0 नगेन्द्र, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ0 पीताम्बर दत्त

बड़थ्वाल, डॉ0 देशराज, डॉ0 राम विलास शर्मा, शिवदान सिंह चौहान, नामवरसिंह, डॉ0 आनन्द प्रकाश दीक्षित की महत्वपूर्ण भूमिका रही।

प्रेमचन्द और उनके बाद के साहित्य पर दृष्टि डालने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस युग के साहित्य पर युगीन परिस्थितियों का प्रभाव पड़ा। इस काला की रचनाओं में जहाँ लेखकों ने सामाजिक समस्याओं पर अपनी गहरी दृष्टि डाली वहाँ मनोवैज्ञानिक समस्याओं को भी साहित्य में स्थान दिया। इस युग के गद्य साहित्य में देश की राष्ट्रीय चेतना का प्रभाव भी पड़ा। यही नहीं अन्तराष्ट्रीय परिवर्तनों के प्रभाव से भी इस काल का साहित्य प्रभावित रहा। सन् 1947 में जब भारत को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई और रूस में समाजवाद का उद्भव व उदय हुआ तो इस काल के गद्य साहित्य में प्रगतिवाद ने प्रवेश किया। इस काल के साहित्य पर पश्चिम की वैज्ञानिक प्रगति का भी प्रभाव पड़ा । इसी के फलस्वरूप गद्य की नयी-नयी विधाओं ने जन्म लिया। यात्रावृत्त, जीवनी, डायरी, आत्मकथा, रिपार्ताज जैसी नवीन गद्य विधाएँ इसी के परिणाम हैं।

अभ्यास प्रश्न

(16) निम्नलिखित वाक्यों की पूर्ति कीजिये।

1. गोदान प्रेमचन्द का प्रसिद्ध ..... है।
2. 'आषाढ़ का एक दिन' के लेखक हैं.....।
3. 'पृथ्वीराज की आँखें'..... का प्रसिद्ध एकांकी है।

(17) प्रेमचन्द और उनके बाद के किन्ही चार उपन्यासकारों के नाम लिखिए।

(18) हिन्दी निबन्ध के किन्ही तीन निबन्धकारों के नाम लिखिए।

9.9 सारांश

हिन्दी गद्य विकास की इस इकाई में आपने इन तथ्यों का अध्ययन किया।

- गद्य और पद्य का अन्तर
- हिन्दी गद्य की पृष्ठ भूमि
- हिन्दी गद्य का विकास
- अंग्रेजी की भाषा नीति
- भारतेन्दु युगीन गद्य

9.10 शब्दावली

सोद्देश्य- उद्देश्य के साथ

प्राणयण- तन-मन से
शून्यता - खालीपन
परिणाम- फलतः
उपदेशात्मकता- उपेदश देने की वृत्ति
सृजान- निर्माण
व्यक्त- प्रकट
श्रृंखला- कड़ी, जंजीर, पंक्ति वद्धता
साम्राज्य- शासन
ओत प्रोत- परिपूर्ण

9.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(1) 1. कविता में गेयता होती थी (सत्य)
2. (सत्य)
3. (असत्य)
4. (सत्य)

(2) (3) विक्रमी सम्वत् 1660

(3) 1. श्रृंगार मण्डल - गोसाई विट्ठलनाथ
2. चौरासी बैष्णव की वार्ता - गोकुलनाथ
3. सब रस - मुल्ला वजही
4. चंद छन्द बरनन की महिमा - गंग कवि

(4) 4. उपरोक्त सभी

(5) 3. स्वामी दयानन्द ने।

(6) 3. उदन्त मार्तण्ड

(7) 3. राजा लक्ष्मण सिंह

(8) 1. हाँ 2. नहीं 3. हाँ 4. नहीं

(9) 3.

(10) 4.

(11) 2.

(12) 1. नील देवी- भारतेन्दु हरिशचन्द्र
2. हठी हमीर- पंडित बालकृष्ण भट्ट
3. शिशुपाल वध- पंडित श्री निवासदास
4. संयोगिता स्वयंवर- लाला श्री निवास दास

(13) 3. आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी

(14) 3. रीतिकालीन भाव बोध का समर्थन

(15) 1. अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
2. जयशंकर प्रसाद
3. पंडित किशोरी लाल गोस्वामी
4. मुंशी प्रेमचन्द

(16) 1. गोदान प्रेमचन्द का प्रसिद्ध उपन्यास है।
2. आषाढ़ का एक दिन के लेखक हैं- मोहन राकेश।
3. पृथ्वीराज की आँखें डॉ0 राम कुमार वर्मा का प्रसिद्ध एकांकी है।

(17) 1. जयशंकर प्रसाद
2. आचार्य चतुरसेन।
3. गुरूदत्त
4. यशपाल

(18) 1, डॉ0 पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल
2, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
3, पंडित बालकृष्ण भट्ट

9.12 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास।
2. राय, बाबू गुलाब, हिन्दी साहित्य का सुगम इतिहास।
3. मिश्र, लल्लूलाल, प्रेम सागर।

9.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. हिन्दी गद्य के उदय की पृष्ठभूमि विवेचित कीजिए।
2. द्विवेदी युगीन गद्य की विशेषताएँ वर्णित कीजिए।

इकाई 10 हिन्दी साहित्य का आधुनिक कालः पद्य

इकाई की रूपरेखा

10.1 प्रस्तावना
10.2 उद्देश्य
10.3 हिन्दी साहित्य का आधुनिक कालः पद्य
10.3.1 काल विभाजन एवं नामकरण
10.3.2 मध्यकालीन पद्य और आधुनिक पद्य का अन्तर
10.3.3 आधुनिक हिन्दी पद्य की पृष्ठ भूमि
10.3.3.1 राजतीतिक परिस्थिति
10.3.3.2 आर्थिक परिस्थिति
10.3.3.3 धार्मिक परिस्थिति
10.3.3.4 सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थिति
10.4 आधुनिक पद्य की प्रवृत्तियाँ
10.4.1 राष्ट्रीयता
10.4.2 समाज- सुधार
10.4.3 व्यवस्था यर्थाथ का उद्घाटन
10.4.4 विमर्श केंद्रीयता
10.5 आधुनिक हिन्दी पद्य का महत्व
10.6 सारांश
10.7 शब्दावली
10.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
10.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
10.10 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री
10.11 निबंधात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

इस इकाई के अध्ययन से आप आधुनिक हिन्दी कविता से परिचित होंगे। इस इकाई में आप आधुनिक हिन्दी कविता के स्परूप एवं प्रवृत्तियों से परिचित होंगे। इसके अतिरिक्त आप यह भी जान सकेंगे कि आधुनिक हिन्दी कविता के विभिन्न मोड़ कौन से रहे हैं।

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल पर पद्य (कविता) की दृष्टि से विचार करने पर सबसे पहले यह बात स्मरण रखनी चाहिए की आधुनिकता का प्रवेश गद्य के माध्यम से हुआ, कविता तो बहुत समय तक पुराने ढंग की चलती रही। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसीलिए आधुनिक काल को 'गद्य काल' कहा है। मध्यकालीन प्रवृत्ति के केन्द्र में भक्ति, आस्था विश्वास, नीति और श्रृंगार रहे हैं, जबकि आधुनिक प्रवृत्ति के केन्द्र में तर्क, विचार, वर्तमान बोध रहे हैं। विचार मूलतः गद्य में ही हो सकता है, कविता में नहीं। कविता मूलतः भाव को लेकर चलती है, संवेदना को लेकर चलती है, इसीलिए कम शब्दों में बिम्बात्मक रूप में उसे भावना का प्रसरण करना होता है। अतः कविता विचार पैदा करने का कार्य नहीं करती । विचार पैदा करने का कार्य गद्य की केन्द्रीय विशेषता है। आधुनिक काल का प्रवर्तन इसीलिए गद्य के माध्यम से हुआ। उदाहरण स्वरूप हम कह सकते हैं कि सारे ज्ञान-विज्ञान, कानून, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र के विषय, गणित गद्य में ही लिखे जाते हैं, पद्य में नहीं। यह गद्य और पद्य का मूलभूत अन्तर है। हिन्दी कविता के प्रारम्भ की दृष्टि से विचार करें तो खडी़ बोली हिन्दी कविता का इतिहास 'भारतेन्दु युग(1850) से होता है। लेकिन इस युग में कविता में ब्रजभाषा की ही प्रधानता रही। कविता का विषय भी भक्ति, नीति और श्रृंगार बने रहे। खडी़ बोली कविता का प्रयास भारतेन्दु हरिचन्द्र ने किया, लेकिन उनका मूल चित्त भक्ति-नीति और श्रृंगार का ही था। 'द्विवेदी युग' (महावीर प्रसाद द्विवेदी के सम्मान में इसे 'द्विवेदी युग' 1900-1920) में कविता खडी़ बोली हिन्दी में प्रारम्भ हुई, थोडी़ बहुत आधुनिक भी हुई। इसके पश्चात् छायावाद युग, प्रगतिवाद प्रयोगवाद, नई कविता, साठोत्तरी कविता, अकविता मोहभंग की कविता, उत्तर-आधुनिक कविता जैसे कई मोडों से हिन्दी कविता गुजरी। हर युग की कविता अपने स्वरूप एवं प्रवृत्ति में अलग है। पिछली इकाईयों में आपने हिन्दी कविता और आधुनिकता पर विवेचन किया। इस इकाई में आप हिन्दी कविता के विभिन्न मोड़ों का विश्लेषण करेंगे। इस इकाई के अध्ययन से आगामी चार इाकइयों की पृष्ठ भूमि भी स्पष्ट हो सकेगी। इस इकाई के अन्तर्गत हम हिन्दी कविता के नामकरण, काल सीमा निर्धारण, आधुनिक हिन्दी कविता की पृष्ठभूमि एवं प्रवृत्तियों को जानने से पूर्व हम आधुनिक साहित्य पद्य के काल विभाजन एवं नामकरण को जान लें।

10.2 उद्देश्य

आधुनिक एवं समकालीन कविता का यह पहला खण्ड है। यह खण्ड की तीसरी इकाई है। इस इकाई में आधुनिक हिन्दी कविता के स्परूप एवं प्रवृत्तियों पर प्रकाश डाला गया हैं इसके पूर्व

आपने आधुनिकता की अवधारणा, आधुनिकता के आधार विचारक एवं दर्शन, आधुनिकता की पृष्ठ भूमि तथा आधुनिकता के साहित्यिक संन्दर्भों का विस्तृत, गहन एवं तर्कपूर्ण अध्ययन पिछली इकाई में किया है। इस इकाई में आप आधुनिक कविता की मूलभूत विशेषता से अवगत हो सकेंगे। आधुनिकता के विविध सन्दर्भों को प्रस्तुत करती इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपः

- आधुनिक हिन्दी कविता के काल-विभाजन से परिचित हो सकेंगे।
- मध्यकालीन कविता एव खडी बोली कविता का मूल भूत अन्तर समझ सकेंगे।
- आधुनिक कविता की पृष्ठभूमि से परिचित हो सकेंगे।
- आधुनिक कविता की प्रवृत्तियों से परिचित हो सकेंगे।
- आधुनिक कविता के पारिभाषिक शब्दों एवं मुहावरों से परिचित हो सकेंगे।

10.3 हिन्दी साहित्य का आधुनिक कालः पद्य

हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल, विशेषतय: पद्य हिन्दी साहित्य का केन्द्र बिन्दु रहा है। प्रायः युग कविता के नामकरण पर ही रहे हैं। आधुनिक हिन्दी कविता का विकास क्रमशः हुआ लेकिन वह अपने युग-समाज की सार्थक अभिव्यक्ति सिद्ध हुई है। आधुनिक हिन्दी साहित्य का खा़सतौर से पद्य का स्वरूप स्पष्ट हो सके, इसके लिए आवश्यक हैं कि हम आधुनिक हिन्दी कविता के नामकरण और काल विभाजन को जान लें।

10.3.1 काल विभाजन एवं नामकरण

आधुनिक हिन्दी साहित्य के पद्य का काल-विभाजन एवं नामकरण की समस्या उलझी हुई है। आधुनिक साहितय का प्रारम्भ जहाँ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल संवत् 1900 (ईसवी में 1843, क्योंकि संवत् ईसवी से 57 वर्ष ज्यादा होता है) से मानते हैं, वहीं डॉ0 नगेन्द्र 1868 ईसवी से। रामविलास शर्मा के लिए केन्द्रीय बिन्दु 1857 की क्रान्ति है, वहीं रामस्वरूप चतुर्वेदी 1850 ईसवीं को सुविधाजनक तरीके से आधुनिकता का केन्द्र बिन्दु निर्धारित करते हैं। मिश्रबन्धुओं ने 1833 से 1868 तक के समय को परिवर्तनकाल कहते हैं वही डॉ0 नगेन्द्र 1843 से 1868 ईसवी तक के समय को 'पृष्ठभूमि काल'। तात्पर्य यह कि 1843 से भारतेन्दु के रचनाकाल (1868 ईसवीं) तक के समय में आधुनिकता का वैचारिक आधार स्पष्ट हुआ, अतः भारतेन्दु काल से हम आधुनिक कविता का प्रारम्भ मान सकते हैं। लकिन इस सन्दर्भ में हमें यह भी स्मरण रखना होगा कि 1850 या 1868 से 1900 तक को समय पद्य की दृष्टि से उल्लेखनीय नहीं है, बल्कि गद्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। पद्य की दृष्टि से तो 1900 ईसवी के बाद महत्वपूर्ण परिवर्तन होता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने आधुनिक काल का प्रारम्भ 1900 ईसवी से माना है, जिसे हम पद्य के सन्दर्भ में निर्धारित कर सकते है। अतः हम चाहें तो 1850 से 1900

ईसवी तक का समय आधुनिक कविता की पृष्ठभूमि के रूप में रेखांकित कर सकते हैं। संक्षेप में हम यहाँ आधुनिक पद्य के विभिन्न मोड़ों की रूपरेखा प्रस्तुत कर रहे हैं।

1850- 1900 (पृष्ठभूमि काल)

1900- 1918 (द्विवेदी युग)

1918-1936 (छायावाद युग)

1936- 1943 (प्रगतिवाद)

1943- 1951 (प्रयोगवाद)

1951- 1959 (नयी कविता)

1960- 1964 (अ- कविता)

1965- 1975 (मोहभंग की कविता)

1975-1990 (जनवादी कविता)

1990- अब तक(उत्तर-आधुनिक कविता'/ विमर्श केन्द्रीत कविता/समकालीन कविता)

काल विभाजन एवं नामकरण की यह रूपरेखा सुविधाजनक है। इतिहास में कोई समय/काल निश्चित हो भी सकता है और नहीं भी। जैसे हिन्दी कविता के प्रारम्भ की हम बात करें तो 1850 से 1900 ईसवीं तक के समय को हमने 'पृष्ठभूमि काल' कहा है, जबकि इसी समय आधुनिक हिन्दी गद्य का समुचित विकास होता है। 1850 से 1900 ईसवी के मध्य की भी बात करें तो इसी समय भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने लगभग 70 कविताएँ खडी़ बोली हिन्दी में लिखीं थी। इसके पश्चात् श्रीधर पाठक ने गोल्डस्मिथ के 'हरमिट' का अनुवाद 'एकांतवासी योगी' नाम से 1886 ईसवी में किया था। इसके अतिरिक्त श्रीधर पाठक की स्फुट कविताओं का संग्रह 'जगत-सचाई-सार' 1887 ईसवी में प्रकाशित होता है। स्पष्ट है कि 1900 ई0 से पूर्व खडी़ बोली हिन्दी में काव्य रचना प्रारम्भ हो चुकी थी। अतः इस युग को काव्य रचना की दृष्टि से 'पृष्ठभूमि काल' कहना सार्थक है। नामकरण के सन्दर्भ में 'भारतेन्दु काल' को पुनर्जागरण काल तथा द्विवेदी युग को 'सुधार' काल भी कहा गया है। भारतेन्दु तथा द्विवेदी युग में जागरण एवं सुधार की प्रवृत्ति मुख्य रूप से थी, इसलिए उपर्युक्त नामकरण किया गया। 'छायावाद' के सन्दर्भ में विचार करें तो इसे 'स्वच्छंदतावाद' भी कहा गया है। डॉ0 बच्चन सिंह 'स्वच्छंदतावाद' नामकरण को ज्यादा अर्थगर्भित मानते हैं, क्योंकि 'छायावाद' केवल कविता का सूचक है। जबकि 'स्वच्छंतावाद' में गद्य और पद्य दोनों आ जोते हैं। वस्तुतः 'स्वच्छंदतावाद' नामकरण आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का दिया हुआ है। शुक्ल जी पश्चिमी रोमैंटिसिज़्म के हिन्दी पर्याय के रूप में 'स्वच्छंदतावाद' शब्द

का प्रयोग करते हैं। 'छायावाद' और 'स्वच्छंदतावाद' में बुनियादी अन्तर है, इसलिए हम यहाँ 'छायावाद' नामकरण को ही प्रमुखता दे रहे हैं।

कालविभाजन एवं नामकरण की समस्या के सन्दर्भ में 1935 से 1945 तक के समय को 'प्रगतिवादी एवं 'प्रयोगवाद' कहा गया है। इसी समय दो काव्यान्दोलन और चले। सन् 1935 के लगभग हरिवंशराय बच्चन के प्रतिनिधित्व में 'हालावाद' आन्दोलन आया, जो उनकी चर्चित कृति 'मधुशाला' के पश्चात् उत्पन्न हुआ। इसी समय 'राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता' नामक अन्य काव्यान्दोलन भी प्रारम्भ हुआ। इस आन्दोलन में माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्राकुमारी चौहान, रामधारी सिंह, दिनकर, सियाराम शरण गुप्त, बालकृष्ण शर्मा, नीवन इत्यादि थे। अब समस्या यह हैं कि 'हालावाद', 'प्रगतिवाद', 'प्रयोगवाद', तथा 'राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता' का रचना काल प्रायः एक ही हैं, फिर किसे हम काल-विभाजन के केन्द्र में रखें। इतिहास में कभी-कभी दो धराएँ समानान्तर रूप में चलती हैं, हिन्दी की उपर्युक्त काव्यधाराओं के सन्दर्भ में भी यही कहा जा सकता है।

सन् 1960 के बाद की कविता को 'साठोत्तरी कविता' भी कहा गया है और अ-कविता' भी। एक नामकरण में 'काल' को आधार बनाया गया है, दूसरे नामकरण में साहित्यिक प्रवृत्ति को। 1960 से 1965 के आस-पास 64 काव्यान्दोलनों की सूची जगदीश गुप्त जी ने दी है। इन्हें आन्दोलन कहना भी उचित नहीं है। ये मात्र मत-मतान्तर हैं। 'नयी कविता' के समय (1951-1959) के बीच सन् 1956 में 'नकेनवाद' नामक आन्दोलन भी चला, किन्तु इसमें भी व्यापक जीवन दृष्टि का अभाव था। इसी क्रम में 'मोहभंग की कविता' नामकरण भी निर्विवाद नहीं है। काई इसे 'नक्सलवाडी़ कविता' कहता है, कोई 'भूखी पीडी़ आन्दोलन'। सन् 1990 के बाद के समय को कोई उत्तर- आधुनिक समय कहता है, कोई 'समकालीन'। अतः इस विवेचन से स्पष्ट है कि काल-विभाजन एवं नामकरण का प्रश्न निर्विवाद हो, यह सम्भव ही नहीं।

अभ्यास प्रश्न 1

क) लघु उत्तरीय प्रश्न :-

1. आधुनिक चेतना लाने में गद्य का क्या योगदान है? लगभग आठ पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए।
2. आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रारम्भिक वर्ष निर्धारित करने की समस्या लगभग दस पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए।

ख) सत्य/ असत्य बताइए :-

1. हिन्दी साहित्य में आधुनिकता का प्रवेश पद्य के माध्यम से हुआ।

3. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने आधुनिक हिन्दी साहित्य को 'गद्य काल' कहा है।

3. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी आधुनिक साहित्य का प्रारम्भ 1900 ईसवी से मानते हैं।

4. आधुनिक साहित्य के केन्द्र में भक्ति-नीति-श्रृंगार रहे हैं।

5. छायावादी काव्यान्दोलन का समय 1900 से 1930 इसवी तक है।

10.3.3 मध्यकालीन पद्य और आधुनिक पद्य का अन्तर

जैसा कि पूर्व में आपने पढ़ा कि मध्यकालीन हिन्दी कविता की दो धाराएँ रही हैं। पूर्व मध्यकाल को 'भक्तिकाल' तथा उत्तर मध्यकाल को 'रीतिकाल' कहा गया है। भक्तिकाल तथा रीतिकाल की सामाजिक चेतना में बुनियादी अन्तर है। भक्तिकाल के केन्द्र में ईश्वर-भक्ति है तथा रीतिकाल के केन्द्र में राजा-श्रृंगार। भक्तिकाल सामाजिक - ऐतिहासिक बोध से युक्त है तथा रीतिकाल ऐन्द्रिय सुखों के प्रति आग्रही। दोनो वर्गों की सामूहिक प्रवृत्ति को हम केन्द्रित करें तो पूरे मध्यकाल की केन्द्रीय विशेषता भक्ति-नीति-श्रृंगार निर्धारित होती है। वहीं आधुनिक पद्य के केन्द्र में ईश्वर की जगह मनुष्य, भावना-भक्ति की जगह विचार एवं तर्क, नीति की जगह कार्य-कारण भाव संबंध तथा अलंकार की जगह बिम्ब ले लेते हैं। अलंकरण की प्रवृत्ति भक्ति के संदर्भ में ज्यादा होती है। श्रेष्ठ पुरूष या ईश्वर की हम अतिश्योक्ति पूर्ण प्रशंसा या स्तुति करते हैं। अतः स्तुति-प्रशंसा में अलंकार का प्रयोग सहज एवं स्वाभाविक है। आधुनिक काल की कविताओं में ईश्वर के स्थान पर मनुष्य एवं भाव की जगह विचार ने ले लिया। विचार का वहन अलंकार नहीं कर सकते। विचार के लिए बिंब की उपयोगिता बढ़ी। बिंब का काम चित्र निर्मित करता है। बिंब संवेदना से जुड़े होते हैं। बिंब भावना का बिंब आन्तरिक रूप होते हैं। आधुनिक पद्य की मूलभूत विशेषताओं का अध्ययन आप आगे की इकाईयों में विस्तार से करेंगे। अतः यहाँ संझेप में यह विवेचित किया गया कि मध्यकालीन कविता की चेतना में भक्ति एवं श्रृंगार केन्द्रीय विषय वस्तु रहे हैं तथा आधुनिक कविता की ऊर्जा तर्क एवं बुद्धि रहे हैं। इसीलिए आधुनिक पद्य में ईश्वर के स्थान पर 'मनुष्य' स्थापित होता है। पुराना 'मानवतावाद' अब 'मानववाद' के रूप में रूपान्तरित हो जाता है। 'मानवतावादी' में ईश्वर, मनुष्य, पशु-पक्षी, प्रकृति सबके लिए जगह है। सबके लिए सम्मान, स्नेह, प्रेम एवं आदर का भाव है, लेकिन 'मानववाद' मनुष्य केन्द्रित दर्शन है। प्रकृति के सारे मूल्य- नीति मानव की उपयोगिता से संचालित होते हैं, यानी मानव ही सारी चीजों का नियन्ता है। इन सारी अवधारणों का सम्बन्ध आधुनिक काल के पद्य पर पड़ता है, जिसके कारण यह मध्यकालीन पद्य से अलग हो जाती है।

10.3.3 आधुनिक हिन्दी पद्य की पृष्ठभूमि

आधुनिक हिन्दी पद्य की पृष्ठभूमि का सम्बन्ध व्यापक रूप में आधुनिकरण की प्रक्रिया से है। आधुनिकीकरण का प्रारम्भ अंग्रेजों के आगमन के आगमन से माना जाता है। (हाँलाकि

रामविलास शर्मा इसको आधुनिक काल कें पूर्व से ही मानते हैं) अंगेजों के भारत आगमन से पूर्व भारतीय समाज जड़, एकरस, बन्द समाज था। हिन्दू धर्म जड़ता, अंधविश्वास से घिरा हुआ था। मुगल वंश के हास के साथ ही मुस्लिम सत्ता भी छोटे-छोटे टुकडों में विभक्त हो गई थी। हिन्दू और मुस्लिम धर्म सामंतीय समाज थे। जबकि अंगेज यानी ईसाई संस्कृति पूँजीवादी विकास का आग्रह लेकर भारत आई थी, इसलिए उसमें एक आकर्षण था। अंग्रेजों के आगमन से भारतीयों के रहन-सहन, जीवन-यापन, आचार-विचार, साहित्य-संस्कृति, शिक्षा-कला में परिवर्तन होने लगे। शिक्षा, अर्थव्यवस्था, व्यवसाय, समाजिक नियम- कानून, नौकरशाही, सांस्कृतिक परिवर्तन तथा आधारभूत भौतिक विकास जैसे- सड़क, नहर, रेल, तार, डाक सेवा आदि में मूलभूत परिवर्तन उपस्थित हुआ। सारे परिवर्तनों पर पश्चिमीकरण की छाप लगती गई। शिक्षा-पद्धति, धर्म, प्रेस तथा कानून- प्रशासन पर दूरगामी प्रभाव पडा़। मुस्लिम धर्म के सत्ता में रहने पर भी हिन्दू धर्म पूर्ववत बना रहा, क्योंकि मूल रूप से दोनों संस्कृतियाँ पिछड़ी-सामंती संस्कृतियाँ थीं। लेकिन ईसाई संस्कृति और भारतीय संस्कृति की टकराहट से एक नयी ऊर्जा पैदा हुई, जिसे कुछ लोगों ने 'नवजागरण' कहा है तो कुछ ने 'पुनजागरण'। आधुनिक हिन्दी पद्य के स्वरूप निर्माण में इन बदली हुई परिस्थितियों को महत्वपूर्ण योगदान था। अतः यहाँ हम यूरोप से आ रही 'आधुनिकता' के कारणों को जानने के लिए युगीन पृष्ठभूमि तैयार कर रही इन विविध परिस्थितियों की समीक्षा करेंगे।

10.3.3.1 राजनीतिक परिस्थिति

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, अंग्रेजों के आगमन के पश्चात् आधुनिकीकरण की प्रक्रिया शुरू हुई। आधुनिकी करण की प्रक्रिया का सम्बन्ध व्यापार से है। 1498 में वास्कोडिगामा के समुद्री मार्ग से भारत आने की घटना के पश्चात् व्यापार को और बढा़वा मिला। वास्कोडिगामा ने यहाँ के कई राजाओं से व्यापारिक संधि की और कई फैक्टरियाँ स्थापित की। अंग्रेजों के आगमन से पूर्व पुर्तगालियों का अधिकांश पश्चिमी समुद्र तट पर वर्चस्व स्थापित हो गया था। 1600 ईसवीं में अंग्रेजों द्वारा स्थापित ईस्ट इंडिया कम्पनी का शुरू में उद्देश्य तो व्यापारिक था किन्तु क्रमशः उन्होंने राजनीतिक वर्चस्व स्थापित करना शुरू कर दिया। पुर्तगाली एवं अंग्रेजों को व्यापारिक-राजनीतिक लाभ लेते देखकर डच और फ्रांसीसीयों ने भी भारत आकर व्यापारिक कोठियाँ स्थापित करने लगे। प्रारम्भ में इन सभी का उद्देश्य व्यापार कर लाभ कमाना था किन्तु बाद में ये भारत के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप करने लगीं। पुर्तगालियों ने गोवा, दमन और द्वीप में अपना वर्चस्व स्थापित किया, फ्रांसीसियों ने पांडिचेरी, चन्द्रनगर एवं माही में अपना उपनिवेश स्थापित किया। किन्तु इनमें सबसे अधिक सफलता मिली अंग्रेजों को। 1600 में ईस्ट इंडिया कम्पनी के प्रारम्भ से लेकर 1757 ईसवीं के प्लासी युद्ध तक अंग्रेज इस स्थिति में आ चुके थे कि वे पूरे भारत पर शासन करने का स्पप्न देख सकें। सन् 1757 ई0 में जनरल क्लाइव के नेतृत्व में अंग्रजों ने बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला को प्लासी की लडा़ई में हराकर अपनी सैनिक ओर कूटनीतिक ताकत में काफी इजा़फा कर लिया था। सिराजुद्दौला की इस हार के बाद सम्पूर्ण बंगाल अंग्रेजों के आधिपत्य में आ गया। सन् 1764 ई. में बक्सर युद्ध में मुगल सम्राट शाह आलम भी पराजित

हुआ। इस युद्ध के बाद बंगाल और बिहार पर अंग्रेजों का वर्चस्व स्थापित हो गया तथा अवध का नवाब उनके हाथों की कठपुतली बन गया। सन् 1765 इसवीं में शाह आलम के कड़ा के युद्ध में पराजय से उसी शक्ति पूरी तरह समाप्त हो गई। इस पराजय के पश्चात् मुगल सम्राट ने बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी अंग्रेजों को सुपुर्द कर दी। सन् 1793 ई0 में अंग्रेजों ने मैसूर शासक टीपू सुल्तान को पराजित कर आन्ध्रप्रदेश तथा कर्नाटक तक अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया। सम्पूर्ण भारत पर आधिपत्य जमाने के लिए अंग्रेजों को दो शक्तियों पर वर्चस्व स्थापित करना शेष था- वे शक्तिशाली साम्राज्य मराठे और सिक्खों का था। आपसी फूट-संघर्ष के कारण 1803 के उसी तथा लासवारी युद्ध में तथा 1818 के चार युद्धों के बाद मराठों की शक्ति क्षीण हो गई। 1849 ईसवी में महाराजा रणजीत सिंह की मृत्यु के पश्चात् तथा सिक्खों को पराजित करने के बाद लगभग सम्पूर्ण देश अंग्रेजों के अधीन हो गया। रही-सही कसर लॉर्ड डलहौजी की विलय नीति ने कर दिया। विलय नीति की प्रतिक्रिया रूपरूप हुए 1857 के संघर्ष के फलस्वरूप ईस्ट इंडिया कम्पनी समाप्त कर दी गई और भारत ब्रिटिश साम्राज्य का उपनिवेश बन गया।

1857 ईसवी तक सम्पूर्ण भारत अंग्रेजों का उपनिवेश बन चुका था। पराजय- बोध ने भारतीयों के मन में राष्ट्रीय बोध बन कर उभरा। हिन्दी साहित्य पहली बार तत्कालीन समस्याओं से जुड़ा- यह जुड़ाव गद्य के माध्यम से हुआ, पद्य के माध्यम से नहीं। यह सही भी था क्योंकि विचार जल्दी बदलते हैं, संवेदना बाद में ढलती है। लेकिन यह समझना भूल होगी कि पद्य में बदलाव की प्रक्रिया थोड़े बाद में शुरू हुई । अनायास नहीं कि भारतेन्दु हरिशचन्द्र की कविता में राजभक्ति या राष्ट्रभक्ति का इन्द्व देखने को मिलता है।

10.3.3.3 आर्थिक परिस्थिति

अंग्रेजों के आगमन से पूर्व भारतीय समाज में ग्रामीण- कृषि प्रधान व्यवस्था थी। भारत के गाँव आर्थिक रूप से स्वावलम्बी थे और अपने आप में पूर्ण आर्थिक इकाई थे। भारतीय गॉवों की अपरिवर्तनीय स्थिति पर चार्ल्स मेटाकफ ने लिखा है- '' गाँव छोटे-छोटे गणतंत्र थे। उनकी अपनी आवश्यकताएँ गाँव में ही पूरी हो जीती थीं। बाहरी दुनिया से उनका कोई संबंध नहीं था। एक के बाद दूसरा राजवंश आया, एक के बाद दूसरा उलटफेर हुआ, हिन्दू, पठान, मुगल, सिक्ख, मराठों के राज्य बने और बिगड़े पर गाँव वैसे के वैसे ही बने रहे। ''

प्रारम्भ में अंग्रेज कम्पनी का उद्देश्य व्यापारकि था, किन्तु बाद में उन्होंने इस देश को अपना बाजार बनाया। भारत के उद्योग -धंधों और हस्तशिल्प को नष्ट करके अंग्रेजों ने यहाँ के बाज़ार को अपने अधीन कर लिया। भारतेन्दु हरिशचन्द्र तथा उनके सहयोगियों ने विदेशी आर्थिक शोषण का उल्लेख किया है। औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप् ब्रिटेन में कच्चे माल की खपत/ माँग बढ़ी। पराधीनता की इस स्थिति में भारत को अपना कच्चा माल इग्लैण्ड को देना पडा। उसी कच्चे माल की खपत भारत के बाजारों में होने लगी। कच्चे माल से निर्मित वस्तुएँ भारतीय बाज़ारों में इंग्लैण्ड से दुगने दाम पर मिलने लगीं। शोषण के इस रूप की प्रतिक्रिया स्वदेशी

आन्दोलन' के रूप में हुई। भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने सर्वप्रथम स्वदेशी आन्दोलन का घोषणापत्र अपनी पत्रिका में प्रकाशित किया। 1793 ईसवीं में कार्नवालिस द्वारा बंगाल, बिहार और उडी़सा में जमींदारी प्रथा लागू करने तथा 1830 में सर टॉमस मुनरो द्वारा इस्तमरारी बंदोबस्त लागू करने से मालगुजारी, लगान की नकारात्मक स्थितियाँ उत्पन्न हुई। रही- सही कसर देश में पड़े अकालों ने किया। लेकिन विश्लेषण का एक पक्ष और हो सकता है। कई विचारकों ने इस तथ्य की ओर संकेत किय है कि पुराने अर्थव्यवस्था के स्थान पर जिस नई अर्थव्यवस्था को लागू किया गया, वह शोषण पर आधारित होने के बावजूद, अनजाने ही ऐतिहासिक विकास की प्रक्रिया से जुड़ गया।

डॉ0 नगेन्द्र ने इस सम्बन्ध में टिप्पणी की है- '' बहुत से शहरी उद्योग भी अंग्रेजों की कृपा से काल कवलित हो गए। फिर भी पुरानी अर्थव्यवस्था के स्थान पर जिस नई अर्थव्यवस्था को लागू किया गया। उससे अनजाने ही ऐतिहासिक विकास की अनिवार्य प्रक्रिया के फलस्वरूप भारतीय समाज विकास की ओर अग्रसर हुआ। गाँवों की जड़ता टूटी। गाँव दूसरे गाँवों और शहर के सम्पर्क में आने के लिए बाध्य हुए। घेरे में बँधी हुई अर्थव्यवस्था राष्ट्रोन्मुखी हो चली।'' (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 443)। उपर्युक्त उदाहरण का सार यह है कि अंग्रेजों ने भारतीय अर्थव्यवस्था को बुरी तरह नष्ट किया, लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से लाभ यह हुआ कि भारतीय समाज व्यापार या दूसरे रोजगार के लिए गाँव से बाहर आया और उसमें एक राष्ट्रीय चेतना का जन्म हुआ।

10.3.3.3 धार्मिक परिस्थिति

अंग्रेजों शासन के आधिप्य ने हिन्दू तथा मुस्लिम धर्म को गहरे रूप में प्रभावित किया। अंग्रेज जब भारत आये तब हिन्दु तथा मुस्लिम दोनों धर्म अपनी प्रगतिशीलता खो चुके थे। हिन्दू धर्म, जो कभी ज्ञान एवं समृद्धि का भण्डार माना जाता था, वह भी जाति-पात, छूआछूत एवं ब्राह्यआडम्बरों में सिमट कर रह गया था। नवीन धर्म-दर्शन की निष्पत्ति तो दूर की बात रही, पुराने ग्रन्थों की मौलिक व्याख्या भी प्रायः नहीं होती थीं। कहने का भाव यह है कि सामान्य हिन्दू जनता धार्मिक कर्मकाण्डों से तंग थी। उसी तरह मुस्लिम धर्म भी कई तरह की संकीर्णताओं के आबद्ध हो चुका था। हाँलाकि मुगल सत्ता के समय 'दीन-ए-इलाही' जैसी व्यापक अवधारणाएँ भी आईं थीं, लेकिन वह पूरे धर्म को प्रभावित करने में असफल रहीं, ऐसी स्थिति में दोनों धर्मों की संकीर्णताओं का लाभ उठाकर ईसाई मिशनरियों ने हिन्दु तथा मुस्लिम धर्म पर आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया। ईसाई धर्म को श्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए बाइबिल के हिन्दी अनुवाद वितरित किए जाने लगे। अपने धर्म की ओर आकृष्ट करने के लिए अंग्रेजों ने धन का प्रलोभन देना भी शुरू कर दिया। अंधविश्वासों एवं रूढ़ियों से घिरी हिन्दू जनता ईसाई धर्म की ओर आकृष्ट हुई। बहुत सी निर्धन जनता ने ईसाई धर्म स्वीकार की कर लिया। ईसाई धार्मिक प्रचार की कट्टरता ने हिन्दू पुनरूत्थान की भावना को विकसित किया। हिन्दू धर्म के गौरव पर नये सन्दर्भों में विचार किया जाने लगा। राजा राममोहन राय ने 'ब्रह्म समाज' की स्थापना कर हिन्दू धर्म की आधुनिक संन्दर्भों में व्याख्या की। इसी क्रम में प्रार्थना समाज, आर्यसमाज, रामकृष्ण मिशन तथा

थियोसॉफिकल सोसाइटी ने धार्मिक तथा सांस्कृतिक स्तर पर हिन्दू धर्म तथा भारतीय समाज को गहरे रूप में प्रभावित किया। ईसाई धर्म के धार्मिक आक्रमण के फलस्वरूप हिन्दू चेतना से जुटे। सती प्रथा कानून, विधवा विवाह के खिलाफ कानून इसी जागरूकता के प्रमाण थे। स्वामी विवेकानन्द के शिकागो (अमरीका) वक्तृत्व ने हिन्दू धर्म को पूरे विश्व में सम्मानित एवं प्रतिष्ठित किया। अंग्रेजों का धार्मिक प्रचार हिन्दू धर्म के पुनरूस्थान से जुडा़। हिन्दू धर्म की जड़ता टूटी और वह गतिशील हुआ। भारतेन्दु हरिशचन्द्र का साहित्य सेक्युलर दृष्टि से ओत प्रोत है, जिसके पीछे पुनजगिरण की भावना ही काम कर रही थी।

10.3.3.4 सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थिति

जैसा कि पूर्व में संकेत किया गया है, अंग्रजों के आगमन से पूर्व भारतीय समाज परम्परागत रूप का समाज था। भारतीय रहन-सहन, खान-पान का स्तर एवं जीविकोपार्जन का साधन परम्परागत थे, उनमें आधुनिक ज्ञान-विज्ञान का अभाव था। अंग्रेज आधुनिक विज्ञान के सम्पर्क में आते जा रहे थे। विज्ञान का उपयोग उन्होंने विश्व में वर्चस्व स्थापित करने में किया। रेल, यातायात के साधन, सड़कें, तार, डाक व्यवस्था जो आधुनिक प्रगति के वाहक थे, अंग्रजों के माध्यम से भारत में आये। इसका अर्थ यह नहीं है कि भारतीय समाज निर्धन था, या उनका आर्थिक स्तर निम्न था। क्योंकि आँकड़े कहते हैं कि अंग्रेजों के आगमन से पूर्व सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में भारतीय हिस्सेदारी कई सम्पन्न देशों से ज्यादा थी। यहाँ परम्परागत समाज कहने से तात्पर्य यही है कि भारतीय समाज ग्रामीण व्यवस्था के ढंग में रंगा था। छोटे से जगह में उसकी सारी आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाया करती थीं, हाँलाकि उस समय भी भारतीय व्यापार कई देशों में फैला हुआ था। भारत पर आधिपत्य स्थापित कर अंग्रेजों ने यहाँ की भाषा एवं संस्कृति पर भी श्रेष्ठता स्थापित करने की पहल करनी शुरू कर दी। लॉर्ड मैकाले की भाषा नीति ने भारतीय भाषाओं के प्रति पक्षपातपूर्ण रवैया अपनाया। 1800 ई0 में स्थापिम फोर्ट विलियम कॉलेज का उद्देश्य भी भारतीयों को ब्रिटिश प्रशासन चलाने के लिए अंग्रेजी भाषा सीखाना था। लेकिन इसी के साथ ही विलियम जोंस, मैक्समूलर जैसे विद्वानों ने भारतीय भाषाओं की महत्ता को स्वीकार भी किया तथा अनेक ग्रन्थों के अनुवाद प्रकाशित किए या करवाये। फोर्ट विलियम कॉलेज के माध्यम से भी अनेक अंग्रेजों ने हिन्दी भाषा सीखी। भाषा के प्रति गौरव-बोध ने सांस्कृतिक बोध को जन्म दिया।

भारतीय संस्कृति आध्यिक, आध्यात्मिक रूप से विकसित संस्कृति थी। संस्कृति के दो स्तर होते हैं- एक स्तरहै। बाह्य और दसरा है आन्तरिक। बाह्य स्तर के अतिरिक्त रहन-सहन , वेश-भूषा, खान-पान आते हैं तथा आन्तरिक स्तर के अन्तर्गत आत्मिक- आध्यात्मिक -बौद्धिक चेतना आती है। किसी समाज-संस्कृति के प्रभाव से बाह्य स्तर पहले प्रभावित होता है। यह प्रभाव चिंतनीय नहीं है। लेकिन अगर कोई संस्कृति किसी अन्य संस्कृति की जातीय चेतना पर आधिपत्य करना शुरू कर देती है तो वह ज्यादा गंभीर एवं खतरनाक होती है। अंग्रेजों ने अपनी औपनिवेशिक मानसिकता का आधिपत्य भारतीय संस्कृति एवं भारतीय भाषाओं पर हमले करके स्थापित किया। इस सांस्कृतिक संघर्ष का परिणाम हुआ कि भारतीय सामंती संस्कृति में

हलचल हुई। अपने 'निज भाषा' एवं संस्कृति के प्रति जागरूकता का भाव पैदा हुआ। भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने घोषणा की - ''निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति कौ मूल।'' जाहिर है सब उन्नति में राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक सभी शामिल है। यह निजता का भाव आधुनिक हिन्दी पद्य की पीठिका बनता है।

अभ्यास प्रश्न 2

(क) निम्नलिखित प्रश्नों के रिक्त स्थान की पूर्ति दिए गए विकल्पों में से कीजिए।

1. भक्तिकाल.....बोध से युक्त है। (भौतिक, वैज्ञानिक, ऐतिहासिक)

2. मध्यकाल की केन्द्रीय विशेषता..... निर्धारित होती है। (तर्क, भक्ति-श्रृंगार, कार्य-कारण सम्बन्ध)

3. .....भावना का संवेदनात्मक शब्द-चित्र है। (अलंकार, प्रतीक, बिंब)

4. मानवतावाद में ईश्वर, मनुष्य, प्रकृति, पशु-पक्षी सबके लिए जगह है, जबकि 'मानववाद'.....केन्द्रित दर्शन है। (ईश्वर, मानव, प्रकृति)

5. आधुनिकीकरण का मख्य सम्बन्ध ..... के भारत आगमन से जुड़ा हुआ है। (पुर्तगाली, फ्रांसीसीयों, अंग्रेजों)

(ख) सत्य/ असत्य बताइए :-

1. अंग्रजों के आगमन का प्रारंभिक उद्देश्य व्यापारिक था।

2. प्लासी का युद्ध सन् 1757 ई0 में हुआ।

3. वारेन हेस्टिंग्ज ने भारत में विलय-नीति प्रारम्भ की।

4. स्वदेशी वस्तुओं के प्रति सबसे पहले भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने जागरूकता दिखाई

5. ब्रह्म समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती थे।

10.4 आधुनिक पद्य की प्रवृत्तियाँ

जैसा कि पूर्व में कहा गया कि आधुनिक पद्य का सम्बन्ध पुनजगिरण वादी चेतना से हे। पुनजगिरण का अर्थ करते हुए रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है- '' पुनजगिरण का एक चिह्न यदि दो जातीय संस्कृतियों की टकराहट है तेा दूसरा चिह्न यह भी कहा जाएगा कि वह मनुष्य के

सम्पूर्ण तथा संश्लिष्ट रूप की खोज, और उसका परिष्कार करना चाहता है'' (हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, पृष्ठ 80)।

आधुनिकता के केन्द्र में मनुष्य रहा हैं हिन्दी साहित्य में मनुष्य की अवधारणा कई बार बदली हैं। जैसा कि रामस्वरूप चतुर्वेदी ने इंगित किया है आदिकाल में मनुष्य का ईश्वर की महिमा से युक्त रूप में वर्णन हुआ है, जब कि भक्तिकाल में ईश्वर का चित्रण मनुष्य के रूप में हुआ है।

रीतिकाल में ईश्वर और मनुष्य दोनों का मनुष्य रूप में चित्रण हुआ है। तथा आधुनिक काल में आकर मनुष्य सारे चिंतन का केन्द्र बनता है, और ईश्वर की धारण व्यक्तिगत आस्था के रूप में स्वीकृत होती है, साहित्य या कि कलाओं में उसका चित्रण प्रासंगिक नहीं रह जाता। (चतुर्वेदी, रामस्वरूप, पृष्ठ 78-79) रामस्वरूप चतुर्वेदी के तर्क का सरल रूप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है।

हिन्दी कविता में मनुष्य की बदलती अवधारणा

आदिकालः	मनुष्य	ईश्वर
भक्तिकालः	ईश्वर	मनुष्य
रीतिकालः	ईश्वर+मनुष्य	मनुष्य
आधुनिककाल:	मनुष्य	मनुष्य

आचार्य रामस्वरूप चतुर्वेदी का तर्क मोटे रूप में सही है। लेकिन इसे पूरी तरह मान लेना भी संगत नहीं है। जैसे आधुनिक काल की हम बात करें तो हम देखते हैं इस युग में मनुष्य के साथ ईश्वर का चित्रण भी हुआ है तथा रहस्वादी प्रवृत्ति की भी कमी नहीं है। यह अलग बात है कि पौराणिक- ऐतिहासिक संन्दर्भों की आधुनिक व्याख्या आधुनिकता की देन है। यहाँ इस बात का संकेत करके हम आधुनिक की मुख्य विशेषताओं की संक्षेप चर्चा करेंगे। चूँकि यह इकाई आधुनिक पद्य की पृष्ठ भूमि के रूप में है इसलिए आगे की कविता-प्रवृत्तियों की संक्षिप्त रूपरेखा ही यहाँ प्रस्तुत की जा रही है।

10.4.1 राष्ट्रीयता

आधुनिक हिन्दी पद्य का प्रारम्भ राष्ट्रीय भाव बोध से हुआ है। राष्ट्रीय भावबोध का प्रारम्भ भारतेन्दु के गद्य के माधम से हुआ। भारतेन्दु हरिशचन्द्र की इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध पंक्ति देखें-

''अँगरेज राज सुख साज सजै सब भारी

पै धन बिदेस चलि जात इहै अति ख्वारी।।''

इसी प्रकार अंग्रेजी राज्य के शोषण का संकेत भारतेन्दु ने अप्रत्यक्ष तरीके से इस प्रकार किया कि ''अंधाधुंध मच्यौ सब देसा। मानहुँ राजा रहत विदेसा।।''

इसी प्रकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के ''भात-दुर्दशा'' नाट्क की यह पंक्ति भी राष्ट्रीय बोध की ही निष्पत्ति हैः

''रोवहु सब मिलकै आवहु भारत भाई।

हा ! हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।।''

यहाँ भारतेन्दु हरिशचन्द्र की चिन्ता कबीर की चिन्ता से मिल जाती है। 'दुखिया दास कबीर है जागे और रोवै' कहने वाले कबीर भारतेन्दु की पूर्ववर्ती प्रेरणा बनते हैं, यह ठीक ही है। भक्तिकाल जहाँ सांस्कृतिक जागरण है वहीं पुनजगिरण भौतिक-सामाजिक-ऐतिहासिक-सांस्कृति सभी प्राकर का जागरण है। 'प्रेमधन' ने भी अंग्रेजी सरकार के शोषण पर कटाक्ष करते हुए लिखा है- 'राओं सब मुंह बाया बाय हाय टिकस हाय हाय।'

राष्ट्रीयता की भावना 'द्विवेदी युग' में और तेज हुई, क्योंकि उस समय तक स्वतंत्रता आन्दोलन में और गति आ चुकी थी। मैथिलीशरण गुप्त का साहित्य राष्ट्रीय भाव-बोध से विशेष रूप से संचालित है। ''भारत-भारती'' काव्य अपने राष्ट्रीय बोध के कारण विशेष रूप से चर्चित हुआ। जिसके कारण उसे ब्रिटिश सत्ता ने प्रतिबंधित कर दिया था। 'भारत-भारती' का केन्द्रीय उद्बोधन है-

''हम कौन थे, क्या हो गये हैं और क्या होंगे अभी आओ, विचारें आज मिल कर ये समस्याएँ सभी।''

द्विवेदी युग के बाद छायावादी आन्दोलन मूलतः सांस्कृतिक बोध का आन्दोलन कहा गया है। छायावादी राष्ट्रीयता सांस्कृतिक जागरण के तत्वों से अनुस्यूत है। 'कामायनी' की प्रसिद्ध पंक्तियाँ देखें-

''शक्ति के विद्युत्कण जो व्यस्त

विकल बिखरे हैं, जो निरूपाय,

समन्वय उसका करे समस्त

विजयिनी मानवता हो जाय।''

हिन्दी कविता में सही रूप से राष्ट्रीयता की अवधारणा फलीभूत होती है- 'राष्ट्रीय-सांस्कृतिक'क कविता आन्दोलन से। रामधारी सिंह 'दिनकर' की राष्ट्रीय कविताओं 'दिल्ली', 'हाहाकार', 'विपथगा', तथा 'समर शेष है' में राष्ट्रीय भाव बोध की प्रबलता है। इसके अतिरिक्त उनके विचार-प्रधान काव्य 'कुरूक्षेत्र' तथा 'रश्मिरथी' भी राष्ट्रीय भाव बोध से

अछूती नहीं है। 'दिनकर' ने 'हुँकार' को राष्ट्रीय कविताओं का संग्रह कहा है।- 'तिमिर ज्योति की सरमभूमि का मैं चारण' में वैताली।' यह 'दिनकर' का मूल स्वर है। माखनलाल चतुर्वेदी की 'पुष्प की अभिलाषा' कविता काफी लोकप्रिय हुई थी। सियारामशरण गुप्त की 'उन्मुक्त' और 'दैनिकी' राष्ट्रीय आन्दोलन के बीच की कविताएँ हैं। बालकृष्ण शार्मा 'नवीन' की पंक्ति - 'कवि कुछ ऐसी तान सुनओ, जिससे उथल-पुथल मच जाये' राष्ट्रीय भावधारा की ही अभिव्यक्ति है। इसी प्रकार सुभ्रदाकुमारी चौहान की कविता 'झाँसी की रानी' तो राष्ट्रीय भावधारा का केन्द्रीय गीत ही बन गया। बुन्देलखण्डी लोकशैली में लिखी गई कविता- ''बुन्देले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी। खूब लडी़ मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी। '' राष्ट्रीय आन्दोलन के समय काफी लोकप्रिय हुई थी। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की कविता में राष्ट्रीय भाव बोध की अभिव्यक्ति का स्वरूप बदल गया। राष्ट्रीय चेतना की कविता का सम्बन्ध प्रायः पराधीनता की स्थिति हुआ करती है, स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद विद्रोह- प्रतिकार का केन्द्र बदल गया। पहले विद्रोह क केन्द्र में ब्रिटिश साम्राज्य था, अब व्यवस्था आ गई। तय था कि अपने भीतर का संघर्ष बाहरी संघर्ष से ज्यादा जटिल होता है। फलतः कविता में भी सांकेतिकता, बिंब, अंतर्विरोध, तनाव, विसंगति, बिडम्बना का प्रयोग होने लगा। कह सकते हैं प्रगतिवादी धारा तक राष्ट्रीय भाव बोध की खुली अभिव्यक्ति होती रही किन्तु उसके बाद राष्ट्रीयता का स्वरूप सूक्ष्म हो गया। इस पर आगे की इकाइयों में विस्तार से विचार किया जाएगा।

10.4.3 समाज -सुधार

जैसा कि हम जानते हैं, भारतीय पुनजगिरण का शुरूआती स्वरूप सुधारवादी चेतना से अनुप्राणित रहा है। ब्रह्म समाज, आर्य समाज, प्रार्थना समाज, रामकृष्ण मिशन जैसे ''समाज'' सुधारवादी प्रवृत्ति से ही संचालित रहे हैं। सती प्रथा कानून, विधवा विवाह अधिनियम, बाल-विवाह निषेध कानून जागरण-सूधार की ही व्यावहारिक निष्पत्तियाँ हैं। स्वंय भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने स़्त्री शिक्षा के प्रचारार्थ 'बालाबोधिनी' पत्रिका प्रकाशित की थी। आधुनिक हिन्दी पद्य का सम्बन्ध सुधारवादी चेतना से है। जैसा कि पूर्व में संकेत किया गया है भारतेन्दु युग तक पद्य में आधुनिकता का संस्पर्श नहीं हो पया था, लेकिन स्वंय भारतेन्दु 'निजभाषा' की आवश्यकता एवं महत्व को महसूस कर रहे थे। भारतेन्दु की चेतना का विकास महावीरप्रसाद द्विवेदी के माधम से पद्य में फलीभूत हुआ। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है- ''कविता का विषय मनोरंजक एवं उपदेशजनक होना चाहिए''। उपदेशजनक एवं नीतियुक्त प्रकृति के कारण ही 'द्विवेदी युग' की कविता को जागरण -सुधार नाम दिया गया है। द्विवेदी युग के प्रतिनिधि कवि हैं- मैथिलीशरण गुप्त। मैथलीशरण गुप्त के ऊपर टिप्पणी करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है-

''हिन्दी भाषी जनता के प्रतिनिधि कवि ये निस्संदेह कहे जा सकते हैं।'' 'भारतेन्दु' के समय में स्वदेश प्रेम की भावना जिस रूप में चली आ रही थी उसका विकास 'भारतभारती' में मिलता है। इधर के राजनीतिक आन्दोलनों ने जो रूप धारण किया उसक पूरा आभास पिछली रचनाओं में मिलता है। सत्याग्रह, अहिंसा, मनुष्यवाद, विश्वप्रेम, किसानों और श्रमजीवियों के प्रति प्रेम और सम्मान, सबकी झलक हम पाते है।'' गुप्त जी का 'साकेत' ग्रन्थ व्यापक रूप से

भारतीय नवजागरण के प्रभाव तले लिखा गया है। स्त्री संबधी सुधार या करूणा उनके काव्य की केंन्द्रीय विशेषताओं में से एक है। 'यशोधरा' खण्डकाव्य की पंक्ति बहुत प्रसिद्ध है-

''अबला हाय तुम्हारी यही कहानी।

आँचल में है दूध और आँखों में पानी।।''

द्विवेदी युग के पश्चात् छायावादी युग में सुधारवादी भावना सौन्दर्यवादी चेतना से आप्लावित हुई। छायावाद ने कल्पना का व्यापक प्रयोग किया। द्विवेदी युग में जो नारी 'अबला' थी छायावाद में- 'देवि, माँ, प्राण, सहचरि प्रिये हो तुम।' वह कई रूपों में स्वीकार की गई। निराला ने इसी प्रकार वर्ग-वैषम्प का विरोध करते लिखा है- 'अमीरों की हवेली होगी/ आज होगी गरीबों की पाठशाला।' सामाजिक रूढ़ियों पर चोट करते हुए निराला ने लिखा है- 'तुम करो व्याह, तोड़ता नियम/ मैं सामाजिक योग के प्रथम।' श्रम सौन्दर्य पर निराला ने 'तोड़ती पत्थर' तथा 'भिक्षुक' कविता लिखकर प्रगतिवादी धारा का सूत्रपात कर दिया था। प्रगतिवादी साहित्य में कविता का स्वर प्रचारात्मक बना। नागार्जुन, त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल, शिवमंगल सिंह 'सुमन', अमृतराय, रांगेय राघव की कविता तत्कालीन व्यवस्था विसंगतियों पर चोट करती है। प्रगतिवाद के बाद का पद्य समाज सुधार के स्थूल आवरण से हटकर सूक्ष्म रूप से विसंगति-विडम्बना के माध्यम से पहल करता चाहता है। अतः हिन्दी पद्य जो समाज सुधार की भावना से प्रारम्भ हुआ था, क्रमशः वैचारिक होता गया। आज का पद्य तो दलित, स्त्री, आदिवासी विमर्श को अपने में समेटे हुए है। इस दृष्टि से हिन्दी कविता सामाजिक सरोकारों के प्रति पर्याप्त सजग रही है।

10.4.3 व्यवस्था यर्थाथ का उद्घाटन

आधुनिक हिन्दी साहित्य का प्रारम्भ व्यवस्था यर्थाथ के उद्घाटन से ही हुआ है। भारतेन्दु हरिशचन्द्र का 'भारत-दुर्दशा' तथा 'अंधेरे नगरी' नाटक व्यवस्था यर्थाथ उद्घाटन के ही तो प्रयास है। जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है भारतुन्दु युगीन कविता 'कहाँ करूणानिधि केशव सोये,' से आगे नहीं जा पाई थी, लेकिन उस युग का गद्य पयप्ति रूप से अपने युग के प्रति सजग था। द्विवेदी युगीन कविता पर भारतीय नवजागरणवादी चेतना का प्र्याप्त प्रभाव है। और सुधारवादी रूझानों से भी संयुक्त है, लेकिन व्यवस्था-उद्घाटन की तीव्रता का उसमें अभाव है। मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत-भारती' कृति, जो युवा क्रान्तिकारियों के बीच काफी लोकप्रिय हुई थी, उसे भी हम जागरण- कृति कह सकते हैं, व्यवस्था उद्घाटन की कृति नहीं। प्रश्न है जागरण कृति एवं व्यवस्था उद्घाटन कृति में क्या अन्तर है? वस्तुतः जागरण की भावना पूर्ववर्ती भावना है, जबकि व्यवस्था उद्घाटन की भावना पश्चवर्ती। जागरण होने के पश्चात् ही हम व्यवस्था की विसंगतियों, अंतर्विरोध या यर्थाथ को देख-समझ सकते हैं। अतः जागरण एवं व्यवस्था उद्घाटन एक ही प्रक्रिया की पूर्व एवं पर स्थितियाँ हैं। 'भारत-भारती' का जागरण व्यवस्था के यर्थाथ के कारण पैदा हुआ है। इसका अर्थ यह है कि पहले व्यवस्था के यर्थाथ का बोध होता है, फिर जागरण की भावना आती है तत्पश्चात् व्यवस्था के यर्थाथ का उद्घाटन होता है। व्यवस्था के यर्थाथ की विसंगति इसका अगला चरण है। द्विवेदी युग तक राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रभाव से

जागरणवादी भावना का आगमन हो चुका था। छायावाद युग में व्यवस्था की विसंगति के पर्याप्त चित्र हमें देखने को मिलते हैं। निराला की रचनाएँ इस सम्बन्ध में विशेष रूप से उल्लेखनीय है। चाहे वह 'भिक्षुक' हो या 'तोड़ती पत्थर' या 'कुकुरमुत्ता'। लेकिन अन्य रचनाकारों के सम्बन्ध में यही बात नहीं कही जा सकती। जयशंकर प्रसद एवं महादेवी वर्मा का साहित्य व्यापक रूप से सौन्दर्यवादी-दार्शनिक रूझानों से गतिशील है वहीं सुमित्रानन्दन पन्त का साहित्य सौन्दर्य -चित्रों से होते हुए यर्थाथ के अंकन तक पहुँचा है। पन्त जी की कविता की पंक्ति देखें-

''साम्राज्यवाद था कंस, वन्दिनी

मानवता पशु बलाक्रांत

श्रृंखला दासता, प्रहरी बहु

निर्मम शासन-पद शक्ति भ्रांत

निराला ने इसी प्रकार लिखा है-

''रूद्ध कोष, है क्षुब्ध तोष,

अंगना-अंग से लिपटे भी

आतंक अंक पर काँप रहे हैं

धनी, वज्र-गर्जन से बादल

त्रस्त नयन-मुख ढाँप रहे हैं

जीर्ण बाहु, है शीर्ण शरीर

तुझे बुलाता कृषक अधीर

हे विप्लव के वीर! ''

या ' देखता रहा में खडा़ अपल

वह शरक्षेप, वह रणकौशल,

या ' ये कान्यकुब्ज कुल कुलांगार,

खाकर पत्तल में करें छेद, ''

× × ×

‘दुःख ही जीवन की कथा रही/क्या कहूँ आज जो नहीं कही! ‘

जैसी पंक्तियाँ व्यक्तिगत जीवन से होती हुई सामाजिक - राष्ट्रीय यर्थाथ को बखूबी व्यक्त करती हैं। लेकिन छायावाद तक कविता का मूल स्वर आदर्शवादी एवं सौन्दर्यवादी ही था। प्रगतिवादी आन्दोलन के घोषणापत्र से एक नये प्रकार की चेतना की जन्म हुआ, जिसने व्यवस्था की विसंगति का पर्याप्त पर्दाफ़ाश किया। प्रगतिवादी साहित्य तथा मोहभंग की कविता इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय हैं प्रगतिवादी धारा में नागार्जुन अपने व्यंग्यपरक रचनाओं, जो व्यवस्था की विसंगति पर आधारित हैं, के कारण विशेष रूप् से चर्चित रहे हैं। नागार्जुन की कविता के कुछ उदाहरण देखें-

‘‘बापू के भी ताऊ निकले तीनों बंदर बापू के।

सकल सूत्र उलझाऊ निकले तीनों बंदर बापू के! ‘‘

× × ×

‘कई दिनों तक चल्हा रोया/चक्की रही उदास/

कई दिनों तक काली कुतिाया/ सोई उनके पास

× × ×

‘धुन खाये शहतीरों पर बारहखडी़ विधाता बाँचे

फटी भीत है, छत चूती है, आले पर बिसतुइया नाचे,

केदारनाथ अग्रवाल की कविता की कुछ पंक्तियाँ देखें-

‘काटो, काटो , काटो, कदबी

मरो, मारो, मारो हँसिया

हिंसा और अहिंसा क्या है

जीवन से बढ़ हिंसा क्या है

× × ×

‘मिल के मालिकों को

अर्थ के पैशाचिर्कों को

भूमि के हड़पे हुए धरणीधरों को

मैं प्रलय के साम्यवादी आक्रमण से मारता हूँ''

× × ×

'मैंने उसको जब भी देखा/ लोहा देखा/

लोहा जैसे गलते देखा/ लोहा जैसे ढलते देखा/

लोहा जैसे चलते देखा।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व तक व्यवस्था चित्रण का स्वरूप अलग किस्म का था और स्वतंत्रता पश्चात् व्यवस्था चित्रण का स्वरूप दूसरे प्रकार का। स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व व्यवस्था के केन्द्र में ब्रिटिश सत्ता थी, जबकि उसके पश्चात् केन्द्र में शासन कर रही व्यवस्था, जिसमें कार्यपालिका, विद्यायिका एवं न्यायपालिका सभी आते हैं, आ जाती है। केन्द्र बदलते हैं तो परिधियाँ भी बदल जाती है। प्रारम्भ में कवियों का लक्ष्य सामाजिक यर्थाथ का चित्रण करना था, फिर राजनीतिक यर्थाथ की विसंगति पर ध्यान गया उसके पश्चात् विसंगति के प्रति क्रान्ति की भावना तक कवि दृष्टि गई। गजानन माधव 'मुक्तिबोध' की लम्बी कविता 'अंधेरे में' इस दृष्टि से प्रतिनिधि कविता कही जा सकती है। पूरी कविता जन-संगठन के क्रान्तिकारी तत्वों से आबद्ध है। ''अभिव्यक्ति के खतरे उठाने ही होंगे/तोड़ने ही होंगे मठ और गढ़ सब। '' कविता की केन्द्रीय पंक्तियाँ हैं। इसके बाद हिन्दी कविता में 'व्यवस्था से मोहभंग' की बात सीधे-सीधे उठने लगी। मुक्तिबोध ने लोक युद्ध का सपना तो देखा लेकिन उन्होंने इसके लिए फैंटसी शिल्प (स्वप्न शैली) का सहारा लिया। लेकिन मोहभंग की कविता के सामने ऐसे किसी शिल्प की मजबरी न रह गई। अमरीकी कवि एलेन गीन्सवर्ग से प्रभावित कवियों का एक वर्ग उभरा, जो व्यवस्था की विसंगतियों पर खुलकर चोट करता था। इस धारा में राजकमल चौधरी, सुदामा पाण्डेय 'धूमिल', लीलाधर जगूड़ी, चंद्रकान्त देवताले मगलेश डबराल इत्यादि प्रमुख कवि शामिल थे। इस धारा की अगुआई कवि राजकमल चौधरी ने तथा सबसे सशक्त कवि थे 'धूमिल'। 'मुझे अपनी कविताओं के लिए/ दूसरे प्रजातंत्र की तलाश है।'

× × ×

'अपने यहाँ संसद/तेली की वह घानी है/ जिसमें आधा तेल है/ और आधा पानी है' इसी क्रम में धूमिल की प्रसिद्ध कविता 'रोटी और संसद' देखें- 'एक आदमी रोटी बेलता है/ एक आदमी रोटी खाता है/ एक तीसरा आदमी भी है/जो न रोटी बेलता है और न रोटी खाता है/ वही सिर्फ रोटी से खेलता है/ वह तीसरा आदमी कौन है/ मेरे देश की संसद मौन है।'

10.4.4 विमर्श केन्द्रीयता

कविता अपने मूल रूप में भाव का परिष्कार एवं विस्तार करने वाली छांदिक एवं लययुक्त भाषा-विधान है। कविता सबसे पहले भाव निर्माण करती है। भाव निर्माण का कार्य कविता बिंब निर्माण करके करती है। युग-सन्दर्भ के अनुसार हाँलाकि कविता के औजार भी बदलते रहते हैं।

'विमर्श' शब्द उत्तर-आधुनिक युग की देन है। यह 'डिस्कोर्स' के हिन्दी पर्याय के रूप में प्रयोग होता है, जिसका अर्थ चर्चा-परिचर्चा के समतुल्य होता है। कविता और विमर्श का क्या सम्बन्ध है? कविता के लिए विमर्श की क्या आवश्यकता है? इन प्रश्नों को जानना जरूरी हो जाता है, क्योंकि कविता युगानुरूप अपने तेवर विमर्श से ही प्राप्त करती रहती है। 'विमर्श' आलोचना की पृष्ठभूमि है। समकालीन घटनाओं पर जन-प्रतिक्रिया का बौद्धिक हस्तक्षेप है। भारतेन्दु युग में समस्यापूर्तियाँ या काव्य गोष्ठियाँ विमर्श के ही प्रकार थे। संस्कृत साहित्य में राजेशेखर द्वारा वर्णित 'कविचर्चा' या ' विदग्ध गोष्ठी' विमर्श के ही प्राचीन नाम थे। अतः विमर्श साहित्य को तत्कालीन घटनाओं से जोड़ने का साधन हैं । भारतेन्दु का 'पै धन बिदेस चलि जात इहै अति ख्वारी।।'' समकालीन विमर्श का साहित्यिक रूपान्तर ही तो है। भारतेन्दु के 'अंधेरनगरी' का रूपक विमर्श नहीं तो और क्या है। मैथिलीशरण गुप्त की नवजागरणवादी साहित्यिक पंक्ति देखें- 'राम तुम मानव है? ईश्वर नहीं हो क्या? / विश्व में रमे हुए नहीं सभी कहीं हो क्या?/ तब मैं निरीश्वर हूँ, ईश्वर क्षमा करें,/ तुम न रमो तो मन तुममें रमा करे।

× × ×

'भव में नव वैभव व्याप्त कराने आया,

नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया!

संदेश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया,

इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।,'

मैथिलीशरण गुप्त जी की यह पंक्ति बदलते युगीन संवदेना को बड़े सुन्दर ढंग से व्यक्त करती है। छायावाद का मूल स्वर सांस्कृतिक पुनरूत्थान या सांस्कृतिक जागरण का बन जाता है। जयशंकर प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक हों यो प्रसाद, निराला की लम्बी कविताएँ सांस्कृतिक जागरण को बखूबी व्यक्त करती है। अनायास नहीं कि छायावाद युग में सर्वाधिक जागरण गीत लिख गये। जयशंकर प्रसाद के 'प्रथम प्रभात', 'आँखों से अलख जगाने को', 'अब जागो जीवन के प्रभात', 'बीती विभावरी जाग री'!, निराला के 'जागो दिशा ज्ञान', 'जागो जीवन धनिके,'! सुमित्रानन्दन पन्त के 'प्रथम रश्मि', 'ज्योति भारत', तथा महादेवी वर्मा के 'जाग बेसुध जाग' तथा जाग तुझको दूर जाना' जैसी कविताएँ सांस्कृतिक जागरण-विमर्श की रचनात्मक प्रतीतियाँ हैं। जयशंकर प्रसाद के 'आँसू' खण्डकाव्य में ' जोगो, मेरे मधुवन में ' तथा निराला के 'तुलसीदास' के इन पंक्तियों में (जागो, जागो, आया प्रभात,/बीती वह, बीती अंध रात') जागरण का ही स्वर है। यहाँ हमें स्मरण रखना चाहिए कि व्यवस्था चित्रण और विमर्श में स्वरूपगत भेद है। व्यवस्था चित्रण तत्कालीन घटना क्रम की सीधी अभिव्यक्ति है तो 'विमर्श' तत्कालीन घटना क्रम की साहित्यिक- सामाजिक पृष्ठभूमि। प्रगतिवादी साहित्य का वर्ग - वैषम्य उद्घाटन व्यापक रूप से 'साहित्य का उद्देश्य' शीर्षक विमर्श से जुड़ता है। 'प्रगतिशील लेखक संध (1936) के प्रथम अधिवेशन में प्रेमचन्द्र के अध्यक्षीय संबोधन 'साहित्य का उद्देश्य' पूरे प्रगतिवादी साहित्य

का विमर्श ही है। इसी प्रकार प्रयोगवाद का आधुनिक बोध पश्चिमी विचारधाराओं (मनोविश्लेषणवाद, अस्तित्ववाद, मार्क्सवाद आदि का) के विमर्श का ही साहित्यिक रूपान्तरण है। धूमिल जैस कवि पर नक्सलवादी आन्दोलन का कितना प्रभाव पडा़ है, यह ध्यान देने वाली बात है। नागार्जुन जैसे कवि पर राजनीतिक घटनाओं का प्रत्यक्ष प्रभाव हम देख सकते हैं। सन् 1990 के बाद के साहित्य को हमने विमर्श केन्द्रित साहित्य का नाम ही दे दिया है। सन् 90 के बाद कई विमर्श भारत और विशेषकर हिन्दी साहित्य में उभरे। जैसे भूमंडलीकरण, वैश्वीकरण, उत्तर-आधुनिकता, स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श आदि। पहले के मुकाबले आज की राजनीतिक-भौतिक स्थिति में परिवर्तन आ चुका है। आत का युग संचार का युग है। संचार माध्यमों के प्रभाव से आज ढेरों घटनाएँ हमारे मन -मस्तिष्क का हिस्सा बनती है, किन्तु कम घटनाएँ ही हमारी संवेदना का हिस्सा बनती हैं। विमर्श के लिए संवेदना को घटना तक पहुँचना अनिवार्य है।

आधुनिक पद्य प्रवृत्तियों में 'विमर्श केन्द्रियता' मुख्य है। आधुनिक पद्य में स्वचेतन वृत्ति के कारण बदलाव की प्रक्रिया मध्यकालीन कविता से तीव्र रही है। आदिकाल एवं मध्यकालीन कविता शताब्दियों तक एक ही धारा में बहती रही हैं। आधुनिक काल के पश्चात् सामाजिक बदलाव की प्रक्रिया भी तीव्र हुई। इस काल को सामाजिक-सांस्कृतिक स्तर पर उत्तर-आधुनिकता कहा गया है। विचारधारा के स्तर पर इसे भूमंडलीकरण- वैश्वीकरण कहा गया है। इसी दौर में विचारधारा का अन्त' 'लेखक की मृत्यु', कविता की मृत्यु' जैसी नकारवादी अवधारणाएँ भी सामने आई। 'विचारधार का अन्त' प्रतिबद्धता हीन समाज की विलय का ही संकेत समझना चाहिए। उपर्युक्त नकारवादी दर्शनों में आंशिक सच्चाई थी। ये ज्यादातर पश्चिमी देशों का सच था। 'नकारवादी दर्शन' में सब कुछ नकारात्मक हो, हम यह भी नहीं कह सकते। उत्तर-आधुनिक सैद्धान्तिकी (हांलाकि यह किसी भी सिद्धान्त को अन्तिम नहीं मानता) दबे हुए समाज/ हाशिये के समाज के लिए किसी वरदान से कम नहीं हुआ। अनुपस्थित की तलाश उन सारे सिद्धान्तों को चुनौती देता है जो श्रेष्ठता के मानदण्ड से स्थिर किए गये थे। अनुपस्थिति की तलाश का ही वैचारिक रूप 'विमर्श' है, जिसे पश्चिमी देशों में 'डिस्कोर्स' कहा गया। 'विमर्श की केन्दीयता के दबाव के चलते ही स्त्री-विमर्श, दलित-विमर्श , आदिवासी विमर्श, भाषा-विमर्श, संस्कृति-विमर्श इत्यादि नये रूप में हमारे साने आये। सन् 1990 के बाद भारतीय समाज और हिन्दी साहित्य में उपर्युक्त विमर्श नये ढंग से विश्लेषित किए जाने लगे।

अभ्यास प्रश्न 3

क) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर पाँच-छह पंक्तियों में दीजिए-

1. पुनर्जागरण से आप क्या समझते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2. हिन्दी कविता में मुनष्य की बदलती अवधारणा स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

ख) निम्नलिखित प्रश्नों के रिक्त स्थानों की पूर्ति दिए गय विकल्पों में से कीजिए।

1. 'भारत दुर्दशा न देखी जाई' पंक्ति के लेखक..... हैं। (मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद, भारतेन्दु हरिशचन्द्र)

3. सांस्कृतिक जागरण.....की विशेषता है। (भारतेन्दु काल, द्विवेदी युग, छायावाद)

3. राष्ट्रीय बोध की दृष्टि से ..... उल्लेखनीय काव्यान्दोलन है। (छायावाद, राष्ट्रीय सांस्कृतिक, प्रयोगवाद)

4. 'साकेत' ग्रन्थ के रचनाकार..... हैं। (जयशंकर प्रसाद, निराला, मैथिलीशरण गुप्त)

5. 'दुःख ही जीवन की कथा रही' पंक्ति के लेखक..... है। (नागार्जुन, दिनकर, निराला)

10.5 आधुनिक हिन्दी पद्य का महत्व

अभी तक आपने हिन्दी कविता के सम्पूर्ण इतिहास का विस्तार से अध्ययन किया। इसी क्रम में आपने मध्यकालीन पद्य और आधुनिक पद्य के अन्तर का भी अध्ययन किया। आपने देखा कि मध्यकालीन पद्य के केन्द्र में भक्ति-नीति-श्रृंगार रहे हैं। मध्यकालीन समाज-संस्कृति और काल

को देखते हुए इसे पिछडा़ हुआ नहीं कहा जा सकता । मध्यकाल के अन्तर्गत 'भक्तिकाल' एवं रीतिकाल' दोनों आते हैं। कथ्य, संवेदना, लोकधर्मिता की दृष्टि के कारण महत्वपूर्ण है। फिर भी अपनी सारी लोकधर्मिता और ऐहिक दृष्टि के बावजूद भक्तिकाल और रीतिकाल के सारे मूल्य ईश्वर एवं सामन्तों से संचालित होते हैं और यही मध्यकाल की सीमा है। आधुनिक काल के केन्द्र में मानव केन्द्रित मूल्य, तर्क केन्द्रित वैज्ञानिक दृष्टि एवं वर्तमानकालिक चेतना रही है। आधुनिक कालीन हिन्दी कविता ने क्रमशः ईश्वर की जगह मानव केन्द्रित मूल्य विकसित किए। रामस्वरूप ईश्वर की जगह मानव केन्द्रित मूल्य विकसित कये। रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है- ''आधुनिक काल में मनुष्य सम्पूर्ण रचना और चिंतन के केन्द्र में हैं, ईश्वर अब व्यक्तिगत आस्था का विषय है, चित्रण का नहीं।'' प्रियप्रवास की भूमिका में 'हरिऔध ' ने लिखा है- ''मैने श्रीकृष्ण चन्द्र को इस ग्रन्थ में एक महापुरूष की भाँति अंकित किया है, ब्रह्म करके नहीं।'' हिन्दी के अन्य महत्वपूर्ण महाकाव्य 'साकेत' में मैथिलीशरण गुप्त ले 'ईश्वर' की भूमिका को लेकर उनर्मूल्यांकन का प्रयत्न किया है- 'राम, तुम मानव हो? ईश्वर नहीं हो क्या?' मानव केंद्रित मूल्य में काव्य की अभिव्यक्ति शैली ही बदल दी/ वर्तमानकालिक चेतना सम्पूर्ण भारतीय साहित्य का आधुनिक संदर्भों में मल्यांकन करने की चेतना प्रदान की। हिन्दी पद्य ने नवजागरणवादी चेतना के अनुरूप् सामंती मूल्यों का बहिष्कार कर लोकधर्मी मूल्य विकसित किए।

10.6 सारांश

- आधुनिक काल नवजागरणवादी चेतना से निसृत वैचारिक एवं प्रायोगिक दर्शन है। नवजागरणवादी चेतना सांस्कृतिक ऊर्जा से उत्पन्न चेतना है। अपनी जातीय चेतना, अस्मिता एवं संस्कृति के पुनर्मूल्यांकन का सृजनात्मक प्रयत्न ही नवजागरण या पुनर्जागरण है।
- हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल गद्य के माध्यम से आया। इसीलिए रामचन्द्र शुक्ल ने इसे 'गद्य काल' कहा है। गद्य विचार प्रधान रूप है, जबकि पद्य संवेदना प्रधान। पहले विचार बदलते हैं फिर संवेदना। इस दृष्टि से हिन्दी पद्य का विकास हिन्दी गद्य के पश्चात् हुआ।
- प्राचीन एवं मध्यकालीन कविता का काव्य प्रवाह कई वर्षों तक एम-सा ही चलता रहा है, लेकिन आधुनिक हिन्दी कविता बदलती काव्य चेतना के कारण कई प्रवृत्तियों से होकर गुजरी है।
- आधुनिक हिन्दी कविता के विभिन्न नामकरण को बदलती हुई साहित्यिक यात्रा का ही संकेत समझना चाहिए। नामकरण में भी कहीं साहित्यकार व्यक्तित्व (भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग) कहीं साहित्यिक प्रवृत्ति (छायावाद, नयी कविता, हालावाद, प्रयोगवाद,

मोहभंग की कविता इत्यादि) कहीं सामाजिक - सांस्कृतिक परिस्थिति (पुनजगिरण, प्रगतिवाद, उत्तर-आधुनिकता इत्यादि) का मुख्य योगदान रहा है।

- खडी़ बोली हिन्दी कविता का आगमन अकस्मात नहीं हुआ है कि इसके पीछे सामजिक, राजनीतिक, धार्मिक -सांस्कृतिक परिस्थितियों की मुख्य भूमिका थी।
- हिन्दी कविता आधुनिक बोध से युक्त रही है। आधुनिक बोध से युक्त होने का अर्थ है वर्तमानकालिक, तर्क केन्द्रित दृष्टि सम्पन्न होना।
- आधुनिक हिन्दी पद्य की प्रमुख प्रवृत्तियों में राष्ट्रीयता, समाज सुधार, व्यवस्था यर्थाथ का उद्घाटन एवं विमर्श केन्द्रीयता मुख्य रहे हैं।

10.7 शब्दावली

1. वर्तमानबोध - अपने समय की गति से परिचित होना।
2. स्वच्छंदतावाद- रूढ़ियों से मुक्ति का आन्दोलन
3. ऐंद्रियता - इस लोक के प्रति चेतना का भाव।
4. सेक्युलर - धार्मिक कट्टरता से परे का दर्शन
5. संश्लिष्ट - सम्पूर्ण, व्यापक रूप
6. विसंगति - सामाजिक व्यवस्था में संगति न होना
7. बिडम्बना - जीवन/समाज की चिन्तनीय स्थिति
8. लोकधर्मिता - लोक संवेदना का अनुभव।

10.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1 (ख)

1. असत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. असत्य 5. असत्य

अभ्यास प्रश्न 2 (क)

1. ऐतिहासिक 2. भक्ति श्रृंगार 3. बिम्ब 4. मानव 5. अंग्रजों

(ख) 1. सत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. सत्य 5. असत्य

अभ्यास प्रश्न 3 (ख)

1. भारतेन्दु हरिशचन्द्र 2. छायावाद 3. राष्ट्रीय- सांस्कृतिक

4. मैथिलीशरण गुप्त 5. निराला

10.9 संन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिका सभा।

3. (सं) डॉ0 नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर पब्लिकेशन।

3. चतुर्वेदी, रामस्वरूप, हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन।

4. सिंह, बच्चन, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन।

10.10 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. वर्मा, सं, धीरेन्द्र, हिन्दी साहित्य कोश भाग 1, ज्ञानमण्डल प्रकाशन

2. तिवारी, रामचन्द्र, रामचन्द्र शुक्लः आलोचना कोश, विश्वविद्यालय प्रकाशन।

10.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. आधुनिक हिन्दी पद्य की पृष्ठभूमि पर निबन्ध लिखिए।

2. मध्यकालीन कविता और आधुनिक कविता का तुलनात्मक विवेचन कीजिए।

3. आधुनिक हिन्दी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियों की विवेचना कीजिए।

इकाई 11 - आधुनिक हिंदी कविताः भारतेन्दु युग

इकाई का स्वरुप

11.1 प्रस्तावना
11.2 उद्देश्य
11.3 आधुनिक हिन्दी कविता : भारतेन्दु युग
  11.3.1 जीवन परिचय
  11.3.2 भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का कृतित्व
11.4 भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की काव्यगत विशेषताएँ
  11.4.1 परम्परागत विषय की कविताएँ
    11.4.1.1 भक्ति संबंधी कविताएँ
    11.4.1.2 रीति संबंधी कविताएँ
  11.4.2 नवीन विषय वस्तु की कविताएँ
    11.4.2.1 राष्ट्रीयता
    11.4.2.2 सामाजिक चेतना
11.5 शिल्प पक्ष
  11.5.1 भाषा
  11.5.2 काव्य शिल्प
11.6 सारांश
11.7 शब्दावली
11.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
11.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
11.10 सहायक/ उपयोगी पाठय सामग्री
11.11 निबन्धात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

आपने पूर्व की इकाई 'हिन्दी साहित्य का आधुनिककालः पद्य का अध्ययन कर लिया है उस इकाई के माध्यम से आपने यह जाना है कि आधुनिक काल की पृठभूमि क्या थी तथा वह कौन सी परिस्थितियाँ थी, जिसके कारण आधुनिकता का विकास हुआ। तत्कालीन राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सामाजिक - सांस्कृतिक परिस्थितियों से किस प्रकार आधुनिक काल का पद्य निर्मित हुआ, आपने पिछली इकाई में यह जाना। इसके अतिरिक्त आधुनिक पद्य का काल

विभाजन एवं मुख्य प्रवृत्तियों को भी आपने अध्ययन किया। आधुनिक साहित्य के प्रवर्तन का श्रेय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को दिया गया है। क्योंकि समाज की विकसनशील स्थितियों से साहित्य को पहली बार भारतेन्दु ने ही जोड़ा। आर्चाय रामचन्द्र शुक्ल ने इस संबंध में टिप्पणी की हैः '' भारतेन्दु हरिचन्द्र का प्रभाव भाषा और साहित्य दोनों का बड़ा (दोनों पर) गहरा पड़ा। उन्होंने जिस प्रकार गद्य की भाषा को परिमार्जित करके उसे बहुत ही चलता, मधुर और स्वच्छ रूप दिया, उसी प्रकार हिंदी साहित्य को भी नये मार्ग पर लाकर खड़ा कर दिया। उनके भाषा संस्कार की महता को सब लोगों ने मुम्तखंड से स्वीकार किया और वे वर्तमान हिंदी गद्य के प्रवर्तक माने गये। ..... भाषा का निखरा हुआ सामान्य रूप भारतेन्दु की कला के साथ ही प्रकट हुआ। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने पद्य की ब्रजभाषा का भी बहुत संस्कार किया। पुराने पड़े हुए शब्दों को हटाकर काव्यभाषा में भी वे बहुत कुछ चलतापन और सफाई लाये। इससे भी बड़ा काम उन्होंने यह किया कि साहित्य को नवीन मार्ग दिखाया और वे उसे शिक्षित जनता के साहचर्य में ले आये। नयी शिक्षा के प्रभाव से लोगों की विचारधारा बदल चुकी थी। उनके मन में देशहित, समाजहित आदि की नयी उमंगें उत्पन्न हो रही थीं। काल की गति के साथ-साथ उनके भाव और विचार तो बहुत आगे बढ़ गये थे, पर साहित्य पीछे ही पड़ा था..... भारतेन्दु ने उस साहित्य को दूसरी ओर मोड़कर जीवन के साथ फिर से लगा दिया। इस प्रकार हमारे जीवन और साहित्य को नये-नये विषयों की ओर प्रवृत करने वाले हरिश्चन्द्र ही हुए।" ('हिंदी साहित्य का इतिहास ',पृष्ठ 404) । तय है कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का गद्य इस दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है। लेकिन कविता की दृष्टि से भी उनका साहित्य कम मूल्यवान नहीं है। काव्य में भी भारतेन्दु ने कम प्रयोग नहीं किए हैं ।

इसके अतिरिक्त पत्र- पत्रिकाओं के प्रकाशन से भारतेन्दु ने कविता को समसाकयिक विषयों से जोड़ने का ऐतिहासिक कार्य भी किया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का कृतित्व मात्रात्मक एवं गुणात्मक दोनों दृष्टियों से समूह हैं। कवि के रूप में उन्होंने ब्रजभाषा तथा खड़ी बोली दोनों भाषाओं में कविताएँ लिखी हैं। जिनमें स्वरूपगत भेद है। भारतेन्दु हरिश्चन्दु के काव्य में व्यक्त राष्ट्रीयता, समाज सुधार, राजभक्ति, भक्ति ,नीति, श्रंगार आदि विविध विषयों से संबन्धित कविताओं को अध्ययन कर हम उनके रचना -कर्म को जानेंगे तथा यह समझने को प्रयत्न करेंगे कि हिन्दी साहित्य-संस्कृति में भारतेत्दु का क्या महत्व है। आइए हम भारतेन्दु कृतित्व के आस्वादन-अवलोकन से पूर्व उनकी जीवनी संक्षेप में जानें।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई में आप आधुनिक हिंदी कविता के संदर्भ में भारतेत्दु हरिश्चन्द्र का अध्ययन करने जा रहे हैं। इस इकाई के पढ़ने के बाद आप:

- भारतीय नवजागरण की पीठिका को समझ सकेंगे।
- भारतीय नवजागरण के स्वरूप से परिचित हों सकेंगे।

- भारतीय नवजागरण के साथ भारतेत्दु हरिश्चन्द्र के अर्न्तसम्बन्ध को जान सकेंगे।
- भारतेत्दु हरिश्चन्द्र के साहित्य की मूल अंतः संबंधों को जान पायेंगे।
- भारतेत्दु हरिश्चन्द्र के साहित्य से परिचित हो सकेंगे।
- भारतेत्दु हरिश्चन्द्र के सामाजिक साहित्यिक प्रदेय से परिचित हो सकेंगे।
- भारतेत्दु हरिश्चन्द्र के माध्यम से आधुनिक हिन्दी कविता की पारिभषिक शब्दावली से परिचित हो सकेंगे।

11.3 आधुनिक हिन्दी कविता : भारतेन्दु युग

11.3.1 जीवन - परिचय

आधुनिक हिन्दी साहित्य के जन्मदाता भारतेत्दु हरिश्चन्द्र का जन्म 9 सितम्बर सन् 1850 ई0 में हुआ था। आप 18 - 19 वीं शताब्दी के जगत् - सेठों के एक प्रसिद्ध परिवार से सम्बन्ध रखते हैं। आपके पूर्वज सेठ अमीचन्द का उत्कर्ष भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना के समय में हुआ था। सिराजुद्दौला और अंग्रेजों के मध्य संघर्ष होने पर अमीचन्द ने अंग्रजों की सहायता की थी, यह अलग बात है कि उसके बाद भी अंग्रेजों ने उनके साथ प्रतिकूल आचरण किया। उसी परिवार में सेठ अमीचन्द के प्रपौत्र गोपानचन्द (उपनाम गिरिधरदास, 1844 जन्म) का जन्म हुआ । गिरिधरदास जी अपने समय के प्रसिद्ध कवि तथा कवियों - लेखकों के आश्रयदाता थे। गिरिधरदास जी का लिखा नहुष काव्य नाटक ब्रज भाषा में लिखा, हिन्दी के प्रारंभिक नाटकों में से एक है। इन्ही गिरिधरदास जी के ज्येष्ठ पुत्रके रूप में भारतेत्दु हरिश्चन्द्र का जन्म हुआ था। इस प्रकार हम देखते है कि भारतेत्दु को दो चीजें विरासत में मिलीं। एक उनके घर का साहित्यिक संस्कार दूसरे, धन की उपलब्धता। धन की उपलब्धता ने ही ‘ भारतेत्दु - मण्डल ‘ के संचालन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

भारतेत्दु हरिश्चन्द्र जी का पारिवारिक जीवन दुखमय रहा। पाँच वर्ष की अल्पायु में ही उनकी माता पार्वती देवी तथा दस वर्ष की अवस्था में उनके पिता का देहान्त हो गया। विमाता के तिक्त व्यवहार से भी उन्हें बहुत कष्ट हुआ। पिता की अकाल मृत्यु के कारण भारतेन्दु जी की शिक्षा व्यवस्थित रूप से संपन्न नहीं हो पाई। पिता की मुत्यु के पश्चात् उन्होने काशी के क्वीन्स कॉलेज में अध्ययन किया, लेकिन अध्ययनको क्रमिकता प्रदान नहीं कर सके। कॉलेज छोड़ने के पश्चात् भारतेत्दु जी ने स्वाध्याय से हिन्दी, संस्कृत, मराठी, बंगला, गुजराती, मारवाड़ी, पंजाबी, उर्दू आदि भाषाओं का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर लिया। उस समय काशी के राजा शिवप्रसाद सिंह ‘सितारे हिंद’ प्रतिष्ठित विद्वान थे भारतेत्दु जी ने सितारे हिंद से भी शिक्षा ग्रहण की। तेरह वर्ष की अल्पायु में ही उनका विवाह काशी के लाला गुलाबराय की पुत्री मन्ना देवी से हुआ। पन्द्रह वर्ष की अवस्था में भारतेत्दु जी सपरिवार जगन्नाथ यात्रा पर गये। इस यात्रा का भारतेत्दु जी के

व्यक्तित्व पर दूरगामी प्रभाव पड़ा । जगन्नाथ यात्रा के पश्चात् भारतेत्दु जी कानपुर, लखनऊ, मसूरी, हरिद्वार, लाहौर, अमृमसर, दिल्ली, अजमेर, प्रयाग, पटना, कलकत्ता, बस्ती, गोरखपुर, बलिया, वेद्यनाथ, उदयपुर आदि अनेक स्थानों की यात्रा पर गये। इन यात्राओं से भारतेत्दु का साहित्यिक ओर सांस्कृतिक व्यक्तित्व निर्मित हुआ। विशेषतौर से भारतेत्दु की बंगाल यात्रा ने उनको नवीन विषयों - विधाओं की ओर ले जाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। सन् 1880 में पं0 सुधाकर द्विवेदी पं. रधुनाथ तथा पं0 रामेश्वरदत्त व्यास के प्रयासों से उन्हे ‘ भारतेत्दु ‘ की उपाधि प्रदान की गई। 6 जनवरी 1885 ई. को अल्पायु में ही भारतेत्दु जी का देहावसान हो गया।

भारतेत्दु हिरश्चन्द्र जी बहुमुखी प्रंतिभा के धनी थे। नाटक निबंध, कविता के क्षेत्र में आपका अमूल्य योगदान तो है ही, इसके अतिरिक्त आत्मकथा, जीवनी, संस्मरण, इतिहास, कहानी जैसी साहित्यिक विधाओं के प्रवर्तक भी बने। भारतेन्दु जी का पूरा जीवन दूसरों की सहायता करने में तथा साहित्य की सेवा में व्यतीत हुआ। साहित्य की तरह ही आपका पत्रकारिता के क्षेत्र मे भी महत्वपूर्ण योगदान है। भारतेन्दु ने चार पत्रिकाओं प्रकाशन संपादन किया था। साहित्य - पत्रकारिता के अतिरिक्त सामाजिक - सांस्कृतिक सुधार के कार्यो में भी आप अग्रणी थे। चाहे वह धर्म के प्रचारार्थ स्थापित ‘तदीय समाज’ हो या महिला शिक्षार्थ प्रकाशित ‘बालाबोधिनी’ पत्रिका । इस प्रकार भारतेत्दु हिरश्चन्द्र का जीवन-विवके ऐतिहासिक आवश्यकता की माँग के कारण निर्मित हुआ था। प्राचीन और नवीन काव्यधाराओं का मणिकांचन योग भारतेत्दु के व्यक्तित्व में उपस्थित हुआ है। भारतेत्दु अपनी भक्ति - नीति, देश - प्रेम एवं भाषा - साहित्य प्रेम के कारण प्रसिद्ध रहे है। भारतेत्दु में राजभक्ति एवं राष्ट्रभक्ति का द्वन्द्व भी देखने को मिलता है। यहाँ हमने भारतेत्दु हिरश्चन्द्र जी के कृतित्व को समझने के लिए उनके जीवन का संक्षिप्त अध्ययन किया । अब हम भारतेत्दु हिरश्चन्द्र के कृतित्व की संक्षिप्त रूपरेखा देखेंगे।

11.3.2 भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का कृतित्व

भारतेत्दु हिरश्चन्द्र जी की अल्पायु को देखते हुए उनका विपुल साहित्य आश्चर्यचकित करता है। न केवल परिमाण की दृष्टि से वरन गुणवता की दृष्टि से भी भारतेनदु जी का कृतित्व 2 लाघनीय है। भारतेन्दु जी के कृतित्व संबंधी विशेषताओं का विश्लेषण हम आगे के बिन्दुओं में करेंगे, यहॉ हम उनके साहित्य की एक झलक मात्र का एक अवलोकन करेंगे।

गद्य साहित्यः भारतेन्दु हरिश्चन्द् का गद्य साहित्य हिन्दी साहित्य की एक निधि है। चाहे वह नाटक हो, निबंद्य हो या पत्रकारिता। सर्वत्र उनके मौलिक विचारों का दर्शन हमें होता है। गद्य साहित्य में सर्वप्रथम भारतेत्दु जी ने नाटकों की रचना की। उनकी नाट्य कृतियो को तीन भागों में विभक्त किया गया है - अनुदित, मौलिक और अपूर्ण। विषय की दृष्टि से इन्हें ऐतिहासिक, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक एवं पौराणिक में विभक्त किया गया है -

भारतेत्दु हिरश्चन्द्र जी की अनुदित रचनाओं में है।

- 'विद्यासुन्दर'(1868 ई, संस्कृत रचना 'चौरपंचाशिका' के बंगला संस्करण का अनुवाद)
- 'पाखण्डविडम्बन' (1872 ई, कृष्ण मिश्रकृत 'प्रबोध चन्द्रोदय' के तृतीय अंक का अनुवाद)
- 'धनंजय - विजय (1874 ई, कंचन कविकृत व्यायोग' का अनुवाद)
- 'कर्पूर - मंजरी' (1875 ई, राजशेखर कविकृत प्राकृत सट्टक का अनुवाद)
- 'भारत जननी' (1877 ई, नाट्य गीत)
- 'मुद्राराक्षस'(1878 ई, विशाखदत्त कृत 'मुद्राराक्षस' का अनुवाद)
- 'दुर्लभ बंधु' (1880 ई, में प्रथम दृश्य 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' और 'मोहन चन्द्रिका मे प्रकाशित हुआ। यह कृति शेक्सपियर के 'मर्चेण्ट आफॅ वेनिश' का अनुवाद है, रमाशंकर व्यास तथा राधाकृष्णदास ने इस कृति को पूर्ण किया।)

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की मौलिक नाट्य रचनाएँ -

- 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति (1874 ई.,प्रहसन)
- 'सत्य हरिश्चन्द्र' (1875 ई,)
- 'श्री चन्द्रावली' (1876 ई,नाटिका)
- 'विषमौषधम्' (1876 ई, भ्राण)
- 'भारत-दुर्दशा (1880 ई, नाट्य रासक)
- 'नीलदेवी' (1881 ई, प्रहसन)
- 'प्रेमजोगिनी' (अपूर्ण, 1875 ई. नाटिका, प्रथम अंक के केवल चार दृश्य का लेखन)
- 'सती प्रताप' (1875 ई, (1875 ई, गीतिरूपक, केवल चार अंक)

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने कई आधुनिक गद्य विधाओं के भी प्रवत्तक रहे है। भारतेन्दु ने उपन्यास, नाटक, इतिहास, जीवनी, आत्मकथा जैसी विधाओं की शुरूआत भी की थी। भारतेन्दु का उपन्यास 'पूर्ण प्रकाश और चन्द्रप्रभा' मराठी उपन्यास के आधार पर लिखा गया है। भारतेन्दु की अन्य गद्य रचनाएँ हैं -

- भाषा संबंधी - 'हिन्दी भाषा'
- नाट्यशास्त्र - 'नाटक'
- इतिहास और पुरातत्त्व - कश्मीर कुसुम

- महाराष्ट् देश का इतिहास
- रामायण का समय
- अग्रवालों की उत्पत्ति
- खत्रियों की उत्पत्ति
- बादशाह दर्पण
- बूंदी का राजवंश
- उदय पुरोदय
- पुरावृत्त संग्रह
- चरितावली
- पंच पवित्रात्मा
- दिल्ली दरबार दर्पण
- कालचक्र
- पत्र - पत्रिकाएँ: कविवचन सुधा
- हरिश्चन्द्र मैगजीन
- हरिश्चन्द्र चन्द्रिका
- बालाबोधिनी

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का गद्य साहित्य विपुल है, यहॉ उसकी केवल संक्षेप में सूची प्रस्तुत की गई है, क्योंकि यहाँ हमारे अध्ययन का विषय भारतेन्दु की काव्य रचनाएँ हैं। आइए अब हम भारतेन्दु जी का काव्य रचनाओ का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करें -

परम्परानुरूप् साम्प्रदायिक पुष्टिमार्गोय रचनाएँ :-

- भक्ति सर्वस्व (1870 ई.)
- कार्तिक स्नान (1872 ई.)
- वेशाख माहात्मय (1872 ई.)
- देवी छद्म लीला (1874 ई.)
- प्रातः स्मरण मंगल पाठ (1874 ई.)
- तन्मय लीला (1874 ई.)
- दान लीला (1874 ई.)
- रानीछद्मलीला (1874 ई.)

- प्रबोधिनी (1874 ई.)
- स्वरूप (1874 ई.)
- श्रीपंचमी (1875 ई.)
- श्रीनाथ स्तुति (1877 ई.)
- अपवर्गदाष्टक (1877 ई.)
- अपवर्ग पंचक (1877 ई.)
- प्रातः स्मरण स्तोत्र (1877 ई.)
- वैष्णव सर्वस्व
- वल्लीभ सर्वस्व
- तदीप सर्वस्व
- भक्ति सूत्र वैजयन्ती आदि।

भक्ति तथा दिव्य-प्रेमसंबंधी रचनाओं में

- प्रेम मालिका (1871 ई.)
- प्रेम सरोवर (1874 ई.)
- प्रेमाश्रु-वर्णन (1874 ई.)
- प्रेम माधुरी (1875 ई.,यह भारतेन्दृ हरिश्चन्द्र के कवित्त सवैयों का एकमात्र संग्रह है। यह ग्रन्थ भारतेन्दृ हरिश्चन्द्र का रीतिवादी ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में भारतेन्दृ ने धनानंद, ठाकुर, बोधा, रसखान द्वारा वर्णित प्रेम विरह के समान ही विरह की अत्यन्त सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।)
- प्रेम-तरंग (1877. ई यह ग्रन्थ भारतेन्दृ हरिश्चन्द्र का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ की विशेषता यह है कि यह पदों की नही बल्कि गानों का संग्रह है। इस ग्रन्थ में, जनता में प्रचलित लोक गीतों को साहित्यिक रूप दिया गया है। इस ग्रन्थ में ब्रजभाषा, खड़ी बोली, उर्दू, बंगला, पंजाबी, आदि कई भाषाओं की रचनाओं का समावेश है।)
- प्रेम प्रलाप (1877 ई.)
- होली (1879 ई.)
- मधु मुकुल (1880 ई.)
- वर्षा विनोद (1880 ई.)
- विनय प्रेम-पचासा (1880 ई.)
- फूलों का गुच्छा (1882 ई.)

- प्रेम फुलवारी(1884 ई., 'प्रेम फुलवारी' 94 पदों का ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में दैन्य भाव के विरह संबंधी, प्रीति संबंधी एवं राधा-स्तुति तथा कृष्ण-स्तुति के पद हैं यह पदों की विशुद्ध शैली में रचित भारतेन्दु जी के प्रोढ़ ग्रन्थौ में है। 'चन्द्रावली नाटिका मे। इस ग्रन्थ्र के अनेक पद रखे गये हैं।)
- कृष्णचरित्र (1884 ई.)
- जैन कुतूहल (1874ई.)

परम्परागत रचनाएँ :-

- उत्तर भक्तमाल (1876-1877 ई.)
- गीत गोविन्दानन्द (1877-1878 ई.)
- सतसई श्रृंगार (1875-1878 ई.)

नवीन प्रकार की रचनाएँ :-

- स्वर्गवासी श्री अलवरत वर्णन अन्तर्लायिका (1861 ई.)
- श्री राजकुमार सुस्वागत पत्र (1869 ई.)
- सुमनांजलि (1871 ई, प्रिस आफॅ वेल्स के पीड़ित होने पर)
- मुह दिखावनी' (1874 ई.)
- श्रीराम कुमार शुभागमन वर्णन' (1875 ई.)
- भारत भिक्षा' (1875 ई.)
- मानसोपायन' (1875 ई.)
- मनोमुकलमाला' (1877 ई.)
- भारत वीख्य'(1878 ई.)
- विजय वल्लरी' (1881 ई.)
- विजयिनी-विजय पताका या वैजयन्ती' (1882 ई.)
- नये जमाने की मुकरी' (1884 ई.)
- जातीय संगीत' (1884 ई.)
- रिपनाष्टक' (1884 ई.)

ऊपर हमने भारतेन्दृ हरिश्चन्द्र द्वारा लिखित ग्रन्थ की सूची देखी । इसके अतिरिक्त भारतेन्दृ हरिश्चन्द्र के भक्ति, प्रेम, श्रृंगार और नवीन विषयों पर स्फुद दोहे, कवित, सवैया, पद, गजल, भी मिलते हैं। व्यंग्य और हास्य की दृष्टि से उर्दू भाषा में लिखित 'स्यापा' (1874 ई.) तथा 'बंदर

सभा'(1879 ई.) उल्लेखनीय हैं। भारतेन्दृ हरिश्चन्द्र कृत रचनाओं की संक्षिप्त रूपरेखा मात्र से यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि की दृष्टि जीवन क्षेत्रों को स्पर्श कर सकी है। भारतेन्दु के काव्य साहित्य की सर्वप्रमुख विशेषता यह है कि एक ओर उन्होंने जहाँ परम्परागत विषयों पर अपनी लेखनी चलाई वहीं दूसरी ओर तत्कालीन समस्याओं का समावेश करते हुए नवीन काव्य प्रयोग भी किए। आगे की बिंदुओ में हम भारतेन्दु हरिशचन्द्र के काव्य की प्रमुख विशेषताओं का अध्ययन करेंगे।

अभ्यास प्रश्न 1

क) निम्नलिखित कथनों में कुछ सही हैं और कुछ गलत हैं। कथन के सामने उचित चिन्ह लगाएँ।

१. भारतेन्दु हरिशचन्द्र आधुनिक हिंदी साहित्य के प्रवर्तक हैं। ( )

२. भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने जीवन और साहित्य के विच्छेद को दूर किया, यह कथन आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का है। ( )

३. भारतेन्दु हरिशचन्द्र का जन्म ९ सितम्बर १९५0 ई. को हुआ था ( )

४. भारतेन्दु उपाधि हिरश्चन्द्र को १८८0 ई. में दी गई। ( )

५. भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने चार पत्रिकाओं का प्रकाशन किया। ( )

(ख) सही विकल्प चुनकर रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए:

१. भारतेन्दु हरिशचन्द्र जी का ..... की अल्पायु में स्वर्गवास हो गया।

(३४, ३७, ४0, ४५)

२. भारतेन्दु हरिशचन्द्र जी का प्रथम नाटक ..... था।

(भारत दुर्दशा, अंधेर नगरी, विद्यासुंदर, दुर्लभ बंधु)

३. भारतेन्दु हरिशचन्द्र जी के पिता ..... भाषा के अच्छे कवि थे।

(मराठी, बंगला, ब्रजभाषा, अवधी)

४. ..... नाटक शेक्यपियर के नाटक का अनुवाद है।

(अंधेर नगरी, प्रेम योगिनी, दुर्लभ बंधु, भारत दर्दशा)

11.4 भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की काव्यगत विशेषताएँ

किसी भी युग-समाज में या कहें कि इतिहास में बदलाव की प्रक्रिया अनायास नहीं होती। उसके ठोस भौतिक कारण होते है। सामाजिक-राजनीतिक, धार्मिक-सांस्कृतिक परिस्थितियांे में हुए परिवर्तन से साहित्य भी प्रभावित होता है, क्योंकि साहित्य अंततः सांस्कृतिक क्रिया ही है। जैसा कि कहा गया इतिहस में बदलाव न तो अचानक प्रकट हाता है, न ही उसकी प्रक्रिया यकायक होती है। बदलाव या परिवर्तन लम्बे राजनीतिक – सांस्कृतिक संघर्ष का परिणाम होता है। 1850.ई. के लगभग समय भी इतिहास में कुछ ऐसा ही 'पार्ट' अदा करता है। एक ओर रीतिकाल की समाप्ति की समय दूसरी ओर आधुनिक नवजागरण की उत्पत्ति का समय। नये युग का साहित्य नये रूप् की मागँ भी करता है।इसलिए यह सोचना गलत होगा कि विषय वस्तु और रचना-शैली में कोई अंतर नहीं है। या रचना शैली व्यक्तिगत होती है। यह सही है कि हर लेखक अपनी भाषा एवं शैली में विशिष्ट होता, किन्तु उसेक व्यक्तिगत शैली पर भी युगीन रचना एंव लेखक के परिवेश का गहरा असर होता है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के काव्य का साहित्यिक महत्व इस दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हो उठता है कि हिन्दी साहित्य में पहली बार विषय वस्तु के बदलाव के साथ काव्यरूप का चुनाव भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने किया। हालांकि उन प्रयोगों का काव्य में वे उतना व्यवस्थित नहीं कर पाये, लेकिन उनका ऐतिहासिक महत्व निर्विवाद रूप से उच्चे स्थान का अधिकारी है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जब रचनाक्षेत्र में आये, तब ब्रजभाषा के संबंध में यह दृढ़ मान्यता थी कि वह भक्ति - नीति -श्रृंगार की भाषा है। ब्रजभाषा में जो मधुरता, सरलता एवं प्रवाह है वह किसी दूसरी भाषा में नही है, ऐसे समय मे खड़ी बोली में कविता करना आसान काम नहीं था। भारतेन्दु हरिचन्द्र जी के लिय यह आसान रहा भी नहीं। स्वंय भारतेन्दु ने मात्र सत्तर कविताएँ खड़ी बोली में लिखीं । लेकिन खड़ी बोली में भी कविता हो सकती है, यह ऐतिहासिक कार्य उन्होंने प्रारम्भ किया। जैसा कि कहा गया भारतेन्दु के साहित्य में पर्दापण के समय रीतिवादी कविता का प्रचलन था। स्वय। भारतेन्दु जी के पिता गिरिधरदास जी पुराने ढंग के अच्छे कवि थे। भारतेन्दु जी के परिवार का संस्कार वैष्वव भक्ति का था। अतः

भक्ति -नीति का संस्कार उनके ऊपर परम्परा से ही पड़ गया था। इसके अतिरिक्त आधुनिक विचारधारा के दबाव के कारण उन्होंने कविता में राष्ट्रीयता समाज-सुधार जैसे विषयों को शामिल भी किया। काव्य-प्रयोग की दृष्टि से भी भारतेन्दु ने कई प्रयोग किए। चाहे लोक गीतों को साहित्य में ढालने का कार्य हो या छन्द संबंधी प्रयोग सर्वत्र भारतेन्दु जी की काव्य सजगता देखी जा सकती है। भारतेन्दु के काव्य संबंधी संक्षिप्त प्रस्तावना के बाद आइए हम भारतेन्दु काव्य की प्रमुख प्रवृतियों को जानें। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी की कविता के मुख्य दो स्वरूप् स्वीकार किए गए हैं। एक मे उनके प्राचीन ढंग की कविताएँ हैं। दूसरी नई प्रवृतियों से संचालित कविताएँ हैं।

11.4.1 परम्परागत विषय की कविताएँ

जैसा कि पूर्व में संकेत किया गया कि भारतेन्दु प्राचीन एवं नवीन के संधिस्थल पर खड़े थे। अतः उन्में परम्परा और नवीनता दोनों के तत्व मिलते हैं। परम्परागत प्रवृतियों में भी उनकी कविता में वैविध्य देखने को मिलता है। एक ओर वे वैष्णव भक्ति की कविताएँ लिखते हैं, दूसरी ओर रीतिकालीन मनोवृति की यहॉ हम भारतेन्दु हरिश्चन्दु के परम्परागत कविताओं को स्वरूप् देखेंगे तथा उसकी विशेषताओं से परिचित होंगे।

11.4.1.1 भक्ति संबंधी कविताएँ

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी का परिवार वैष्णव भक्ति से संबंधित था। स्वंय भारतेन्दु जी बल्लभ संप्रदाय में दीक्षित थे। भारतेन्दु जी की पुरी यात्रा के संदर्भ को हमने पढ़ा, उस यात्रा का उनके ऊपर गहरा प्रभाव पड़ा। वैसे भी, जैसा कि टी.एस.इलियट ने लिखा है कि श्रेष्ठ साहित्यकार की मज्ना में उसकी परम्परा अनुस्यूत रहती है। भारतेन्दु में पूर्ण मध्यकालीन परम्परा को हम देख सकते है। वल्लभ संप्रदायके अतिरिक्त भारतेंन्दु ने राम काव्य, जैन काव्य पर भी कविताएँ लिखी हैं। भक्ति के पदों में भी एकरसता नहीं मिलती, उसमें भी भावों एवं अनुभूति-अभिव्यक्ति की विविधता देखने को मिलती है। भारतेन्दु के ऊपर सूर, तुलसी, मीरा, कबीर का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। भारतेन्दु का विनय पद देखिय, जिस सूर तुलसी का प्रभाव परिलक्षित हो रहा है -

‘‘हरि लीला सब विधि सुखदाई।’’

× × ×

नहि ईश्वरता अँटकी वेद में

तुम तो अगम अनादि अगोचर सो कैसे मतभेद में।।’’

× × ×

‘हमन है मस्त मस्ताना हमन को होशियारी क्या? ‘

× × ×

‘‘खोजत वसन ब्रज की बाल

निकसिकै सब लेहु, छिपिकै कह्यो स्याम तमाल

सुनत चेचलहित चुहँ दिसि चकित निरख्तनारि

मधुर बैननि हिओ फरकत जानिकै बनवारि

कदम पर ते दरस दीनो, गिरिधरन धनश्याम ‘‘

उपर्युक्त उद्धरण देखने से सहज ही संकेत मिलता है कि भारतेन्दु जी के भक्ति पद कही देन्य-विनय के हैं, कहीं प्रेमाभक्ति के।

11.4.1.2 रीति संबंधी कविताएँ

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी को रीतिकाल की श्रृंगारिकता परम्परा से या कहें कि विरासत में मिली थी। भारतेन्दु जी के पिता का दरबार लगा करता था। स्वंय भारतेन्दु जी के यहाँ साहित्यकारों का जमघट लगा करता था। 'भारतेन्दु-मण्डल' का इस दरबार से घनिष्ठ संबंध था। हम कह सकते हैं कि 'भारतेन्दु-मण्डल' के निर्माण में इस दरबारी मनोवृत्ति का बहुत बड़ा हाथ था। 'भारतेन्दु के समय कविता का एक स्वरूप् समस्यापूर्ति भी था। समस्यापूर्ति का संबंध ज्यादातर श्रृंगार से ही है। भारतेन्दु जी की श्रृंगारिक कविताएँ मतियम, घनानन्द, देव, पद्माकर, की परम्परा में है। भारतेन्दु जी की श्रृंगारिक कविताओं के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है-

'ब्रज के लता पता मोहि कीजे

गोपी - पद -पकंज पावन की रज जामेसिर भीजे।।'

× × ×

'सिसुताई अजों न गई तन तें, तऊ जोबन जोति बटोरे लगी।

सुचि के चरचा हरिचन्द की, कान कछूक दे, भौहं मरोरे लगी।

बचि सासु जेठानिनि सौ, पियते दुरि घुंघट में दृग जोरे लगी।

दुलही उलही सग अंगन तें , दिन द्धै तै पियूस निचारे लगी।

× × ×

कूकें लगी कोइलें कदम्बन पै बैठि फेरि

कि धोए धोए पात हिलि हिलि सरसै लगै।

बोले लगे दादुर मयूर लगे नाचे फेरि

देखि के सँयोगी जन हिय हरसै लगे।

हरी भई भूमि सीरी पवन चलन लागी

लखि हरिचन्द फेर प्रान तरसे लगे।

फेरि झूमि झूमि बारसा की रितु आई फेरि

बदर निगोरे झूकि झूकि बरसै लगै।।

यह संग में लागिये डोले सदा बिन देखे न धीरेज आनती हैं।

छिन हू जो वियोग परै न झपै उझपैं पल में न समाइबो जानती है।

पिय प्यारे तिहारे निहारे बिना अँखिया डुखियॉ नही मानती है।

× × ×

लाज समान निवारि सबै प्रन प्रेम को प्यारे पसारन दीजिये।

जानन दीजिये लोगन को कुलटा कहि मोहि पुकारन दीजिये।।

प्यों हरिचन्द सबै भय टारि के लालन घूँघट टारन दीजिये।

छांड़ि संकोचन चन्द मुखै भरिलोचन आज निहारन दीजिये।।

11.4.2 नवीन विषयक्स्तु की कविताएँ

हमने पूर्व में अध्ययन किया कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र युग प्रवर्तक साहित्यकार थे। साहित्य -समाज के अंतर्सम्बन्ध को स्थापित करने की दृष्टि से आपका महत्व ऐतिहासिक एवं युगान्तकारी है। इस दृष्टि से भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का गद्य विशेष महत्वपूर्ण है। खड़ी बोली पद्य भारतेन्दु ने बहुत कम लिखा है, कारण यह कि भारतेन्दु जी का क्र्व्य - विषय (भक्ति-नीति-श्रृंगार) ब्रजभाषा के निकट ज्यादा रहे है। बावजूद इसके भारतेन्दु के काव्य में आधुनिकता के दर्शन य़त्र-तत्र हो ही जाते है। देशभक्ति भारतेन्दु साहित्य का मुख्य विषय रहा है। इसके अतिरिक्त सामाजिक सुधार आपकी रचनाओं की मुख्य विषय वस्तु है। भारतेन्दु के व्यंग्य, उनकी भाषा-शैली सब कुछ अपने ढंग की अलग विशेषता रखते हैं। आइए अब हम भारतेन्दु साहित्य की प्रमुख विशेषता से परिचय प्राप्त करें।

11.4.2.1 राष्ट्रीयता

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की राष्ट्रीयता को लेकर कई तरह के भ्रम फैलाये गये हैं (देखें रस्साकस्सी-वीरभारत तलवार की पुस्तक)। कुछ लोगों की नजर में भारतेन्दु राजभक्त हैं तो कुछ की दृष्टि में सच्चे राष्ट्रभक्त। इस संबंध में हमें पूर्वाग्रह मुक्त होकर भारतेन्दु साहित्य का अध्ययन करना चाहिए। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पिता सरकारी कर्मचारी थे। इसलिए सवभावतः भारतेन्दु जी राजभक्ति की ओर झुके, लेकिन क्रमशः उन्हे विक्टोरिया साम्राज्य की वास्तविकता का भान होने लगां। राष्ट्रीयता के चित्रण में भारतेन्दु जी कई बार पौराणिक इतिवृतों से प्ररेणा लेते हैं और कई बार तत्कालीन समस्याओं से । भारतेन्दु ने अतीत को प्ररेणा के रूप में ग्रहण किया है। प्रबांधिानी' में लिखित भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के ये छन्द देखिए -

सीखत कोउ न कला, उदर भरि जीवन केवल।

पसु समाज सब अन्न खात पीउत गंगा जल।।

धन विदेस चलि जात तऊ पिय होत न चंचल।

जड़ समान हवे रहत अकिल हत रच न सकल कल।

जीवन विदेस की वस्तु लै ता बिनु कक्षु नहिं कर सकत।

जागो - जागो अब साँवरे सब कोउ रूख तुमरो तकत।।

× × ×

कहां गए विक्रम भोज राम बलि कर्ण युधिष्ठिर

चन्द्रगुप्त चाणक्य कहां नासे करिके थिर

कहँ क्षत्ती सब मरे जरे सब गए किते गिर

कहां राज को ताने साज, जेहि जानत है चिर

कहं दुर्ग सन - धन, बल गयों, धुरहि धूर दिखात जग

जागो अब तो खले बल दलन रक्षहु अपुनी आर्य मग।''

अतीत को स्मरण करना पुनर्जागरणवादी चेतना है। भारतेन्दु हरिश्चन्द ने इसीलिए विभिन्न कविताओं के माध्यम से अपने गोरवशाली अतीत को स्मरण किया है। अतीत के गोरवशाली परम्परा को भारतेन्दु जी ने कई बार-बार स्मरण किया है, किन्तु कई बार वे सीधे - सीधे भारत - दुर्दशा को स्मरण करते है, यहाँ अकी लेखकी ज्यादा समसामयिक है -

जो भारत जग में रहयो सबसों उत्तम देश

तहि भारत में रहयो अब नहिं सुख को लेस।

× × ×

रोअहु सब मिलके आवहु भारत भाई

हा। हा। भारत दुर्दशा ने देखी जाई

× × ×

कठिन सिपाही द्रोह अनज जा जन बल नासी।

जिन भय सिर न हिलाइ सकट कहुँ भारतवासी।।

× × ×

हाय सुनत नहि, निठुर भय क्यों परम दयाल कहाई

उठहु वीर तलवार खीचं माऊ धन संगार।

× × ×

वीरों की प्रशंसा - कहा तुम्है नहि खबर जय की छूट ग्वाई।

जीति मिसर में शत्रु - सेन सब दई भगाइ।

तड़ित तार के द्वार मिल्यो सुभ समाचार यह।

भारत सेना कियो घोर संग्राम मिश्र मह।

× × ×

''अरे बीर इक बेर उठहु सब फिर कित सोए।

लेहु करन करवालि काढ़ि रन - रंग समोए।

चलुह बीर उठि तुरत सबै जय ध्वजहि उड़ायो।

लेहु म्यान सों खंडा खींचि रन रंग जमाओ।

अपने सिंहनाद से शत्रुओं के हृदय को दहला दो।

मारू बाजे बजे कहो धौसां घहराहीं

उडहि पताका सत्रु - हृदय लसि लखि थहराहीं। ''

11.4.2.2 सामाजिक चेतना

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी नवजागरणवादी चेतना के रचनाकार थे। नवजागरण एक प्रकार से सांस्कुतिक जागरण लेकर आया। समाज और संस्कुति का गहरा सम्बन्ध है। सामाजिक चेतना राष्ट्रीयता की ही अभिव्यक्ति होती है। जिस व्यक्ति में राष्ट्रीय भाव बोध जितना गहरा होगा, उसकी ही तीव्र होंगे। उसकी कविता में सामाजिक परिस्थितियों के चित्र उतने ही तीव्र होगे। जैसा कि पूर्व मे कहा गया है हक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र में राजभक्ति - राष्ट्रभक्ति दोनों के तत्व है, इसलिए उनकी सामाजिक चेतना पूरी तरह क्रान्तिकारी नहीं है, बल्कि सुधारात्मक है। भारतेन्दु की सामाजिकता में सामाजिक – सांस्कृतिक - आर्थिक - राजनीतिक सुधार की आकांक्षा व्यक्त की गई है। कुछ उदाहरण इष्ट्रवय है -

(आर्थिक) ''अंग्रेज राज सुस साज सजे सब भारी।

पे धन विदेश चलिजात इहै अति खारी।। ''

× × ×

मारकीन मलमल बिना चलत कहू नहि काम

परदेशी जुलाहन के मानहुँ भए गुलाम

(विदेशीवस्तु) वस्त्र काँच कागज कलम चित्र खिलौन आदि

आवत सब परदेश सो नितहि जहाजन लादि

× × ×

(सामाजिक यहि असार संसार में चार वस्तु है सार

व्यवहार) जुआ मदिरा मांस अरू नारी संग विहार

× × ×

(कूपमंडूकता) रोकि विलायत गमन इप मंडूक बनायो

ओरन को ससंर्ग घुड़ाई प्रचार घटायो।

अभ्यास प्रश्न 2)

(क) रिक्त स्थानो में उचित शब्द रखकर वाक्य पूर्ति कीजिए:

1) भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी के पिता का नाम ..... था।

2) भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के साहित्य मे पर्दापण के समय ..... प्रवृत्तिया प्रचलित थीं।

3) भारतेन्दु जी के परिवार का संस्कार ..... भक्ति का था।

4) 'हमन है ..... क्या ?

5) 'ब्रज के लता ..... मोहिं कीजै,

(ख) टिप्पणी लिखिए: नीचे दिये गये शब्दो पर 5 पंक्तियों मे टिप्पणी लिखिए।

1) भारतेन्दु - मण्डल

---

2) आधुनिक गद्य विधाएँ

---

3) राष्ट्रीयता

11.5 शिल्प पक्ष

साहित्य में विषय वस्तु एवं रूप - गठन दोनों महत्वपूर्ण होते हैं। विषय वस्तुका संबंध जहाँ बदलती सामाजिक प्रवृत्तियों से है वहीं रूप का संबंध बदलती सामाजिक अभिरूचियों की स्थिरता से है। अर्थात् रूप् तभी बदलते हैं जब सामाजिक रूप से समाज में आधार भूत परिवर्तन उपस्थित हो जाते हें। ज्यादातर ऐसा होता है कि कथ्य रूप - निर्माण में अपनी प्रभावी भूमिका निभाता है या विधान वर्ण्य - वस्तु को संयोजित करने में अपनी भूमिका निभाये। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का समय संधिकाल का समय है। एक ओर ब्रजभाषा का संस्कार (भक्ति - नीति - श्रृंगार की प्रवृत्तियाँ) तो दूसरी ओर आधुनिकता (नवजागरण) का आभास । एक ओर विचार दूसरी ओर संस्कार । स्वाभाविक था कि ऐसे समय में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा अभिव्यक्त किया गया साहित्य संकान्तिकालीन चेतना से युक्त होता। आइए अब हम भारतेन्दु साहित्य को समझने के लिए उनके शिल्प - विधान का संक्षिप्त रूप में अवलोकन करें।

संरचना या शिल्प की दृष्टि से भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने कुछ परम्परागत तत्वों का प्रयोग किया और कुछ नवीन प्रयोग किए। संरचना के अंतर्गत मुख्यतः भाषा, शैली, रस, छंद, अलंकार इत्यादि की गणना की जाती है। आइए हम भारतेन्दु काव्य संरचनागत विशेषताओं का अध्ययन करें -

4.5.1 भाषा

भारतेन्दु युग के काव्य की सर्वप्रमुख भाषा ब्रजभाषा है। ब्रजभाषा उस युग के साहित्य की भाषा थी। हर युग के समाज में मुख्यतः दो भाषाएँ अनिवार्य रूप से होती ही है । एक उस समाज के आभिजात्य वर्ग की भाषा या साहित्य की भाषा और दूसरे जन सामान्य के दैनिक कार्य - व्यवहार की भाषा । भारतेन्दु काल में ब्रजभाषा काव्य की भाषा थी और खड़ी बोली बोलचाल की। इसी बीच गद्य खड़ी बोली में लिखा जाने लगा था। इस द्वैतपूर्ण स्थिति में कविता करना कठिन कार्य था। भारतेन्दु की काव्य भाषा में भी यह द्वैतपूर्ण स्थिति हमें देखने को मिलती है। उन्होने ब्रजभाषा एवं खड़ी बोली दोनों में काव्य रचना की है। बावजूद भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

विनम्रतावश यह लिखते हैं कि उनकी अभिरूचि खड़ी बोली कविताओं के अनुकूल नहीं है। सनृ 1881 में भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने खड़ी बोली की कविताएँ 'भारत मित्र' में प्रकाशनार्थ भेजी थी। हरिश्चन्द्र चन्द्रिका में उनकी प्रसिद्ध कविता 'मंद मंद आवे देखे प्रात समीरन' छपी थी। 'हिंदी भाषा' निबन्ध में नई भाषा की कविता में उन्होंने अपना दोहा उद्धृत किया है -

भजन करो श्रीकृष्ण का मिल कर सब लोग ।

सद्ध होयगा काम और छूटेगा सब सोग।।

पर इस टिप्पणी देते हुए भारतेन्दु जी ने लिखा है - अब देखिए, कैसी भौंडी कविता है ! आगे भारतेन्दु ने लिखा है 'जो हो, मैने आप कई बेर परिश्रम किया कि खड़ी बोली में कुछ कविता बनाऊ पर वह मेरे चित्तानुसार नहीं '। भारतेन्दु की स्पष्ट स्वीकारोक्ति के बावजूद उन्होने लगभग 70 कविताएँ खड़ी बोली में लिखी हैं। यह तो स्पष्ट ही है कि भरतेन्दु हरिष्चन्द्र के काव्य की भाषा ब्रजभाषा रही है । भारतेन्दु ने साहित्य के रूप् में स्वीकृत ब्रजभाषा को और परिष्कृत किया। भारतेन्दु के काव्य में कई भाषाओं के शब्द भी मिलते हैं, जैसे अंग्रेजी (पोर्ट, शैंपेन, ब्रांडी), उर्दू (खाना, तमाशा, ऐश-आराम, बेकाम इत्यादि) भाषाओं के अतिरिक्त स्थानीय भोजपुरी शब्दों को प्रयोग भी मिलता है।

11.5.2 काव्य – शिल्प

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने व्यवस्थित रूप से प्रबन्ध काव्य तो नही लिखा लेकिन प्रबन्ध एवं मुक्त काव्य रूप के क्षेत्र में उन्होने काफी प्रयोग किए है। भारतेन्दु जी के काव्य रूपों में निबंध काव्य, वर्णनात्मक काव्य, विवरणात्मक काव्य एवं मुक्तक काव्यों की गणना की जाती है। निबंध काव्यों में बकरी विलाप, प्रातः समीर, रिपनाष्टक, वर्णनात्मक काव्यों में होली लीला, मधुमुकुल छंद, हिंडोला, विवरणात्मक काव्यों में विजयिनी विजय वैजयंती, भारत वीरत्व, भारत शिक्षा, मुक्तक काव्यों में प्रेम मालिका, कार्तिक स्नान, प्रेमाश्रु वर्णन, जैन कुतूहल, प्रेम तरंग, प्रेम प्रलाप, गीत-गोविदानंद, होली , मुधु मुकुल, राग सग्रहं वर्षा विनोद, विनय - प्रेम पचासा, प्रेम फुलवारी, कृष्णचरित, देवी छद्मलीला, दैन्य प्रलाप, तन्मय लीला, बोधगीत, भीष्मस्वराज इत्यादि रचनाएँ शामिल हैं।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने काव्य क्षेत्रं में कभी परम्परागत रूप - विधान का परिपालन किया है और कभी अपनी ओर से नवीन प्रयोग किया हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा प्रयुक्त छंद - विधान, रस एवं अलंकारों के प्रयोग से हम उनकी शिल्प - कला को ओर बेहतर ढंग से समझ सकते हैं।

छंद :

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की मुख्य काव्य भाषा ब्रजभाषा थी। स्वाभाविक था कि वे ब्रजभाषा काव्य में प्रयुक्त विविध काव्य - छंद का प्रयोग करते । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने ब्रजभाषा काव्य के दोहा, कवित्र, सवैया, चौपाई, पद, छप्पय, घनाक्षरी, कुण्छलियाँ, सरोठा के साथ ही लोकगीतों के

लावनी, कजली, होली इत्यादि छन्दों का प्रयोग किया है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का अधिकांश पद्य साहित्य प्रगीत मुक्तक रूप में है। इनकी रचनाओं में अधिकांश विषम मात्रिक छंद का प्रयोग मिलता है।

अलंकार:

ब्रजभाषा काव्य परम्परा के अनुकूल भारतेन्दु ने अपने काव्य में कई अलंकारो का प्रयोग किया है। अनुप्रास, यमक, पुनरूक्ति प्रकाश , उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, व्यतिरेक, संदेह आदि अलंकारों का प्रयोग किया है।

अभ्यास प्रश्न 4

(क) निर्देश : नीचे दिये गए कथन में कुछ सही हैं ओर कुछ गलत। वाक्य के सामने उपयुक्त चिह्न लगाइए।

1) भारतेन्दु हरिष्चन्द्र का समय संधिकाल का है। ( )

2) भारतेन्दु हरिष्चन्द्र की कविता की मुख्य भाषा खड़ी बोली है। ( )

3) मन्द मन्द आवे देखो प्रात समीरन 'कविता हरिष्चन्द्र चन्द्रिका में छपी थी। ( )

4) भारतेन्दु हरिष्चन्द्र की कविता में कई भाषाओं के शब्द मिलते हैं। ( )

5) बकरी विलाप रचना वर्णनात्मक काव्य रूप में है। ( )

(ख) 'क' और 'ख' वर्गों का सही मिलान कीजिए।

'क'	'ख'
1) कविवचन सुधा	काव्य
2) अंधेरे नगरी	पत्रिका
3) दानलीला	इतिहास
4) कश्मीर कुसुम	उपन्यास
5) पूर्ण प्रकाश और चन्द्रप्रभा	नाटक

11.6 सारांश

- भारतेन्दु हरिष्चन्द्र आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रवर्तक हैं। नवजागरणवादी चेतना से पहली बार साहित्य को जोड़ने का काम भारतेन्दु जी ने ही किया । आचार्य रामचन्द्र

शुक्ल ने लिखा है कि भारतेन्दु ने साहित्य को नवीन मार्ग दिखाया और वे उसे शिक्षित जनता के साहचर्य में ले आये। हमारे साहित्य को नये-नये विषयों की ओर प्रवृत्त करने वालें हरिश्चन्द्र ही हुए।

- भारतेन्दु हरिश्चंद्र जी का जन्म काशी के प्रतिष्ठित परिवार में हुआ था। आपके पिता ब्रजभाषा के प्रतिष्ठित कवि थे। इस प्रकार साहित्यिक माहौल भारतेन्दु जी को बाल्यकाल से ही मिला।
- भारतेन्दु हरिश्चंद जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी सहित्यकार थे। 45 वर्ष की अल्पायु में ही आपने हिन्दी साहित्य को जो सेवा की है, वह अपने आप में महत्वपूर्ण है। आपने हिन्दी की कई गद्य विधाओं का प्रवर्तन किया । उपन्यास, निबंध, आत्मकथा, आलोंचना,यात्रा - साहित्य जैसी विधाएँ आपके कारण हिन्दी साहित्य में आई।
- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी साहित्यिक पत्रकारिता के भी जनक हैं। 'कविवचन सुधा', हरिश्चन्द्र चन्द्रिका', हरिश्चन्द्र मेगजीन' एवं ' बालावोधिनी' पत्रिका के माध्यम से आपने साहित्य को तत्कालीन समस्याओं से जोड़ा ।
- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के साहित्य को हम मुख्यत: दो भागों में विभक्त कर सकते हैं । भाषा की दृष्टि से भी आपने दो भाषाओं का प्रयोग किया है। प्राचीन या परम्परागत विषयों भक्ति - नीति - श्रृंगार की रचनाएँ आपके कविता ससहितय का मूल हैं । इसके अतिरिक्त तत्कालीन समस्याओं विदेशी वस्तु के प्रयोग, देश के धन का बाहर जाना, लूट - खसोट, साम्राज्यवादी नीति का विरोध भी आपकी रचनाओं की मख्य विशेषता है। ब्रजभाषा के अतिरिक्त आपने खड़ी बोली कविता में भी रचनाएँ की हैं, लेकिन खड़ी बोली गद्य की तरह वह महत्वपूर्ण नहीं है।
- हिन्दी कविता के विषय भक्ति - नीति - श्रृंगार ही माने जाते थे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने हिन्दी कविता के अंतर्गत राष्ट्रीयता एवं समाज सुधार जैसे विषयों को शामिल कर दिया । यह आपकी हिंदी कविता को युगान्तकारी देन है।

11.7 शब्दावली

- संस्कार - किसी वस्तु, व्यक्ति, विचार को परिष्कृत, शुद्ध करने की क्रिया
- विच्छेद - अलगाव
- प्रवृत्त - झुकाव, करने की दिशा
- समसामयिक - अपने युग का
- बहुमुखी प्रतिभा - किसी व्यक्ति में कई विशेषताओं का पाया जाना
- मणिकांचन योग - सुन्दर संयोग
- द्वन्द्व - दो विरोधी वस्तुओं के बीच संघर्ष
- श्लाघनीय - श्रेष्ठ प्रयत्न
- निर्विवाद - बिना किसी विवाद के
- पर्दापण - आगमन
- अनुस्यूत - लगा रहना, साथ होना
- संधिकाल - बीच का समय
- संक्रान्तिकालीन चेतना - अवस्द्धपूर्ण समय

11.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1)

(क) (१) ✓ (२) × (३) ✓ (४) ✓ (५) ✓

(ख) (१) – 44 (२) – विद्यासुन्दर (३) – ब्रजभाषा (४) - दुर्लभ बंधु

अभ्यास प्रश्न 2)

(क) (१) – गिरिधरदास (२) – रीतिकालीन (३) - वैष्णव

(४) - हमन है मस्त मस्ताना हमन को होशियारी क्या? (५) - 'ब्रज के लता पता मोहिं कीजे'

अभ्यास प्रश्न 4)

(क) (१) ✓ (२) × (३) ✓ (४) ✓ (५) ✓

(ख)(1) – पत्रिका (2) – नाटक (3) – काव्य (4) – इतिहास (5) - उपन्यास

11.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. गुप्ता, किशोरी लाल, भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय।

2. शर्मा, (सं.)हमेन्त, भारतेन्दु समग्र, हिन्दी प्रचारक संस्थान।

3. शर्मा, रामविलास, भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा का विकास, राजकमल प्रकाशन,दिल्ली।

4. आधुनिक काव्य (भारतेन्दु युग तथा द्विवेदी) – इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विष्वविद्यालय, नई दिल्ली।

11.10 सहायक/ उपयोगी पाठय सामग्री

1. शुक्ल, रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा।

2. सिंह, बच्चन, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन।

11.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के कृतित्व का परिचय प्रस्तुत कीजिए।

2. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के काव्य प्रवृत्तियों का विशेषता बताइए।

इकाई 12 : हिंदी कविता का द्विवेदी युग : परिचय एवं मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

12.1 प्रस्तावना
12.2 उद्देश्य
12.3 हिंदी कविता का द्विवेदी युग: परिचय
    12.3.1 नामकरण एवं काल विभाजन
    12.3.2 द्विवेदी युग का रचना वृत्त
12.4 महावीर प्रसाद द्विवेदी : रचनागत संदर्भ
12.5 मैथलीशरण गुप्त : रचनागत संदर्भ
12.6 द्विवेदी युग की प्रवृत्तियाँ
    12.6.1 राष्ट्रीयता
    12.6.2 सुधार
    12.6.3 नवजागरण
    12.6.4 इतिवृत्तात्मकता
12.7 सारांश
12.8 शब्दावली
12.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
12.10 संदर्भ प्रश्नों के उत्तर
12.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
12.12 निबंधात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

इस युग का नामरकण आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के योगदान एवं सम्मान को ध्यान में रखते हुए किया गया है। हिंदी कविता में भारतेन्दु युग के बाद के काल को 'द्विवेदी युग' कहा गया है। नामकरण के संबंध में आपने पूर्व में अध्ययन किया कि इसके कई आधार होते है। रचनाकार-व्यक्तित्व, युग की प्रवृत्ति और सामाजिक-राजनीतिक कई कारण होते हैं जिससे नामकरण स्थिर किया जाता है। पिछले खण्ड में आपने आधुनिकता की विशेषता एवं उसकी प्रवृत्ति का अध्ययन किया। आपने देखा कि आधुनिकता की अवधारणा के मूल में आधुनिक वैचारिक और ज्ञान-

विज्ञान की महती भूमिका रही है। आधुनिकता तर्क, बुद्धि एवं मानव केंद्रित चिंतन से विकसित हुआ प्रत्यय है। आधुनिकता की अवधारणा पश्चिम में सर्वप्रथम विकसित हुई। पश्चिमी संस्कृति और भारतीय संस्कृति के घात-प्रतिघात से भारतीय आधुनिकता का उदय हुआ है, जिसे भारतीय संदर्भों में पुनर्जागरण कहा गया है। पुनर्जागरण को हिंदी साहित्य में लाने का श्रेय भारतेन्दु हरिशचंद्र को है। भारतेन्दु हरिश्चंद्र की सृजनात्मक परम्परा के वाहक महावीर प्रसाद द्विवेदी बनते है। भारतेन्दु युग गद्य की दृष्टि से पर्याप्त समृद्ध है लेकिन उसकी कविता का पक्ष उतना सशक्त नहीं है। हिंदी साहित्य में इस अभाव की पूर्ति महावीर प्रसाद द्विवेदी के रचनात्मक एवं युगप्रवर्त्तक व्यक्तित्व के माध्यम से हुआ, इसीलिए उनके योगदान को बाद के सभी प्रगतिशील रचनाकारों ने स्मरण किया है। भारतेन्दु की परम्परा और महावीर प्रसाद द्विवेदी की परम्परा एक ही है। दोनों के मूल में भारतीय नवजागरण की भूमिका ही काम कर रही है। इस इकाई में हम द्विवेदी युग के रचनाकारों, उनकी रचनात्मक प्रवृत्तियों एवं भारतीय चिंताधारा के संदर्भ में उनके योगदान का रचनात्मक मूल्यांकन करने का प्रयास करेंगे।

12.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप –

- महावीर प्रसाद द्विवेदी के व्यक्तित्व एवं कृत्तिव से परिचित हो सकेंगे।
- महावीर प्रसाद द्विवेदी के हिंदी साहित्य (कविता) में किए गए योगदान को समझ सकेंगे।
- द्विवेदी-युग के प्रमुख रचनाकार मैथिलीशरण गुप के रचनात्मक-कर्म से परिचित हो सकेंगे।
- द्विवेदी युग के रचनात्मक प्रदेय का मूल्यांकन कर सकेंगे।

12.3 हिंदी कविता का द्विवेदी युग : परिचय

हिंदी कविता का द्विवेदी युग इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि इसी युग में आकर भाषागत-द्वैत समाप्त हुआ। भारतेन्दु-युग तक हिंदी कविता में दो भाषाएँ चलती रहीं। ब्रजभाषा और खड़ी बोली के द्वैत और संघर्ष से भारतेन्दुकालीन कविता प्रभावित और संचालित हुई है। महावीर प्रसाद द्विवेदी जब हिंदी साहित्य के रचना क्षेत्र में आये तो उन्होंने सर्वप्रथम यह महसूस किया कि भाषाई-द्वैत को बिना समाप्त किए हिंदी कविता का वास्तविक विकास संभव नहीं है। ब्रजभाषा की समाप्ति केवल भाषाई मुक्ति नहीं थी। भाषा और संस्कार, भाषा और संस्कृति अविभाज्य हैं। साहित्यिक संस्कृति बिना सांस्कृतिक चेतना के संभव नहीं है और सांस्कृतिक उन्नति बिना साहित्यिक दाय

से पूरी नहीं हो पाती। हिंदी कविता का प्रारम्भिक समय भारतीय जनजागरण से सीधे प्रभावित होता है। कम-से-कम छायावाद तक का काव्य भारतीय नवजागरण की प्रेरणा से सृजित हुआ है, जबकि उसके बाद का काव्य तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों एवं आधुनिक विचारधारा से। इस दृष्टि से द्विवेदी युगीन की मूल आत्मा को हम आलोचनात्मक ढंग से समझने का प्रयास करेंगे।

12.3.1 नामकरण एवं काल विभाजन

जैसा कि हम पढ़ चुके हैं कि महावीर प्रसाद द्विवेदी के योगदान को लक्ष्य करके इस युग को 'द्विवेदी युग/काल' कहा गया है। नामकरण के संदर्भ में हमें यह बात सदा स्मरण रखनी चाहिए कि साहित्यिक नामकरण में उस युग की रचनात्मक प्रवृत्ति ही सबसे ज्यादा उपयुक्त होती है। रचनात्मक प्रवृत्ति के आधार पर स्थिर नामरकण उस काल के साहित्य से सीधे जुड़ता है। जबकि किसी रचनाकार-व्यक्तित्व के प्रभाव से किया गया नामरण ऐतिहासिक चेतना से सीधे नहीं जुड़ता बल्कि वह रचनाकार-व्यक्तित्व के माध्यम से जुड़ता है। इसे हम इस प्रकार समझा सकते हैं –

ऐतिहासिक चेतना

↓

रचनाकार-व्यक्तित्व

↓

प्रवृत्ति निर्धारण

लेकिन यदि साहित्यिक क्षेत्र में इस प्रकार की घटना घटे कि किसी रचनाकार का व्यक्तित्व उस युग की प्रवृत्ति से बड़ा दिखे तो दो बातें ध्वनित होती है। एक, उस युग की प्रवृत्ति से कहीं बड़ा रचनाकार का व्यक्तित्व है। और दूसरे, युग की प्रवृत्तियाँ अपने विकासमान स्थिति में हैं। अधिकांश ऐसा देखा गया है कि किसी विधा के आरंभिक दौर में उस विधा को विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले रचनाकार का व्यक्तित्व उस युग में केंद्रीय हो उठता है। किसी विधा के पर्याप्त विकसित होने के उपरान्त बड़े रचनाकार उसे विकसित करने में और बढ़ाने में अपना योगदान देने के बाद केन्द्रिय भूमिका से हट जाते हैं और रचनागत प्रवृत्ति केंद्र में आ जाती है।

महावीर प्रसाद द्विवेदी के माध्यम से खड़ी बोली हिंदी कविता साहित्य में स्थापित होती है, अत: यह नामकरण उचित ही है। इस युग का एक नामकरण 'जागरण-सुधार काल' भी किया गया है (देखें –डॉ0 नगेन्द्र का 'हिंदी साहित्य का इतिहास') जो महावीर प्रसाद द्विवेदी के साहित्य की ही एक प्रमुख विशेषता है। केन्द्र में जिस प्रकार परिधि सम्मिलित हो जाती है। उसी प्रकार महावारी प्रसाद द्विवेदी के रचनात्मक व्यक्तित्व में जागरण-सुधार सम्मिलित हो जाते हैं। जागरण

का तात्पर्य जहाँ नवजागरणवादी मनोवृत्ति है, वहीं जागरण के पश्चात् पैदा हुई सामाजिक-साहित्यिक सुधार की भावना ही, 'जागरण-सुधार' है।

द्विवेदी युग का काल मोटे तौर पर 1900 ई0 से लेकर 1918 या 1920 ईसवी तक निर्धारित किया गया। हालांकि कुछ जगह काल सीमा की समाप्ति सन् 1925 तक भी स्थिर की गई है। ''द्विवेदी-युग उनके सम्पादन काल के प्रारम्भ (1903 ई0) से 1925 ई0 के लगभग तक माना जाता है।'' (देखें-हिंदी साहित्य कोश, भाग एक, पृष्ठ 264) यहाँ द्विवेदी-युग का समय 1903 से 1925 तक स्थिर किया गया है, जो व्यावहारिक नहीं है। आधुनिक इतिहासकारों ने 1901 से 1920 तक के समय को 'द्विवेदी युग' कहा है। कुछ इतिहासकारों ने 18 वर्ष की एक पीढ़ी के आधार पर का तर्क देकर तथा 1918 से छायावादी प्रवृत्तियों की शुरूआत देखते हुए इस काल को 1901 से 1918 ईसवी तक स्थिर किया है। हम जानते हैं कि इतिहास में किसी खास तिथि से कोई प्रवृत्ति न प्रारम्भ होती और न समाप्त होती है। ईसवी या तिथि इतिहास में लचीलेपन से युक्त होने चाहिए क्योंकि वे सुविधापूर्ण ढंग से विश्लेषित किए जाते हैं। 1903 ई0 में महावीर प्रसाद द्विवेदी 'सरस्वती' के संपादक बनते हैं और 1920 तक वे अनवरत सरस्वती का संपादन करते हैं। उसके पश्चात् कुछ अंतराल के बाद पुन: संपादन कर्म से जुड़ते हैं और 1925 तक वे 'सरस्वती' से जुड़े रहते हैं। तो क्या 'द्विवेदी काल' का प्रारम्भ 1903 से माना जाए। सरस्वती पत्रिका 1900 ई0 से विधिवत रूप से प्रकाशित होना प्रारम्भ होती है। 1900 से 1902 ईसवी तक श्यामसुंदर दास 'सरस्वती' का सम्पादन करते हैं। हमने पहले ही कहा कि काल-विभाजन में सुविधा एवं लचीलापन होना चाहिए। सन् 1901 से 'द्विवेदी काल' मानने से दोनों शर्तें पूरी हो जाती हैं। 1920 ईसवी तक छायावादी प्रवृत्तियाँ उभार लेने लगती हैं और यही वह वर्ष है जब द्विवेदी जी सरस्तवी के सम्पादन कार्य से मुक्त होते हैं, अत: सन् 1901 से 1920 ईसवी के बीच के समय को 'द्विवेदी काल' कहा जा सकता है।

12.3.2 द्विवेदी युग का रचना वृत्त

जिस प्रकार ग्रह के प्रभाव से उपग्रह निर्मित हो जाते हैं, उसी प्रकार बड़े रचनाकार के सृजनात्मक व्यक्तित्व से लेखकों का एक वर्ग निर्मित हो जाता है। हिंदी कविता में मध्यकाल तक इस प्रकार का रचनात्मक वलय धार्मिक-दार्शनिक नेताओं के इर्द-गिर्द निर्मित होता था, जैसे – रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य, रामानंद, मध्वाचार्य, चैतन्य महाप्रभु आदि। चूँकि मध्यकाल तक रचनात्मक ऊर्जा के मूल में धार्मिक-आध्यात्मिक प्रेरणा मुख्य हुआ करती थी, इसलिए धार्मिक नेतृत्वकर्त्ता एक रचनात्मक मण्डल तैयार किया करते थे। आधुनिक कालीन कविता में धर्म हट गया, उसका स्थान नवजागरणवादी चेतना ने ले लिया। इस युग में जो रचनाकार नवजारगण की सृजनात्मक ऊर्जा को जितने अच्छे ढंग से अभिव्यक्त कर सका, वह अपने आस-पास रचनाकारों का मण्डल निर्मित करने में उतना ही समर्थ हुआ है। जिस प्रकार भारतेन्दु हरिश्चंद्र के रचनात्मक व्यक्तिव के प्रभाव से 'भारतेन्दु मण्डल' निर्मित हुआ, ठीक उसी प्रकार महावीर प्रसाद द्विवेदी के साहित्यिक अनुशासन एवं सृजन ने 'द्विवेदीवृत्त' को जन्म दिया।

महावीर प्रसाद द्विवेदी के युग में कवियों का कइ वर्ग सम्मिलित था। कुछ तो द्विवेदी जी के प्रभाव से रचना कर रहे थे तो कुछ सामाजिक-सांस्कृतिक रचनात्मकता के प्रभाव वश। यहाँ हम द्विवेदीकालीन प्रमुख कवियों का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करेंगे। श्रीधर पाठक वैसे तो भारतेन्दु कालीन कवि हैं। उनकी प्रसिद्ध कविताएँ जगत सच्चाई सार, उजड़ग्राम, श्रांतपथिक एकान्तवासी योगी 1886 ई0 के लगभग ही प्रकाशित हो चुकी थी, लेकिन उनका रचनात्मक कर्म द्विवेदी-युग में भी सक्रिय रहा। श्रीधर पाठक ने मुख्यत: प्रकृति प्रेम की कविताएँ लिखी हैं। लेकिन इसके अतिरिक्त आपने सामाजिक सुधार से संबंधित भी कई रचनाएँ की है। पं0 अयोसिंह उपाध्याय 'हरिऔध' द्विवेदी-युग में सर्वाधिक बड़े कवियों में से एक है। आप भारतेन्दु-युग से ही रचना क्षेत्र में सक्रिय थे, लेकिन आपकी महत्वपूर्ण कृत्तियाँ द्विवेदी युग में ही सृजित हुई हैं। अयोध्या सिंह उपाध्याय की हिंदी कविता को सबसे बड़ी देन उनका महाकाव्य 'प्रियप्रवास' है, जो सन् 1914 में प्रकाशित हुआ। ग्रंथ की भूमिका में हरिऔध ने विस्तार से खड़ी बोली के विरोधियों के इस तर्क का उत्तर दिया है कि खड़ी बोली में कविता नहीं लिखी जा सकती। 'प्रियप्रवास' खड़ी बोली हिंदी का प्रथम महाकाव्य है। हरिऔध जी ने संस्कृत वर्णवृत्तों में आधुनिक संदर्भों को पिरोया है। महाकाव्य की विशेषत इस दृष्टि से भी है कि इसकी नायिका राधा है। यहाँ राधा का चित्रण प्रेमिका रूप में नहीं है, बल्कि लोकसेविका रूप में है। 'वैदेही वनवास', चौखे चौपदे, चुभते चौपदे, मधुकलश आपकी अन्य महत्वपूर्ण काव्य-कृत्तियाँ हैं। मैथलीशरण गुप्त द्विवेदी युग के सबसे बड़े कवि हैं। गुप्त जी महावीर प्रसाद द्विवेदी युग के प्रतिनिधि कवि हैं। इस युग की समस्य संभावनाएँ एवं सीमाएँ गुप्त जी के काव्यों में प्रकट हुई हैं। रंग में भंग, जयद्रथ वध, विकट भट, प्लासी का युद्ध, गुरूकुल, किसान, पंचवटी, सिद्धराज, साकेत, यशोधरा इत्यादि आपके प्रसद्धि काव्य है। साहित्यिक प्रयोग एवं विषयवस्तु दोनों दृष्टियों से मैथिली शरण गुप्त जी द्विवेदी युग के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। मैथिली शरण गुप्त जी की साहित्यिक विशेषताओं पर हम आगे विस्तार से चर्चा करेंगे। रामचरित उपाध्याय द्विवेदी-युग के पुरानी परम्परा के कवि माने जाते हैं। इनका परिचय देते हुए रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है ''ये संस्कृत के अच्छे पंडित थे और पहले पुराने ढंग की हिंदी कविता की ओर रूचि थी। 'सरस्वती' में जब खड़ी बोली की कविताएँ निकलने लगी तब वे नये ढंग की रचना की ओर बढ़े..... 'राष्ट्रभारती', 'देवदूत', देवसभा' 'देवी द्रौपदी', 'भारत भक्ति' 'विचित्र विवाह इत्यादि अनेक कविताएँ उन्होंने खड़ी बोली में लिखी हैं। पं. गिरिधर शर्मा नवरत्न की कविताएँ, सरस्वती तथा अन्य पत्रिकाओं में बराबर प्रकाशित होती रही है। ये ब्रजभाषा, संस्कृत ओर अंग्रेजी भाषा के अच्छे जानकार थे। इनकी कविताएँ इतिवृत्तात्मक शैली में ही प्राय: लिखी गई हैं। लोचन प्रसाद पाण्डेय द्विवेदी युग के प्रसिद्ध कवि हैं। आपने प्रबन्ध काव्य तथा मुम्तक काव्य दोनों की रचना की है। आपकी काव्य-संवदेना विस्तृत है।

उपर्युक्त कवि द्धिवेदी-वृत्त के कवि है। ये वे कवि है जिनकी रचनाएँ 'सरस्वती' पत्रिका में बराबर प्रकाशित होती रहीं या जिन पर महावीर प्रसाद द्धिवेदी का पर्याप्त प्रभाव रहा है। लेकिन इसके अतिरिक्त द्धिवेदी-युग में कवियों का एक वृत्त ऐसा भी है जो भिन्न-भिन्न धारा की कविता लिखते रहे हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इन कवियों 'द्विवेदीमंडल के बाहर की

काव्यभूमि' की संज्ञा दी है। इन कवियों में मुख्य रूप से राय देवी प्रसाद 'पूर्ण, पं0 नाथूराम शंकर शर्मा, पं0 गयाप्रसाद शुक्ल 'स्नेही', पं0 सत्यनारायण कविरत्न, लाला भगवान दीन, पं0 रामनरेश त्रिपाठी, पं0 रूपनारायण पाण्डेय आदि है।

12.4 महावीर प्रसाद द्विवेदी : रचनागत संदर्भ

महाविर प्रसाद द्विवेदी का जन्म 1864 ई. में रायबरेली जिले के दौलतपुर नामक स्थान पर हुआ था। आपकी मृत्यु 1938 ई. में हुई। भारतेन्दु के बाद किसी एक व्यक्तित्व ने आधुनिक हिंन्दी साहित्य को प्रभावित किया है तो वो है –महावीर प्रसाद द्विवेदी। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा गाँव की पाठशाला, उन्नाव एवं फतेहपुर में हुई। उसके उपरान्त आप बम्बई चले गये। यहीं पर आपने संस्कृत, गुजराती, मराठी और अंग्रेजी का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त किया। अध्ययन समाप्ति के उपरान्त आपने रेलवे विभाग की नौकरी कर ली। इस विभाग के अनुशासन बहुत योग दिया। बाद में अपने रेलवे की नौकरी छोड़ दी और 'सरस्वती' के संपादन के माध्यम से साहित्य की सेवा करते रहे। महावीर प्रसाद द्विवेदी का अवदान उनके भाषा संबंधी सुधार कार्य एवं एक पूरी पीढ़ी को दिशा निर्देशित करने में है। फिर भी आपकी कविताएँ अपने ढंग से ऐतिहासिक महत्व रखती हैं। यहाँ हम द्विवेदी जी की प्रमुख काव्य-कृतियों की एक सूची प्रस्तुत कर रहे हैं।

अनुदित:

- विनय विनोद-1889 ई. भर्तृहरि के वैराग्य शतक का दोहों में अनुवाद
- विहार वाटिका – 1890 ई. गीत गोविन्द का भावनुवाद
- श्री महिम्न स्तोत्र – 1891 ई. संस्कृत के महिम्न स्तोत्र का संस्कृत वृत्तों में अनुवाद।
- गंगा लहरी- 1891 ई. पण्डितराज जगन्नाथ की 'गंगा लहरी' की सवैयों में अनुवाद।
- ऋतुतरंगिणी – 1891 ई. कालिदास का ऋतुसंहार का छायानुवाद
- सोहागरात (अप्रकाशित) – बाइरन के ब्राइडल नाईट का छायानुवाद।
- कुमारसंभवसार- 1902 ई. कालिदास के कुमारसंभव के प्रथम पाँच सर्गों का सारांश।

मौलिक कृतियाँ :

- देवी-स्तुति-शतक – 1892 ई.
- कान्यकुब्जावलीव्रतम् – 1898 ई.
- समाचार पत्र सम्पादक स्तव – 1898 ई.

- नागरी- 1900 ई.
- कान्यकुब्ज- अबला विलाप- 1907 ई.
- काव्य मंजूषा – 1903 ई.
- सुमन – 192 ई.
- द्विवेदी काव्य – माला -1940 ई.
- कविता कलाप- 1909 ई.

रचनात्मक एवं आलोचनात्मक संदर्भ

हिंन्दी साहित्य में महावीर प्रसाद द्धिवेदी के मूल्यांकन से पूर्वहमें यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि जिस युग में द्धिवेदी जी रचना कर रहे थे वह अपनीसंपूर्ण मानसिकता में ब्रजभाषा के सामंती संस्कारों से आच्छन्न युग था। उस समय के साहित्यिक माहौल एंव स्थिति पर हिंदी साहित्य कोश में लिखा गया है। "वह समय हिंदी के कलात्मक विकासका नहीं, हिंदी के अभावोंकी पूर्ति का था। अपने ज्ञान के विविध क्षेत्रों – इतिहास, अर्थशास्त्र, विज्ञा, पुरातत्व, चिकित्सा, राजनीति, जीवनी, आदि से सामग्रीलेकर हिंदी के अभावोंकी पूर्ति की।" (पृष्ठ-439) महावी प्रसाद द्धिवेदी युग प्रवर्त्तक रचनाकार हैं। उनका बड़ा योगदान यह है कि उन्होंने साहित्य में फैली शीतकालीन संस्कारों से हिंन्दी कविता की मुक्त कर उसका वर्ण्य- क्षेत्र विस्तृत किया। स्वयं 'रसज्ञांजन'की भूमिका में कविता का आदर्श महावीर प्रसाद द्धिवेदी ने इस प्रकारव्यक्त कियाहै- "कविता का विषय मनोरंजक एवं उपदेशजनक होना चाहिए। यमुना के किनारे केलि कौतूहल का अद्भुत वर्णन बहुत हो चुका। न परकीयाओं पर प्रबंध लिखने की कोई आवश्यकता है और न स्वकीयाओं के 'गतागत' की पहेली बुझाने की। चींटी से लेकर हाथी पर्यन्त ..... सभी पर कविता हो सकती है। " आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने महावीर प्रसाद द्धिवेदी के ऐतिहासिक योगदान को इस प्रकार स्मरण किया है- "महावीर प्रसाद जी द्धिवेदी को पद्यरचना की एक प्रणाली के प्रवर्तक के रूप में पाते हैं ..... पहली बात तो यह हुई कि उनके कारण भाषा में बहुत कुछ सफाई आयी। बहुत-से कवियों की भाषा शिथिल और अव्यवस्थित होती थी और कई लोग ब्रज और अवधी आदि का मेल भी कर देते थे। इस प्रकार के लगातार संशोधन से धीरे-धीरे बहुत-से कवियों की भाषा साफ हो गई। उन्हीं नमूनों पर और लोगों ने भी आपना सुधार किया।" मराठी के प्रभाव से द्धिवेदी जी की कविता में गद्य का पदविन्यास आ गया। इसके अतिरिक्त वे वडर्सवर्थ के इस सिद्धान्त से भी प्रभावित थे कि गद्य और पद्य का पदविन्यास एक ही प्रकार का होना चाहिए। इस प्रभाव का दुष्परिणाम यह हुआ कि द्विवेदी जी की कविता और उस मंडल के कवियों की कविताएँ प्राय: इतिवृत्तात्मक हो गईं हैं। उनमें वह सूक्ष्मता, कोमलता एवं कल्पना की उड़ान नहीं मिलती जो छायावादी कवियों की विशेषताएँ है। आचार्य महावीर प्रसाद द्धिवेदी के ऐतिहासिक योगदान का मूल्यांकन करते हुए रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है- "आचार्य

द्धिवेदी मूलत: व्यवस्थापक हैं, जो उस समय नये-नये बनते खड़ी बोली हिंन्दी भाषा और साहित्य के विकास की ऐतिहासिक आवश्यकता थी।"

12.5 मैथिलीशरण गुप्त : रचनात्मक एवं आलोचनात्मक संदर्भ

आपने पूर्व में अध्ययन किया कि मैथिलीशरण गुप्त द्धिवेदी युग के सबसे बड़े कवि हैं। गुप्त जी इस दृष्टि से द्धिवेदी युग का प्रतिनिधित्व भी करते हैं। यहाँ हम यह देखेंगे कि वह कौन सी विशेषताएँ थी जिसके कारण मैथिलीशरण गुप्त का काव्य इस युग का प्रतिनिधि काव्य बना। मैथिलीशरण गुप्त के काव्य के आलोचनात्मक मूल्यांकन पूर्व आइए हम उनके जीवन परिचय एवं रचनाओं की संक्षिप्त रूपरेखा से परिचित हों।

जीवन एवं काव्य परिचय

मैथिलीशरण गुप्त का जन्म 1886 ई. में झाँसी के चिरगाँव नामक स्थान पर हुआ था। आपकी मृत्यु 1964 ई. में हुई। मैथिलीशरण गुप्त के रचनात्मक व्यक्तित्व के निर्माण में महावीर प्रसाद द्धिवेदी और उनकी पत्रिका 'सरस्वती' की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। गुप्त जी की प्रारम्भिक रचनाएँ कलकत्ता से निकलनेवाले 'वैश्यापारक' पत्र में प्रकाशित होती थीं। द्धिवेदी जी की प्रेरणाएवं प्रभाव से मैथिलीशरण गुप्त की रचनात्मक प्रतिभा में काफी उभार आया। 'रंग में भंग' कृति के प्रकाशनके पश्चात गुप्त जी चर्चित हुए। लेकिन जिस कृति के कारण में 'राष्ट्रकवि' कहलाये, वह थी- 'भारत भारती' जागरण गीत है। 'हम कौन थे, क्या हो गये है और क्या होंगे अभी/आओ, विचारों आज मिल कर ये समस्याएँ सभी।' इस ग्रंथ का केंद्रीय प्रतिपाद्य है। मैथिलीशरण गुप्त की अन्य रचनाओं में साकेत, यशोधरा, अनध, विकटभट, किसान,विष्णुप्रिया, द्वापर, जयभारत, नहुष, पंचवटी, हिडिम्बा, सिद्धराज इत्यादि हैं। इन कृतियों में 'साकेत' महाकाव्य रामभक्तिशाखा में तुलसीदास के बाद सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग्रन्थ बन गया है।

'साकेत' मैथिलीशरण गुप्त की रचनात्मक क्षमता का सर्वाधिक उज्जवल नक्षत्र है। इस ग्रन्थ के आधार पर मैथिलीशरण गुप्त को रामभक्ति शाखा का कवि कहा गया है। प्रश्न यह है कि क्या मात्र रामभक्ति शाखा के अनुकरण से ही गुप्त जी बड़े कवि हुए हैं ? बड़ा कवि वही हेाता है जो परम्परा के हाय को स्वीकार करते हुए भी उसे समृद्ध करता है। तुलसीदास से हटकर रामभक्ति शाखा में नया जोड़ना एक प्रकार से चुनौती ही थी, जिसे मैथिलीशरण गुप्त जी ने सफलतापूर्वक साधा है। प्रश्न कियाजा सकता है कि मैथिलीशरण गुप्त का नयापन क्या है ? तुलसीदास के राम संपूर्ण चराचर जगत को धारण करने वाले ब्रह्म हैं किन्तु मैथिलीशरण गुप्त ने आधुनिक नवजागरणवादी चेतना के अनुरूप राम को मानव रूप में ही देखने का प्रस्ताव/आग्रह किया है-- "राम तुम मानव हो ? ईश्वर नहीं हो क्या ?/विश्व में रमे हुये नही सभी कहीं हो क्या ?/ तब में निरीश्वर हूँ, ईश्वर क्षमा करे/तुम न रमो तो मन तुममें रमा करे।" आगे 'साकेत'की ही पंक्तियाँ है--

भव में नव वैभव व्याप्त कराने आया,

नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया,

संदेश यहाँ में नहीं स्वर्ग का लाया,

उस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।

नवजागरणवादी चेतना के तहत ईश्वर का मानव रूप में चित्रण एक बिन्दु था, जो मैथिलीशरण गुप्त को बड़ा कवि बनाता है। एक दूसरा बिन्दु है गुप्त जी का नारी चित्र। 'साकेत' महाकाव्य में यदि वे चाहते तो राम या सीता को प्रतिनिधि व्यक्तित्व प्रदान कर सकते थे। लेकिन 'साकेत'की नायिका 'उर्मिला'है जो आधुनिक नवजागरण के अनुरूप ही पुनर्मूल्यांकन के योग्य है। कैकेई, उर्मिला,विष्णुप्रिया, यशोधरा जैसी स्त्री चरित्रों को जितनी करूणा मैथिलीशरण गुप्त ने प्रदान किया है, उतना कोई आधुनिक साहित्यकार नहीं। नारी के सम्बनध में मैथिलीशरण गुप्त का बीज वक्तव्य तो प्रसिद्ध है ही-

"अबला जीवन, हाय, तुम्हारी यही कहानी,

आँचन में है दूध और आँखों में पानी।"

मैथिलीशरण गुप्त के नारि-चित्रण पर डॉ बच्चन सिंह ने टिप्पणी की है: "जहाँ-तहाँ नारी की विद्रोह वाणी भी सुनाई पड़ती है किन्तु उसमें तेजस्विता नहीं है। ये सारी नारियाँ पारिवारिक मार्यादाओंके भीतर सब कुछ सहती हैं। विष्णुप्रिया कहती है- 'सहने के लिए बनी है, सह तू दुखिया नारी।" वस्तुत: मैथिलीशरण गुप्त से यह आशा करना कि वे विद्रोही चरित्रों की सृष्टिकरें, यह उचित नहीं है। "गुप्त जी की प्रतिभा की सबसे बृड़ी विशेषता है कालानुसरण की क्षमताअर्थात् उत्तरोत्तर बदलती हुई भावनाओं और काव्यप्रणालियों को ग्रहणकर चलने की शक्ति। इस दृष्टि से हिंदी भाषी जनता के प्रतिनिधि कवि ये निस्संदेह कहे जा सकते हैं।"

12.6 द्विवेदी युग की प्रवृत्तियाँ

हिंदी कविता में महावीर प्रसाद का महत्व उनके द्वारा किए गये भाषा-सुधार; सरस्वती' पत्रिका का प्रकाशन, रीतिवाद विरोधी अभियान चलाने एवं एक पूरी पीढ़ी को दिशा-निर्देशन के चलते है। स्वयं महावीर प्रसाद द्विवेदी का रचना-कर्म अपने शिष्य मैथिलीशरण गुप्त की तुलना में कमजोर है। द्विवेदी जी महत्व हिंदी साहित्य में कविता की श्रेष्ठता की दृष्टि से उतना नहीं है, जितना श्रेष्ठ रचना निर्मित करने की प्रेरणा से है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि महावी प्रसाद द्विवेदी का कवित्व श्रेष्ठता की दृष्टि से उतना महत्वपूर्ण नहीं है, जितना ऐतिहासिक दृष्टि से। इस दृष्टि से द्विवेदी युग की कविता प्रवृत्ति को हम महावीर प्रसाद द्विवेदी के रचनात्मक व्यक्तित्व की

ही छाया कह सकते हैं। आइए, हम संक्षेप में द्विवेदी कालीन कविता की प्रमुख प्रवृत्तियों को जानने का प्रयास करें।

12.6.1 राष्ट्रीयता

महावीर प्रसाद द्विवेदी, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समान प्रारम्भ में अंग्रेजी प्रशासन के अंग थे, या कहें कि सरकारी कर्मचारी थे। इसीलिए स्वयम् द्विवेदी जी और 'सरस्वती' के प्रारम्भिक लेखों में राष्ट्रीयता के तत्व नहीं पाये जाते। सरस्वती के शुरूआती अंकों में द्विवेदी जी अंग्रेजी प्रशासन के खिलाफ लेख छापने से बचते रहे। बल्कि शुरूआती कुछ लेख ब्रिटिश हुकुमत के पक्ष में भी छपे। लेकिन क्रमश: द्विवेदी –युग की कविता राष्ट्रीयता की ओर झुकती चली गई। द्विवेदी जी की प्रेरणा से मैथिलीशरण गुप्त ने 'भारत-भारती' की रचना की, जो राष्ट्रीय बोध की दृष्टि से ऐतिहासिक महत्व रखती है। 'भारत-भारती' कुछ पंक्तियाँ देखें –

है ठीक ऐसी ही दशा हत-भाग्य भारतवर्ष की।/ कब से इतिश्री हो चुकी इसके अखिल उत्कर्ष की।

× × ×

दृढ़-दुख दावानल इसे सब ओर घेर जला रहा, तिस पर अदृश्टाकाश उलटा विपद-वज्र चला रहा। यद्यपि बुझा सकता हमारा नेत्र-जल इस आग को, पर धिक् हमारे स्वार्थमय सूखे हुए अनुराग को

× × ×

हम कौन थे, क्या हो गए हैं और क्या होंगे अभी/ आओ विचारे आज मिलकर ये समस्याएँ सभी।/ यद्यपि हमें इतिहास अपना प्राप्त पूरा है नहीं, हम कौन थे, इस ज्ञान का, फिर भी अधूरा है नहीं।

'भारत-भारती' उद्बोधन परक शैली में लिखी गई है। इसी कारण इसने तत्कालीन समय में युवाओं को राष्ट्रीय आन्दोलन से जोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। गुप्त जी का महत्वपूर्ण ग्रंथ 'साकेत' की कथा पौराणिक इतिवृत्त के आधार पर रची गई है, लेकिन जगह-जगह उसमें भी राष्ट्रीयता की झलक मिल जाती है। जैसे –

भारत लक्ष्मी पड़ी राक्षसों के बंधन में

सिंधु पार वह बिलख रही व्याकुल मन में।

× × ×

आओ, यदि जा सको रौदं हमको यहाँ

यों कह पथ में लेट गये बहु जन वहाँ

राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति की दृष्टि से सियारामशरण गुप्त की कविता पंक्ति भी उल्लेखनीय है –

कवि के स्वतंत्र देश

तेरे लिए कौन नया गीत आज गाऊं मैं

मेरे घट में हो आज गंगा-जमुना का नीर,

भक्ति हो संगम का तीर्थ-तीर,

रेवा, शोप, वैत्रवली, पंचनद गोदावरी

उल्लसित प्रेम-प्रेमी

शिक्षा, सिंधु सरयु, पवित्र कृष्णा, कावेरी

सबके पुनीत अमिभज्जन से

नव-अभिषेक करूँ आज के सुदिन का,

आऊं मातृभूमि के चिरन्तर से

एक रस आ रही अखण्ड निर्मलिनता।

इसी प्रकार रामनरेश त्रिपाठी की राष्ट्रीय भाव बोध की

पंक्ति देखें –

द्वार-द्वार पर जाकर विजया

करूणा प्रेम-निधान।

सबको लगी जगाने गाकर

देशभक्ति-भय गान।।

उसके गान अतीत काल के
थे सुख रूप-ललाम।

सुनकर के आहें भरते थे

कृषक कलेजा थाम।।

उसके गान हृदय में भरते
थे साहस उत्साह।

बतलाते थे स्वतंत्रता को

सुख पाने की राह।।

× × ×

एक घड़ी की भी परवशता कोटि नरक के सम है।

पलभर की भी स्वतंत्रता सौ स्वर्गों से उत्तर है।

12.6.2 सामाजिकता

द्विवेदी जी की कविता समाज सुधार या सामाजिकता की व्यापक भावना से संचालित रही है। सामाजिक की भावना कहीं सामाजिक सुधार में अभिव्यक्त हुई है तो कहीं समाज को आगे बढ़ाने की गत्यात्मकता में। यहाँ हम द्विवेदी युग की कविता में अभिव्यक्त कुछ उदाहरणों के माध्यम से अपनी बात स्पस्ट करेंगे।

हिंसानल से शांत नहीं होता हिंसानल/जो सबका है वहीं हमारा भी है मंगल/मिला हमें चिर सत्य आज यह नूतन होकर/हिंसा का है एवं अहिंसा ही प्रप्युत्त (अहिंसा का आग्रह – सिया राम शरण गुप्त)

× × ×

जाति, धर्म या सम्प्रदाय का, नहीं भेद-व्यवधान यहां सबका स्वागत, सबका आदर, सबका सम-सम्मान यहाँ।

× × ×

जाति धर्म या सम्प्रदाय का नहीं व्यवहार यहाँ,

राम-रहीम, बुद्ध,-ईसा का सुलभ एक सा ध्यान यहाँ।

× × ×

नारी पर नर का कितना अत्याचार है

लगता है, विद्रोह मात्र ही अब इसका प्रतिकार है।

× × ×

आ पहुँचा नवयुग सभी समक्ष तिहारें,

धन वारें धनी, दरिद्र दीनता वारें। (मैथिली शरण गुप्त)

× × ×

यह दहेज की आग सुवंशों ने दहकाई।

प्रलयवाही सी वही आज चारों दिशा छाई।

× × ×

बाल विवाह रोक हम देते यदि हमको मिलते अधिकार।

वृद्ध व्याह का किन्तु देश में कर देते हम खूब प्रचार।

× × ×

सामाजिक कतिपय कुप्सित नियम।

अति संकुलित छूतछात के विचार।

हर ले रहे हैं आज हमारा सर्वस्व। (अयोध्या सिंह आध्याय हरिऔध)

उपयुक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि द्विवेदी कालीन कविता अपनी सामाजिक चेतना में किसी भी कविता धारा से तुलनीय है।

12.6.3 नवजागरण

रामविलास शर्मा ने द्विवेदी युग के साहित्य को नवजागरण की 'द्वितीय मंजिल' कहा है। कारण यह है कि इस युग का साहित्य अपने मूल रूप में नवीन चेतना से आप्लावित है। पूर्व में कहा गया कि-साकेत और 'प्रियप्रवास' की नायिकाएं उर्मिला और राधा मात्र विरहिणी प्रेमिका रूप में यहाँ चित्रित नहीं हुई हैं बल्कि वे लोकसेविका रूप में चित्रित हुई हैं। 'प्रियप्रवास' की यह पंक्ति देखे –

अत: सबों से यह श्याम ने कहा

स्व जाति उद्धार महान् कर्म है।

चलों करें पावक में प्रवेश औ।

स धेनु लेवें निज जाति का बचा।

× × ×

बिना न त्यागे ममता स्व-प्राण की
बिना न जोखों-ज्वालादाग्नि में पड़े।

न हो सका विश्व महान् कार्य है।

न सिद्ध होता भव जन्म हेतु है।

× × ×

बढ़ों करो वीर स्वजाति का भला,

अपार दोनों विध लाभ है हमें।

किया स्व कर्तव्य उबार भी लिया।

सु-कीर्ति पाई यदि भस्म हो गये।

12.6.4 इतिवृत्तात्मकता

द्विदेवी युगीन कवता की एक बड़ी विशेषता इसकी इतिवृत्तात्मक शैली रही है। प्रश्न है कि इतिवृत्तात्मकता क्या है ? आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने द्विवेदी जी की कविता पर टिप्पणी करते हुए लिखा है – ''उनका जोर बराबर इस बात पर रहता था कि कविता बोलचाल की भाषा में होनी चाहिए.....परिणाम यह हुआ है कि उनकी भाषा बहुत अधिक गद्वत् (Prosaic) हो गयी।.....उनकी अधिकतर कविताएँ इतिवृत्तात्मक (Matter of Fact) हुई। उनमें वह लाक्षणिकता, वह चित्रमयी भावना और वक्रता बहुत कम आ पायी जो रस-संचार की गति को तीव्र और मन का आकर्षित करती है। 'यथा', 'सर्वथा', 'तथैव' ऐसे शब्दों के प्रयोग ने उनकी भाषा को और भी अधिक गद्य का स्वरूप दे दिया।' द्विवेदी युगीन कविता की पंक्तियाँ देखें, सर्वत्र गद्य का आभास मिलता है, 'दिवसावआन का समय था' पंक्ति में था, शब्द का प्रयोग वाक्य को गद्यवत बना रहा है या मैथिलीशरण गुप्त की काव्य पंक्तियाँ देखें –

क्षत्रिय ! सुनो अब तो कुयश की कालिमा को भेंट दो। निज देश को जीवन सहित तन-मन तथा धन भेंट दो।।

× × ×

पहले ऑखों में थे, मानस में कूद मग्न प्रिय अब थे। छींटे वही उड़े थे, बड़े-बड़े अश्रु वे कब थे ?

× × ×

मुझे फूल मत मारो

× × ×

वेदने ! तू भी भली बनी

× × ×

राम, तुम मानव हो ? ईश्वर नहीं हो क्या ?

× × ×

हम कौन थे , क्या हो गये हैं और क्या होंगे अभी

संक्षिप्त उदाहरणों के माध्यम से हम यह कहना चाह रहे हैं कि द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मक शैली उसकी विशिष्ट पहचान बन गई।

अभ्यास प्रश्न 1

क) रिक्त स्थान की पूर्ति कीजि।

1. महावीर प्रसाद द्विवेदी का जन्म.....ई0 में हुआ था।
2. महावीर प्रसाद द्विवेदी ने.....पत्रिका का संपादन किया।
3. प्रियप्रवास महाकाव्य के रचयिता.....हैं।
4. 'भारत-भारती'.....बोध की रचना है।
5. मैथलीशरण गुप्त.....शाखा के अंतर्गत आते हैं।

अभ्यास प्रश्न 2

क) सत्य/असत्य बताइए।

1. साकेत के रचनाकार महावीर प्रसाद द्विवेदी हैं।
2. यशोधरा हरिऔध जी की रचना है।
3. 'भारत-भारती' राष्ट्रीय भाव बोध की रचना है।
4. इतिवृत्तामकता द्विवेदी युगीन कविता की विशेषता है।
5. दिवस का अवसान समीप था 'पंक्ति मैथिलीशरण गुप्त द्वारा रचना है।

12.7 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि –

- 'द्विवेदी युग' नामकरण के मूल में महावीर प्रसाद द्विवेदी का रचनात्मक व्यक्तित्व रहा है, जिसने हिंदी कविता को एक नयी दिशा दी।
- महावीर प्रसाद द्विवेदी युगप्रवर्त्तक साहित्यकार थे। उनका सबसे बड़ा योगदान यह है कि उन्होंने साहित्य को सामंती चरित्र से मुक्त कर उसे आधुनिकता की ओर बढ़ने की दिशा प्रदान की।
- महावीर प्रसाद द्विवेदी ने व्याकरण सम्मत सुधार कर भाषा को साहित्यिक रूप प्रदान किया।
- द्विवेदी युग का साहित्य व्यापक रूप से नवजागरणवादी चेतना के तले रचा गया है। इस नवजागरण को सांस्कृतिक बोध एवं राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति से भली-भॉति समझा जा सकता है।
- द्विवेदी युगीन कविता की मुख्य प्रवृत्ति राष्ट्रीयता, समाज सुधार, नवजागरणवादी चेतना एवं इतिवृत्तात्मकता रही है।
- द्विवेदी युगीन साहित्य को उत्कर्ष प्रदान करने वाले कवियों में अयोध्यासिंह उपाध्याय, हरऔध, तथा मैथिलीशरण गुप्त प्रमुख हैं।

12.8 शब्दावली

- नवजागरण – अतीत के गौरव का रचनात्मक स्मरण
- इतिवृत्तात्मकता – द्विवेदी युगीन कविता की विशेषता, कविता का गद्यावत होना।
- रीतिकालीन संस्कार – श्रृंगार-स्तुति जैसे मनोभावों की प्रचुरता
- आधुनिक प्रवृत्ति – नवीन वस्तु, विचार को सृजित करने वाला व्यक्तित्व

12.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. चतुर्वेदी, रामस्वरूप – हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, लोक भारती प्रकाशन
2. शुक्ल, रामचंद्र शुक्ल - हिंदी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा
3. नगेन्द्र, डॉ – हिंदी साहित्य का इतिहास (सं0), नेशनल पब्लिशिंग हाऊस
4. सिंह, बच्चन – हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन

12.10 संदर्भ प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1) क)

1. 1864 ई0 2. सरस्वती 3. अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

4. राष्ट्रीय 5. रामभक्ति शाखा

अभ्यास प्रश्न 2) क) 1. असत्य 2. असत्य 3. सत्य 4. सत्य 5. असत्य

12.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. शर्मा, रामविलास, - महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण
2. सिंह, उदयभानु – महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग

12.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. महावीर प्रसाद द्विवेदी का साहित्य किन दृष्टियों से महत्वपूर्ण है ? विवेचन कीजिए।
2. द्विवेदी युग की काव्य-प्रवृत्तियाँ स्पष्ट कीजिए।

इकाई 13 - स्वातंत्रयोत्तर काल और कविता का विकास

इकाई की रूपरेखा

13.1 प्रस्तावना
13.2 उद्देश्य
13.3 स्वातंत्रयोत्तर काल और कविता का विकास
13.3.1 स्वातंत्रयोत्तर काल और कविता की परिस्थिति
13.3.1.1 राजनीतिक परिस्थिति
13.3.1.2 सामाजिक परिस्थिति
13.3.1.3 आर्थिक परिस्थिति
13.3.1.4 सांस्कृतिक - धामिर्क परिस्थिति
13.3.2 स्वातंत्रयोत्तर कालीन साहित्य के प्रमुख आन्दोलन
13.3.2.1 स्वातंत्रतापश्चात कविताः एक परिचय
13.3.2.2 स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी कविता के प्रमुख हस्ताक्षर
13.4 स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी कविता के प्रमुख प्रवृत्तियाँ
13.4.1 स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी कविता की वैचारिकी
13.4.2 स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी कविता की आलोचनात्मक सदंर्भ
13.4.3 स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी कविता का भाषागत संदर्भ
13.5 स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी कविता का मूल्यांकन
13.6 सारांश
13.7 शब्दावली
13.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
13.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
13.10 सहायक पाठ सामग्री
13.11 निबन्धात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

स्वतंत्रता किसी भी जाति, समाज, मनुष्य का मूलभूत प्रत्यय है। स्वतंत्रता का अर्थ भैतिक - सामाजिक पराधीनता भी है और मानसिक - अस्तित्वगत समस्या भी। स्वतंत्रता का अर्थ

सृजनशीलता भी है। परतंत्र व्यक्ति कभी भी सृजनशील नहीं हो सकता। यह हो सकता है कि हम भैतिक - सामाजिक रुप से स्वतंत्र हों लेकिन अवरुद्ध सृजनशीलता के शिकार हों। अर्थ यह है कि स्वतंत्र व्यक्ति ही सार्थक क्रिया कर सकता है। सृजनशीलताका संबंध संवेदनशीलता से है। संवेदनशीलता का संबंध साहित्य से है। और साहित्य में संवेदनशीलता का सबसे ज्यादा वहन कविता करती है। अतः कविता की दृष्टि से स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् कविता का तेवर काफी बदला हुआ है । यहाँ हमें इस तथ्य को समझना होगा कि स्वतंत्रता में और पराधीनता में , दोनो स्थितियों में श्रेष्ठ साहित्य की रचना हो सकती हे। स्वतंत्र समाज की रचना में उल्लास का स्वर ज्यादा होसकता है तथा परतंत्र समाज के साहित्य में प्रतिरोध का स्वर । नियमतः ऐसा कोई फार्मूला नहीं है कि किस समय किस प्रकार का साहित्य लिखा जाता है या लिखा जाना चाहिए। लेकिन यह अनिवार्य रुप से तय है कि अपने समय, समाज की सांकेतिक संभावनापूर्ण क्रिया साहित्य में उपस्थित रहती है। साहित्य चाहे स्वतंत्रता की पृष्ठभूमि में लिखा गया हो या परतंत्रता की पृष्ठभूमि में साहित्य हमेशा अपने समाज की संस्कृति का प्रतिनिधित्व करता है। इसका मुख्य कारण यह है कि साहित्यकार स्वतंत्रता - परतंत्रता को सांस्कृतिक संदर्भ में देखता है। कहने का अर्थ यह है कि लेखक - सृजनकर्ता ही नही है बल्कि सामाजिक परिवेश का अतिक्रमण कर संभावनाशील समाज की रचना भी करता है।

स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी कविता के विकास क्रम में भी हमें उपरोक्त तथ्य देखने को मिलते हैं। हिन्दी कविता के लिए स्वतंत्रता पूर्व जहाँ जागरण का प्रश्न मुख्य था वहीं स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी कविता के लिए सामाजिक साम्य का प्रश्न। पहले स्वतंत्रता का प्रश्न मुख्य था, अब समानता का। हिन्दी कविता की अभिन्यक्ति का स्वर भी बदला और रुपाभिव्यक्ति संबंधी प्रयोग भी हुए। कई दृष्टियों से स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी कविता पुरानी कविता से भिन्न भावभूमि की कविता है। आधुनिकता बोध की सही मायने में अभिव्यक्ति स्वातंत्रयोत्तर कालीन कविता में ही होती है। आधुनिकता के प्रश्नों, आधुनिकता के चिह्न की दृष्टि से हिन्दी कविता पर्याप्त समृद्ध रही है। आधुनिकता की अवधारणाएँ अंतर्विरोध, विडम्बना, विसंगति, संत्रास तथा उत्तर - आधुनिकता की वैचारिकी को स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी कविता भली - भाँति व्यक्त करती है। आगे के बिन्दुओं में हम स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी कविता के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा करेगें।

13.2 उद्देश्य

इस इकाई से पूर्व आपने संपूर्ण हिंदी कविता के विकास क्रम का अध्ययन कर लिया है। यह इकाई स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता पर आधारित है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- स्वातंत्र्योत्तरहिंदी कविता के विकास क्रम को समझ पायेंगे।
- स्वातंत्र्योत्तर हिंदी सामाजिक-राजनीतिक -सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को समझ पायेंगे।
- स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता के आन्दोलनों से परिचित हो सकेंगें।

- स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता के प्रमुख कवियों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता की प्रवृतियों को समझ सकेंगे।
- स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता के कलात्मक आयाम को जान सकेंगे।
- स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता की पारिभाषिकी से परिचित हो सकेंगे।

13.3 स्वातंत्र्योत्तर काल और हिंदी कविता का विकास

स्वातंत्र्योत्तर कालीन कविता का संबंध भारतीय नवजागरण, राष्ट्रीय आन्दोलन, पूँजीवाद के आधुनिक बोध, तथा विश्वयुद्ध के बाद पैदा हुई स्थितियों से है। इतिहास में बदलाव के बिन्दु को रेखांकित करना हमेशा से ही कठिन रहा है, कारण यह कि बदलाव की प्रक्रिया यांत्रिक ढ़ग से यकायक नहीं होती बल्कि लम्बी ऐतिहासि0क प्रक्रिया के कारण संभव हो पाती है। इसलिए यह संभव नहीं है कि सन् 1947 के पहले और बाद के साहित्य में कोई संबंध ही न हो। यह विभाजन सुविधाजनक है और भारतीय इतिहास की बड़ी घटना (भारत के स्वतंत्रता दिवस) से जुड़ा हुआ है। भारतीय स्वतंत्रता की घटना न केवल साहित्यकारों बल्कि इतिहासविदों, चिन्तकों, समाजशास्त्रियों के विश्लेषण के बिन्दु को दूसरी ही तरफ मोड़ दिया। स्वतंत्रता का लक्ष्य समानता की व्यवस्था में बदल गया, जिसकी परिणति हुई सन् 1950 ई0 का भारतीय संविधान । हिंदी कविता भी बदली और उसके अनुरूप अपना नया कलेवर धारण किया। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता की प्रवृत्तियों का हम अध्ययन करें, उससे पूर्व आइए हम उसकी पृष्ठभूमि का अध्ययन करें।

13.3.1 स्वातंत्र्योत्तर काल की परिस्थिति

जैसा कि पूर्व में कहा गया कि सन् 47 की घटना वह निर्णायक बिन्दु था, जिसने पूरे भारतीय इतिहास को दूर तक प्रभावित किया। स्वाभाविक था कि हिन्दी साहित्य या कविता भी उससे प्रभावित हुई। स्वातंत्र्योत्तर काल की बदली हुई राजनीतिक, सामाजिक ,आर्थिक एंव सांस्कृतिक - धार्मिक परिस्थितियों का संबंध हिन्दी कविता से है। हिन्दी कविता ने इन परिस्थितियों का सृजनात्मक उपयोग किया । आइए हम स्वातंत्र्योत्तर काल की परिस्थितियों का अध्ययन करें।

13.3.1.1 राजनीतिक परिस्थिति

1947 ईसवी में भारत आजाद हुआ, विभाजन की कीमत पर। विभाजन के उपरान्त पाकिस्तान नामक एक नया राष्ट्र निर्मित हुआ, जिसने भारत की सुरक्षा - शांति - स्थिरता को दूर तक प्रभावित किया । अब तक भारत - पाकिस्तान के चार युद्ध हो चुके है। सन् 1947, 1965, 1971, में प्रत्यक्षतः और 1999 में कारगिलका अप्रत्यक्ष युद्ध।

इस बीच भारत - चीन युद्ध भी सन् 1962 ई में हुआ, जिसमें भारत की पराजय हुई। इन युद्धों ने हमारे देश में राजनीतिक अस्थिरता पैदा की। द्वितीय विश्व युद्ध के उपरान्त अमरीका और रुस में पैदा हुई शीतकालीन स्थिति ने अस्तित्वादी मनः स्थितियाँ पैदा की । जिससे स्वातंत्र्योत्तर साहित्य बहुत प्रभावित हुआ। देश की स्वतंत्रा के समय संपूर्ण राष्ट्र आशान्वित था। उसे आशा थी कि अब हमारी सारी समस्याओं का समाधान प्राप्त हो जायेगा, लेकिन दुर्भाग्य से ऐसा न हो सका। अंग्रेजी राज्य की स्थापना के बाद कांग्रेसी सरकार का गठन हुआ। जवाहर लाल नेहरु के नेतृत्व में पंचशील समझौता हुआ, लेकिन वह असफल रहा। राजनीतिक असफलता ने भारतीय युवाओं के मन में असंतोष भर दिया। स्वप्न टूटे, मोहभंग हुआ और समाज बिना लक्ष्य के रह गया। केंद्रीय सत्ता, केंद्रीय विचार असफल हो गये, फलतः विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया तेज हुई, क्षेत्रीय पार्टियों की बहुतायत बढ़ गई। राजनीतिक अस्थिरता का नया सच हमारे सामने आया।

13.3.1.2 सामाजिक परिस्थिति

स्वतंत्रता पूर्व भारतीय समाज सामाजिक रुप से काफी पिछड़ी हुई अवस्था में था। अंगेजी राज्य में जमींदार, व्यापारी या उनके अधीनस्थ कर्मचारियों की सामाजिक स्थिति संतोषप्रद थी, लेकिन बाकी सामान्य जनता की स्थिति काफी विषम थी। अंग्रेजों ने 'फूट डालो राज करो' की नीति के अनुरुप उच्च वर्ग को अपने स्वार्थ के लिए इस्तेमाल किया। राष्ट्रीय आन्दोलन के अखिल भारतीय समाज को एक करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । सन् 1930 के बाद सामाजिक आन्दोलनों के प्रभाव से सामाजिक समरसता एवं समानता की स्थिति बनने लगी थी। सन् 1947 के बाद भारतीय संविधान का बनना इसी दिशा में एक बड़ा कदम था। स्वातंत्र्योत्तर भारत में सामाजिक विकास को समायोजित करने के लिए पंचवर्षीय योजनाओं का प्रारम्भ हुआ। शैक्षिक जगत में भी युगान्तकारी परिवर्तन हुआ । स्वतंत्रता के पश्चात् देश में कई विश्वविद्यालय, महाविद्यालय एवं कालेज खुले। साक्षरता दर में स्वतंत्रता के पश्चात् काफी वृद्धि हुई । साक्षरता ने बौद्धिक जागरुकता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। विशेषकर स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति हुई। महिलाओं के घर से बाहर निकलने और नौकरी करने से पारिवारिक स्तर पर कई बदलाव परिलक्षित हुए। स्त्री - पुरूष समानता की स्थिति ने एक ओर जहाँ सामाजिक गतिशीलता पैदा की वहीं दूसरी तरफ पारिवारिक विघटन की स्थिति भी निर्मित हुई। ज्ञान - विज्ञान के आलोक में कार्य - कारण तर्क पद्धति विकासित हुई। अंतर्विरोध, विसंगति, विडम्बना, तनाव जैसी आधुनिक समस्याएँ सामाजिक रुप में तथा साहित्य में भी दिखाई देने लगीं। भौतिक दृष्टि से समाज उन्नतशील हुआ, लेकिन साथ ही जटिलताएँ भी बढ़ीं । इन सबका साहित्य पर गहरा प्रभाव पड़ा।

13.3.1.3 आर्थिक परिस्थिति

स्वांतत्रयोत्तर आर्थिक विकास की स्थिति - परिस्थिति का हिन्दी कविता पर व्यापक प्रभाव पड़ा। स्वतंत्रता के पूर्व आर्थिक विकास का सूत्र अंग्रेजों के हाथ में था, लेकिन उनका मख्य उद्देश्य भारत की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करना नहीं था, अंग्रेजों के भारत आने से पूर्व भारत की विश्व व्यापार में योगदान लगभग 16% था, जो 1947 तक नगण्य रह गया था। अंग्रेजी राज्य का

भारत विकास एक छद्म था, जिसे उन्होंने लूट के साधन के रुप में प्रयोग किया। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् अर्थव्यवस्था को सुनियोजित करने के लिए पंचवर्षीय योजनाओं का प्रारम्भ हुआ। सन् 1952 में प्रथम पंचवर्षीय योजना का प्रारम्भ हुआ। हमारे देश में मिश्रित अर्थव्यवस्था को लागू किया गया, जो सफल साबित हुआ। किन्तु इसके साथ ही भूखमरी, बेकारी, अकाल, जनसंख्या बढ़ोत्तरी, भ्रष्टाचार, हिंसात्मक मनोवृत्ति ने आर्थिक विकास को पीछे धकेल दिया। देश में अनेक आर्थिक परियोजनाएँ चली, लेकिन हम समृद्ध राष्ट्र की कल्पना साकार न कर सके। एक ओर देश की सामान्य जनता का जीवन स्तर दिन-प्रति-दिन नीचे गिरता गया, दूसरी ओर समाज का एक छोटा वर्ग समृद्ध होता चला गया। आर्थिक विकास के विकेन्द्रीकाण एवं असमानता ने सचेत वर्ग के भीतर विद्रोह - विक्षोभ का संचार किया।

13.3.1.4 धार्मिक - सांस्कृतिक परिस्थिति

स्वांतत्रयोत्तर कविता की पृष्ठभूमि पीछे 1857 की घटना से सीधे जुड़ जाती है। हिन्दू - मुस्लिम धर्मों की एकता स्थापित होने में सैकड़ो वर्ष लग गए। मुगलकाल के पतन एवं ब्रिटिश सत्ता के वर्चस्व की घटना परस्पर जुड़ी हुई है। 1857 की क्रान्ति ने यह स्थिति उत्पन्न की कि दोनों एकजुट होकर ब्रिटिश सत्ता के प्रति धार्मिक अस्तित्व के लिए संघर्ष करें। ऐतिहासिक प्रक्रिया में यह शुभ संकेत था - राष्ट्र के लिए। इस प्रक्रिया की पूर्णाहुति हुई देश की आजादी में। इसी समय अंग्रेजो ने मुस्लिम - लीग और हिन्दू महासभा को अपने-अपने ठंग से प्रोत्साहन देकर 'फूट डालो राज करो ' की नीति के तहत अपने स्वार्थ की सिद्धि की, जिसकी परिणति देश के विभाजन में हुई। फूट और घृणा का यह वातावरण अभी तक बना हुआ है। जिसका प्रमाण है देश मे हिस्सों में होने वाले हिन्दू - मुस्लिम दंगे। धार्मिक विद्वेष के इस वातावरण का प्रतिरोध सांस्कृतिक स्तर पर हुआ। शास्त्रीय संगीत एवं साहित्य ने सांस्कृतिक स्तर पर प्रतिरोध की संस्कृति निर्मित की, लेकिन राजनीतिक - सामाजिक बड़े आन्दोलन के अभाव में वह उतना प्रभावी न हुई।

अभ्यास प्रश्न 1)

निम्नलिखित कथन में सत्य/असत्य बताइए।

1. संवेदनशीलता का सबसे ज्यादा वहन कविता करती है।

2. साहित्य अपने समाज की संस्कृति का प्रतिनिधित्व करता है।

3. स्वातंत्र्योत्तर कविता के लिए जागरण का प्रश्न मुख्य था।

4. द्वितीय विश्वयुद्ध से स्वातंत्र्योत्तरहिंदी कविता का सम्बंध है।

5. 1857 का युद्ध भारत की सांस्कृतिक परिस्थिति के कारण लिए शुभ संकेत था।

13.3.2 स्वातंत्र्योत्तरकालीन साहित्य के प्रमुख आन्दोलन

स्वातंत्र्योत्तर कविता की पृष्ठभूमि का आपने अध्ययन कर लिया है। आपने यह पढ़ा कि किस प्रकार भारतीय जनता के सपने- आकांक्षांए बिखर गईं। स्वतंत्रता के पूर्व जो लक्ष्य निर्धारित किए गये थे, वे अपूर्ण ही रह गये। सामाजिक आर्थिक - राजनीतिक अव्यवस्था ने स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। आपने पिछली इकाइयों में प्रगतिवाद एवं प्रयोगवाद के बारे में पढ़ा । ये आन्दोलन स्वतंत्रता पूर्व के कविता आन्दोलन थे, लेकिन इनका विस्तार स्वतंत्रता बाद की किवताओं पर भी पड़ा। प्रयोगवाद का साहित्यिक विकास नयी कविता के रुप में हुआ। प्रगतिवाद का आन्दोलन के रुप में उतना प्रत्यक्ष विकास भले न हुआ हो लेकिन बाद की कविता पर प्रगतिवाद की वैचारिकी का सबसे ज्यादा प्रभाव पड़ा। प्रगतिवाद के प्रभाव से ही क्रमशः प्रगतिशील कविता, जनवादी कविता, जन - संस्कृति की कविता, प्रतिबद्ध कविता की अवधारणाएँ सामने आईं। कह सकते हैं कि प्रगतिशीलता, समकालीनता, प्रतिबद्धता जैसी अवधारणाएँ व्यापक रुप से प्रगतिवाद का ही सम - सामयिक रुपान्तरण थीं। इतिहास में कोई पूर्ण तिथि निश्चित नहीं की जा सकती। जिसे हम घटना का प्रारम्भ और समापन घोषित कर दें। तिथि निर्धारण का लचीला एवं सुविधाजनक रुप ही हमारे सामने होता है। 1947 ईसवी की घटना के समय, साहित्यिक स्तर पर प्रयोगवादी आन्दोलन चल रहा होता है, जो 1951 के दूसरे सप्तक से समाप्त होता है या नयी कविता में रुपान्तरित होता है। उसके पश्चात् साठोत्तरी कवित, अ-कविता, मोहभंग की कविता, जनवादी कविता, प्रतिवद्ध कविता, उत्तर-आधुनिक कविता, विर्मश केंद्रित कविता, समकालीन कविता, तथा इक्कीसवीं शती की कविता जैसे कई नाम हिन्दी कविता के साथ जुड़ते गए। विभिन्न काव्य आन्दोलन युग-समाज में आये बदलाव का ही संकेत करते हैं। इन बदलावों को हम एक आरेख/तालिका के माध्यम से स्पष्ट रुप से देख सकते हैं –

1951 – 1959 - नई कविता

1960 – 1965 - साठोत्तरी कविता/ अकविता

1965 – 1975 - मोहभंग की कविता

1975 – 1990 - जनवादी कविता

1990 – 2012 - उत्तरआधुनिकता/ विमर्श कविता/ समकालीन कविता

यहाँ हमें ध्यान रखना होगा कि ये नामकरण सुविधा की दृष्टि से रखे गये है। किसी भी युग में कोई एक प्रवृत्ति ही गतिशील नहीं होती, एक साथ ही कई प्रवृत्तियाँ काम करती रहती है। आलोचक अपनी दृष्टि - विचारधारा के स्तर पर किसी एक प्रवृत्ति को मुख्य मानकर उस पूरे युग का एक नामकरण स्थिर करता है। लेकिन बाद के समय में दूसरा आलोचक उस युग की दूसरी

प्रवृत्ति को मुख्य मान लेता है। जैसे हिन्दी कविता के संदर्भ में कहें तो आदिकाल एवं रीतिकालीन कविता के कई नामकरण इसी सिद्धान्त के कारण मिलते है। दूसरी समस्या कालगत नामकरण को लेकर आरम्भ होती है। जैसे सन् 1960 के बाद की कविता को समकालीन कविता भी कहा गया और नवलेखन की कविता भी। लेकिन आज की स्थिति ने ये नामकरण अप्रासंगिक हो गये हैं। कालगत नामकरण की यही सीमा है, इसीलिए प्रवत्तिगत नामकरण ही इतिहास में दीर्घकालिक होत है और साहित्यिक प्रवृत्ति को समझने में हमारी मदद भी करता है।

13.3.2.1 स्वातंत्र्योत्तर कविता : एक परिचय

जैसा कि कहा गया, स्वातंत्र्योत्तर कविता यात्रा की विकास यात्रा सीधी -सपाट नहीं है। प्रयोगवाद का प्रवर्तन अज्ञेय करते हैं। नयी कविता का नामकरण भी वही करते हैं और तीसरे सप्तक का संपादन भी। इसी प्रकार रामविलास शर्मा की कृतियाँ 'तारसप्तक' में संकलित हुई हैं, लेकिन मूलरूप से वे प्रगतिशील कवि रहे है। मुक्तिबोध भी 'तारसप्तक 'के कवि हैं लेकिन रूपवादी रूझानों से उनका वास्ता नहीं रहा है। फिर भी कुछ प्रवृत्तियाँ रही है, जिनके कारण उनमें अंतर किया गया है। प्रयोगवाद के प्रारम्भ होने के पीछे 'तारसप्तक' नामक काव्य-संकलन की भूमिका रही है। 'तारसप्तक' के संपादक अज्ञेय थे ओर इसमें सात कवि शामिल हैं। द्वितीय तारसप्तक का प्रकाशन सन् 1951 ई. में हुआ। इस सप्तक का संपादन भी अज्ञेय करते हैं। लेकिन अन्य कवि बदल गए हैं। द्वितीय तारसप्तक के प्रकाशन से ही 'नयी कविता ' की शुरुआत मानी जाती है। कुछ लोगों के अनुसार अंग्रेजी साहित्य के ' न्यू पोयट्री' आन्दोलन का प्रभाव नयी कविता आन्दोलन पर पड़ा है। पश्चिम के आन्दोलन से प्रभावित होकर भी यह आन्दोलन अपने देश की भूमि, परिस्थितियों की उपज है। 1954 ईसवी में प्रकाशित 'नयी कविता' नामक पत्रिका के प्रकाशन के उपरान्त इस आन्दोलन को विशेष बल मिला। इसके अतिरिक्त 'प्रतीक' 'कृति', 'कल्पना', 'निकष', 'नये पत्ते', 'कखग', आदि अनेक पत्रिकाओं का नयी कविता के विचारधारात्मक सरोकारों के प्रतिष्ठापन में योगदान रहा।

स्वातंत्र्योत्तर काल से ही जनता के सामने जो चुनौतियाँ और समस्यायें थी , वे साठ के बाद और गहरा गई। व्यवस्था की अमानवीयता, निर्ममता, शोषण, दमन, अत्याचार, बर्बरता बढ़ती गई। व्यवस्था के प्रति मोहभंग की सबसे तीव्र प्रतिक्रिया मध्यवर्ग और निम्न मध्यवर्ग के बुद्धिजीवियों में हुई। हिंदी के अधिकांश रचनाकारों की साठोत्तरी पीढ़ी इसी वर्ग से आयी थी। स्वभावतः साहित्य में अधैर्य की अभिव्यक्ति हुई । जगदीश चतुर्वेदी की पत्रिका सन् 1963 में 'प्रारम्भ' नाम

से प्रकाशित हुई , जिसमें उन्होंने 'अकविता' नाम की घोषणा की , परन्तु शुरू में कविता की इस नयी दिशा को 'अभिनय काव्य' कहा गया। 1965 में श्याम परमार, जगदीश चतुर्वेदी, रवीन्द्र त्यागी और मुद्राराक्षस के सम्मिलित सहयोग से 'अकविता' संकलन निकाला गया, जो 1969 तक निकलता रहा, जिसका 'अकविता' नामक नयी काल-प्रवृत्ति का स्थापित करने में महत्वपूर्ण योगदान रहा। मोटे तौर पर सन् 1960 से 1963 की एब्सर्ड किस्म की कविताओं के लिए 'अकविता' नाम रूढ़ हो गया। इस धारा के कवियों में श्याम परमार, सौमित्र मोहन,

जगदीश चतुर्वेदी, मोना गुलाटी, निर्भय मल्लिक, राजकमल चौधरी, कैलाश बाजपेयी, आदि मुख्य हैं। विद्रोह की अपनी नाटकीय मुद्रा के बावजूद अकविता अपने मूल रूप में यथास्थितिवाद के विरूद्ध बदलाव के संघर्ष को कमजोर बनाती हैं।

सत्ता के प्रति असंतोष एवं विद्रोह का स्वर अकवितावादी कवियों के नकार में व्यक्त हुआ वहीं दूसरा रूप विद्रोही अराजकतावाद में परिणत हुआ। पहले की अपेक्षा काम -कुंठा की अभिव्यक्ति इस धारा में कम रही। सन् 1965 के बाद विशेषकर सन् 68 के आसपास धूमिल , लीलाधर, जगूड़ी, चन्द्रकांत देवताले, वेणु गोपाल, कुमार विकल, अरूण कमल आदि की रचनाएँ सामने आई। इन रचनाकारों मे मध्यवर्गीय अराजकतावाद तो था, लेकिन अपने तीव्र - व्यवस्था विरोध के कारण इनकी रचनाएँ विशेष संदर्भवान हुई। यह युग मुख्यतः अनास्थावादी कविता का ही युग था। सब कुछ को अस्वीकार करने की यह मुद्रा केवल हिन्दी कविता में ही नहीं वरन् समस्त भारतीय भाषाओं की कविता में दिखती है। बंगाल में 'भूखी पीढ़ी', 'वीट पीढ़ी' के नाम से शुरू हुई साठात्तरी कविता, तेलगु में 'दिगम्बरी पीढी', मराठी में 'आसो' तथा गुजराती पंजाबी में ''अकविता'' नाम से जानी गयी। विदेशों में भी इसी समय इस प्रकार की कविता हेा रही थी । अमेरिका में इस तरह की कविता को 'बीट जनरेशन' कहा गया। इग्लैण्ड में 'एंग्री यंग मैन' नामक पीढ़ी व्यवस्था के असंतोष पर ही पैदा हुई थी। इसी प्रकारा जर्मनी में 'छली गयी पीढ़ी' और जापान में 'हिगकुशा' नामक क्षुब्ध पीढी का जन्म हुआ। अमेरिका में 'बीट जनरेशन' की तरह भूखी पीढ़ी भी जन्मीं, जिसका नेतृत्व एलेन गिसवर्ग ने किया। बंगाल में तो 'भूखी पीढ़ी' के साथ 'कविता दैनिकी' या 'कविता घण्टिकी'भी लिखी गई। इसी के प्रभाव से हिंदी में भी अकविता, बीट कविता, श्मशानी कविता, युयुत्सावादी कविता, विटनिक कविता, विद्रोही कविता, नवप्रगतिशील कविता आदि अनेक नाम सामने आये। डॉ0 जगदीश गुप्त ने अपने निबंध 'किसिम की कविता' में लगभग चार दर्जन नाम गिनाये है। मूल्यहीनता के विरूद्ध इनकी प्रतिक्रिया कभी - कभी अराजक, उग्र और दुस्साहसिक विचारधारा की शक्ल में भी सामने आयी।

सन् 1975 ई0 तक आते -आते व्यवस्था विरोध की स्थिति में आक्रामकता कम होने लगी थी। विद्रोह की वाणी को व्यवस्थित रूप प्रदान करने की कोशिश की जाने लगी । इस प्रकार की कविताओं को जनवादी कविता कहा गया है। 'जनवादी कविता' एक तरह से प्रगतिवादी आन्दोलन का ही विस्तार थी। प्रगतिवादी वर्ग-वैयम्य की भावना से इतर जनवादी कविता ने जन केंद्रित भावनाओं को केंद्र मं स्थापित करने की पहल की। सन् 1990 के बाद भूमण्डलीकाण-वैश्वीकरण की गूँज भारत में भी सुनाई पड़ने लगी थी। भारत सरकार के उदारीकरण/ मुक्त व्यापार इसी दिशा के कदम थे। यंत्रों का अधिकाधिक प्रयोग एवं तकनीक इस विचारधारा के प्रायोगिक उपक्रम बने। इस युग को 'उत्तर - आधुनिक काल' कहा गया। कुछ लोग इसे 'विमर्श केंद्रित काल' भी कहते हैं। इस युग की कविता ने पुरानें मूल्यों (आधुनिक)पर प्रश्न-चिह्न लगाया और किसी भी सिद्धान्त को अंतिम मानने से मना कर दिया। एक ओर जहाँ

कविता का लोकतंत्रीकारण हुआ, वहीं दूसरी ओर विषय-वस्तु में अराजकता का दर्शन भी हुआ।

13.3.2.2 स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता के प्रमुख हस्ताक्षर

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता के प्रमुख आन्दोलनों का आपने अध्ययन का लिया है। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियों का आपने संक्षिप्त में अध्ययन कर लियर है। आइए अब हम स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता के प्रमुख हस्ताक्षर (कवि) के बारे में संक्षिप्त जानकारी प्राप्त करें।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् हिन्दी कविता का प्रमुख काव्य-आन्दोलन 'दूसरा सप्तक' रहा है। सप्तक के माध्यम से और सप्तकेत्तर कई कवियों का आगमन हुआ। यहाँ हम प्रमख कवियोंका परिचय पाने का प्रयास करेंगं। शमशेर बहादुर सिंह को हिन्दी में 'कवियों का कवि' कहा गया है। चित्रकला, संगीत और कविता जहाँ आपस में घुल-मिल जातें हैं, वहाँ शमशेर की कविता बनती है। शमशेर कविता में कुछ बिन्दुओं, संकेतों के माध्यम से अर्थ की सृष्टि करते हैं। 'बात बोलेगी', 'चुका भी नहीं हूँ में' कविताएँ, 'कछ ओर कविताएँ शमेशर की प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। **'मुक्तिबोध'** ने अपने कविन प्रतीकों और फैंटेसी शिल्प के रचाव से तत्कालीन व्यवस्था की सभ्यता -समीक्षा की है। 'चाँद का मुहँ टेढ़ा है', 'भूरी - भूरी खाक धूल' जैसे काव्य-संग्रह में आपकी कविताएँ संग्रहीत हैं। समाज को बदलने की चिंता आपकी कविताओं की केंद्रीय समस्या है, जिसे आपने मार्क्सवादी विचारधारा को कविता में ढाल कर पूरा किया है।

भवानीप्रसाद मिश्र की कविताएँ बोलचाल की भाषा और लय में जीवन की विषम स्थिति को उकेरती हैं। 'गीत फरोश' कविता अपने लोकभाषा और लय-विधान के कारण चर्चित रही हैं। 'सतपुड़ा के जंगल', 'कमल के फूल' आपकी अन्य रचनाएँ हैं। **रघुवीर सहाय** दूसरे सप्तक के महत्वपूर्ण कवि है। मनुष्य जीवन की नियति को व्यापक संदर्भ में आपकी कविता उठाती है। 'सीढ़ियों पर धूव में', 'आत्महत्या के विरुद्ध', 'हँसो-हँसो जल्दी हँसो' जैसे काव्य-संग्रह वर्तमान विसंगतियों के आधार पर निर्मित हुए हैं। **धर्मवीर भारती** की सामाजिकतां व्यक्तिवादी धरातल से होकर निर्मित हई हैं। 'ठढ़ा लोहा' जैसी रचनाएँ किशोर अल्हड़ता से प्रभावित है। 'इन फिरोजी ओठों पर/बरबाद मेरी जिन्दगीं ' भारती के शुरूआती कविताओं की मुख्य थीम हैं। 'अंधा-युग' तक आते-आते धर्मवीर भारती पूरी व्यवस्था को कटघरे में खड़ा कर देते हैं/आस्था, मूल्य, विश्वास, कर्त्तव्य, सत्य, सभी अपना अर्थ खो चुके हैं ऐसी स्थिति में फिर समाज की अगली दिशा क्या होगी ? यह धर्मवीर भारती की भी अपनी सीमा है। मानव-नियति की सार्थकता का प्रश्न **कुँवरनारायण** की रचना 'आत्मजयी' की केंद्रीय समस्या है। कुँवरनारायण का पहला काव्य 'चक्रव्यह' आधुनिकता की मनोदशा के बीच निर्मित हुआ है। 'परिवेशः हम-तुम ' ओर 'अपने सामने ' जैसे काव्यों में उनकी विषय-वस्तु व्यापक संदर्भो को अपने में समेटने में सफल हई है। **केदारनाथ सिंह** तीसरे सप्तक के महत्वपूर्ण कवि हैं। केदार अपने 'रुप - रस - वर्ण - स्पर्श - गंधी ' विंब योजना के कारण विशिष्ट हैं (बच्चन सिंह) 'जमीन पक रही है, अभी बिल्कुल अभी', 'यहाँ से देखो' , 'अकाल में सारस', 'बाघ तथा अन्य कविताएँ', जैसे संग्रह केदार की

रचनाओं के मुख्य संग्रह हैं। **सर्वेश्वर दयाल सक्सेना** तीसरे सप्तक के महत्वपूर्ण कवि हैं। सर्वेश्वर कविताओं में समकालीनता के कई आयाम देखने को मिलते हैं। 'काठ की घंटियाँ', 'बाँस का पुल', 'एक सूनी नाव' और गर्म हवाएँ' आपके प्रमुख काव्य-सग्रह हैं। सप्तकेतर कवियों मे **श्रीकान्त वर्मा** महत्वपूर्ण कवि हैं। 'दिनारंभ', 'माया-दर्पण', 'जलसाघरः मगध' आपके महत्वपूर्ण काव्य- संग्रह हैं। **नरेश मेहता** की कविताएँ वैदिक संस्कृति और लोक संस्कृति के संदर्भो से निर्मित हुई हैं। 'संशय की एक रात' लम्बी कविता के रुप में काफी चर्चित हुई। छठे दशक के हिन्दी कविताओं की अगुवाई **राजकमल चौधरी** ने की। 'कंकावती' एवं 'मुक्तिप्रसंग' में राजकमल चौधरी का कवित्व अपनी समस्त संभावनाओं एवं सीमा के साथ चित्रित हुआ है। राजकमल चौधरी ने नंगेपन को गुस्से के साथ चित्रित किया है। सामाजिक मूल्यहीनता का पर्दाफाश करते-करते आपअराकतावाद तक चले जाते हैं। **सुदामा पाण्डेय** 'धूमिल' इस दौर का अन्य बड़ा कवि है। 'संसद से सड़क तक' एवं 'कल सुनना मुझे' आपके महत्वपूर्ण कविता संग्रह हैं। 'धूमिल' की कविता अपने चुस्त मुहावरे एवं सपाटबयानी के कारण चर्चित रही है।

अभ्यास प्रश्न 2)

(क) निम्नलिखित वाक्यों की रिक्त स्थान पूर्ति कीजिए।

1) प्रयोगवाद का साहित्यिक विकास ..... के रुप में हुआ।

2) दूसरे सप्तक का प्रकाशन वर्ष ..... है।

3) नयी कविता का समय ..... के बीच का है।

4) न्यू पोयट्री' आन्दोलन का सम्बन्ध ..... से है।

5) प्रयोगवाद का सम्बन्ध ..... के प्रकाशन से है।

(ख) निम्नलिखित कथन में सत्य/असत्य बताइए।

1) नयी कविता का प्रकाशन वर्ष 1954 है।

2) 'प्रारम्भ' पत्रिका के सम्पादक जगदीश गुप्त है।

3) अकविता में एब्सर्ड की प्रवृत्ति मिलती है।

4) भूखी पीढ़ी का मुख्य सम्बन्ध बंगाल से है।

5) 'किसिम-किसिम की कविता' निबन्ध का सम्बन्ध जगदीश गुप्त से है।

13.4 स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता की प्रमुख प्रवृत्ति क्या है ? इसे स्पष्टतया बता पाना कठिन है। कारण यह कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् न तो कोई काव्य प्रवृत्ति लम्बे समय तक चली और न एक ही मुख्य काव्य-प्रवृत्ति थी। आधुनिक स्वचेतनवृत्ति के परिणामस्वरुप मानवीय समाज तेजी से बदल रहा है, जिसके कारण अनुभूतियों में भी बदलाव की प्रक्रिया तीव्र हो गई है। फलतः साहित्य/कविता मे भी मानवीय अनुभूतियों के बदलाव की प्रक्रिया तेज हुई है। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता के कई आन्दोलन अपनी विषय-वस्तु एवं ट्रीटमेंन्ट में अन्य काव्य आन्दोलनों से भिन्न थे। वस्तुतः नवीन प्रवृत्तियों ने ही नवीन काव्य-आन्दोलनों को जन्म दिया। प्रयोगवाद की प्रवृत्ति व्सक्तिवाद एवं रुप की रही। नयी कविता ने अस्तित्ववादी रूझानों के बावजूद 'लघुमानव'को नही छोड़ा । साठोत्तरी कविता में नकारवादी तत्व ज्यादा थे। मोहभंग की कविता गुस्से, विद्राह की कविता है। जनवादी कविता जनभावनाओं के साथ ही लोकवादी रूझानों को लेकर चलती है। उत्तर- आधुनिक कविता विमर्श को केंद्र में खड़ा करती है।

13.4.1 स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता की वैचारिकी

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता के प्रवृत्ति की तरह ही वैचारिकी के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि इसे भी हिन्दी कविता की प्रवृत्ति की तरह किसी निश्चित वैचारिकी से नहीं बाँधा जा सकता । स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता का पहला काव्यान्दोलन 'नयी कविता'था। इस आन्दोलन पर पूँजीवाद के व्यक्तिवाद फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद एवं सार्त्र के अस्तित्ववाद का गहरा प्रभाव पड़ा। व्यकितवादी भावनाएँ समाज से कटकर अपनी सत्ता स्थापित करने पर बल देती हैं। 'यह दीप अकेला' एवं 'नदी के द्वीप' जैसी भावनरएँ इसी की प्रतिध्वनि हैं। 'आधुनिक मनुष्य मौन वर्जनाओं का पुंज है' जैसे वाक्य मनोविश्लेषण की देन हैं वहीं फेंटेसी शिल्प का प्रयोग एवं जिजी विषा की भावना अस्तित्ववाद की देन हैं। पूँजीवादी बौद्धिकता ने सारे पुराने मूल्यों पर प्रश्न- चिह्न भी लगाया। 'एक क्षण-क्षण में प्रवहमान व्याप्त संपूर्णता' जैसे वाक्य अस्तित्ववाद की ही प्रतिध्वनि है। मार्क्सवादी विचारधारा ने स्वातंत्र्योत्तर साहित्य को सर्वाधिक प्रभावित किया है। प्रगतिवादी विचारधारा के केंद्र में तो मार्क्सवाद था ही, प्रयोगवाद के अधिकांश कवि मार्क्सवादी ही थे। 'नयी कविता' के दौर के कवियों पर मुक्तिबोध, केदारनाथ सिंह इत्यादि की काव्य - ऊर्जा भी मार्क्सवाद ही था। मोहभंग की कविता, जनवादी कविता एवं उत्तर - आधुनिक कविताओं के मूल में भी मार्क्सवाद विचारधारा ही है। मार्क्सवाद स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता को जन - जीवन से जोड़कर सामाजिक संघर्ष को गति प्रदान की। 'अधेरे मे' कविता व्यापक लोकयुद्ध की संभावना से युक्त होकर रची गई। सन् 1990 के बाद की कविता पर उत्तर - आधुनिक विमर्शों का प्रभाव देखा जा सकता है। यह विचारधारा तकनीक को केंद्र में ले कर चलती है।

13.4.2 स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता की आलोचनात्मक संदर्भ

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता अपनी पूर्ववर्ती कविता से कई मायने में अलग है। स्वतंत्रता पूर्व की कविता (समाज की ही भाँति) सीधे-सादे ढंग से निश्चित लक्ष्यों एवं मूल्यों को लेकर चलने

वाली कविता रही है। भारतेन्दु कालीन कविता भक्ति-नीति-श्रृंगार के आधार पर विकसित हुई हैं। द्विवेदी कालीन कविता के मूल में सुधारवादी भावना है। छायावाद के मूल में जहाँ नवजागरणवादी चेतना काम कर रही है, वहीं प्रगतिवाद के मूल में वर्ग-वैषम्य की भावना। वही प्रयोगवाद के मूल में नवीन सत्यों की खोज काम कर रही है। इसके विपरीत नयी कविता और बाद के काव्यान्दोलनो का हम सीधे - सादे ढ़ंग से मूल्यांकित नहीं कर सकते। मुक्तिबोध में एक ओर जहाँ प्रगतिवादी तत्व है वहीं दूसरी ओर प्रयोगवादी एवं अस्तित्ववादी रूझान भी कम नहीं हैं। विचारधारा का आग्रह तो बढ़ा लेकिल इसके संभावित खतरे की ओर भी लोगों का ध्यान कम नहीं गया। अब कविता के विषय-वस्तु में विविधता आई। समाकालीनता बोध ने कविता को ज्यादा प्रभावित किया। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता अपनी की विषयवस्तु के ऊपर सबसे बड़ा आक्षेप यह लगाया गया है कि इसमें व्यक्तित्व-निर्माण का घोर अभाव है। व्यक्तित्व-निर्माण की जगह आज की कविता उपभोक्ता पैदाकर रही है। वर्तमान की विसंगतियों का चित्रण तो है, किन्तु संवेदना का अभाव है।

13.4.3 स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता का भाषागत संदर्भ

साहित्यिक भाषा की सबसे बड़ी विशिष्ठता यह होती है या होनी चाहिए कि वह अर्थ की वृहत्तर छवियों को कलात्मक ढंग से सम्प्रेषणीय बनाए। यानी सबसे पहले तो यह कि उसमें बहुअर्थीय छवियों को धारण करने की क्षमता हो। कविता के इसी गुण के कारण वह हर युग में अपनी प्रासंगिकता बनाये रखती है। बड़े कवियो की कविताएँ इसीलिए हर युग में संदर्भवान होती है। कविता का दूसरा प्रमुख गुण यह होना चाहिए कि वह कलात्मकता के मानक का पूरी तरह पालन करे। कविता की बड़ी विशिष्ठता यह होनी चाहिए कि वह सम्प्रेषणीय हो। सम्प्रषणीयता के लिए सरल भाषा के साथ ही लोकबद्धता की अनिवार्यता होती है। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता की भाषा में जहाँ एक ओर लोकधुनों का प्रयोग है (भवानी प्रसाद मिश्र, गोरख पाण्डेय इत्यादि) वहीं दूसरी और प्रतीकों-विम्बों का सुन्दर प्रयोग है (अज्ञेय, केदारनाथ सिंह, शमशेर आदि)। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता की भाषा एक ओर जहाँ विसंगतियों का पर्दाफाश कर पाने में सक्षम है (रघुवीर सहाय, धूमिल आदि) वहीं दूसरी ओर लोकबद्धता से भी जुड़ी हुई है।

अभ्यास प्रश्न 3)

(क) कोष्ठक में दिए गए शब्दों को भरकर रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

1. 'लघु मानव' का सम्बन्ध ..... से रहा है

(प्रयोगवाद/प्रगतिवाद/नयी कविता)

2. 'यह दीप अकेला कविता' का सम्बन्ध ..... की प्रवृत्ति से है।

(मनोविश्लेषणवाद/व्यक्तिवाद/अस्तित्ववाद)

3.मुक्तिबोध ..... विचारधारा के कवि हैं।

(मनोविश्लेषणवाद/अस्तित्ववाद/मार्क्सवाद)

4. .....के मूल में वर्ग-वैषम्य की भावना काम कर रही है।

(प्रगतिवाद/प्रयोगवाद/अस्तित्ववाद)

5. बिम्ब प्रयोग की दृष्टि से ..... महत्वपूर्ण कवि हैं।

(अज्ञेय/केदारनाथ/नागार्जुन)

13.5 स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता का मूल्यांकन

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता के इतने आयाम और धरातल हैं कि उसका मूल्यांकन करना अपने आप में जटिल (कठिन) कार्य है। कारण यह कि यह एक लम्बा कालखण्ड है, इसमें कई आन्दोलन हें और यह आन्दोलन विभिन्न धरातल पर विकसित हुए हैं। एक बात जरूर यहाँ हम कहना चाहते हैं, और वह यह कि हिन्दी कविता में विचारधारा का आग्रह लगातार बढ़ता गया, जिसके कारण संवेदना गौण होती चली गई। व्यंग्य, मुहावरे, विसंगति, विडम्बना, अंतर्विरोध जैसे तत्वों से कविता जरूर समृद्ध हुई लेकिन यह अनुभूति की सघनता की कीमत पर ज्यादा हुई। कहने का भाव ज्यादा हुआ. बजाय चित्र निर्मित करने या भाव निर्मित करने के, कविता के प्राथमिक कार्य के। विचारधारा एवं विमर्श के अत्यधिक दबाव से कविता की संवेदना तत्व क्रमशः क्षीण होता गया। आज जब कविता के पाठकीय संकट का खतरा मौजूद हो तब कविता को पुनः अपनी भूमिका के तलाश की आवश्यकता है।

13.6 सारांश

- स्वातंत्र्योत्तर काल की हिन्दी कविता से तात्वर्य यन् 1947 के बाद की कविता से है। द्वितीय तारसप्तक 1951 से इसे स्पष्टतया मान सकते है।
- स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व की कविता और बाद की कविता में 'स्वतंत्रा' एक आवश्यक प्रत्यय है, इससे हम दोनों कविताओं की तुलना के माध्यम से जान सकते हैं।
- स्वातंत्र्योत्तर काल की कविता पर राजनीतिक, सामाजिक,आर्थिक एवं धार्मिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों का गहरा प्रभाव पड़ा हैं।
- स्वातंत्र्योत्तर काल की कविता में कई काव्यान्दोलन निर्मित हुए, जो एक दूसरे से भिन्न धरातल पर विकसित हुए हैं।

- स्वातंत्र्योत्तर कविता विषयवस्तु एवं भाषा के धरातल पर पहले की कविता से भिन्न किस्म की कविता रही है। पहले की कविता में जहाँ भावगत स्पष्टता है, वहीं स्वातंत्र्योत्तर कविता में जटिल परिवेश को जटिल ढंग से व्यक्त किया गया हैं।

13.7 शब्दावली

- संवेदनशीलता - भाव एवं बुद्धि के योग से उत्पन्न प्रत्यय
- सृजनशीलता - रचनात्मक कार्य की स्थिति
- अंतर्विरोध - परस्पर विरोधी स्थिति
- विसंगति - असंगत स्थिति
- संत्रास - भय एवं पीड़ा जनक स्थिति
- उत्तर-आधुनिकता - आधुनिकता के बाद का काल
- विकेन्द्रीकरण - किसी वस्तु ,विचार का एक केन्द्र में न पाया जाना
- प्रतिबद्धता - किसी विचार के प्रति दृढ़ निश्चय की स्थिति
- समकालीनता - अपने काल का, वर्तमान काल में, एक साथ
- अराजकता - किसी विचार, स्थिति में अनियन्त्रण की स्थिति
- वर्ग- वैषम्य- दो विपरीत वर्गों में विरोध की स्थिति

13.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास 1)

1. सत्य 2. सत्य 3. असत्य 4. सत्य 5. सत्य

अभ्यास 2) (क) 1. नयी कविता 2. 1951 3. 1951-1959

4. तारसप्तक 5. नयी कविता

(ख) 1. सत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. सत्य 5. सत्य

अभ्यास प्रश्न 3) 1. नयी कविता 2. व्यक्तिवाद 3. मार्क्सवाद

4. प्रगतिवाद 5. केदारनाथ सिंह

13.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. वर्मा, डॉ. धीरन्द्र, हिन्दी साहित्य कोश - भाग एक, ज्ञानमण्डल प्रकाशन।

2. सिंह, डॉ. बच्चन, हिन्दी साहित्य का आधुनिक इतिहास, लोकभारती प्रकाशन।

3. चतुर्वेदी, रामस्वरूप, हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन।

4. सिंह, डॉ. बच्चन, हिन्दी आलोचना के बीज शब्द, वाणी प्रकाशन।

13.10 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।

2. सिंह, डॉ बच्चन, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।

13.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता के विभिन्न आन्दोलन का विकासक्रम स्पष्ट कीजिए।

2. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता के महत्वपूर्ण कवियों का परिचय प्रस्तुत कीजिए।

इकाई 14 नई कविता: सन्दर्भ और प्रकृति

इकाई की रूपरेखा

14.1 प्रस्तावना
14.2 उद्देश्य
14.3 नई कविता का वस्तुगत परिप्रेक्ष्य
14.3.1 छायावादोत्तर गीत धारा
14.3.2 छायावादोत्तर कविता का प्रगतिवादी स्वर
14.3.3 प्रयोगवाद
14.4 नई कविता की प्रवृत्तियाँ
14.5 नई कविता: संवेदना का स्वरूप
14.6 नई कविता: भाषा और रचनात्मक वैशिष्ट
14.7 नई कविता के कवि
14.7.1 अज्ञेय
14.7.2 मुक्तिबोध
14.7.3 शमशेर बहादुर सिंह
14.7.4 धर्मवीर भारती
14.7.5 विजयदेव नारायण साही
14.8 सारांश
14.9 शब्दावली
14.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
14.11 उपयोगी पाठ्य सामग्री
14.12 निबंधात्मक प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

हिन्दी कविता के इतिहास में नई कविता का दौर काव्य रचना और आलोचना के स्तर पर महत्वपूर्ण विचारोत्तेजना और बहस का दौर है। नयी कविता में जिस बदली हुई संवेदना, जीवनानुभव व भाषा का रूप दिखाई देता है उसके आरम्भ की स्थिति 1930 के आस-पास उभरती देखी गई है। सन 1936 में कांग्रेस का अधिवेशन लखनऊ में सम्पन्न हुआ। पं0 जवाहर नेहरू ने इस अधिवेशन की अध्यक्षता की और घोषित किया कि कांग्रेस का लक्ष्य स्वतंत्रता और समाजवाद है। इस घटना का एक समानार्थक रूप हमें लखनऊ में सन् 1936 में ही आयोजित प्रगतिशील लेखक संघ के सम्मेलन में दिखाई देता है जिसकी अध्यक्षता महान उपन्यासकार प्रेमचंद ने की थी और साहित्य को जनता की मुक्ति के लक्ष्य से जोड़कर देखा था। प्रेमचंद भी अपने लेखन में महाजनी सभ्यता की शोषक प्रवृत्तियों की आलोचना कर रहे थे। कहा जा सकता है कि नई कविता की यथार्थोन्मुखता की भूमिका के पीछे इन संक्रान्त स्थितियों के दबाव थे जो नये कवियों के भीतर उनकी अपनी वैचारिकी तथा रचनात्मकता के अनुरूप प्रतिफलित और स्थिर हुए। यहाँ जिस तथ्य को हम निर्णायक रूप में देखते हैं, वह है छायावादोत्तर कविता का छायावादी रूमानियत से मुक्ति का संघर्ष तथा अपने समय के यथार्थ को समझने और व्यक्त करने के लिए नयी अभिव्यक्ति प्रणालियों को अर्जित करने का उसका प्रयत्न। इस प्रक्रिया के कारण वह पूर्ववर्ती कविता से काफी भिन्न दिखाई देती है तथा 'नई कविता' कही गई है।

14.2 उद्देश्य:

इस ईकाई का अध्ययन करने के बाद आप -

नई कविता के आरम्भ को उसके ऐतिहासिक वस्तुगत परिप्रेक्ष्य सहित समझ सकेंगे।

नई कविता का अपने से पूर्व की कविता से अन्तर समझ सकेंगे।

नई कविता में निहित प्रवृत्तियों के अन्तर को जान सकेंगे।

नई कविता के रचनात्मक वैशिष्ट्य को जान सकेंगे।

नई कविता के कवियों के विषय में जान सकेंगे।

14.3 नई कविता का वस्तुगत परिप्रेक्ष्य

नई कविता का समय प्रायः दूसरा सप्तक (1951) से 1960 तक माना जाता है। अज्ञेय, मुक्तिबोध, शमशेर, विजयदेव नारायण साही, धर्मवीर भारती और जगदीश गुप्त नई कविता के

प्रमुख कवि हैं। अज्ञेय, साही, भारती और जगदीश गुप्त की कविताओं में काव्य प्रकृति और काव्य प्रवृत्ति के स्तर पर काफी समानता पाई जाती है। अज्ञेय की कविता का विकास आत्मपरकता के विशेष अर्थ के साथ हुआ है। नई कविता के सन्दर्भ में अज्ञेय को प्रायः उसके पुरोधा कवि के रूप में स्वीकार किया गया है। इसका कारण 'सप्तकों' के सन्दर्भ में उनकी भूमिका है। 'सप्तकों' में आए कवि वक्तव्यों और अज्ञेय के सम्पादकीयों को लेकर कुछ अन्य प्रकार की चर्चायें भी हुई किन्तु कहा जा सकता है कि इतिहास की शक्ति ने अज्ञेय को नई कविता के पुरोधा के श्रेय से नवाजा है। अज्ञेय के संपादन में तारसप्तक (1943) दूसरा सप्तक (1951) और तीसरा सप्तक (1959) में प्रकाशित हुआ। अज्ञेय के ही सम्पादन में 'चौथा सप्तक' भी प्रकाशित हुआ है मगर उसे ज्यादा चर्चा नहीं प्राप्त हुई।

'तारसप्तक' में संकलित कवि थे- गजानन माधव मुक्तिबोध, रामविलास शर्मा, नेमिचन्द जैन, गिरिजा कुमार माथुर, भारत भूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे और अज्ञेय। 'दूसरा सप्तक' में शामिल कवि थे- हरिनारायण व्यास, भवानी प्रसाद मिश्र, शमशेर बहादुर सिंह, नरेश मेहता, शंकुत माथुर, रघुवीर सहाय और धर्मवीर भारती तथा प्रयाग नारायण त्रिपाठी, कुँअर नारायण, कीर्ति चौधरी, केदार नाथ सिंह, मदन वात्स्यायन, विजयदेव नारायण साही और सर्वेश्वर दयाल सक्सेना 'तीसरा सप्तक' के कवि थे। नई कविता का स्वरूप स्थिर करने में इन तीनों सप्तकों का विशेष योगदान था। विशेष रूप से 'तारसप्तक' और 'दूसरा सप्तक' की कविताएं इसके आरम्भ और क्रमशः अर्जित हुई संवेदना और शिल्प की परिपक्वता को सूचित करती है। इन दोनों काव्य संकलनों में उल्लेखनीय रूप से वैचारिकी का अंतर देखा गया जो 'तारसप्तक' में प्रायः अपने आभासी रूप में है और नई कविता के भीतर उनके बीच अंतर और स्पष्ट होता है। 'तारसप्तक' के अधिकांश कवियों पर समाजवादी विचारधारा का प्रभाव है। विशेष रूप से मुक्तिबोध, नेमिचंद जैन, रामविलास शर्मा और भारतभूषण अग्रवाल पर। कविता का यह समाजवादी स्वर प्रगतिवादी कविता के मेल में था। यह कहा जा सकता है कि 'तारसप्तक' के कवि तेजी से बदलते समाज की मानवीय पुनर्रचना के संघर्ष से जुड़े हैं। वे समाज की संक्रान्त स्थितियों की जटिलता को समझ कर मनुष्य को उसके रूपान्तरण के संघर्ष से जोड़ना चाहते हैं और इसी परिप्रेक्ष्य में वे कविता की बदलती हुई भूमिका के विषय में गंभीर है। रचनात्मक स्तर पर बदले हुए भावबोध की समस्या के साथ संप्रेषण की समस्या भी आ जुटती है और अनुभावन की रूढ़ियों को तोड़ने की चुनौती भी, अतः इस दौर में कवियों के सामने चुनौतियाँ कई तरह की हैं। अतः हमें नई कविता का वस्तुसंगत विश्लेषण करने के लिए इस परिप्रेक्ष्य को समझ कर चलना होगा।

छायावादोत्तर कविता को छायावाद से अलगानेवाली काव्य प्रवृत्ति उसकी यथार्थ दृष्टि है। नामवर सिंह ने अपनी पुस्तक 'कविता के नये प्रतिमान' में सन् 1938 से नई काव्य प्रवृत्तियों को पूर्ववर्ती छायावादी काव्य प्रवृत्तियों से भिन्न होते देखा। उन्होंने लिखा कि- 'इस युग का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष है यथार्थवादी रूझान' (नामवर सिंह, 'कविता के नये प्रतिमान')इस प्रकार छायावाद के बाद सामने आने वाली कवि पीढ़ी के सामने प्रमुख चुनौती थी अपने समय के

यथार्थ के साक्षात्कार की तथा इस यथार्थ के लिए अर्जित यथार्थवादी दृष्टि के साथ छायावादी यथार्थविरोधी प्रवृत्तियों से संघर्ष की।

14.3.1 छायावादोत्तर गीत धारा

छायावादोत्तर काव्य परिदृश्य में प्रमुखतः तीन प्रकार की काव्यधाराएँ दिखाई देता है। छायावादोत्तर गीतधारा ने छायावादी स्वच्छन्द चेतना और स्वस्थ रागात्मकता की छायावादी विरासत को नया किया। यही नहीं बल्कि युगबोध का स्वरूप अपने बदलाव के साथ इसमें विन्यस्त हुआ। विशेषरूप से हरिवंशराय बच्चन की हालावादी कविताओं ने भाषा का एक नया मिजाज दिया जिसमें सहजता और रवानी थी। इस धारा के प्रमुख कवियों में बच्चन समेत गोपालदास नेपाली, अंचल, सोहनलाल द्विवेदी, भगवतीचरण वर्मा आदि कवि थे। विजयदेव नारायण साही ने इस काव्यधारा में छायावाद का अंत देखा साथ ही इसी के भीतर उन्हें नई कविता का आरम्भ भी दिखाई दिया। यह अवश्य है कि नई कविता की पृष्ठभूमि को छायावादोत्तर गीतों में घटित संवेदना और भाषा के बदलाव को एक तरफ करके नहीं देखा जा सकता। यह भी देखा जा सकता है कि इस काव्य धारा में नरेन्द्र शर्मा, दिनकर, गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही', शिवमंगल सिंह 'सुमन', शैलेन्द्र आदि कवि थे जिन्होंने बहुत सुन्दर गीत लिखे। इन गीतों में विसंगतियों के चित्र उभरे। जीवन संघर्ष का एक अनूठा पहलू किंचित दार्शनिक झलक देता हुआ सा इसमें प्रकट हुआ, विशेष रूप से बच्चन के गीतों में। इसके अतिरिक्त इन गीतों का विषय प्रकृति, प्रेम, राष्ट्रीयता, मानवता, वेदना, ओज और प्रहार आदि थे। जहाँ तक इन गीतों की संवेदना का प्रश्न है तो इसमें अनुभूतिप्रवणता अधिक थी।

14.3.2 छायावादोत्तर कविता का प्रगतिवादी स्वर

प्रगतिवादी प्रवृत्तियाँ केवल कविता में प्रकट न होकर समस्त साहित्यिक विधाओं में प्रकट हुई। सन् 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ का लखनऊ में प्रथम अधिवेशन हुआ। प्रगतिवादी कवि मार्क्सवादी दर्शन से प्रभावित थे। उनके लिए शोषित वंचित जन का आर्थिक सामाजिक मुक्ति का प्रश्न महत्वपूर्ण था। अपनी कविता को उन्होंने इस मुक्तिचेतना का पैरोकार बनाया। छायावादोत्तर दौर की प्रगतिवादी और प्रयोगवादी कविताओं के सन्दर्भ में एक तथ्य की समानता मिलती है। इन दोनों धाराओं में कवियों ने सचेतन रूप से छायावादी प्रवृत्तियों के प्रभाव को अस्वीकार किया। प्रगतिवादी कवियों ने अपने बदले हुए संघर्षधर्मी काव्यबोध के निकट छायावादी ढंग की भाषा की अनुपयुक्तता समझी, अतः अपने ऐसे परिवर्तित काव्य विषयों के लिए उन्हें व्यापक जीवन से जुड़ी हुई भाषा अनुकूल लगी। वस्तुतः यह काव्य भाषा वंचित मनुष्य के जीवन संघर्ष की कठिन दुनिया में अपनी प्रतिबद्धता के साथ प्रवेश कर रही थी और सौन्दर्य प्रतिमान बदल रहे थे। ये श्रम के जीवन से उभरते हुए सौन्दर्यबोधीय मूल्य थे। इस प्रकार प्रगतिवादी कविता ने अपने लिए जो मूल्य स्थिर किए वे प्रायः सर्वहारा यानी किसान मजदूर जनता की आर्थिक-सामाजिक मुक्ति की पक्षधरता, समानतामूलक समाज का स्वप्न, सक्रिय सामाजिकता और मैत्रीभाव, जनता के संघर्ष की अभिव्यक्ति और उसकी शक्ति का चित्रण आदि थे।

14.3.3 प्रयोगवाद

नई कविता के सन्दर्भ में सबसे ज्यादा चर्चा प्रयोगवाद की हुई है तथा कुछ आलोचकों ने नई कविता को प्रयोगवाद का ही विकास माना है। यहाँ एक तथ्य समझ लेना चाहिए कि 'प्रयोगवाद' से नई कविता का इस प्रकार का सम्बन्ध मान लेने पर इसके भीतर निहित दो विपरीत स्वरों का विश्लेषण संभव नहीं हो सकेगा। इसके अतिरिक्त प्रयोगवाद की चर्चा कविता के संरचना विषयक प्रयोगों के सन्दर्भ में अधिक हुई है। अतः नई कविता को काव्यभाषा सम्बन्धी बदलाव के सन्दर्भ में समझने की स्थितियाँ बन जाती हैं। 'तारसप्तक' के सम्पादक अज्ञेय ने 'प्रयोग' शब्द का उपयोग कविता के रचनात्मक नवोन्मेष के सन्दर्भ में किया। वे भाव और भाषा की नवीनता के साथ-साथ इस प्रकार की नवीन संरचनाओं के अनुभावन या कि संप्रेषण के प्रश्न को भी उठा रहे थे। इस तरह 'तार सप्तक' में संग्रहीत कवियों की रचनाओं के सम्बन्ध में अज्ञेय के वक्तव्य की प्रातिनिधिकता मानी गई और 'प्रयोग' के प्रभाव की व्याप्ति समझकर उसे कविता के स्वर का प्रभावी अनुशासक मान लिया गया। अन्यत्र भी हम देख चुके हैं कि 'तारसप्तक' में संग्रहीत कवियों में सामाजिक सरोकार, रचनादृष्टि और संवेदना में परस्पर पर्याप्त अंतर था। यह अंतर इसी प्रकार नयी कविता के भीतर भी कायम रहा। इन्हें परस्पर दो विरोधी प्रवृत्तियों के रूप में पहचाना गया। 'नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र' में मुक्तिबोध ने लिखा है कि 'नई कविता में अनेक अवधारणाएं तथा अनेक वैयक्तिक दृष्टियाँ काम कर रही थीं'। (मुक्तिबोध, नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र)

अज्ञेय ने प्रयोग को दोहरा साधन कहा। इसमें शामिल कवियों को उन्होंने 'राहों के अन्वेषी' कहा है। प्रयोग को जो दोहरा दायित्व निभाना था वह क्रमशः इस प्रकार था- (1) नई वास्तविकता को उसकी जटिलता में प्रवेश कर समझना तथा (2) उस वास्तविकता में निहित आशयों की अभिव्यक्ति के लिए सक्षम नयी अर्थ भंगिमाओं वाली भाषा की तलाश करना। इस प्रकार इस प्रयोगधर्मिता का बीज शब्द बन कर जो शब्द उभरा वह था 'अन्वेषण'। आगे चलकर विशेष रूप से अज्ञेय की कविता में इस 'अन्वेषण' को हम अतिरिक्त गरिमा के साथ प्रतिफलित होते देखते हैं। 'तारसप्तक' में संग्रहीत कवियों के स्वर की पहचान करते हुए हमने देखा कि प्रयोगधर्मिता का उनके लिए अपना भिन्न अर्थ है। वे सभी अपने रचना स्वभाव के अनुसार चले हैं तथा उनमें से अनेक का झुकाव समाजवादी विचारधारा के प्रति है। इसके अतिरिक्त हमें विशेष रूप से 'तारसप्तक' की कविताओं में मध्यवर्गीय अनुभवों पर निर्भरता दिखाई देती है। यहीं से कवि की वह आत्मोन्मुखता समझी जा सकती है जिसका कारण विसंगतियों को गहराता हुआ वह सामाजिक अलगाव है जो सबसे ज्यादा शहरी मध्यवर्ग के अनुभव में आता है। छायावादी रूमानियत का अतिक्रमण करने के लिए प्रयोगवादी कवियों की कविता में बौद्धिकता का सन्निवेश दिखाई देता है। इस बौद्धिकता ने उनकी यथार्थ दृष्टि को तीखा किया। इसके कारण वे कवि अपने संक्रान्त समय के जटिल अनुभवों का साक्षात्कार संभव कर पाये तथा उसमें निहित विद्रूप को उधेड़ सके। यहाँ हम 'तारसप्तक' में संग्रहीत अज्ञेय की 'शिशिर का राकानिशा' शीर्षक कविता की ये पक्तिंया देखें : **वंचना है चांदनी सित/झूठ वह आकाश का निरवधि गहन**

विस्तार/शिशिर की राकानिशा की शांति है निस्सार/निकटतर- धंसती हुई छत, आड़ में निर्वेद/मूत्रसिंचित मृत्तिका के वृत्त में/तीन टांगो पर खड़ा नतग्रीव/धैर्यधन गदहा। (तारसप्तक-संपा, अज्ञेय) इस प्रकार हम यहाँ शुद्ध तत्सम की शब्द भंगिमाओं द्वारा यथार्थ का विद्रूप उद्घाटित होते देखते हैं। छायावादी कविता में रचनात्मकता को उभारने वाले शब्द यहाँ उस पूरे ऐश्वर्यमय बिंब को झूठ बता रहे हैं। अज्ञेय ने संक्रांत समय के बोध को कई तरह से देखा है। आधुनिक मनुष्य के मन और चेतना पर ऐसा समय एक भारी दबाव की तरह था। मूल्य संक्रमण की टकराहटें अलग थीं कहीं विद्रोह था तो कहीं कुण्ठा, कहीं प्रणयानुभूति की मांसलता के दबाव से उभरा आवेग तो कहीं संशय और पलायन। इस प्रकार इन कवियों के अन्तर्द्वन्द्वों के कई रूप थे। प्रयोगवादी कवियों में शब्दान्वेषण की प्रवृत्ति प्रमुख थी। प्रचलित शब्दों का नया उपयोग भी इनके विधान में था। डॉ. जगदीश गुप्त ने लिखा भी कि- 'आधुनिक कविता की भाषा खड़ी बोली केवल 50-60 वर्ष पुरानी है किन्तु कुछ कारणों से उसका दायित्व देशगत चेतना की उस विधा की अभिव्यक्ति करना हो गया है, जो उसकी अपेक्षा कहीं अधिक विकसित हो गई। (नयी कविता: डॉ. जगदीश गुप्त)।

अतः हम देखते हैं कि प्रयोगवादी कविता के लिए प्रयोग और अन्वेषण के साथ 'शब्द' का महत्व भी प्रमुख होकर सामने आया, बल्कि अन्वेषण धर्मिता की एक प्रमुख दिशा के रूप में सामने आया है, जो क्रमशः इस प्रकार है-

1. भाषा के रचनात्मक सामर्थ्य का अन्वेषण।

2. शब्दों की अर्थसंभावना की खोज।

3. शब्दों के अंतराल में गर्भित मौन का सृजनात्मक उपयोग।

4. जाने-पहचाने शब्दों की नयी अर्थ छवियों की खोज।

5. बहुआयामी जीवन के विस्तार में शब्दों का उनकी वैविध्यमयी अर्थक्षमता के साथ उपयोग।

अभ्यास प्रश्न: एक

प्रश्न 1: रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

तार सप्तक का प्रकाशन वर्ष ..... है।

प्रयोगवाद का प्रवर्तक ..... को माना जाता है।

प्रगतिवाद का सम्बन्ध ..... विचारधारा से है।

'नई कविता और अस्तित्ववाद' शीर्षक किताब के लेखक ..... हैं

प्रश्न 2: तीन या चार पक्तियों में उत्तर दीजिए।

क) छायावाद से छायावादोत्तर कविता को अलगाने वाली काव्य प्रवृत्ति के विषय में बताइए।

.....

.....

.....

ख) 'प्रयोग' को दोहरा साधन किसने कहा है? इससे क्या अभिप्राय है।

.....

.....

.....

ग) 'दूसरा सप्तक' और 'तीसरा सप्तक' में संकलित कवियों के नाम बताइए।

.....

.....

.....

प्रश्न 3: सही और गलत लिखिए

क) प्रगतिशील लेखक संघ का प्रथम अधिवेशन लखनऊ में सम्पन्न हुआ था।
ख) 'तारसप्तक' में संकलित कवियों में हरिनारायण व्यास हैं।
ग) प्रगतिवादी कविता का सम्बन्ध किसान मजदूर जनता के मुक्ति संघर्ष से है।

प्रश्न 4: पाँच या छः पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

क) नई कविता का स्वरूप स्थिर करने में सप्तकों की भूमिका पर प्रकाश डालिए।

ख) प्रयोगवादी कविता की अन्वेषण धर्मिता पर प्रकाश डालिए।

14.4 नई कविता की प्रवृतियाँ

हमने देखा है कि अनेक आलोचकों ने नई कविता को प्रयोगवाद का विस्तार माना है किंतु उसके निकट आकलन के बाद यह तथ्य सही नहीं लगता। नई कविता के भीतर एक ओर हम प्रयोगवादी कविता की भाषिक और अन्तर्वस्तुपरक नवीनता के अतिरिक्त आग्रह का स्थगित होना लक्ष्य करते हैं तो दूसरी ओर प्रगतिवादी कविता की वैचारिकी का अधिक सर्जनात्मक

प्रतिफलन भी देखते हैं। 'नई कविता' का अभ्युदय 'दूसरा सप्तक' के प्रकाशन के साथ माना जाता है। नन्दकिशोर नवल ने उल्लेख किया है कि- दूसरा सप्तक के प्रकाशन के बाद अज्ञेय ने अपने एक रेडियो साक्षात्कार में सप्तकीय कविता के लिए 'नई कविता' नाम की प्रस्तावना की (बीसवीं सदी का हिन्दी साहित्य: संपा, डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी)

नई कविता की अन्तर्वस्तु के विषय में एक मान्यता यह भी मिलती है कि इसका मुख्य स्वर अस्तित्ववादी है अर्थात् व्यक्ति स्वातंत्र्यवादी है। डॉ. रामविलास शर्मा ने नई कविता के भीतर अस्तित्ववादी प्रवृत्तियों का प्रतिफलन लक्षित किया तथा इसकी कठोर आलोचना की। मुक्तिबोध की कविताओं पर भी उन्होंने अस्तित्ववाद का गहरा प्रभाव देखा है तथा उनमें समाजवादी दृष्टि की स्पष्ट और मजबूत पक्षधरता का अभाव माना। नई कविता के सन्दर्भ में डॉ. रामविलास शर्मा ने लक्षित किया कि- 'हिन्दी के अधिकांश नई कविता लिखने वालों का हाल रोकांते जैसा है। ऊब, ऊबकाइ, अकेलापन, त्रास, भीड़ में अजनबीपन का अहसास होने की समस्या से परेशानी आदि-आदि लक्षण इनमें भी मिलते हैं। . . . . सार्त्र के नायक रोकांते को हर चीज थुलथुल, निर्जीव, लिजलिजी मालूम होती थी। हिन्दी के अस्तित्ववादी कवि आत्मवत् सर्वभूतेषु देखते हुए उसी प्रकार संसार और उसमें सजीव-निर्जीव पदार्थों का वर्णन करते हैं।' (डॉ. रामविलास शर्मा: 'नयी कविता और अस्तित्ववाद') . इस प्रकार रामविलास शर्मा ने मार्क्सवादी विचारधारा के केन्द्र से नई कविता के कवियों की व्यक्तिवादिता को चरम पर जाकर देखा और उनके खण्डित इतिहास बोध और अस्तित्ववादी प्रवृत्तियों की आलोचना की। यद्यपि अज्ञेय जैसे कवि पर अस्तित्ववाद के ऐसे विघटनकारी अर्थ प्रभावी नहीं थे। कार्ल यास्पर्स जैसे विचारकों का प्रभाव उन पर अधिक था और वे व्यक्तित्व की खण्डित स्थिति से ज्यादा आत्मपर्याप्त सर्जनात्मक इकाई की बात करते थे और उसी अर्थ में उसकी सामाजिक भूमिका पर जोर देते थे। यह देखा गया कि मानव अस्तित्व को जानना-सहेजना नई कविता का केन्द्रीय आग्रह है। इस प्रकार 'अस्तित्ववाद' का इकहरे ढंग का प्रभाव' नई कविता' पर नहीं हैं किन्तु उसके भावबोध पर इसके प्रभाव से इन्कार नहीं किया जा सकता। यहाँ से हम क्रमशः नई कविता की प्रवृत्तियों की पहचान करें। इस प्रकार नई कविता के भीतर दो प्रमुख प्रवृत्तियाँ पाई गई। एक, जिसमें व्यक्तिनिष्ठता प्रधान थी। यहाँ अभिव्यक्त मनुष्य की अन्तःप्रक्रियायें और संघर्ष एक संक्रान्त जटिल समय के अनुभवों से प्रभावित थे। दूसरे काव्यधारा पर मार्क्सवादी विचारधारा का प्रभाव है। समाजोन्मुखता इस कविता के लिए जरूरी तत्व है। वस्तुतः कविता का यह प्रगतिशील स्वर है जो 'तारसप्तक' के बाहर तो मौजूद था ही 'तारसप्तक' में भी मौजूद था। यही नहीं बल्कि 'दूसरा सप्तक' के दौर में भी उससे बाहर के कवियों में ज्यादा सुसंगत ढंग से अभिव्यक्त हुआ। इस प्रकार इन दो अनुशासक प्रवृत्तियों के प्रभाव से 'नई कविता' में क्रमशः उभरने वाली विशेषताएं इस प्रकार थी।

व्यक्ति स्वातंत्र्य चेतना - नई कविता में इस आशय में हमें कई प्रयोग मिलते हैं। कुछेक बारीक अंतरों के साथ यही आत्मान्वेषण या कि व्यक्तित्व की खोज भी है। 'अनुभूति की प्रामाणिकता' में भी इसी आशय की ध्वनि है। मार्क्सवादी आलोचकों ने इसे यथार्थवाद विरोधी रचनादृष्टि की

उपज माना है तथा रेखांकित किया है कि इसके भीतर व्यक्तिवादी रूझान काम कर रही थी। व्यक्ति केन्द्रिकता के ऐसे प्रभाव के कारण ही नई कविता की संवेदना में अनुभववादी प्रवृत्तियाँ सक्रिय हुई। 'भोगा हुआ यथार्थ' जैसे प्रयोग भी इसी भावबोध के निकट के है। मैनेजर पाण्डेय ने नई कविता की इस प्रवृत्ति की कड़ी आलोचना करते हुए लिखा, ''गैर यथार्थवादी लेखक समाजवाद के विरोधी, जनता की आकांक्षा की उपेक्षा करने वाले और व्यक्तिवाद के सहारे पूंजीवाद के पोषक सिद्ध होते हैं . .साहित्य को आत्माभिव्यक्ति का पोषक मानते हुए व्यक्तित्व की खोज को ही अपनी रचना का लक्ष्य मानते हैं। (साहित्य और इतिहास दृष्टि-मैनेजर पाण्डेय)

अज्ञेय के लिए 'व्यक्ति स्वातंत्र्य' का अर्थ उसका संपृक्त सर्जनात्मकता में संभव होने का संघर्ष है। साही की चिन्तन भूमि में भी हम 'व्यक्ति स्वातंत्र्य' के प्रश्न को 'लघुमानव' जैसे प्रत्यय से संवरते देखते हैं । उन्होंने भी इस व्यक्ति को युगसंकट के सापेक्ष देखा है । इस प्रकार व्यक्ति स्वातंत्र्य चेतना के अलग-अलग रूप नई कविता के कवियों में प्रतिफलित हुए। विशेष रूप से अस्तित्ववादी वैचारिकी के प्रभाव भी कवियों में भिन्न-भिन्न ढंग से घटित होते दिखाई देते हैं। मोटे तौर पर हम यह कह सकते हैं कि कहीं यह अस्तित्वबोध संकट बोध के रूप में है, कहीं अस्मिता की खोज है तो कहीं अस्मिता के सर्जनात्मक संगठक तत्वों की तलाश का संघर्ष है ।

अनुभूति की प्रामाणिकता - जैसा कि हमने देखा कि आत्मकेन्द्रिकता के सघन प्रभाव के कारण 'नई कविता' के कवियों ने 'अनुभूति की प्रामाणिकता' पर विशेष बल दिया। आलोचकों ने इसे ही लक्ष्य कर इस प्रकार की कविता को अनुभववादी कविता कहा है । मैनेजर पाण्डेय ने सन् 1951-52 से 60-61 के दौर में साहित्य की प्रधान प्रवृत्ति वैयक्तिकता और आत्मनिष्ठता मानी यद्यपि इस दौर की कविता में यथार्थवादी प्रवृत्ति भी मौजूद थी। किन्तु वैयक्तिकतावादी प्रवृत्तियों के फैलाव ने उसे प्रमुखता से उभरने नहीं दिया । 'अनुभूति की प्रामाणिकता के तर्क से उभरते यथार्थबोध तथा संवेदना को समाजवादी आलोचकों ने खण्डित या विच्छन्न माना। अनुभूति की प्रामाणिकता ने जीवनानुभवों के सामने आत्मबोध का वह सांचा रख दिया जिसकी सीमाएं थी। यहाँ से कवि ने यह अनुभव किया कि संक्रान्त और जटिल समय का यथार्थ उसकी अस्मिता को खण्डित कर कुंठा निराशा इत्यादि की ओर ढकेल देता है।

नई कविता के प्रखर प्रवक्ता लक्ष्मीकान्त वर्मा ने 'अनुभूति की प्रमाणिकता' को अनुभूति की ईमानदारी कहा है। उनके अनुसार यह व्यक्ति की स्वतंत्रता से सन्दर्भित सत्य का साक्षात्कार है। स्पष्ट है कि 'स्वविवेक' को वे कवि की सर्वोपरि शक्ति मानते हैं। जिसके द्वारा वह यथार्थ जगत से अपनी संवेदना, अर्थ और भाषा का चुनाव करता है। वस्तुतः 'अनुभूति की प्रामाणिकता' में कवि की आत्मोन्मुखता ही सबसे ज्यादा ध्वनित है।

क्षणबोध - नई कविता के कवि के अनुसार यह क्षणबोध क्षणिकता का बोध नहीं है। वे यह भी उद्घाटित करते हैं कि इसे परम्परा या भविष्य से कटा हुआ निरपेक्ष या खण्डित समझना भी ठीक नहीं है। यह 'क्षण' कविता में 'सृजन' का क्षण है इसलिए रागात्मक और गरिमामय है। अज्ञेय ने इसकी 'अद्वितीयता' को बहुत महत्व दिया है । वस्तुतः सृजनात्मकता के कारण ही यह

आलोकित और अद्वितीय हो उठता है। अन्यत्र अज्ञेय कहते हैं कि सृजनात्मकता की गरिमा से भरापूरा 'क्षण' मनुष्य को मुक्त करता है। इस प्रकार के क्षणबोध में वे भौतिक स्थूलता का तिरस्कार करते दिखाई देते हैं। अज्ञेय की इस कविता में ऐसे क्षणबोध का अर्थ इस प्रकार उद्घाटित हुआ है-

एक क्षण क्षण में प्रवहमान/व्याप्त सम्पूर्णता/इससे कदापि बड़ा नहीं था महा अम्बुधि /जो/पिया था अगस्त्य ने।/एक क्षण। होने का/अस्तित्व का अजस्र अद्वितीय क्षण। (अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या: रामस्वरूप चतुर्वेदी में)।

यथार्थोन्मुखता - नई कविता के अस्तित्ववादी प्रभाव के अन्तर्गत काव्य रचना करने वाले कवियों ने यथार्थ को 'निजता' के केन्द्र से देखा है। उनके लिए यथार्थ 'संकटबोध' के रूप में उपस्थित होता है। वे जटिल और संक्रान्त परिवेश के दबाव से त्रस्त मनुष्य के अकेलेपन यातना और पीड़ा का साक्षात्कार तो करते हैं किन्तु एक ओर तो वे ऐसे यथार्थ को वस्तुगत ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में न देखकर इतिहास से विच्छिन्न रूप में देखते हैं तथा दूसरे वे मनुष्य को इसके प्रति संघर्ष में प्रायः नहीं देखते। हम देखते हैं कि ऐसे भयावह यथार्थ के समक्ष उनका मनुष्य अपना 'अकेलापन' चुन लेता है और इसके द्वारा विभाजित और संत्रस्त पड़ी अपनी अस्मिता के अनुभवों को कहता-सुनता है। धर्मवीर भारती विजयदेवनारायण साही जैसे कवियों के यहाँ प्रायः ऐसे मनुष्य के अकेलेपन का साक्षात्कार मिलता है। लक्ष्मीकांत वर्मा के लिए नये कवि के समक्ष उपस्थित यथार्थ विषम और तिक्त है। उस परिवेश का सामना करते हुए उसे अपने अस्तित्व को संभालना है। अतः हम कह सकते हैं कि 'व्यक्ति की निजता' की धुरी मान कर चले कवियों और आलोचकों ने अपने भावबोध में एक तरफ तो व्यक्ति की स्वतंत्रता का पहलू महत्वपूर्ण माना है और परिवेश को ऐसे व्यक्ति से द्वन्द्व में देखा है, तो दूसरी ओर परिवेश से अलगाव के इर्द-गिर्द गहराते यथार्थ की समझ उन्हें ऐसे व्यक्ति के अकेलेपन का अनुभव देती है। अतः व्यक्ति स्वातंत्र्य के साथ यह अकेलापन लगभग एक नियति की तरह आ जुड़ता है। हम अन्यत्र देखेंगे कि व्यक्तिवादी रचना प्रवृत्तियों ने अपने आशय को लेकर चलने वाली रचनाओं को गहराई का काव्य कहा है और व्यापकता को अर्थात् मनुष्य की सामाजिक सम्बद्धता यानि व्यापकता को लेकर चली रचनाशीलता पर उथलेपन का आरोप भी लगाया है। यहाँ तक कि प्रेमचंद तक पर सतहीपन का आरोप लगाया है।

अब हमें नई कविता की आधुनिकतावादी प्रवृत्तियों के प्रतिरोधी पक्ष पर ध्यान देना चाहिए। मुख्य रूप से हमें मुक्तिबोध और शमशेर बहादुर सिंह की कविताओं में व्यक्ति स्वातंत्र्य की सामाजिक सम्बद्धता और मनुष्य की मुक्ति के संघर्ष से जुड़ कर चली अर्थ छवियाँ दिखाई देती हैं। मुक्तिबोध नई कविता में कल्पनाप्रवण, भावुकतापूर्ण वायवीय आदर्शवादी व्यक्तिवाद के विरुद्ध यथार्थवादी व्यक्तिवाद की बगावत देखते हैं। (नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, मुक्तिबोध,) अतः मुक्तिबोध व्यक्ति की जिस स्वतंत्रता की बात करते हैं उसमें यह देखा जा सकता है कि 'कांग्रेस फॉर कल्चरल फ्रीडम' (1950 में बर्लिन में उदित एक संगठन, जिसे शीतयुद्धीय राजनीति का सांस्कृतिक मूल्य निर्धारक माना जाता है) की प्रतिध्वनि नहीं है। इस तथ्य को

ज्यादा अच्छी तरह से समझने के लिए हम चाहें तो एक रूपक का उपयोग कर सकते हैं। अस्तित्ववादी प्रभाव की आत्मकेन्द्रिकता की परवाह करने वाले कवियों के लिए मम और ममेतर के बीच का दरवाजा भीतर की ओर यानि 'मम' की ओर खुलता है, ममेतर में अवस्थित बहुत सारी चीजें सन्देहपूर्वक देखी जाती हैं जैसे वे 'मम' को निरर्थक या प्रदूषित कर देगी। मुक्तिबोध के लिए 'मम' की मुक्ति 'ममेतर' यानि समाज की मुक्ति से जुड़कर है। वे कहते भी हैं कि 'मुक्ति के रास्ते अकेले नहीं मिलते'। व्यक्ति स्वातंत्र्य को एक आदर्श मानते हुए मुक्तिबोध ने लिखा है कि- ''फिर भी वह मानव गौरव की आधारभूत शिक्षा है। व्यक्ति स्वातंत्र्य का प्रश्न जनता के जीवन से उसकी मानवोचित आकांक्षाओं से सीधे-सीधे सम्बन्धित है किन्तु व्यवहारिक रूप से देखा जाए तो समाज में ऐसी आर्थिक स्थिति और सामाजिक स्थिति पैदा हो गई है जिसके कारण व्यक्ति स्वातंत्र्य व्यक्ति केन्द्रिकता का ही दूसरा नाम रह गया है।'' (मुक्तिबोध रचनावली खण्ड-5)

इस प्रकार मुक्तिबोध ने व्यक्ति स्वातंत्र्य को प्रतिरोध से जोड़कर देखा है। यही नहीं बल्कि आधुनिकतावादी नई कविता के कवियों के क्षणबोध को भी चुनौती देते हुए वे लिखते हैं- ''केवल एक क्षण का उत्कर्ष करने के बजाय हमें लम्बी नजर फेंकनी होगी और वह सारा ताना बाना अंकित करना होगा जिससे वह समस्या एक विशेष काल और परिस्थिति में विशेष रंग और रूप में विकसित ग्रन्थिल हुई है। यह सब कार्य तथाकथित सौन्दर्यानुभूति से बाहर का कार्य है।'' (मुक्तिबोध, नई कविता का आत्मसंघर्ष)

14.5 नई कविता: संवेदना का स्वरूप

नई कविता की संवेदना में भी हम यथार्थवादी और यथार्थवाद विरोधी दृष्टि का अन्तर देखते हैं। अज्ञेय की कविता में संवेदना के विन्यास का आधार मूलतः वे व्यक्तिवादी या व्यक्तित्ववादी प्रवृत्तियाँ हैं जो यथार्थ को व्यक्ति के केन्द्र से देखती है और व्यक्ति की विशिष्ट निजता की बात करती है। कुछेक अन्तर के साथ व्यक्ति की विशिष्ट अस्मिता का बोध विजयदेव नारायण साही, धर्मवीर भारती, जगदीश गुप्त आदि कवियों में है। यही नहीं बल्कि सर्वेश्वर दयाल सक्सेना और रघुवीर सहाय पर उस दौर में अज्ञेय का घना प्रभाव था और वे उसी ढंग की कविताएं लिख रहे थे, यद्यपि बाद में वे उस प्रभाव से बाहर आए। हम इसे क्रमशः देखें कि नई कविता में संवेदना के स्तर पर इन प्रवृत्तियों का कैसा प्रतिफलन है तथा किस अर्थ में यह संवेदना अपनी पूर्ववर्ती कविता से भिन्न और नई है।

आधुनिक भाव बोध - नई कविता के कवियों ने सचेत रूप से अपनी पूर्ववर्ती कविता की संवेदना को आधुनिक जीवन बोध के समक्ष पिछड़ी हुई बताया। वे अपने समय के यथार्थ की चुनौतियों को देख रहे थे। यह 'यथार्थ' कविता में रूपायित होने के लिए दबाव बना रहा था। कविता की पूर्वपीढ़ी से नई कविता की संवेदना की भिन्नता को व्यक्त करने के लिए हम अज्ञेय की 'कलगी बाजरे की' जैसी कविता को देख सकते हैं। मुक्तिबोध ने 'आधुनिक भावबोध' को नई कविता की आत्मा कहा है वे लिखते हैं, ''विज्ञान के इस युग में उसकी दृष्टि यथार्थोन्मुख

तथा संवेदनशील होती है। वह यथार्थ सम्बन्धों को ग्रहण कर यथार्थबोध द्वारा संवेदनात्मक प्रतिक्रियाएं करता है।'' (मुक्तिबोध, नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र,)

आधुनिक भावबोध के बारे में नई कविता के कवियों को हम अनेक बार यह कहते सुनते हैं कि यह संक्रान्त समय का बोध है। अस्तित्ववादी दर्शन के प्रभाव से जुड़े कवि इसे भयानक मूल्य ध्वंस के रूप में अनुभव करते हैं। वे एक ऐसे देश काल का अनुभव करते हैं जिसमें आदर्शों, मूल्यों, मान्यताओं, परम्पराओं और आस्थाओं की चूलें हिला देने वाली पतनशीलता है। 'अंधायुग' में धर्मवीर भारती 'मिथक' में जिस आधुनिक बोध को रूपायित कर प्रस्तुत करते हैं, वह यही है। नई कविता के इन कवियों के सामने आत्यंतिक रूप से विसंगत अनुभव थे। मूल्यविचलन के सन्दर्भों ने उन्हें 'विडम्बनाबोध' दिये। इस प्रकार आधुनिक भावबोध एक प्रकार से उनके लिए 'संकटबोध' के रूप में प्रस्तुत हुआ। अब हम इसके परिप्रेक्ष्य को देखे तो पायेंगे कि यह भारत की आजादी के बाद का समय है। एक तरफ आर्थिक विकास की पूंजीवादी प्रणालियाँ जारी हो रही थीं और इसके चलते शहरों, महानगरों की वे संरचनाएँ उभर रही थीं जिनमें नये सामाजिक सम्बन्ध थे। पूंजीवादी प्रभाव के कारण सामाजिक विच्छिन्नता का समाज उभर रहा था। संवेदनशील मनुष्य पर सबसे बड़ी चोट यह थी कि उसके सामने एक परायेपन से भरी दुनिया थी। मनुष्य और मनुष्य के बीच सम्बन्धों को जटिल बनाने वाली वर्ग स्थितियाँ चतुर्दिक थीं। कई बार कवि ने इस परिदृश्य से निजी पराजय या निष्फलता को अनुभव किया और उसमें अपने समय के मनुष्य की निष्फलता को व्यंजित करना चाहा। नई कविता में अभिव्यक्त रिक्तता, व्यर्थताबोध या परायापन की भूमिका यही है। इस परिदृश्य को समझकर रामदरश मिश्र ने लिखा है कि ''समाज और व्यक्ति आज की अपेक्षा अधिक गहरे अभावों से गुजरा था किन्तु सामाजिक सम्बन्धों की ऐसी विच्छिन्नता, व्यक्तिमन में ऐसी अकुलाहट और मूल्यों के प्रति ऐसी उदासीनता शायद ही कभी आई थी। . . . . वास्तव में यांत्रिक सभ्यता पूरे विश्व को प्रभावित कर रही है, किन्तु वह देशगत परिस्थितियों से कटी हुई कोई सिद्ध सत्ता नही है। . . . . . हम अपने अनुभवों से यह पा रहे हैं कि इस नवस्वतंत्र देश की यात्रा भटक गई है। स्वतंत्रता प्राप्ति के आरम्भिक वर्षों में उभरने वाली स्थितियाँ भविष्य की कुछ सम्भावनाएँ लिए हुए थी। किन्तु ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, मोहभंग होता गया। जिस सामाजिकता और मूल्य का हम सपना देखते आये थे वह कभी उभरा ही नहीं और रहे-सहे मूल्य भी बुरी तरह टूटते गए।'' (आज का हिन्दी साहित्य: संवेदना और दृष्टि: रामदरश मिश्र) रामदरश मिश्र ने अस्तित्ववादी प्रवृत्तियों के अधीन होकर देखे जाते हुए इस विसंगत यथार्थबोध की आलोचना भी की है। उन्होंने माना है कि यह व्यापक यथार्थबोध नहीं है बल्कि वैयक्तिक बोध के रूप में देखा गया विच्छिन्न यथार्थ है। यही हम मुक्तिबोध को देखें। वे आधुनिक भाव बोध के लिए सच्चे आधुनिक भावबोध जैसे वाक्य का प्रयोग करते हैं। उनके लिए इसका अर्थ यथार्थ को उसकी समग्रता में जानना है और समग्रता को वे इस 'यथार्थ के परस्पर अन्तःसम्बन्धों को उसकी गहराई समेत' मानते हैं (नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, मुक्तिबोध)। जीवन का वैविध्य इस प्रकार प्रस्तुत हो कि उससे हम कोई निष्कर्ष निकाल सकें।

स्पष्ट है कि मुक्तिबोध ने 'आधुनिक भावबोध' को उसमें निहित अग्रगामी गतिशीलता के अर्थ में देखा है।

मध्यवर्गीय जीवनानुभवों की प्रधानता - नई कविता के केन्द्र में मध्यवर्गीय जीवन के अनुभव हैं। देखा जाए तो प्रायः ये शहरी या कस्बाई जीवन के अनुभव हैं। शहरी जीवन प्रायः मानवीय सामूहिकता का जीवन नहीं होता। पूंजी का चरित्र व्यक्तिवादिता को बढ़ावा देना है। इस कारण मनुष्य में सामाजिक सम्बन्धों में स्वार्थ या आत्मकेन्द्रिकता के कारण जड़ता यथास्थितिवादिता ही नहीं कभी-कभी प्रतिगामिता भी आ जाती है। नई कविता मध्य वर्ग की कविता है। स्वाधीनता के लिए संघर्ष में मध्यवर्ग की एक प्रगतिशील भूमिका भी थी। जिसके अन्तर्गत आजादी के अर्थ में साम्राज्यवाद सामंतवाद से मुक्ति का अभिप्राय भी शामिल था। मध्यवर्गीय युवाओं ने गहरी छटपटाहट के साथ इस आजादी से अपनी उम्मीदों को भंग होता अनुभव किया। इस तथ्य को हम यदि वस्तुपरक ढंग से देखेंगे तो पायेंगे कि वे व्यापक जीवन में क्रान्तिकारी बदलाव के लिए जरूरी संघर्ष से कटे हुए व्यक्तियों का मोहभंग था जिनकी इस प्रकार की उम्मीदों में वैयक्तिक आकांक्षाओं में पूरा होने का भाव प्रबल था। कई बार तो इस प्रकार की वैयक्तिक रूझानों वाले कवियों ने निष्फलता या मोहभंग को व्यक्तिवाद के लगभग अतिरेकी छोर पर जाकर देखा और व्यक्त किया, इस सन्दर्भ में यह उद्धरण देखें- 'ओ मेरे अफसर/तुम्हारी एक लाइन ने/मेरे जीवन की कविता को निरर्थक कर दिया/बीच ज़िन्दगी में मैं एकाएक/विधवा हो गया' (तीसरा सप्तक, संपा- अज्ञेय)

हम देख सकते हैं कि इस कविता में आत्मग्रस्तता का ही एक रूप व्यंजित है। नई कविता की प्रवृत्तियों को समझने के क्रम में हमने देखा कि अनुभूति की प्रामाणिकता का आग्रह उसके लिए नियामक तत्त्व की तरह हैं। इस प्रकार स्वाभाविक रूप से कविता निजी अनुभवों पर निर्भर हो जाती है। दूसरी ओर नई कविता के अधिकांश कवि मध्यवर्ग के है। अतः उनकी कविता में मध्यवर्गीय अनुभव प्रमुखता से अभिव्यक्त होते हैं। अन्यत्र हमने जिस विडम्बनाबोध की अभिव्यक्ति नई कविता में लक्षित है उसके मूल में भी अधिकांशतः ये मध्यवर्गीय जीवन के अनुभव ही हैं।

इस प्रकार नई कविता के भीतर व्यक्ति केन्द्रिकता के इस छोर से यथार्थ की वे जटिलताएं प्रकट हुई जिनमें कवि की अपनी टकराहट, संघर्ष और संकट के अनुभव थे। अपनी प्रतिभा के द्वारा कवि ने इन्हें युग संकट के रूप में स्फीत करके प्रस्तुत किया। जिसे यहाँ लघुमानव का बोध कहा गया वस्तुतः वह वैयक्तिक अनुभवों का वह रूप था जिसमें समाज और सामाजिकता के घटित को मिलाकर प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई थी। गिरिजा कुमार माथुर की इस कविता में देखें- **हम सब बौने हैं/मन से मस्तिष्क से भी/भावना से, चेतना से भी/बुद्धि से, विवेक से भी/क्योंकि हम जन हैं, साधारण हैं/हम नहीं हैं विशिष्ट/क्योंकि हर ज़माना हमें चाहता है/बौने रहें।//हमको हमेशा ही/घायल भी रहना/सिपाही भी रहना है/दैत्यों के काम निभा/ बौने ही रहना है** (जो बंध नहीं सका, गिरिजा कुमार माथुर)

यह परिवेश की जटिलता के दबाव में आये मनुष्य का अनुभव है। यहाँ जीवन एक संकटबोध के रूप में उपस्थित है। हमें नई कविता में सक्रिय यथार्थवादी और आधुनिकतावादी प्रवृत्तियों के अन्तर को भी समझते हुए चलना है इसलिए हम यह अवश्य देखें कि मुक्तिबोध के यहाँ मध्यवर्गीय मनुष्य का रास्ता संघर्ष का है। वह स्वयं को जनता की आर्थिक-सामाजिक मुक्ति के लक्ष्य से संयुक्त करता है और इसके लिए अपनी व्यक्तिवादी प्रवृत्तियों से संघर्ष करता है। शमशेर ने भी भावबोध और सौन्दर्यबोध को व्यापक जनता के जीवन से जुड़कर अर्जित करने का संघर्ष किया है। यह प्रगतिशील कविता का स्वर है। अज्ञेय के यहाँ व्यक्तिवादी प्रवृत्तियों का प्रतिफलन वैसे अवरूद्ध या यथास्थितिवादी रूपों में नहीं है न ही मध्यवर्ग की दिशाहारा होने की नियति को वे अन्तिम मानते हैं। उनके यहाँ भी मनुष्य की सामाजिक सोद्देश्यता का संघर्ष है किन्तु उसकी दिशायें अन्तर्मुखी हैं।

नगरीय बोध का प्रतिफलन - नई कविता के संवेदनशील कवियों ने शहर को एक अमानुषिक तत्व के रूप में अनुभव किया है। उद्योग, प्रौद्योगिकी, मशीनें, कारखानें, सड़कें, अट्टालिकाएं जिस सुविधाजनक रिहाइशी स्थल का स्वरूप पैदा करती है। उसमें मनुष्यों के मानवीय गुण नष्ट कर देने की स्थितियाँ हैं। अज्ञेय ने भी इसे प्रविधि के अन्तर्गत देखते हुए प्रकृति को इसके विरुद्ध रखना चाहा है। वे मनुष्य की मानवीय स्वाभाविकता की रक्षा चाहते हैं। प्रविधि से उभरते विकास ने मानवीय मूल्यों का क्षरण किया है। नई कविता के कई कवियों को हम प्रकृति, गांव, पहाड़ आदि के प्रति गहरे मोह में पड़ा हुआ देख सकते हैं। छायावाद के प्रकृति प्रेम की प्रवृत्ति से अलग नई कविता में कवि इसे अपने समय की बड़ी चुनौती के रूप में लेते हुए दिखाई देते हैं। उनका कहना है कि पूंजी प्रौद्योगिकी के ऐसे विकास के सम्मुख आधुनिक मनुष्य पलायन का रास्ता चुन कर किसी नीरव एकांत को नहीं चुन सकता। उसे इनके बीच में रह कर मानवीय सम्बन्धों मूल्यों हार्दिकताओं को बचाने का संघर्ष करना पड़ेगा। इसलिए वह शहर केन्द्रित संस्कृति के क्षरण के प्रति आलोचनात्मक है। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की इस कविता में आये प्रश्न में हम इस आलोचना की ध्वनि सुन सकते हैं। यही कहीं एक कच्ची सड़क थी/जो मेरे गांव को जाती थी/अब वह कहाँ गयी?/किसने कहा उसे पक्की सड़क में बदल दो/उसकी छाती बेलौस कर दो/स्याह कर दो यह नैसर्गिक छटा/विदेशी तारकोल से (बांस का पुल- सर्वेश्वर दयाल सक्सेना,)

बौद्धिकता - नई कविता के आलोचकों ने रूमानियत के विरोध को नई कविता की प्रवृत्ति माना है। इस सन्दर्भ में हम देखते हैं कि नई कविता की रूमानियत छायावादी कविता से भिन्न अवश्य है किन्तु यह पूरी तरह से रूमानियत या भाववादिता से मुक्त नहीं है। रामविलास शर्मा ने तो इससे प्रतिफलित नई रूमानियत को समझते हुए इसे छायावादोत्तर छायावादी कविता कहा है। वस्तुतः नई कविता संवेदना की बौद्धिक बुनावट की कविता है। नई कविता का कवि 'मोहभंग' आदि स्थितियों को कविता में रूपायित करने के लिए बौद्धिकता का आश्रय लेता है। कई बार हम देखते हैं कि इस बौद्धिकता का सम्बन्ध उसकी यथार्थवादी दृष्टि से न होकर भाववादिता से ही है। विशेष रूप से अपने कहने के ढंग को बौद्धिकता के द्वारा वह नया तेवर देता दिखाई देता है।

बौद्धिकता कई बार उसकी रचनात्मक मदद करती हुई भी दिखाई देती है। अनुभवों की सघनता, रचनात्मक तनाव या विडम्बना को वह इसके द्वारा नये रूप में निर्मित कर पाता है और भाषा की प्रचलित रूढ़ियों को तोड़कर अनुभव के नये क्षेत्रों में प्रवेश करता दिखाई देता है। जहाँ कहीं इस बौद्धिकता के साथ यथार्थवादी दृष्टि का संयोग होता है कविता ज्यादा अर्थ समृद्ध होती दिखाई देती है किन्तु ऐसा न होने पर वह शाब्दिक चमत्कार होकर रह जाती है।

रागात्मकता - नई कविता ने जिस मनुष्य को परिभाषित किया है उसे मनुष्य के उस मानवीय गुणों को आधार देने वाले रागात्मक संसार की आकांक्षा है। यह अलग प्रश्न है कि कुछ कवियों को इस आकांक्षा के असंभव होने का बोध हुआ है। तो कुछ कवियों को लगा है कि ऐसे रागात्मक मानवीय संसार की रचना के लिए संघर्ष का दायित्व भी मनुष्य का है और कविता को ऐसे संघर्ष के साथ होना चाहिए। नई कविता के रागात्मक क्षेत्र मानवीय सम्बन्ध हैं, प्रेम और प्रकृति है, और रूढ़ियों दुहरावों से मुक्त होती हुई काव्य भाषा है। अज्ञेय के यहाँ सत्य या यथार्थ 'रागदीप्त' होकर सार्थक होता है। नई कविता के कवियों की आधुनिकता 'रागात्मकता' को भी बौद्धिक संस्पर्श के साथ नया करती है। अज्ञेय का मानना है कि विघटनकारी परिस्थितियों में भी मानवीय अस्मिता को उसकी आंतरिक रागानुभूति ही सुरक्षित रख सकती है। इस प्रकार 'रागात्मकता' का नया अन्तर्गठन नई कविता के लिए जरूरी हो उठता है। यह रागात्मकता अपने समय की बौद्धिक उपलब्धियों से यथा विज्ञान, दर्शन, राजनीति, समाज चिन्तन आदि से निरपेक्ष नहीं है। युगबोध को निर्मित करने वाली इन सरणियों को भी उसे पहचान कर चलना है। साथ ही आदर्शवादी रूमानियत से अलग यथार्थवादी सरोकारों के साथ कविता की अन्तर्वस्तु और शिल्प को निर्मित करने की चुनौती भी है। इस नई रागात्मकता की छवियाँ अनेक हैं। इसे विजयदेव नारायण साही की इस कविता में देखें- मृत्यु के सुनसान दर्पण में प्रतिबिम्बित/केवल यह फुफकारता हुआ/अग्निकमल बच रहता है/यही परम्परा है, यही क्रान्ति है/यही जिजीविषा है/यही आयु है यही नैरन्तर्य है। (समकालीन काव्य यात्रा: नन्द किशोर नवल)

इस प्रकार मुक्तिबोध ने क्रान्तिकारी जनसंघर्षों में जुटे जन को गहरी आत्मीयता और प्यार से सम्बोधित किया। रागात्मकता के ये रूप नई कविता में कई बार कविता में सहज ही पहचाने जा सकें ऐसे सरल रूपों में नहीं हैं। अपनी पक्षधर काव्यचेतना के स्वभाव के अनुरूप कवियों ने इसे कविता की अन्तर्रचना में शामिल किया है।

प्रकृति - नई कविता के कवि अज्ञेय के आरम्भिक काव्य में हम छायावादी कवियों जैसा प्रकृति का सम्मोहन भी देख सकते हैं। आधुनिक भावबोध के साथ बदलती हुई उनकी चेतना प्रयोगवादी कविता के दौर में प्रकृति का इस प्रकार तिरस्कार करती है कि जैसे ऐसा करते हुए वह कहीं न कहीं छिछली ढंग की भावुकता रूढ़िवाद या प्रतीकों के रूढ़ प्रचलित रूपों से मुक्त हो सकती है। इस सन्दर्भ में हम उनकी 'शिशिर की राकानिशा' जैसी कविता को देखें जिसमें वे चांदनी को वंचना कहते हैं। एक अन्य कवि की कविता में चांदनी को खोटे सिक्के की तरह कहा गया है, जिसमें चमक है पर खनक गायब है। इस प्रकार यहाँ पूर्व प्रतिमानों को ही नहीं पूर्व भावबोध को भी छोड़ा जा रहा था। नई कविता तक आते-आते कवि ने प्रकृति को अपनी मुक्त

आकांक्षा चिंतन और संघर्ष से जोड़ा। अन्तर्वस्तु के क्षेत्र में अब उसकी मनोरमता मात्र नहीं थी बल्कि उसका वह चेतन विकसित रूप था जो मनुष्य की चेतना को तमाम जटिलताओं के बावजूद संघर्ष में बने रहने की शक्ति दे रहा था। प्रकृति के स्वायत्त अनदेखे रूप भी कविताओं में आये, विशेष रूप से अज्ञेय की कविता में प्रकृति मानवीय स्निग्धता धारण करती दिखाई देती है। देखा जाए तो जिस नगरीकरण, बढ़ती यांत्रिकता, असामंजस्य और विषमता के अनुभव कवि के यथार्थबोध का अंग बने उन्हें स्वभावतः प्रकृति के लिए कोई जगह नहीं छोड़नी थी किन्तु अज्ञेय, भवानी प्रसाद मिश्र, शमशेर बहादुर सिंह, नरेश मेहता मे ही नहीं रघुवीर सहाय और धर्मवीर भारती में भी प्रकृति से जुड़े बोध ने अपने नयेपन के साथ प्रवेश किया। इन कविताओं में प्रकृति छायावादी प्रकृति से बहुत भिन्न रूपों में है भवानी प्रसाद मिश्र की कविता में इसे देखें- **बूंद टपकी एक नभ से/ये कि जैसे आँख मिलते ही/झरोखा बंद हो ले और नुपुर ध्वनि, झमक कर/जिस तरह द्रुत छंद हो ले/उस तरह बादल सिमट कर/चंद्र पर छाये अचानक/और पानी के हजारों बूंद/तब आये अचानक** (दूसरा सप्तक)

भवानी प्रसाद मिश्र की इस कविता में नई आँख से देखी जाती हुई वर्षा है। कई बार नगर की संक्रान्त अमानुषिक स्थितियों के बरक्स प्रकृति को रखकर कवि ने अपने संवेदनात्मक जुड़ावों को व्यक्त किया है। इस छोर से उसकी संवेदना का विस्तार होता है।

अभ्यास प्रश्न: दो

प्रश्न 1: रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

क) 'नदी का द्वीप' या 'दीप अकेला' जैसी अज्ञेय की कविताओं का केन्द्रीय आग्रह ..... है।
ख) नई कविता में कवि के अनुसार यह क्षणबोध ..... का बोध नहीं है।
ग) लक्ष्मीकांत वर्मा के अनुसार नये कवियों के समक्ष उपस्थित यथार्थ..... है।

प्रश्न 2: पाँच या छः पंक्तियों में उत्तर दीजिए-

क) नई कविता की मूल प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालिए।
ख) नई कविता की संवेदना की विशेषताएँ बताइए।

प्रश्न 3: दो या तीन पंक्तियों में उत्तर दीजिए-

क) नगरीय जीवन बोध से क्या तात्पर्य है?

.....
.

.....
.

ख) 'क्षणबोध' से क्या अभिप्राय है?

.....

.....

.....

ग) 'अस्तित्ववाद' का प्रभाव नई कविता के किन कवियों पर है।

.....

.....

.....

14.6 नई कविता: भाषा और रचनात्मक वैशिष्ट्य

नई कविता की भाषा के सामने नये यथार्थ बोध को अभिव्यक्त करने की चुनौतियाँ थीं। भाषा के सामने एक बड़ा प्रश्न संप्रेषणीयता का होता है। प्रयोगवादी कविता के दौर में अज्ञेय ने भाषा के दुहरे दायित्व की बात कही है। हमने देखा है कि नई भाषा के समक्ष अपनी पूर्वरूढ़ भाषा के प्रभावों से मुक्त होने का संघर्ष तो होता ही है साथ ही पाठकों की अवरूद्ध हुई स्वाद प्रक्रिया को भी बदलने का प्रश्न होता है। नई होती हुई रचनात्मक विधाओं ने नएपन के ऐसे प्रत्येक मोड़ पर इन समस्याओं का सामना किया है। 'हरी घास पर क्षणभर' शीर्षक अपने काव्य संग्रह की 'कलंगी बाजरे की' शीर्षक कविता में अज्ञेय काफी हद तक नई रचनात्मक भाषा की समस्या से टकराते दिखाई देते हैं। एक साथ यह नये अछूते ताजे शब्द पाने की समस्या है, साथ ही नई अन्तर्वस्तु को समग्रता में कहने की समस्या है और अनुभावन की समस्या तो है ही। इसके अतिरिक्त जटिल संक्रान्त स्थितियों के उन दबावों को समझने की समस्या भी है जिनका प्रभाव मनुष्य के संवेदन तंत्र पर पड़ रहा है तथा जिसके कारण प्रचलित रूढ़ चीजों में नये सत्य के बोध और अभिव्यक्ति की क्षमता नहीं रह गयी है। यह इसी प्रकार हुआ है कि जैसे- 'कभी बासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है' (कलंगी बाजरे की, अज्ञेय)।

नई कविता की भाषा - नई कविता के कवियों ने अपने अनुभवों के अनुरूप नई भाषा को अर्जित करने का संघर्ष किया है। भाषा की तलाश में वे जीवन के वृहत्तर क्षेत्रों में प्रवेश करते हैं।

तद्भव शब्दों की शक्ति - नई कविता की दृष्टि भाषा की पुनर्रचना पर है। यह एक प्रकार की नवोन्मेषी प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत कविता के संसार में व्यापक अछोर जीवन के तद्भव शब्द अपनी स्मृति और साहचर्य के साथ दाखिल होते हैं इस प्रकार के शब्द सुसंस्कृति का अंग बनकर स्थापित हुए शब्दों के अगल-बगल आकर बैठ जाते हैं और अपने नयेपन से उन शब्दों को भी नया आलोक प्रदान करते हैं। यहाँ हम इन दो उद्धरणों को देख सकते हैं।

प्रात नभ था बहुत नीला शंख जैसे/भोर का नभ/शंख से लीपा हुआ चौका/अभी गीला पड़ा है. (कवितांतर: संपा. जगदीश गुप्त)

ये शमशेर की कविता की पंक्तियाँ हैं जो नये बिंब की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हैं किन्तु यहाँ हम 'लीपा' क्रिया को विशेष रूप से देखें। यह लोक जीवन से सीधे ले ली गई है और यहाँ अपनी गहरी अर्थवत्ता के साथ दिखाई देती है। इसी तरह अज्ञेय की इस कविता को देखें जो जापानी 'हाइकू' छंद में है।

खेत में एक डरोने पर/बैठा है डरा हुआ कौआ/पूस की हवा कटखनी सी बहती है (अरी ओ करुणा प्रभामय, अज्ञेय)

ठण्डी हवा के स्वभाव के लिए 'कटखनी' विशेषता लोक में पर्याप्त प्रचलित है। तद्भवों के ऐसे प्रयोग की प्रवृत्ति नई कविता के कवियों में खूब दिखाई देती है। नई कविता के प्रत्येक कवि के समक्ष यह बात लगभग प्रधानता में निश्चित है कि नये भावबोध के हिसाब से नई काव्यभाषा को रूप देना है। तद्भव शब्दों के सहारे कवि की भाषा की व्यंजकता बढ़ जाती है और अभिव्यक्ति को अपेक्षित सृजनात्मकता प्राप्त होती है। इन शब्दों की निकटता से 'तत्सम' शब्दों में आ गई जड़तायें टूट जाती हैं तथा उनका ओज बढ़ जाता है। इस प्रकार तद्भव शब्द तत्सम के रूढ़ आभिजात्य मूलक प्रभाव को भी मांजकर सहज बना देते हैं। अज्ञेय की कविताओं में तद्भव शब्दों की अर्थ क्षमता सबसे ज्यादा दिखाई देती है, जबकि विजयदेव नारायण साही और कुँअर नारायण में यह सबसे कम है। भवानी प्रसाद मिश्र, गिरिजा कुमार माथुर, रघुवीर सहाय और सर्वेश्वर दयाल सक्सेना में इसकी ताजगी का अनूठा रंग भरपूर है। रघुवीर सहाय की इस कविता में देखिए: अपनी कथा की व्यथा का अथाह शून्य / मेरे छटंकी भर दुख से लिया करो /तो क्या करोगे कम वह जो दरद है / हाँ थकन हमारी कभी-कभी हर लिया करो।'

इस प्रकार तद्भव के प्रभाव से हम नई कविता के वाक्य रचना में आए नयेपन को भी देख सकते हैं। तद्भव से निर्मित कुछ क्रियाओं को अज्ञेय की कविता में देखें।

1. तुम पर्वत हो अभ्रभेदी शिलाखण्डों के गरिष्ठ पुंज/चांपे इस निर्झर को रहो, रहो (कवितांतर: संपा. जगदीशगुप्त,)

2. क्या मैं चीन्हता कोई न दूजी राह (हरी घास पर क्षण कर: अज्ञेय)

3. हम आ जाते हैं अभी लौट कर छिन में (हरी घास पर क्षण कर: अज्ञेय)

मुक्त छंद - नई कविता छंद से मुक्त है किन्तु वाक्यों की गद्य में 'लय' का नया प्रयोग इसे कविता की विधा में बनाए रखता है। इसे हम गद्य में अन्तर्लय का विधान भी कह सकते हैं। गद्य की सहजता और गति को कवि इसी अन्तर्लय के द्वारा रचनात्मकता प्रदान करता है। रघुवीर सहाय जैसे कवि ने तो 'सपाट बयानी' में भी कविता को संभव किया है। इस विधान से कविता में उभरते रचनात्मक तनाव को हम सबसे ज्यादा मुक्तिबोध की कविता में प्रतिफलित होते देखते हैं। इस प्रकार की भाषा अल्पविराम, बिन्दु, डैश, कोष्ठक आदि का भी सृजनात्मक उपयोग करती देखी जा सकती है। नई कविता के सन्दर्भ में खड़ी बोली के गद्य को अधिक तीक्ष्णता, बौद्धिकता और गहरी परिपक्व गत्यात्मकता के द्वारा संवरते देखते हैं। अपने समय के कठिन यथार्थ को कविता की रचनात्मकता में बदलता हुआ नई कविता का कवि एक सक्षम भाषा का निर्माण करता दिखाई देता है।

शब्द संसार - नई कविता की भाषा की शब्दान्वेषिणी प्रवृत्ति को समझने के लिए हम उसके विकसित, व्यापक शब्द संसार को देख सकते हैं। हमें यहाँ बिना किसी दुराव के तद्भव देशज ग्रामज शब्दों के साथ अंग्रेजी और उर्दू भाषा के शब्दों का भी व्यवहार मिल जाएगा।

बिंब विधान - नये बिंबों की दृष्टि से नई कविता अत्यधिक समृद्ध है। इन बिम्बों के द्वारा साकार होता हुआ क्रिया व्यापार या रचनानुभव लगभग अछूता होता है। इनमें आधुनिक संवेदना को संवेद्य बनाने की क्षमता है। वस्तुतः नई कविता के कवि के सामने भाषा की इसी प्रकार की चुनौतियों का क्षेत्र है। अज्ञेय, गिरिजा कुमार माथुर, धर्मवीर भारती, विजयदेव नारायण साही आदि कवियों की काव्य भाषा में नये बिम्बों के प्रयोग से सशक्त होती अर्थछवियों को हम देख सकते हैं। केदारनाथ सिंह को बिंब इतने प्रिय हैं कि उन्हें बिंबों का कवि कहा गया है। इन बिम्बों के कुछ उदाहरण देखें-

जिसकी सुधि आते ही पड़ती

ऐसी ठंडक इन प्राणों में

ज्यों सुबह ओस गीले खेतों से आती है

मीठी हरियाली खुशबू मंद हवाओं में' (धूप के धान, गिरिजा कुमार माथुर)

श्री माथुर के कविता संग्रह का 'घूप के धान' जैसा शीर्षक ही नये बिम्ब को सूचित करता है। ध्यान देने की बात है कि ये बिम्ब अपनी सहज भाषा की रवानी के कारण छायावादी बिम्बों से अलग है। इन बिम्बों की ऐन्द्रिकता भी उल्लेखनीय है। कठिन जीवनानुभवों से जुड़कर इनकी संश्लिष्टता निखर जाती है। जहाँ कहीं वे छायावादी कविता में प्रचलित उपमाओं को स्पर्श करते हैं। वहाँ भी अपनी संवेदना का अछूतापन रचने का संघर्ष भी करते हैं। इसे हम उपर्युक्त उद्धरण में तो देख सकते हैं, इसके अलावा भी हमें चांदनी, ओस, दीपक, सांझ, सवेरा, नदी,

भोर, आदि का बिम्बों में भरपूर उपयोग दिखाई देता है किन्तु कवि का ध्यान नई अर्थ छवियों के प्रति एकाग्र दिखाई देता है। प्रतीकों की दृष्टि से मुक्तिबोध के सौन्दर्यबोध का उल्लेख करना आवश्यक है। वे कविता की सर्वाधिक नई अर्थ संभावनाओं के अन्वेषक कवि हैं। मुक्तिबोध मराठी भाषी थे। सम्भवतः इसलिए संस्कृत भाषा पर उनकी निर्भरता अधिक थी। इसके अतिरिक्त वे प्रगतिशील चेतना के कवि थे। उनका रचनात्मक संघर्ष भाषा को मनुष्य की आर्थिक-सामजिक मुक्ति के संघर्ष से जोड़ने का था। हम देखते हैं कि उन्होंने अनेक प्रचलित बिम्बों और प्रतीकों को अपनी रचना के प्रगतिशील अर्थ से नया किया है। उनके कविता संग्रह के शीर्षक ने ही रोमेंटिक मिजाज़ वालों को पर्याप्त चौंकाया था। यह शीर्षक है 'चांद का मुंह ढेढ़ा' है। अनेक सुन्दरियों के सौन्दर्य के लिए प्रचलित यह 'चाँद' टेढ़े मुंह का हो गया। मुक्तिबोध ने इस प्रयोग के द्वारा पूंजीवादी प्रवृत्तियों में धंसे रोमान को यथार्थवादी ढंग से उद्घाटित करना चाहा। यहाँ वे नया सौन्दर्य शास्त्र निर्मित करते दिखाईं देते हैं। उनका सौन्दर्यबोध पूंजीवादी सामंती पतनशील प्रवृत्तियों की आलोचना करता है। इस प्रकार 'ब्रह्मराक्षस' 'अंधेरे में' 'लकड़ी का रावण' आदि सभी उनके नये प्रतीक हैं, दूसरी तरफ अज्ञेय के यहाँ भी 'कलंगी बाजरे की' सांप' 'नदी के द्वीप' 'दीप/अकेला', 'चक्रान्त शिला' 'असाध्य वीणा' आदि सब नये प्रतीक हैं। वस्तुतः प्रतीक वह योजना है जो मूल संवेद्य को सादृश्य आदि के आधार पर पुनर्नियोजित करती है। सांकेतिकता इसका प्रधान गुण है। नई कविता ने प्रतीकों का प्रयोग कर भाषा में अर्थ सामर्थ्य को गहराई से भरा और कलात्मक बनाया है। उनके सामने जटिल संक्रान्त यथार्थ है इसलिए 'चांद' का मुंह यहाँ आकर ढेढ़ा हो जाता है, मछली 'हाँफती हुई मछली' में बदल जाती है, जूते का कील, खाली गुलदस्ते सा सूर्योदय, बांस का पुल, अग्निकमल, आदि कितने ही नये-पुराने प्रतीक नये अर्थ की रचना में जुटे दिखाई देते हैं

नये मिथ - धर्मवीर भारती, कुँअर नारायण, नरेश मेहता, अज्ञेय, मुक्तिबोध आदि कवियों ने इतिहास पुराण के मिथकीय सन्दर्भों का समकालीन अर्थवत्ता के साथ पुनराविष्कार किया है। कुँअर नारायण ने 'आत्मजयी' में कठोपनिषद् के एक आख्यान में आई प्रश्नाकुलता को नये अर्थ से जोड़कर प्रस्तुत किया है। मुक्तिबोध की कविता 'ब्रह्मराक्षस' का अर्थ वह बुद्धिजीवी है जिसने अपने ज्ञान का सामाजिक उपयोग नहीं किया है और व्यक्तिवादी किस्म का आत्मसम्मोही जीवन बिताया है, इसलिए वह अभिशप्त ब्रह्मराक्षस हैं। नरेश मेहता की लम्बी कविता 'संशय की एक रात' में हम 'राम' का समकालीन मनुष्य की संशयग्रस्तता के अर्थ से जुड़कर पुनरावतार लक्ष्य कर सकते हैं। राम उस आधुनिक मनुष्य का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो अन्तर्द्वन्द्व की जटिलता से गुजर रहा है। अज्ञेय की कविता 'इतिहास की हवा' में महाभारत युग का प्रसंग है। धर्मवीर भारती का 'अंधायुग', 'कनुप्रिया' आदि काव्यकृतियाँ मिथक को आधुनिक युगबोध के साथ जोड़ कर प्रस्तुत करती हैं, इस प्रकार नई कविता मिथकीय आख्यानों का नया प्रयोग करती है।

फैंटेसी - फैंटेसी का सबसे अधिक उपयोग मुक्तिबोध ने किया है। 'असाध्यवीणा' में वीणा बज कर फैंटेसी का ही सृष्टि करती है। फैन्टेसी वस्तुतः एक भाववादी संरचना है, जो यथार्थ की

तार्किक सुसंगति को तोड़ती है किन्तु नई कविता के कवियों ने अपनी यथार्थवादी रचना दृष्टि की शक्ति के रूप में इसका सृजनात्मक उपयोग किया है। मुक्तिबोध की 'अंधेरे में' शीर्षक कविता में फैंन्टेसी की गढ़न से एक नाटकीयता उभरती है जो कविता के प्रभाव को सघन बनाती है।

नये उपमान - नई कविता के कवि ने असंख्य नये उपमान गढ़े हैं। यही नहीं बल्कि भाषा को नया करते हुए वे पुराने उपमानों को भी नये अर्थ में बदल देते हैं। इस प्रकार यहाँ भाषा को वह नया संस्कार मिलता है जो इन कवियों को अभीष्ट है। सुलगती अंगीठी, सिगरेट का धुआँ, चाय की पत्तियों, चाय की प्याली, मेज कुर्सी, चटाई, राख, धूल, दीवारें, खुले मैदान, कमरे, फाइलें, जूते, लाठी जैसे कितने ही उपमान इस कविता संसार में दाखिल होते दिखाई देते हैं।

नया अप्रस्तुत विधान - अप्रस्तुत विधान के कई नए रूप अपनी सृजनात्मकता के साथ नई कविता में मिलते हैं, मूर्त के लिए अमूर्त अप्रस्तुत विधान, मूर्त के लिए मूर्त अप्रस्तुत विधान, अमूर्त के लिए अमूर्त अप्रस्तुत विधान, अमूर्त के लिए मूर्त अप्रस्तुत विधान, रूपक के रूपमें अप्रस्तुत विधान, मानवीकरण आदि के लिए प्रयुक्त अप्रस्तुत विधान इसके अन्तर्गत मिलते हैं। नए प्रतीक, बिंब, रूपक आदि इस विधान की रचना में संलग्न दिखते हैं, एक उदाहरण देखें-

आवारा मछुओं सी शोहदों सी चांदनी/लहरें घायल सांपों सी, मणि खोये सांप सा समय
(कवितांतर, संपा.: जगदीश गुप्त)

14.7 नई कविता के कवि

सप्तक श्रृंखला में जो कविता के दौर में भी रचनाशील रहे तथा साठोत्तर दौर की रचनाशीलता में भी जिनकी रचनात्मक सक्रियता कुछेक बदलावों के साथ कायम रही है उनमें से अज्ञेय, मुक्तिबोध, शमशेर बहादुर सिंह, रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, कुअँर नारायण, केदारनाथ सिंह का नाम लिया जा सकता है। इसके अतिरिक्त धर्मवीर भारती, लक्ष्मीकांत वर्मा, विजयदेव नारायण साही, गिरजाकुमार माथुर आदि कवि नई कविता के कवि हैं। नई कविता के सन्दर्भ में सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन महत्वपूर्ण कवि हैं। प्रयोगवाद के साथ-साथ नई कविता के भी पुरस्कर्ता कवि के रूप में आपका नाम लिया जाता है।

14.7.1 अज्ञेय

अज्ञेय ने आधुनिक संवेदना और कविता के सृजनात्मक सार्थक सम्बन्ध की चिंता की है। नई कविता को नये सौन्दर्यबोध, पारिभाषिक और आधुनिक चिंतन के सन्दर्भ में वे सबसे ज्यादा रेखांकित करते हैं और उसके पक्ष में धारणाएं और विमर्श रचते हुए दिखाई देते हैं। उस दौर में नई कविता पर हुए आक्रमणों ने सबसे ज्यादा अज्ञेय को ही लक्ष्य किया और उन्होंने उसके सुचिंतित उत्तर देने का प्रयत्न भी किया। अज्ञेय चिंतक कवि हैं। विशिष्ट प्रकार की बौद्धिकता उनका स्वभाव है। पारिवारिक परिवेश शिक्षा और जीवन संघर्ष ने उन्हें आधुनिकता के चिन्तनपूर्ण सृजनात्मक रूप से जोड़ कर विकसित किया है। उनकी काव्य संवेदना का आधार

एक सुसंकृत ढंग का आभिजात्य है। सरल ढंग की जनोन्मुखता के पक्षधर कवियों और समीक्षकों ने उनके आभिजात्य पर बड़ा प्रहार किया है।

अज्ञेय की प्रमुख काव्य कृतियाँ हैं 'भग्नदूत', 'चिन्ता', 'इत्यलम्', 'हरीघास पर क्षणभर', 'इन्द्रधनु रौंदे हुए ये, 'बावरा अहेरी,' 'अरीओ करुणा प्रभामय, 'आँगन के पार द्वार', 'कितनी नावों में कितनी बार', 'सागर मुद्रा', 'क्योंकि मैं उसे जानता हूँ ', 'महावृक्ष के नीचे', 'ऐसा कोई घर आपने देखा है'। 'तार सप्तक', 'दूसरा सप्तक' और 'तीसरा सप्तक' उनकी संपादित कृतियाँ हैं। शेखर:एक जीवनी के दो खण्ड, 'नदी के द्वीप', 'अपने-अपने अजनबी' उनकी औपन्यासिक कृतियाँ हैं तथा 'उत्तर प्रियदर्शी' शीर्षक से उन्होंने नाटक भी लिखा है। अज्ञेय की गद्य कृतियाँ भी अनेक हैं जिनमें कहीं संस्मरण है, यात्रा वृतान्त है अथवा साहित्यिक चिन्तन है। कुछ प्रमुख गद्यकृतियाँ इस प्रकार हैं- 'आलवाल', 'त्रिशंकु', 'आत्मनेपद', 'एक बूंद सहसा उछली,' 'अरे यायावर रहेगा याद' आदि।

14.7.2 मुक्तिबोध

मुक्तिबोध की कविताएँ 'तारसप्तक' में संग्रहीत थीं। कवि का विकास मार्क्सवादी विचारधारा से जुड़कर हुआ है। यही कारण है कि उनकी कविता में क्रान्तिकारी जनोन्मुखता का रूप दिखाई देता हैं। 'जनमन की उष्मा' उनकी कविताओं का प्राणतत्त्व है। मुक्तिबोध 'लम्बी कविताओं' के कवि हैं। कविता को उन्होंने क्रान्तिकारी जनसंघर्ष में भागीदारी की गहरी मानवीय उम्मीद के साथ देखा और उसे निरन्तर चलने वाली कालयात्री कहा है। उनकी कविताओं में शोषित उत्पीड़ित जन के प्रति बहुत गहरा प्यार दिखाई देता है। वे जन की आर्थिक-सामाजिक मुक्ति का स्वप्न देखते हैं। तथा ऐसी शिक्षा-दीक्षा की आलोचना करते हैं जो मनुष्य को जनता की मुक्ति के लक्ष्य से काट कर सुविधाभोगी, परजीवी और पतनोन्मुख बनाती है। रामविलास शर्मा ने मुक्तिबोध पर सार्त्र, कामू जैसे अस्तित्ववादी चिन्तकों का प्रभाव माना था तथा उनकी कविता में अस्तित्ववादी प्रकार के अर्थ की छायाएं देखी थीं। जबकि नामवर सिंह जैसे आलोचक ने मुक्तिबोध की कविता की क्रान्तिकारी चेतना के संघर्ष को रेखांकित किया और उन्हें कबीर तथा निराला की परम्परा का कवि माना है। वस्तुतः मुक्तिबोध की रचनाशीलता के केन्द्र में मध्यवर्ग के व्यक्तित्वांतरण की चुनौतियाँ रही है। हिन्दी कविता के इतिहास में मध्यवर्ग की अवसरवादी संरचनाओं की जटिलता में प्रवेश करने वाले वे पहले कवि हैं। मध्यवर्गीय व्यक्तित्व के भीतर पड़ी सामंती पूंजीवादी प्रवृत्तियों के दबाव को पुर्जा-पुर्जा खोलकर देखते हैं और इसी के साथ बाह्य परिवेश के विघटन, मूल्यहीनता और पतन को भी समूचा पहचानते हैं। मुक्तिबोध की कविता में छठें-सातवें दशक के भारत के आर्थिक-राजनैतिक अन्तर्विरोधों के असली रूप दिखाई देते हैं।

मुक्तिबोध के यहाँ हमें 'संवेदनात्मक ज्ञान' और 'ज्ञानात्मक संवेदना' जैसे प्रत्यय मिलते हैं। इसे उन्होंने व्यक्ति की रचना प्रक्रिया के सन्दर्भ में विश्लेषित भी किया है। वस्तुतः यह अनुभव के रचनात्मक अनुभव में बदलने की ऐसी प्रक्रिया है जिसे मार्क्सवादी विचारधारा के द्वारा

प्रगतिशील आशय की चमक मिल जाती है। 'चांद का मुंह ढेढ़ा है' शीर्षक उनकी काव्यकृति को अत्यधिक प्रसिद्धि मिली है। साठोत्तर दौर के कवियों ने अपने लिए मुक्तिबोध को सबसे ज्यादा संभावनापूर्ण रचनात्मक विरासत माना है। मार्क्सवादी दृष्टि का सृजनात्मक सौन्दर्य के साथ सबसे प्रभावी रचनात्मक तालमेल मुक्तिबोध की कविता में ही दिखाई देता है। विचारधारा को वे अपना मूल्यवान अर्जित मानते हैं। और मार्क्सवाद को विश्वदृष्टि कहते हैं। पूंजीवादी विकास द्वारा पैदा की गई विषमताओं को वे मनुष्य के लिए सबसे ज्यादा घातक मानते हैं। पूंजीवाद की विशाल संरचना के प्रत्येक पुर्जे को जिस प्रकार मुक्तिबोध ने पहचाना है उस प्रकार शायद ही किसी ने पहचाना हो। क्रान्ति में उन्होंने ऐसे पूंजीवाद को चुनौती देने वाली शक्ति देखी। इसलिए वे मध्यवर्ग से जनता का सही नेतृत्व बनने की मांग करते हैं। इसीलिए उन्होंने मध्यवर्ग के व्यक्तित्वांतरण की बात कही है क्योंकि जनता से एकमएक हुए बिना केवल सहानुभूति या निष्क्रिय करुणा के द्वारा समाज के क्रान्तिकारी बदलाव की लड़ाई नहीं लड़ी जा सकती। अपनी कल्पना में जनता को क्रान्ति के लिए एकजुट होते देखते हैं और लिखते हैं कि जिन्दगी बुरादा तो बारुद तो बनेगी ही' (मुक्तिबोध)

14.7.3 शमशेर बहादुर सिंह

शमशेर बहादुर सिंह की कविताएं दूसरा सप्तक में संकलित हैं। इन्हें नई कविता की प्रगतिशील धारा से सम्बद्ध कवि माना जाता है। शमशेर ने स्वयं को मार्क्सवाद से प्रभावित माना है। वे अपनी रचनादृष्टि का मार्क्सवादी विचारधारा से जुड़कर दृष्टिवान होना स्वीकार करते हैं। 'बात बोलेगी', 'कुछ कविताएं', 'कुछ और कविताएं' 'चुका भी हूँ नहीं मैं', 'इतने पास अपने' आदि उनके काव्य संग्रह हैं। शमशेर में गहरी संवेदना और तीव्र प्रतिभा थी। उर्दू और अंग्रेजी भाषा के साहित्य को उन्होंने डूब कर पढ़ा और उसमें निहित रचनात्मक अर्थ की गहराइयों से प्रभावित हुए। शमशेर साहित्य के बड़े तन्मय पाठक थे। उनकी चेतना को साहित्य और संस्कृति की गहरी निकटता मिली। उनके साहित्यिक संस्कार तुलसी, मतिराम, निराला और मैथिलीशरण गुप्त को पढ़ने के साथ-साथ ग़ालिब, हाली, टेनिसन, एज़रा पाउंड आदि को पढ़कर विकसित हुए। चौथे दशक के आस-पास प्रगतिशील लेखकों के सम्पर्क में आये और मार्क्सवादी दर्शन में निहित मनुष्य की मुक्ति की आकांक्षा का महत्व पहचाना। शमशेर कविता में एक चितेरे की सी भूमिका चुनते हैं। उन्हें लगता है कि शब्द और चित्रकारी में बड़ा घना आदान-प्रदान का सम्बन्ध है। शमशेर की कविता में उनके ज्ञान अनुभव और विश्वासों के रंग खुल पड़े हैं। नई कविता के इतिहास के सर्वाधिक ऐन्द्रिक कवि शमशेर ही हैं। शमशेर के लिए यथार्थ का रचनात्मक रूपान्तरण प्रमुख है। वे उसके भीतर रूप, रस, गन्ध की सुन्दरता खोजते हैं। शमशेर की काव्य संवेदना में गहरी आवेगात्मकता का स्पन्दन मिलता है। अज्ञेय ने शमशेर को कवियों का कवि कहा है। शमशेर की कविता में बारीक संश्लिष्टता मिलती है। उनकी कविताएं सतह पर अर्थ खोलने वाली कविताएं नहीं हैं। छायावादी सौन्दर्यप्रियता को शमशेर ने अपनी कविता में नया किया है। उनकी कविता में अभिव्यक्त वस्तुसंसार छायावादी विषयों से बहुत मिलता जुलता है,

विशेषरूप से प्रकृति की नाना छवियाँ, किन्तु हम यह स्पष्ट देख सकते हैं कि वे भाव बोध की नवता के द्वारा नये रूप में आविष्कृत छवियाँ हैं।

यहाँ से अगर हम देखें तो प्रेम सौन्दर्य और उन्मुक्त उल्लास के निकट का जो एक और भाव शमशेर की कविता में मिलता है वह करुणा का है। शमशेर का काव्य लोक गहरी मानवीय संवेदनाओं के जीवित लोक की तरह है जिसमें स्पन्दन व्यापता है। उनकी काव्य पंक्तियाँ अर्थ की गतिशीलता में स्फुरित होती हैं। वहाँ एक अद्भुत सकर्मकता दिखाई देती है जिसमें सहज ही ठहरावों को तोड़ देने का उद्यम है। यहाँ तक कि उदासियों के सघन चित्रण में भी गति के ये रूप अंकित हैं। संवेदना के इन रूपों में कवि में आत्मविस्तार का उदात्त व्यक्त हुआ है। मनुष्य की गति, संघर्ष, प्रेम और असफलताएं शमशेर को आकृष्ट करती हैं। मजदूर किसान और वंचित भारतीय जन की मुक्ति आकांक्षा उनकी कविता में व्यक्त हुई है। शमशेर ने जनता के लिए आर्थिक-सामाजिक समानता का मानवीय भविष्य चाहा है। मेहनतकश जन का शोषण करने वाली व्यवस्था और संस्कृति की आलोचना भी शमशेर की कविता में दिखाई देती है। किन्तु उनके सौन्दर्यबोधीय मूल्य वहाँ उस मानवीय आवेग को धारण करते हैं जिनसे उस भाव का प्रभाव विशिष्ट हो उठता है। शमशेर कविता की संश्लिष्ट मितव्ययी संरचना के कवि हैं। उनकी कविताओं में अर्थ समृद्धि आंतरिक स्तर पर दिखाई देती है।

14.7.4 धर्मवीर भारती

धर्मवीर भारती की कविताएं भी दूसरा सप्तक में संग्रहीत हैं। भारती नई कविता को गति देने वाली संस्था 'परिमल' के संयोजकों में से एक थे, इलाहाबाद के साहित्यिक रचनात्मक परिदृश्य ने धर्मवीर भारती की रचनात्मक चेतना को संवारा है। भारती सन् 60 में धर्मयुग के यशस्वी सम्पादक हुए। उनके सम्पादन काल में इस पत्रिका ने स्तरीय साहित्यिकता को भरपूर योगदान दिया। 'अंधायुग' 'कनुप्रिया' जैसे नाटकों से उनके कवि को अत्यधिक प्रतिष्ठा मिली है। 'अंधायुग' में धर्मवीर भारती ने महाभारत युद्ध के महाविध्वंस को समकालीन संकट से जोड़कर नई अर्थछवि प्रदान की है। इस प्रकार नई कविता में अभिव्यक्त संकटबोध का सर्वाधिक तनावपूर्ण और सृजनात्मक रूप 'अंधायुग' में व्यक्त हुआ। इस कृति में भारती की प्रतिभा का उत्कर्ष दिखाई देता है। 'अंधायुग' में भारती प्रबन्धात्मकता का वह नया प्रयोग करते हैं जिसका परम्परा से बड़ा ही सृजनात्मक सम्बन्ध है। इस काव्यनाटक के नियोजन में उन्होंने नाट्य तत्वों में भी भारतीय तथा पाश्चात्य नाट्यकला के तत्वों का बड़ा ही सार्थक सम्मिलन कराया है। भारती ने भारतीय मिथकों का समकालीन अर्थ की विराटता और प्रभाव को निर्मित करने के लिए एक प्रकार से अन्वेषण किया है। भारती की कविताओं में गहरी रागात्मकता और ऐन्द्रिकता परिलक्षित होती है। अपने समय के इतिहास के प्रश्नों से वे बौद्धिकता और रागात्मकता के सृजनात्मक मेल के द्वारा टकराते हैं। मनुष्य के अधीन लघु या क्षुद्र होने की स्थिति का नियति बन जाना भारती को स्वीकार नहीं है। भारती ने 'मिथक' द्वारा निर्दिष्ट नायकों के प्रभाव का अतिक्रमण करते हुए युगसंकट की जटिलता को व्यक्त करने वाले नायकों और प्रतिनायकों का निर्माण किया है।

'सप्तक' में संग्रहीत कविताओं के अतिरिक्त 'ठंडा लोहा' 'सात गीत वर्ष' आदि भारती के काव्य संग्रह हैं जिनकी कविताएं गहरी जिम्मेदारियों के साथ अपने समय के विसंगत स्वरूप से टकराती हैं। भारती की काव्य संवेदना में अभिजात्य और लोक का घुला मिला रूप दिखाई देता है। गहरी आवेगात्मक रूमानियत से इनके शिल्प का अलग प्रभाव निर्मित होता है। भाषा में भी लोक का प्रभाव उसकी व्यंजकता को रचता हुआ दिखाई देता है। धर्मवीर भारती के काव्यानुभव के केन्द्र में भारतीय मध्यवर्ग का संघर्ष और आकांक्षा है।

14.7.5 विजयदेव नारायण साही

विजयदेव नारायण साही 'तीसरा सप्तक' के कवि हैं। नई कविता के कवियों में अज्ञेय और मुक्तिबोध के बाद विजयदेव नारायण साही ही ऐसे कवि हैं जो कविता को चिंतन के निष्कर्षों से जोड़ते हैं। स्वातंत्र्योत्तर भारत के आर्थिक-सामाजिक संकट का तीव्रतर बोध साही की कविता को रागात्मक बौद्धिक भूमिका के लिए प्रेरित करता है। वे लोहिया, जय प्रकाश और आचार्य नरेन्द्र देव के समाजवादी विचारों के निकट रहे हैं तथा उनके चिंतन का प्रभाव भी उन पर पड़ा है। 'मछलीघर' और 'साखी' उनकी कविताओं के संग्रह हैं। साही की रचनादृष्टि यथार्थबोध की जटिलता को समझते हुए परिपक्व हुई है। कठिन जीवन की चुनौतियों को साही ने सरल समाधान में नहीं लेना चाहा है। अपने समय के मनुष्य को वे संकट को पहचान कर उससे संघर्ष की क्षमता में देखना चाहते हैं, इसलिए संकट के दृश्य अदृश्य तंतुओं को कविता में उद्घाटित करते दिखाई देते हैं। विसंगति और विडम्बना से भरे समय में मनुष्य की तैयारी उसका विवेक है और निर्वैयक्तिकता भी, ऐसा साही का मानना है। साही एक प्रतिभाशाली कवि हैं। उनकी कविताएं संवेदना को चिंतन से जोड़ती दिखाई देती है। जैसे संघर्ष, जिजीविषा, सृजन, सौन्दर्य, परम्परा, आस्था, सार्थकता, विषाद और पूर्णता आदि को साही ने एक चिन्तक कवि के रूप में देखा है। 'आत्मोन्मुखता' का एक अलग रूप साही की कविताओं में प्रतिफलित होता है। उनके वैचारिक आदर्श उन्हें अपने अनुभवों और विश्वासों को व्यापक समाज के पक्ष में परखने के लिए प्रेरित करते हैं। साही की कविताएं मनुष्य के अन्तहीन संघर्ष को देखती है।

विजयदेव नारायण साही की भाषा में बौद्धिकता ज्यादा है। उनमें रूपक बिम्ब और प्रतीक बहुधा अमूर्तन की ओर चले जाते हैं। साही भाषा के द्वारा काव्यानुभव का एक नाटकीय तनाव भरा रूप निर्मित करना चाहते हैं। मुक्तिबोध की तरह साही ने भी अधिकांश लम्बी कविताएं लिखीं हैं, जिनमें नाटकीय एकालाप और चिंतन है। 'अलविदा' 'एक आत्मीय बातचीत की याद' 'सन्दर्भहीन बारिश', 'घाटी का आखिरी आदमी' आदि उनकी चर्चित कविताएं हैं।

इन कवियों के अलावा भवानी प्रसाद मिश्र, गिरिजा कुमार माथुर, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, रघुवीर सहाय, केदार नाथ सिंह आदि नई कविता के महत्वपूर्ण कवि हैं। इन कवियों का भी अपना भिन्न रचनात्मक स्वर है। अन्तर्वस्तु के स्तर पर भी ये अलग-अलग काव्य संसार के रचयिता हैं।

अभ्यास प्रश्न: तीन

प्रश्न 1: सही विकल्प बताइए (सही /गलत चिह्नित करें)

क) 'प्रात नभ था बहुत गोला शंख जैसे' काव्य पंक्ति किस कवि की है?

शमशेर बहादुर सिंह

गजानन माधव मुक्तिबोध

गिरिजा कुमार माथुर

ख) 'कवितांतर' के संपादक है:

अज्ञेय

जगदीश गुप्त

गोविन्द रजनीश

ग) 'ब्रम्हराक्षस' शीर्षक कविता के कवि हैं

कुंवर नारायण

नरेश मेहता

गजानन माधव मुक्तिबोध

प्रश्न 2: तीन या चार पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

क) नई कविता के प्रमुख कवियों का नाम बताइए

.....
.....

.....
.....

.....
.....

ख) 'फैंटेसी' से क्या अभिप्राय है।

.....
.....

.....

.....

.....

.....

ग) नई कविता द्वारा खोजे गए नये उपमानों के विषय में बताइए।

.....

.....

.....

.....

14.8 सारांश

नई कविता में नये भावबोध की केन्द्रीयता है तथा इसमें नया सौन्दर्यबोध प्रतिफलित होता दिखाई देता है। आलोचकों ने नई कविता को प्रयोगवाद के आगे की स्थिति माना है और इसमें वे संवेदना और शिल्प की दृष्टि से विकास लक्षित करते हैं। सन् 1952 में रेडियो से प्रसारित अपने व्याख्यान में अज्ञेय ने 'नई कविता' सम्बन्धी कई मान्यताओं को स्पष्ट किया था। नई कविता के विकास के सन्दर्भ में अज्ञेय द्वारा संपादित सप्तकों का महत्वपूर्ण योगदान है, इसके अतिरिक्त सन् 1946 से प्रकाशित 'ज्ञानोदय', सन् 1947 से प्रकाशित 'प्रतीक' नामक पत्रिकाओं के द्वारा नई कविता का स्वरूप सामने आने लगा था। सन् 1949 में प्रकाशित 'कल्पना' के द्वारा नई कविता के साथ-साथ 'नई कहानी', 'नई आलोचना' आदि का स्वरूप भी सामने आने लगा। सन् 1953 में 'नये पत्ते' पत्रिका सामने आई और सन् 1955 में जगदीश गुप्त और रामस्वरूप चतुर्वेदी के सहयोग से 'नई कविता' पत्रिका का प्रकाशन हुआ। इसके अतिरिक्त 'निकष', 'कविता' आदि ने नई कविता को आधार और प्रचलन दिया। अज्ञेय, मुक्तिबोध, धर्मवीर भारती, विजयदेव नारायण साही, जगदीश गुप्त, गिरिजा कुमार माथुर, भवानी प्रसाद मिश्र, शमशेर बहादुर सिंह, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, रघुवीर सहाय, नरेश मेहता, आदि नई कविता के कवि थे। नई कविता में व्यक्तिवादी व वस्तुवादी रूझानों की कविताएं मिलती हैं। कार्ल मार्क्स और सार्त्र, काल यास्पर्स जैसे दार्शनिकों के साथ-साथ गांधी, लोहिया, जयप्रकाश, आचार्य, नरेन्द्र देव की वैचारिकी ने भी नई कविता के कवियों को प्रभावित किया है। नई कविता की संवेदना का आधार आधुनिक भावबोध है। ये कविताएं जीवन के व्यापक क्षेत्रों से अर्थग्रहण करना चाहती हैं। वैयक्तिक रूझानों वाली आधुनिकतावादी कविता की संवेदना के केन्द्र में 'संकट बोध' है तो मार्क्सवादी प्रभाववाली यथार्थवादी कविता के भावबोध का सम्बन्ध प्रतिरोध और संघर्ष की चेतना से है। इसके अतिरिक्त बौद्धिकता, क्षणबोध, अनुभूति की प्रामाणिकता आदि इसके भावबोध की विशेषताएं हैं। भाषा में नया बौद्धिक संस्पर्श दिखाई देता है। नाटकीयता और अप्रस्तुत विधान आदि भी यहाँ अपनी नवीनता में दिखाई देते हैं।

14.9 शब्दावली

1. संप्रेषणीयता: श्रोता सहृदय पाठक या भावक द्वारा अर्थ ग्रहण संप्रेषण है।

2. अनुभूति की प्रमाणिकता: विश्वसनीय आंतरिक अनुरूप।

3. विडम्बनाबोध: आधुनिक जीवन की जटिलता के कारण अनुभव में निहित वैषम्य को सूचित करने वाला पद है।

4. अमानुषीकरण: मानवीय संवेदनशीलता का अभाव इसे पूंजीवादी उपभोक्ता संस्कृति में मौजूद व्यक्तिवादिता के अतिरेक में देखा गया है।

5. लघुमानव: व्यापक यथार्थ की विकटता के निकट मध्यवर्गीय मनुष्य का निजताबोध जिसमें वह अपने व्यक्तित्व की सीमाओं से अनजान नहीं किन्तु उससे लज्जित भी नहीं।

6. मोहभंग: सन् 1947 में मिली स्वतंत्रता के प्रति उम्मीद के टूटने का अनुभव।

7. अस्तित्ववाद: विचारधारा नहीं अपितु दर्शन है जिसमें मनुष्य की अस्मिता की चिंता कार्ल यास्पर्स, हेडेगर, सार्त्र, कीकेगार्द आदि अस्तित्ववादी दार्शनिक हैं। इस दर्शन का आविर्भाव विश्वयुद्धोत्तर योरोप में हुआ। यह मृत्यु, अजनबीपन, सामाजिक अलगाव आदि परिणतियों पर विचार करता है।

8. मार्क्सवाद: सर्वहारा जन की आर्थिक सामाजिक मुक्ति का दर्शन है। मार्क्सवाद समाज का आधार पूंजी को मानता है, कला संस्कृति, दर्शन, राजनीति, कानून, उसकी अधिरचना है। आधार और अधिरचना का सम्बन्ध द्वंद्वात्मक होता है। ऐतिहासिक भौतिकवाद के द्वारा वह सामाजिक विकास की व्याख्या करता है। इसका बल पूँजीवादी समाज व्यवस्था की आलोचना है तथा साम्यवादी समाज अर्थात आर्थिक-सामाजिक समानता का मानवीय समाज इसका स्वप्न है जिसे वह क्रान्तिकारी जन एकता और संघर्ष के द्वारा संभव होता देखता है।

9. व्यक्ति स्वातंत्र्य: व्यक्ति की आत्मपर्याप्त निजता का बोध।

14.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न: एक

प्रश्न 1: रिक्त स्थानों की पूर्ति

क) 'तारसप्तक' का प्रकाशन वर्ष 1943 है।
ख) प्रयोगवाद का प्रवर्तक अज्ञेय को माना जाता है।
ग) नई कविता और अस्तित्ववाद शीर्षक' किताब के लेखक हैं डॉ. रामविलास शर्मा

प्रश्न 2: दो या तीन पंक्तियों में उत्तर

क) छायावाद से छायावादोत्तर कविता को अलगानेवाली काव्य प्रवृत्ति कविता की यथार्थदृष्टि है। छायावादोत्तर कविता ने अपने समय के यथार्थ को वस्तुनिष्ठ ढंग से देखने और व्यक्त करने का संघर्ष किया।

ख) प्रयोग को दोहरा साधन अज्ञेय ने कहा है। उनके अनुसार कविता की रचना प्रक्रिया में इस प्रयोग का दायित्व नई वास्तविकता को उसकी जटिलता में प्रवेश कर समझना है तथा उस वास्तविकता की अभिव्यक्ति के लिए नई अर्थभंगिमा युक्त भाषा का अन्वेषण है।

ग) दूसरा सप्तक के कवि हैं हरिनारायण व्यास, भवानी प्रसाद मिश्र, शमशेर बहादुर सिंह, नरेश मेहता, शकुंत माथुर, रघुवीर सहाय, धर्मवीर भारती तथा 'तीसरा सप्तक' के कवि हैं प्रयाग नारायण त्रिपाठी, कुअँर नारायण, कीर्ति चौधरी, केदारनाथ सिंह, मदन वात्स्यायन; विजय देव नारायण साही और सर्वेश्वर दयाल सक्सेना।

प्रश्न 3. कुछ सही कुछ गलत कथन-

क) प्रगतिशील लेखक संघ का प्रथम अधिवेशन लखनऊ में सम्पन्न हुआ था - सही कथन

ख) 'तारसप्तक' में संकलित कवियों में हरिनारायण व्यास हैं - गलत कथन

ग) प्रगतिवादी कविता का सम्बन्ध किसान मजदूर जनता के मुक्ति संघर्ष से है - सही कथन

प्रश्न 4: पाँच या छः पंक्तियों में उत्तर-

क) 'दूसरा सप्तक' सन् 1951 में प्रकाशित हुआ। प्रायः इसके साथ ही नई कविता का आरम्भ माना जाता है। विशेष रूप से सप्तकों के सम्पादक अज्ञेय की भूमिका इस संदर्भ में उल्लेखनीय मानी गई है। सप्तकों की भूमिका में अज्ञेय ने निरन्तर बदले हुए काव्यबोध की अभिव्यक्ति की चुनौतियों को रेखांकित किया। 'सप्तकों में आई कविताओं ने नई संवेदना और भाषा की बानगी भी प्रस्तुत की।

ख) 'प्रयोग' अज्ञेय के लिए एक सृजनात्मक मूल्य है जिसे वे काव्यवस्तु के साक्षात्कार और अभिव्यक्ति तक सक्रिय मानते हैं। 'अन्वेषण' इस प्रयोग का बुनियादी आधार है। कविता को रचनात्मक नवोन्मेषता प्रदान करने के लिए यह नये भावों की खोज से लेकर नई भाषिक भंगिमा की खोज तक अग्रसर है। कवि के सामने सम्प्रेषण की समस्या भी है। अतः इस अन्वेषण का सम्बन्ध प्रयोगधर्मी रचना प्रक्रिया से है।

अभ्यास प्रश्न: दो

प्र.1: रिक्त स्थानों की पूर्ति-

क) 'नदी के द्वीप' या 'दीप अकेला' जैसी अज्ञेय की कविताओं का केन्द्रीय आग्रह व्यक्ति की स्वातंत्र्य चेतना है।

ख) नई कविता के कवि के अनुसार क्षण बोध क्षणिकता का बोध नहीं है।

ग) लक्ष्मीकांत वर्मा के अनुसार नये कवियों के समक्ष उपस्थित यथार्थ विषम और तिक्त है।

प्र. 2: पाँच या छः पंक्तियों में उत्तर:

क) नई कविता की मूल प्रवृत्तियाँ हैं- 1. व्यक्ति स्वातंत्र्य चेतना 2. अनुभूति की प्रामाणिकता 3. क्षणबोध 4. यथार्थोन्मुखता। अज्ञेय, विजयदेव नारायण साही और मुक्तिबोध की कविताओं में ये प्रवृत्तियाँ प्रायः उनकी वैचारिक प्राथमिकताओं के कारण भिन्न रूपों में प्रतिफलित होती हैं। मोटे तौर पर हम इन्हें आधुनिकतावादी और मार्क्सवादी प्रभावों के अनुरूप घटित होते देखते हैं।

ख) नई कविता की संवेदना का फलक प्रायः मध्यवर्गीय जीवनानुभवों के प्रसार और गहराई से रूप लेता दिखाई देता है। प्रायः इसे आधुनिक भावबोध जो संकटबोध के साथ संघर्ष चेतना के अर्थ में हैं, उसके प्रतिफलन के रूप में देखते हैं। इसके अतिरिक्त रागात्मकता और प्रकृति के बदले हुए रूपों का नगरीयबोध के सापेक्ष साक्षात्कार यहाँ सम्मिलित है।

प्र.3. दो या तीन पंक्तियों में उत्तर:

क) नगरीय महानगरीय मनुष्य का भावबोध उसके सामाजिक सम्बन्ध, उसकी चेतना और मर्म को प्रभावित करने वाले दबाव और उनसे बनती जटिलताओं का साक्षात्कार नगरीय जीवनबोध में निहित है।

ख) क्षणबोध: यह एक सृजनात्मक आभा से भरा देशकाल के अलावा काल की निरन्तरता से सम्बद्ध रागात्मक क्षण के रूप में हैं। अज्ञेय ने इसकी अद्वितीयता पर बल दिया है।

ग) अस्तित्ववाद का प्रभाव अज्ञेय, विजयदेव नारायण साही, लक्ष्मीकांत वर्मा, कैलाश बाजपेई आदि कवियों पर देखा गया है। माना गया है कि अस्तित्ववाद के प्रभाव के कारण नई कविता के कवियों में मोहभंग, अजनबीपन, आत्मविघटन आदि घटित हुए।

अभ्यास प्रश्न: तीन

प्रश्न 1: सही विकल्प

क) प्रात नभ था बहुत गीला शंख 'जैसे' पंक्ति शमशेर बहादुर सिंह की है।

ख) 'कवितांतर' के सम्पादक जगदीश गुप्त हैं।

ग) 'ब्रह्मराक्षस' शीर्षक कविता के कवि हैं गजनान माधव मुक्ति बोध।

प्रश्न. 2. तीन या चार पंक्तियों में उत्तर।

क) नई कविता के कवि हैं अज्ञेय, मुक्तिबोध, धर्मवीर भारती, शमशेर बहादुर सिंह, जगदीश गुप्त, गिरिजाकुमार माथुर, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, कुँअर नारायण, नरेश मेहता आदि।

ख) 'फैंटेसी' को अतियथार्थवादी कला कहा जाता है। इसका सम्बन्ध स्वप्न या अवचेतनमन के असम्बद्ध बिंब विधान से भी माना गया है। इसकी प्रक्रिया में बिंब प्रतीक मिथक आदि स्वप्न के तर्क से नियोजित होते हैं अर्थात् कार्य कारण पद्धति या सुसम्बद्धता को परे करते हुए निर्मित हो सकते हैं।

ग) नई कविता द्वारा अनेक नये उपमान खोजे गये हैं। आधुनिक भाव के अनुरूप बाजरे की कलंगी, मुलम्मा लगा बेसन, चाय की प्याली, सिगरेट का धुंआ, मेज, कुर्सी, चटाई, फाइलें, जूते वगैरह।

14.11उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. सिंह, नामवर, कविता के नये प्रतिमान।

2. बाजपेई, नन्द दुलारे, हिन्दी साहित्य: बीसवीं शताब्दी।

3. कुंतल, रमेश 'मेघ', क्योंकि समय एक शब्द है।

4. मिश्र, रामदरश, आज का हिन्दी साहित्य: संवेदना और दृष्टि।

5. डॉ. रघुवंश, साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य।

6. राय, डॉ. रामबचन, नयी कविता: उद्भव और विकास।

7. शुक्ल, डॉ. ललित, नया काव्य: नये मूल्य।

8. चतुर्वेदी, रामस्वरूप, नई कविताएँ: एक साक्ष्य।

14.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. नई कविता से आप क्या समझते हैं ? सविस्तार स्पष्ट कीजिए . नई कविता कि पृष्ठभूमि एवं प्रमुख प्रवृतियों को भी स्पष्ट कीजिए .

2. नई कविता पर एक विस्तृत निबंध लिखिए तथा नई कविता के दो प्रमुख कवियों का समीक्षात्मक परिचय दीजिए .

इकाई 15 काव्य का लक्षण एवं स्वरूप

15.1 प्रस्तावना
15.2 उद्देश्य
15.3 काव्य का शाब्दिक अर्थ
    15.3.1 कवि, काव्य और साहित्य
    15.3.2 काव्य का लक्षण
15.4 काव्य स्वरूप की ऐतिहासिक परम्परा
    15.4.1 काव्य विषयक संस्कृत के आचार्यों की दृष्टि
    15.4.2 काव्य विषयक रीतिकालीन आचार्यों की दृष्टि
    15.4.3 काव्य विषयक पाश्चात्य आचार्यों की दृष्टि
    15.4.4 काव्य विषयक आधुनिक हिन्दी आचार्यों की दृष्टि
15.5 सारांश

15.6 शब्दावली
15.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
15.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
15.09 उपयोगी पाठ्य सामग्री
15.10 निबन्धात्मक प्रश्न

15.1 प्रस्तावना

इस इकाई के माध्यम से आप यह समझ सकते हैं कि साहित्य का क्या अर्थ है। साहित्य के लिए हम काव्य शब्द का प्रयोग क्यों कर रहे हैं।

यह सवाल हर संवेदनशील व्यक्ति के मन में सदेव उठता है कि साहित्य क्या है? साहित्य क्यों पढा-लिखा-सुना जाता है ? साहित्य केसे लिखा जाता है? साहित्य की जरूरत हमें क्यों होती है? हमारी सामान्य भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति साहित्य या किसी भी ललित कला द्वारा नहीं हो सकती है फिर भी साहित्य के बिना हमारा जीवन अधूरा है. क्योंकि हमारी मानसिक आवश्यकताओं की पूर्ति साहित्य, संगीत, कला द्वारा ही होती है इसीलिए यह कहा जाता है कि साहित्य, संगीत और कला से विहीन व्यक्ति पूँछ और सींग से रहित पशु के समान होता है, अत: साहित्य हमारे लिए अपरिहार्य है. साहित्य के विषय में हमारे मनीषियों ने बड़े विस्तार से चर्चा की है। प्रस्तुत इकाई द्वारा काव्य के विविध सन्दर्भों के साथ काव्य के स्वरूप से परिचित कराया जाएगा।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप काव्य/ साहित्य के विषय में जान सकेंगे तथा काव्य के विषय में संस्कृत साहित्यशास्त्रियों, पश्चिमी विचारकों, रीतिकालीन आचार्यो और हिन्दी के विचारकों के मत से परिचित हो सकेंगे और काव्य का सम्यक् विश्लेषण कर सकेंगे।

15.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- बता सकेंगे कि साहित्य क्या है।
- समझा सकेंगे कि साहित्य के विषय में हमारे मनीषियों के क्या अभिमत हैं।
- काव्यशास्त्र की विभिन्न पुस्तकों तथा साहित्यशास्त्र की शब्दावली से परिचित हो सकेंगे।

15.3 काव्य का अर्थ

15.3.1 कवि, काव्य और साहित्य -

काव्य का शाब्दिक अर्थ है कवि की रचना अर्थात् कवि द्वारा जो कार्य किया जाए, उसे काव्य कहते हैं- 'कवयतीति कवि: तस्य कर्म: काव्यम् (एकावली), कवेरिदं कार्यभावो वा' (मेदिनीकोश)। शब्दकल्पद्रुम में कवि की परिभाषा दी गई है-'कवते सर्वजानाति सर्ववर्णयतीति कवि:' जो सब जानता है, सम्पूर्ण विषयों का वर्णन करता है, वह कवि है। हम यह लोकोक्ति अक्सर उद्धृत करते हैं - 'जहाँ न पहुँचे रवि, वहाँ पहुँचे कवि। अर्थात् कवि के पास ऐसी क्षमता होती है, जिससे वह उन उन विषयों, विचारों, स्थितियों के विषय में सोच और अभिव्यक्त कर सकता है, जिनके विषय में सामान्य व्यक्ति नहीं सोच पाता। श्रुति कहती है-'कविर्मनीषी परिभू: स्वयंभू'। कवि मनीषी है, परिभू' यानी अपनी अनुभुति के क्षेत्र में सब कुछ समेटने में सक्षम है और स्वयंभू यानी जो अपनी अनुभूति के लिए किसी का ऋणी नहीं है तात्पर्य यह है कि काव्य उस मनीषी की सृष्टि है जो सर्वज्ञ है, सम्पूर्ण है। कवि को नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा से सम्पन्न होना चाहिए और उसमें वर्णन निपुणता होनी चाहिए। यह वर्णन निपुणता असाधारण होनी चाहिए। आचार्य मम्मट अपनी कृति काव्यप्रकाश में 'काव्यं लोकोत्तरवर्णननिपुणं कवि कर्म.....' यानी काव्य को लोकोत्तर वर्णन में निपुण कवि की कृति कहते हैं। आनन्दवर्धन का कहना है कि अपार काव्यसंसार में कवि ब्रह्मा है और उसे संसार में जो जैसा अच्छा लगता है, वैसा ही वह उसका निर्माण करता है-

अपारे काव्यसंसारे कविरेक: प्रजापति।

यथास्मै रोचते विश्वं तथैव प्रतिजानीते। (ध्वन्यालोक,तृतीय उद्योत,)

इस आधार पर कवि से आशय है रचनाकार से और काव्य से आशय है साहित्य से। हमारे भारतीय चिन्तन में इसीलिए रचनाकार को कवि और उसकी रचना को काव्य कहा जाता रहा है। साहित्य की कोई भी विधा चाहे वह नाटक हो, कविता हो काव्य ही कहलाता था। 'काव्येषु नाटकं रम्यम्', 'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति' जैसी उक्तियाँ इस बात का प्रमाण हैं। कालान्तर में हिन्दी साहित्य जगत् में काव्य शब्द पद्यबद्ध रचना के लिए रूढ हो गया और साहित्य शब्द व्यापक अर्थ में लिया गया। दरअसल आचार्य राजशेखर द्वारा रचित 'काव्य-मीमांसा' नामक कृति में सबसे पहले काव्य के अर्थ में साहित्य और काव्यशास्त्र के लिए साहित्यविद्या शब्द का प्रयोग मिलता है, इसके पूर्व साहित्य के लिए काव्य शब्द ही प्रयुक्त होता रहा है। पश्चिम में साहित्य शब्द के लिए 'लिटरेचर' शब्द का व्यवहार किया जाता है।

साहित्य शब्द की व्युत्पत्ति 'सहित' से हुई है, जिसका अर्थ है- सहभाव, समन्विति। साहित्य शब्द की व्याख्या दो रूपों में की जाती है। **एक**- साहित्य का निर्माण शब्द और अर्थ के समन्वय से होता है। **दो**-जिसमें हित की भावना सन्निहित हो, वह साहित्य है। साहित्य में सत्यं, शिवं और सुन्दरम् का समन्वय होता है। वस्तुत: काव्य में शब्द और अर्थ अपने पूरे सामर्थ्य के साथ, सौन्दर्य के साथ प्रयुक्त होते हैं। तुलसीदास का कहना है 'गिरा अरथ जल बीचि सम,

कहियत भिन्न न भिन्न' । शब्द और अर्थ पानी और उसमें उठने वाली लहर के समान हैं, जिन्हें अलग नहीं किया जा सकता है। साहित्य का समस्त कार्य भाषिक अभिव्यंजना का ही व्यापार है। शब्द और अर्थ दोनों के योग से काव्य का स्वरूप संगठित होता है, यह बात तो निर्विवाद है ही, साहित्य का लक्ष्य आनन्द प्रदान करना-यानी सुन्दरम, यथार्थ का चित्रण करना' यानी सत्यं, और व्यवहारज्ञान कराना, अकल्याणकारी तत्वों का विनाश करना, यानी शिवं की प्राप्ति कराना भी है। हम यह कह सकते हैं कि सामान्य शब्दार्थ काव्यनिर्माण के साधन हैं, कवि की लोकोत्तरवर्णन निपुणता इन्हीं सामान्य शब्दों और अर्थों को ऐसी शक्ति से सम्पन्न बना देती है, जिससे ये रससृष्टि करने में सफल हो जाते हैं। मम्मट आदर्श काव्य ऐसे शब्दार्थ के साहित्य को मानते हैं जो रसनिर्भर है, रस का अभिव्यंजक है। उनका कहना है-

नियतिकृतनियमरहितां ह्लादैकमयीमनन्यपरतन्त्राम्।

नवरसरुचिरां निर्मितमादधती भारती कवेर्जयती ।।

(काव्यप्रकाश, आनन्दमंगल,प्रथमउल्लास,)

विधाता के द्वारा निर्मित नियमों से रहित, आह्लादमयी, अपने अतिरिक्त अन्य समस्त कार्यकलाप की अधीनता से परे, अलौकिक रस से भरी और नितान्त मनोहर कवि-भारती की जय हो।

काव्य वाणी का सर्वोत्तम व्यापार है और कवि की सर्वोत्कृष्ट कृति है। व्यापक अर्थ में कवि शब्द का प्रयोग साहित्यकार के लिए और काव्य का प्रयोग साहित्य के लिए होता है। वर्तमान समय में काव्य अंग्रेजी के पोयट्री के और साहित्य लिटरेर के पर्याय के रूप में व्यवहृत होता है। अत: जब हम भारतीय काव्यसिद्धान्तों की चर्चा करते हैं तो काव्यशास्त्र शब्द का व्यवहार करते हैं और जब पाश्चात्त्य या आधुनिक हिन्दी साहित्य के सिद्धान्तों की बात करते हैं तो साहित्य शास्त्र या समालोचना शब्द का व्यवहार करते हैं।

15.3.2 काव्य का लक्षण

संस्कृत में लक्षण की परिभाषा दी गई है-'तदैव हि लक्षणं यदव्याप्ति अतिव्याप्ति असम्भवरूप दोषत्रयशून्यम्' अर्थात् लक्षण वह है जो अव्याप्ति, अतिव्याप्ति और असम्भव -इन दोषों से रहित हो। जिस विषय या वस्तु को पारिभाषित करना हो, उसके स्वरूप का ठीक ठीक, सन्तुलित निरूपण लक्षण कहलाता है। इस दृष्टि से काव्य को पारिभाषित करना अत्यन्त दुष्कर है, क्योंकि हम देखते हैं कि काव्य को लक्षण के दायरे में बाँधने के प्रयत्न बहुत समय से अनेक विद्वानों ने किए, काव्य की परिभाषाएं दीं, किन्तु एक सम्पूर्ण, सर्वग्राह्य परिभाषा दे पाने में आज तक कोई भी समर्थ नहीं हुआ। काव्य का स्वरूप बहुत व्यापक और सूक्ष्म है। आदिकाल से लेकर आज तक काव्य का स्वरूप स्पष्ट करने के अनेक प्रयास होते रहे हैं परन्तु काव्य की ठीक-ठीक परिभाषा अभी तक नहीं बनी। नवनवोन्मेषशाली प्रतिभा से सम्पन्न कवि की रचना है काव्य। उसमें नित नूतन कल्पनाएं, नित नये विचार, नित नये भाषिक प्रयोग, समय और समाज के नित परिवर्तित होते रूप परिलक्षित होते रहते हैं इसीलिए काव्यशास्त्र की सुदीर्घ परम्परा में

हमें काव्य-लक्षण विषयक अनेक परिभाषाएं मिलती हैं। इस सन्दर्भ में महादेवी वर्मा का यह कथन उद्धृत किया जा सकता है-

'कविता मनुष्य के हृदय के समान ही पुरातन है; परन्तु अबतक उसकी कोई ऐसी परिभाषा न बन सकी जिसमें तर्क-वितर्क की सम्भावना न रही हो। धुँधले अतीत भूत से लेकर वर्तमान तक, और 'वाक्यं रसात्मकं काव्यं' से लेकर आज के शुद्ध बुद्धिवाद तक जो कुछ काव्य के रूप और उपयोगिता के सम्बन्ध में कहा जा चुका है, वह परिणाम में कम नहीं; परन्तु अब तक न मनुष्य के हृदय का पूर्ण परितोष हो सका है ओर न उसकी बुद्धि का समाधान। यह स्वाभाविक भी है; क्योंकि प्रत्येक युग अपनी समस्याएं लेकर आता है, जिनके समाधान के लिए नई दिशाएं खोजती हुई मनोवृत्तियाँ उस युग के 'काव्य' और 'कलाओं' को एक विशिष्ट रूपरेखा देती रहती हैं। मूल तत्व न जीवन के कभी बदले हैं; और न काव्य के; कारण वे उस चेतना से सम्बद्ध हैं, जिसके तत्त्वत: एक रहने पर ही जीवन की अनेकरूपता निर्भर है'।(महादेवी वर्मा का विवेचनात्मक गद्य,)

यह तो निर्विवाद है कि साहित्य और समाज में अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। और समाज में परिवर्तन की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। इस परिवर्तन का प्रभाव साहित्य पर भी पडता है, जिसके कारण उसका रूप परिवर्तित होता रहता है। सामान्य रूप से भी मूर्त वस्तुओं की तो परिभाषा दी जा सकती है, अमूर्त को ठीक-ठीक रूप से पारिभाषित करना कठिन है। फिर भी साहित्य के स्वरूप को समझने के लिए संस्कृत के पुरातन चिन्तक आचार्य भरतमुनि से लेकर आज तक काव्य विषयक मान्यताओं को परखना आवश्यक है। इससे हम यह समझ सकेंगे कि काव्य के शाश्वत तत्त्व कौन से हैं और कौन से तत्त्व युगानुरूप शामिल होते जाते हैं।

(क) बोध प्रश्न

1. काव्य और साहित्य के विषय में अपने विचार कुछ पंक्तियों में दीजिए।

2. काव्य में शब्द और अर्थ का महत्त्व बताइए।

रिक्त स्थान भरिए-

1.भरतमुनि की रचना का नाम..... है।

2.काव्य की ठीक ठीक परिभाषा देना.....है, क्योंकि वह .....पदार्थ है।

सत्य असत्य बताइए-

1. काव्यप्रकाश के रचनाकार मम्मट हैं। (सत्य)/ (असत्य)

2.काव्य के लिए साहित्य शब्द का प्रयोग सबसे पहले नाट्यशास्त्र में हुआ है। (सत्य)/ (असत्य)

15.4 काव्य स्वरूप की ऐतिहासिक परम्परा

जैसा कि हम पहले जान चुके हैं कि काव्य का जब से आरम्भ हुआ है, काव्य के स्वरूप के विषय में विद्वानों ने चिन्तन करना आरम्भ कर दिया है। भारतीय काव्यशास्त्र की दो सहस्राधिक वर्षों की अवधि में काव्य स्वरूप विषयक अनेक अवधारणाएं स्थापित की गईं। इसी तरह पश्चिम में भी प्लेटो के पहले से ही काव्य विषयक मान्यताएं स्थापित हाने लगी थीं। तब से लेकर आजतक काव्य को परिभाषा में बॉधने के जो प्रयत्न हुए, उन्हें हम कई दृष्टियों से परख सकते हैं। ऐतिहासिक कालक्रम के आधार पर, बहिरंग और अंतरंग को आधार बनाकर या काव्य के विविध अवयवों- शब्द, अर्थ, शब्दार्थ, शब्दव्यापार आदि की द्रष्टि से काव्य के स्वरूप पर हम विचार कर सकते हैं, किन्तु अध्ययन की सुविधा के लिए ऐतिहासिक कालक्रम के आधार पर काव्यलक्षणों पर विचार करना समुपयुक्त होगा। इसके लिए हम सबसे पहले संस्कृत के आचार्यों की परम्परा को उल्लिखित करेंगे, फिर रीतिकालीन आचार्यों का, इसके बाद पश्चिम के विचारकों का और फिर हिन्दी के समीक्षकों का।

15.4.1 काव्य विषयक संस्कृत आचार्यों की दृष्टि

भारतीय काव्यचिन्तकों में सबसे पहले आचार्य भरतमुनि का नाम आता है। भरतमुनि ने अपनी नाट्यशास्त्र नामक कृति में काव्यविषयक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। उन्होंने काव्य की परिभाषा तो नहीं दी है, लेकिन नाटक के सन्दर्भ में काव्य के सात तत्त्वों का उल्लेख किया है-

1. सर्वसुगमता
2. नृत्योपयोगयोग्यता
3. संधियुक्तता
4. मृदुललित
5. गूढशब्दार्थहीनता
6. युक्तिमत्ता
7. बहुकृतरसमार्गता

भरतमुनि लिखते हैं-

मृदुललित पदाढ्यं गूढशब्दार्थहीनं, जनपदसुखबोध्यं युक्तिमन्नृत्ययोज्यम्।

बहुकृतरसमार्गं सन्धिसन्धानयुक्तं, स भवति शुभकाव्यं नाटक प्रेक्षकाणाम्।। -नाट्यशास्त्र, 16/118

-नाटक देखनेवालों के लिए वह शुभकाव्य होता है जिसमें कोमल और ललित पद(शब्द) हों, गूढ शब्द और अर्थ जिसमें नहीं हों, जो सबको आसानी से समझ में आ जाए, जिसमें नृत्य आदि का आयोजन किया गया हो, विविध रसों का जिसमें समावेश हो और सन्धियुक्तता हो।

भरत ने यहाँ जिन काव्यतत्वों की चर्चा की है, वे मूलत: रूपक पर घटित होते हैं, काव्य पर नहीं। यदि हम यहाँ वर्णित नृत्यबद्धता और कथावस्तु की सन्धियों को दृश्यकाव्यपरक मान कर छोड दें तो यह पाते हैं कि भरत ने काव्य में कोमलता, सुबोधता और रसनीयता का उल्लेख किया है। ध्यातव्य है कि कोमलता, सुबोधता या रसनीयता काव्य के अवयव नहीं हैं अपितु काव्य की विशेषताएं हैं अत: भरतमुनि का काव्यलक्षण सम्यक् नहीं है।

भरतमुनि के बाद आचार्य भामह ने अपनी कृति 'काव्यालंकार' में काव्य का लक्षण प्रस्तुत किया है-**'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्'** अर्थात् शब्द और अर्थ का सहभाव काव्य है। भामह का यह लक्षण अत्यन्त व्यापक है और केवल काव्य पर ही नहीं, व्याकरण, दर्शन, शास्त्र, लोकव्यवहार सभी पर लागू होती है। समाज में जहाँ भी भाषिक व्यवहार होता है, शब्द और अर्थ का सहभाव वहाँ होता ही है। सम्पूर्ण वाड्.मय शब्द और अर्थ का ही तो व्यापार है, अत: वाणी के प्रत्येक रूप को काव्य मानना होगा,जबकि यह बात बहुत स्पष्ट है कि काव्य मे प्रयुक्त शब्द और अर्थ सामान्य अर्थ से विलक्षण होते हैं। इस दृष्टि से भामह की काव्यविषयक यह परिभाषा अतिव्याप्ति दोष से युक्त है। इसके अतिरिक्त भामह ने 'सहितौ' शब्द के अभिप्राय को स्पष्ट नहीं किया है। लेकिन भामह की कृति काव्यालंकार को पढने पर यह स्पष्ट होता है कि भामह के पूर्ववर्ती आचार्यों की दो विचार सरणियाँ थीं, जिनमें से एक की दृष्टि के अनुसार काव्य सौन्दर्य का मूल रूप अर्थालंकार था तथा दूसरे के अनुसार शब्दालंकार। आचार्य कुन्तक ने अपनी कृति वक्रोक्तिजीवितं में भी इस तथ्य की पुष्टि की है-

'केषांचिन्मतं कविकौशलकल्पितकमनीयतातिशय: शब्द एव केवलं काव्यम् इति, केषांचिद् वाच्यमेव रचनावैचित्र्यचमत्कारकाकर काव्यम् इति' । अर्थालंकारवादियों के अनुसार रूपक,उपमा आदि अर्थालंकारों के द्वारा ही काव्य का सौन्दर्य निष्पन्न होता है क्योंकि काव्यगत सौन्दर्य का ज्ञान अर्थ की प्रतीति के बाद ही सम्भव है। दूसरी ओर शब्दालंकारवादियों का मानना है कि काव्य की चारुता शब्द में ही है क्योंकि शब्द के द्वारा ही अर्थ की प्रतीति होती है। भामह इन दोनों अतिवादी दृष्टियों में समन्वय करते हुए मानते हैं कि काव्य की चारुता शब्द और अर्थ दोनों के समन्वय में ही है। वे कहते हैं-

'शब्दाभिधेयालंकारभेदादिष्टं द्वयं तु न: - काव्यालंकार,1/16

एक बात और ध्यातव्य है। भामह का कहना है कि 'सूर्य अस्त हो रहा है, चन्द्रमा उदित हो रहा है, पक्षी अपने घोसलों को जा रहे हैं, ऐसे वाक्यों को मैं वार्ता कहता हूँ, काव्य नहीं। काव्य तो उन वाक्यों में होता है, जो लोकातिक्रान्त हों'। स्पष्ट है कि भामह की दृष्टि में उस शब्दार्थ के साहित्य को काव्य कहा जा सकता है, जिसमें भाषा का सर्वोत्तम प्रयोग हो। भामह के अनुयायी कुन्तक ने अपने काव्यलक्षण द्वारा इस बात को स्पष्ट भी किया है, जिसके विषय में हम आगे चर्चा करेंगे। यहाँ इतना कहना जरूरी है कि भामह द्वारा दिया गया यह काव्य लक्षण वस्तुत: काव्यलक्षण नहीं है और अगर हम इसे लक्षण मानते हैं तो भी इसमें अतिव्याप्ति दोष होने के कारण इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

भामह के बाद आचार्य दण्डी ने काव्य के विषय में बताया है -'शरीरं तावदिष्टार्थ व्यवच्छिन्ना पदावली' (काव्यादर्श, 1-10) इष्ट (अभीप्सित) या चमत्कृत अर्थ से परिपूर्ण शब्दावली को काव्यशरीर कहते हैं। दण्डी की दृष्टि में वे शब्द, जो मनोरम या हृदयाह्लादक अर्थ से युक्त हों, काव्य का शरीर हैं। दरअसल दण्डी के समय तक काव्य में 'आत्मा' की खोज होने लगी थी और आचार्य यह मानने लगे थे कि शब्दार्थ काव्य का शरीर हैं और उसकी आत्मा या वास्तविक तत्त्व कुछ और ही हैं। ये तत्व धीरे -धीरे काव्यात्मा विषयक सम्प्रदायों के रूप में विकसित हुए। ये तत्व थे 'अलंकार, रस, रीति, ध्वनि, वक्रोक्ति और औचित्य। इन सम्प्रदायों के विषय में हम आगे की इकाईयों में चर्चा करेंगे।

हमने यह पाया कि दण्डी की दृष्टि में विवक्षित अर्थ से परिपूर्ण पदावली काव्य का शरीर है। प्रश्न उठता है कि फिर काव्य का आत्मतत्व क्या है \ दण्डी अर्थालंकार और रस को काव्य का अनिवार्य तत्व स्वीकार करते हैं -'कामं सर्वोप्यलंकारो रसमर्थे निषिंचति (काव्यादर्श, 1/62) । दण्डी अलंकारजन्य आह्लाद को रस मानकर यह स्वीकार किया है कि सभी अलंकार रस में संचार करते हैं। दण्डी की ही भॉति आनन्दवर्धन ने भी अपनी कृति ध्वन्यालोक में 'शब्दार्थं शरीरं तावत्काव्यम्' कहकर शब्दार्थ को काव्य का शरीर माना है। काव्य के ये लक्षण काव्य को पूरी तरह पारिभाषित करने में समर्थ नहीं हैं।

दण्डी के बाद आचार्य वामन ने अपनी कृति 'काव्यालंकारसूत्रवृत्ति' में यद्यपि काव्य का स्वतन्त्र लक्षण नहीं दिया है किन्तु रीति-विवेचना के क्रम में यह कहा है कि गुण और अलंकार से युक्त शब्दार्थ ही काव्य है-'काव्यशब्दो•यं गुणालंकारसंस्कृतयो: शब्दार्थयोर्वर्तते (काव्यालंकारसूत्रवृत्ति ा,1.1.1) । भामह ने अपने काव्यलक्षण में केवल शब्दार्थ के साहित्य को काव्य कहा था, वामन ने शब्दार्थ की विशेषता बताई-जो शब्दार्थ दोष से रहित और गुणों से युक्त हो, वह काव्य है। वामन पहले आचार्य हैं, जिन्होंने काव्य के सौन्दर्य की चर्चा की है। वामन की यह धारणा परवर्ती आचार्यों द्वारा स्वागत किया गया और प्राय: आचार्यों ने काव्य में गुणयुक्तता और दोषराहित्य का उल्लेख किया। अग्निपुराणकार ने स्पष्ट: काव्य को दोषों से बचाने की बात कही। 'काव्यं स्फुरदलंकारं गुणवद् दोषवर्जितम्'(अग्निपुराण, अध्याय 337,श्लोक सं. 7)।

आचार्य कुन्तक ने भामह द्वारा वर्णित शब्द और अर्थ के सहभाव को काव्य माना है, किन्तु शब्दार्थ की विशेषता बताई है कि वह शब्दार्थ काव्य है, जिसमें वक्र कविव्यापार हो, जिसमें बन्ध व्यवस्था हो और जो सुनने वाले के दिल को खुशी दे-

'शब्दार्थौसहितौवक्रकविव्यापारशालिनि,बन्धेव्यवस्थितौकाव्यंतद्विदाह्लादकारिणि(व क्रोक्तिजीवितम्, उन्मेष 1, कारिका-7) कुन्तक के अनुसार काव्य का आधार विशिष्ट अर्थात् रसात्मकता से युक्त, सहृदय को आह्लादित करनेवाला, कविकौशल से सम्पन्न शब्दार्थ है, जो काव्य-मर्मज्ञों को आह्लादित करता है।

कुन्तक के परवर्ती आचार्यों में आचार्य मम्मट का काव्यलक्षण सर्वाधिक लोकप्रिय रहा। उन्होंने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के काव्यलक्षणों में सामंजस्य स्थापित करते हुए अपनी काव्यपरिभाषा दी-

तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुन: क्वापि (काव्यप्रकाश, 1/4)

दोष से रहित, गुणों से युक्त और कहीं कहीं अलंकार सहित शब्दार्थ को काव्य कहते हैं। मम्मट की दृष्टि में काव्य शब्द और अर्थ की समष्टि है, दोषराहित्य और गुणयुक्तता वहाँ आवश्यक है, अलंकारों का प्रयोग अनिवार्य नहीं है, अलंकाराभाव से भी काव्यत्व की हानि नहीं होती।

मम्मट के काव्यलक्षण को विस्तार से समझना जरूरी है। मम्मट ने काव्यलक्षण देते हुए शब्दार्थ की तीन विशेषताओं के विषय में बताया है- अदोषौ, सगुणौ तथा अनलंक़ती पुन: क्वापि।

1. **अदौषौ** - मम्मट का कहना है कि दोषरहित शब्दार्थ काव्य हैं। मम्मट के इस कथन का परवर्ती आचार्यों-विश्वनाथ, पण्डितराज जगन्नाथ आदि ने विरोध किया है। विश्वनाथ ने अदोषौ पद की आलोचना की है। उनका कहना है कि संसार में कोई भी कार्य सर्वथा दोषरहित नहीं होता,काव्य भी कविकर्म है, उसमें भी कोई न कोई दोष अवश्य होता है,अत: दोष रहित शब्दार्थ को काव्य माना जाय तो ऐसी रचना असम्भव है, जिसमें दोष नहीं हो। यदि यह मान लिया जाय कि काव्य में जहाँ दोष है, उतने अंश को काव्य न मानकर शेष अंश को काव्य माना जाय, तो काव्यत्व और अकाव्यत्व की रस्साकशी में वह रचना ही महत्वहीन हे जाएगी। इसी तरह जैसे किसी रत्न में कीडा लग जाने पर भी रत्न तो रत्न ही रहता है, काव्य में दोष होने पर भी काव्य तो काव्य ही रहेगा, अत: काव्य के लक्षण में दोष का उल्लेख करना उचित नहीं है। इसके अलावा दोष काव्य के रस के अपकर्षक होते हैं, यदि वे रस के अपकर्षक नहीं हैं, तो उन्हें दोष भी नहीं कहा जा सकता। आचार्य बलदेव उपाध्याय का कहना है कि मम्मट का अदोषौ से आशय है कि काव्य मे वे दोष नहीं होने चाहिए जो काव्यत्व की हानि करें। वे दोष जैसे श्रुतिकटुत्व, पुनरुक्ति, ग्राम्य आदि दोष दोष न रहकर गुण बन जाते हैं,दोष नहीं हैं। उदाहरणस्वरूप काव्य में किसी शब्द-वाक्यादि का बार बार प्रयोग अनुचित है लेकिन किसी भाव विशेष की व्यंजना के लिए अगर बार बार शब्द-वाक्यादि प्रयुक्त होते हैं तो वे दोष न होकर पुनरुक्तिप्रकाश गुण बन जाते हैं। रत्नाकर की गोपियाँ कृष्ण का संदेश जानने के लिए बार बार कहती हैं-हमको लिख्यो है कहा, हमको लिख्यो है कहा, हमको लिख्यो है कहा, कहन सबैं लगीं'। यह पुनरुक्ति उनकी हृदयगत अवस्था की द्योतक होने के कारण दोष नहीं है, भावाभिव्यंजक है, शब्दार्थ का गुण है।

2. **सगुणौ**- मम्मट का कहना है माधुर्यादि गुणों से युक्त शब्दार्थ काव्य है। गुणों को मम्मट रस के अंगी धर्म मानते हैं । विश्वनाथ का कहना है कि गुण तो रस के धर्म होते हैं,शब्द और अर्थ के नहीं, अत: जहाँ रस होगा, वहाँ वे भी रहेंगे और जहाँ रस नहीं रहेगा, वहाँ गुणों की स्थिति सम्भव नहीं है, अत: सगुणौ के स्थान पर 'सरसौ' पद उपयुक्त होता। किन्तु मम्मट का यहाँ यह अभिप्राय है कि काव्य की भाषा विषयानुरूप होनी चाहिए। यदि जहाँ वीरता आदि के विषय में बताना हो, भाषा ओजगुणयुक्त होनी चाहिए, जहाँ उदगार आदि का चित्रण हो, वहाँ माधुर्य,

जहाँ शान्त भाव हो, वहाँ प्रसाद गुण होना चाहिए। स्पष्ट है कि मम्मट गुणों को रस का धर्म मानते हैं (उन्होंने गुणों के लिए स्पष्टत: कहा है-ये रसस्यंगिनोधर्मा: शौर्यादय: इवात्मन:,) और यह भी माना है कि 'गौणवृत्ति से गुण का सम्बन्ध शब्द और अर्थ के साथ भी स्थापित हो जाता है'(भारतीय आलोचनाशास्त्र, पृ. 23) अत: विश्वनाथ आदि की आपत्ति निरर्थक है।

3. **अनलंकृती पुन: क्वापि** - मम्मट का मानना है कि काव्य में अलंकारों की अनिवार्यता नहीं होती। विश्वनाथ से पहले जयदेव ने अलंकारों की अनिवार्यता की बात करते हुए कहा था कि जो व्यक्ति काव्य को अलंकारों से रहित मानता है, उसे यह भी मानना पडेगा कि अग्नि भी उष्णता से रहित होती है(चन्द्रालोक, 1/12)। विश्वनाथ भी काव्यलक्षण में अनलंकृती पुन: क्वापि का समर्थन नहीं करते। दरअसल मम्मट के समय तक अलंकार 'काव्य की शोभा को बढाने वाले उपादान के रूप में रूढ हो गए थे, जगकि भामह आदि अलंकारवादियों के समय में अलंकार काव्य के सौन्दर्य को निर्मित करने वाले उपादानो के रूप में अत्यन्त व्यापक अर्थ के द्योतक थे। अब अलंकार काव्यशरीर के भी अंग न होकर ऊपर से आरोपित किए जाने वाले उपादान कहे जाने लगे, अत: मम्मट ने अलंकारों की अनिवार्यता स्वीकार नही की।

मम्मट के शब्दार्थौ शब्द पर पण्डितराज जगन्नाथ आपत्ति करते हुए यह मानते हैं कि काव्य शब्द को ही मानना चाहिए, शब्द और अर्थ दोनों को नहीं । पर यह आक्षेप आक्षेप मात्र है। यह तो स्वयं सिद्ध बात है कि काव्य शब्द और अर्थ दोनों में होता है। शब्द से अर्थ की प्रतीति होती है और अर्थ तो शब्द के विना अस्तित्वरहित है।

कुल मिलाकर मम्मट का मत अनेक दृष्टियों से उपयुक्त है क्योंकि इसमें एक ओर उन्होंने अपने पूर्ववर्ती भामह आदि आचार्यों के मतों का समन्वय किया है और दूसरी ओर निर्दोषता, गुणयुक्तता, रसपूर्णता और अलंकारों की स्थिति का वर्णन करके काव्य की व्यवस्थित परिभाषा दी है। इसीलिए उनके अनेक परवर्तियों ने उनके ही मत का समर्थन किया है। यथा-

1.अदोषौ सगुणौ सालंकारौ च शब्दार्थौ काव्यम् - काव्यानुशासन, हेमचन्द्र,

2.शब्दार्थौ निर्दोषौ सगुणौ प्राय: सालंकारौ काव्यम्- काव्यानुशासन, वाग्भट

3.शब्दार्थौ वपुरस्य तत्र विबुधरात्माभ्यधायिध्वनि:- एकावली, विद्याधर

4.गुणालंकारसहितौ शब्दार्थौ दोषवर्जितौ- प्रतापरुद्रीय, विद्यानाथ

मम्मट के उपरान्त आचार्य विश्वनाथ ने काव्यलक्षण प्रस्तुत किया-'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्'- अर्थात् रसयुक्त वाक्य काव्य है। विश्वनाथ के अनुसार रस के अभाव में कोई रचना काव्य नहीं है। पण्डितराज जगन्नाथ का मानना है कि यदि विश्वनाथ का यह काव्यलक्षण स्वीकार किया जाता है तो काव्य के ऐसे स्थल जो सरस नहीं होते हैं या रस से सीधे सम्बद्ध नहीं होते हैं,-जैसे प्रकृति वर्णन, उन्हें अकाव्य कहना पडेगा और काव्य का दायरा सीमित हो जाएगा।

इस दृष्टि से विश्वनाथ का काव्यलक्षण अव्याप्ति दोष से युक्त हो जाता है, यद्यपि वे जिस रसात्मकता की बात करते हैं, वह तो काव्य का अनिवार्य तत्व है लेकिन यह भी ध्यान देना होगा कि रस में काव्य के सभी तत्व गतार्थ नहीं होते अत: यह परिभाषा भी निर्दुष्ट नहीं है।

पण्डितराज जगन्नाथ ने काव्यलक्षण दिया-'रमणीयार्थ: प्रतिपादक: शब्द: काव्यम्'- रमणीय अर्थ का प्रतिपादक शब्द काव्य है। यहाँ रमणीय शब्द सौन्दर्य, इष्टार्थ, लोकोत्तरता, रसनीयता सभी आ जाता है और इस दृष्टि से पण्डितराज का काव्यलक्षण काफी व्यापक है किन्तु जगन्नाथ केवल शब्द में ही काव्यत्व मानते हैं, अर्थ में नहीं, जबकि यह बात तो स्वत: और सर्वस्वीकृत है कि शब्द और अर्थ में अभिन्न सम्बन्ध है, शब्द के विना अर्थ अस्त्वित्वहीन है और अथ के बिना शब्द शव के समान है।

संस्कृत के आचार्यों द्वारा दिये गए काव्यलक्षणों पर विचार करने पर ज्ञात होता है कि काव्यलक्षण विषयक तीन वर्ग आचार्यों के हैं। एक वर्ग काव्यलक्षण देते हुए शब्दार्थ पर बल देता है। भामह, वामन, रुद्रट, भोजराज, मम्मट, हेमचन्द्र, वाग्भटट, विद्यानाथ आदि आचार्य इसी वर्ग में आते हैं। दूसरा वर्ग शब्दार्थ को नहीं, केवल शब्द को काव्य मानता है। दण्डी, जयदेव, विश्वनाथ, पण्डितराज जगन्नाथ आदि इस वर्ग के आचार्य हैं। एक तीसरा वर्ग उन आचार्यों का है जो काव्य को व्यापार प्रधान मानता है। आचार्य कुन्तक, भट्ट नायक, आनन्दवर्धन आदि इस वर्ग के आचार्य हैं। भट्टनायक रस का विवेचन करते हुए भावनव्यापार की तथा आनन्दवर्धन ध्वनि का वर्णन करते हुए ध्वनन व्यापार की चर्चा करते हैं। इन काव्यलक्षणों में काव्य का कोई न कोई पक्ष छूटा है, इसीलिए परवर्ती काल में पुन: पुन: काव्य का स्वरूप निर्धारित करने की चेष्टा की जाती रही है। आप इस अंश को पढकर हमारे संस्कृत काव्यशास्त्र की सुदीर्घ परम्परा से परिचित हुए होंगे और काव्य के विषय में विविध विचारों से भी आप अच्छी तरह परिचित हुए होंगे। अब हम इसी ऐतिहासिक परम्परा का निर्वाह करते हुए हिन्दी के रीतिकालीन काव्यशास्त्रियों के विषय में जानेंगे। इससे पूर्व आप अपनी स्मृति को इस अभ्यास प्रश्न के द्वारा परखिए-

(ख) बोध प्रश्न

1. काव्य के विषय में मम्मट के विचार कुछ पंक्तियों में दीजिए।

2. वाक्यं रसात्मकं वाक्यम् और रमणीयार्थ: प्रतिपादक: शब्द: काव्यम् की व्याख्या कीजिए।

रिक्त स्थान भरिए-

1.भरतमुनि ने काव्यलक्षण **.....** विधा. को द्रष्टि में रखकर दिया है।

2.संस्कृत के कुछ आचार्य काव्यलक्षण देते हुए शब्दार्थ को महत्व देते हैं, कुछ .....को और कुछ.....को। 3.काव्य का एक उपयुक्त लक्षण बताइए।

सत्य असत्य बताइए-

1. विश्वनाथ ने मम्मट के काव्यलक्षण का खण्डन किया है। (सत्य)/ (असत्य)

2.पण्डितराज के काव्यलक्षण में काव्य के सभी तत्वों का उल्लेख किया गया है। (सत्य)/ (असत्य)

15.4.2 काव्य विषयक रीतिकालीन आचार्यों की दृष्टि

हिन्दी साहित्य में काव्यशास्त्रीय चिन्तन का आरम्भ रीतिकाल से होता है। रीतिकाल में काव्य के स्वरूप पर बहुत प्रकाश डाला गया है लेकिन मौलिकता का वहाँ सर्वथा अभाव है। रीतिकालीन आचार्यों ने प्राय: संस्कृत के आचार्यों विशेषत: मम्मट, विश्वनाथ और पण्डितराज जगन्नाथ के काव्यलक्षणों का भाषानुवाद किया है। रीतिकाल के प्रारम्भिक आचार्य चिन्तामणि लिखते हैं-

सगुन अलंकारन सहित, दोष रहित जो होइ।

शब्द अर्थ वारौं कवित, विवुध कहत सब कोइ।। (कविकुलकल्पतरु, 1/6)

दोषरहित, गुण और अलंकारों से पूर्ण शब्दार्थ को काव्य कहते हैं। कुलपतिमिश्र लोकोत्तर चमत्कार को काव्य कहते हैं-

'जगते अद्भुत सुखसदन शब्दरु अर्थ कवित्त।

यह लक्षण मैंने कियो समुझि गन्थ बहु चित्त।। (रसरहस्य,1/20)।

श्रीपति रस और अलंकार दोनों को काव्य का अपरिहार्य तत्व मानते हैं-

शब्द अर्थ बिन दोष गुन अलंकार रसवान।

ताको काव्य बखानिये श्रीपति परम सुजान।।(काव्यसरोज, 1)

भिखारीदास ने स्पष्टरूप से काव्य की परिभाषा नहीं दी है लेकिन काव्य-पुरुष की कल्पना करते हुए काव्यविषयक अपना अभिमत भी पस्तुत कर दिया है। उनका मानना है कि रस कविता का अंग है, अलंकार आभूषण, गुण काव्यसौन्दर्य के अभिव्यंजक हैं और काव्य को कुरूप बनाने वाले दोष हैं-

रस कविता को अंग, भूषन हैं भूषन सदा।

गुन सरूप और रंग, दूषन करें कुरूपता ।।- काव्यनिर्णय, 1/13

इन काव्यलक्षणों का विश्लेषण करने पर हम पाते हैं कि ये संस्कृत के आचार्यों के मतों का ही पिष्टपेषण मात्र हैं और इनमें मौलिकता नहीं है। अत: इनका विस्तार से विवेचन अपेक्षित नहीं है।

(ग) बोध प्रश्न

निम्नलिखित बहुविकल्पी प्रश्नों में सही विकल्प चुनिए-

1. काव्यसरोज के रचनाकार हैं-

(क)कुलपति (ख)श्रीपति (ग)भिखारीदास (घ) चिन्तामणि

2.किसके काव्यलक्षण में काव्यपुरुष की परिकल्पना की गई है-

(क) भिखारीदास (ख)श्रीपति (ग)कुलपति (घ) चिन्तामणि

15.4.3 काव्य विषयक पाश्चात्य आचार्यों की दृष्टि

भारतीय काव्यशास्त्र की ही तरह पश्चिम में भी काव्य विषयक चिन्तन की सुदीर्घ परम्परा है। प्लेटो से लेकर आज तक पचिम के विचारकों ने भी काव्यलक्षण स्थापित करने के निरन्तर प्रयास किए हैं। अरस्तू की स्थापना है-'Poetry is an art. Art is imitation of nature. Epic poetry, tragedy and comedy in most of their forms are, all,in theie conception, modes of imitation.....There is another art which imitates by means of language alone, and that either in prose and worse'- (हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली) अर्थात् काव्य एक कला है। कला प्रकृति का अनुकरण है। महाकाव्य, त्रासदी और कामदी- सभी अपने आप में अनुकरण के विचारात्मक तरीके हैं।..... केवल भाषा के माध्यम से अनुकृत की जाने वाली एक और कला है, जो गद्य और पद्य के रूप में पाई जाती है। अरस्तू के इस कथन की व्याख्या करने पर हम पाते हैं कि उन्होंने काव्य को प्रकृति का अनुकरण करनेवाली कला माना है। इसी तरह सर फिलिप सिडनी भी काव्यरचना को अनुकरण की कला मानते हैं। आप पाश्चात्य साहित्यशास्त्र का अध्ययन करते हुए पाएंगे कि पाश्चात्य परम्परा काव्य को अनुकरणमूलक मानती है। अरस्तू के गुरु, पाश्चात्यकाव्यशास्त्र के आद्याचार्य प्लेटो भी काव्य को अनुरण का अनुकरण मानते हैं। पर अगर आप ध्यान से देखें तो आपको यह बात स्पष्टत: समझ में आ जाएगी कि काव्य प्रकृति की हू-ब-हू नकल नहीं है अपितु एक रचना है। अरस्तू भी काव्य को पुनर्रचना मानते हैं। भारतीय काव्यशास्त्रीय दृष्टि भी यह बात स्वीकार करती है कि काव्य में लोक का अनुकरण किया जाता है। भरतमुनि नाट्यशास्त्र में यह मानते हैं कि नाट्य में लोकवृत्तानुकरण किया जाता है। अनुकरण की चर्चा नाट्यचर्चा के साथ अर्थात् दृश्यकाव्य केलिए तो की गई है, लेकिन श्रव्यादि काव्यों के कवि की सर्जना करता है। कहने का अभिप्राय यह है भारतीय साहित्यशास्त्र में काव्य को निर्मिति- यानी प्रयत्नपूर्वक की गई रचना भी कहा जाता है और यह भी माना जाता है कि काव्य कवि की ठीक

वैसे ही सृष्टि है, जैसे विधाता की सृष्टि। इसी तरह अरस्तू, पश्चिम के नव्यशास्त्रवादी समीक्षक आदि काव्य को एक निश्चित उद्देश्य से युक्त निर्मिति मानते हैं, दूसरी ओर पश्चिम के रोमांटिक कवि, युंग आदि मनोविश्लेषक यह मानते हैं कि कृति रचनाकार के अचेतन से स्वत: प्रस्फुटित होती है, जैसे प्रकृति के गर्भ से पौधा खुद-ब-खुद उगता है। कवि कीट्स आदर्श काव्य उसी को मानते हैं जो कवि के मन में उसी प्रकार उगे, जैसे व्रक्ष में कोंपलें उगती हैं। वर्ड्सवर्थ के विचार में 'काव्य प्रबल अनुभूतियों का स्वाभाविक उच्छलन है, जो शान्ति के क्षणों में स्मृति का विषय बने हुए मन:संवेगों से फूट निकलता है-'Poetry is spontaneous overflow of powerful feelings; it takes its origin from emotions recollected in trangulity' - (भारतीय काव्यशास्त्र मीमांसा)

डॉ जॉनसन कविता को ऐसी कला मानते हैं जो कल्पना की सहायता से युक्ति के द्वारा सत्य को आनन्द से समन्वित करती है-'poetry is an art of uniting pleasure with truth by calling imagination to the help of reasons'(हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली,) जॉनसन का यह अभिमत भारतीय चिन्तन के करीब है। वस्तुत: सम्यक् कल्पना काव्य को सत्य और आनन्द से सम्पन्न बना देती है। पर इस परिभाषा में भाषा पर विचार नहीं किया गया है। इसी तरह कॉलरिज सर्वोत्तम शब्दों के सर्वोत्तम क्रमविधान 'Best words in the best order'(हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली) को कविता कहते हैं और उन्होंने काव्यात्मा पर विचार नहीं किया है। इसी तरह मैथ्यू आर्नल्ड कविता को जीवन की आलोचना कहते हैं, शैली कविता को कल्पना की अभिव्यक्ति कहकर यह मानते हैं कि वह अत्यन्त प्रसन्न और सर्वोत्तम मस्तिष्क के सर्वोत्तम और सर्वाधिक सुखपूर्ण क्षणों का लेखाजोखा है। चैम्बर्स शब्दकोश में कल्पना और अनुभूति से उत्पन्न विचारों को मधुर शब्दों में अभिव्यक्त करने की कला को कविता कहा गया है- Poetry is an art of expressing in melodious words] thoughts which are the creation of imagination and feelings (हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली)।

पश्चिम की इन परिभाषाओं द्वारा काव्य को समझने-समझाने के अनेक प्रयास हुए किन्तु काव्य को इन लक्षणों के द्वारा पूरी तरह से रूपांकित नहीं किया जा सकता है। फिर भी इन परिभाषाओं को समग्रत: देखने पर आप काव्य का एक सर्वमान्य खाका तो खींच ही सकते हैं। सर्वप्रथम यह बात तो सामानयत: सबको स्वीकार्य है कि काव्य में शब्द और अर्थ आवश्यक तत्व हैं। कल्पना कवि को अपने काव्यसंसार में ऊँची उडान भरने का अवसर देती है, संवेदना रस की दृष्टि करती है और वैचारिकता संवेदना, कल्पना को समुचित रूप से संगठित करके भाषा रूपी उपकरणों से अभिव्यक्त कर देती है। इस तरह शब्द, अर्थ, कल्पना, भाव और विचार -ये काव्य के आवश्यक तत्व माने जा सकते हैं।

इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए हिन्दी के आधुनिक समीक्षकों ने काव्य के स्वरूप के विषय में विचार किया है, हम इस विषय में आगे चर्चा करेंगे, उससे पूर्व आप प्रस्तुत अभ्यास द्वारा अपनी स्मृति को परखें-

(घ) बोध प्रश्न

1. काव्य को आप अनुकरण मानेंगे अथवा सृजन ?

2.काव्य में कल्पना का क्या योगदान है ?

सत्य/ असत्य बताइए-

3.पश्चिम के पहले समीक्षक अरस्तू हैं- (सत्य / असत्य)

4.सर्वोत्तम शब्दों का सर्वोत्तम क्रमविधान कविता है- यह विचार कॉलरिज का है (सत्य / असत्य)

5. निम्नलिखित में से किस समीक्षक ने रचना को पुनर्रचना कहा है-

(क) प्लेटो (ख)अरस्तू (ग)कॉलरिज (घ) जॉनसन

6.कविता को प्रबल अनुभूतियों का सहज उच्छलन मानते हैं-

(क) कीट्स (ख)अरस्तू (ग)कॉलरिज (घ) वर्डसवर्थ

15.4.4 काव्य विषयक आधुनिक हिन्दी आचार्यों की दृष्टि

आपने संस्कृत, रीतिकाल तथा पश्चिम के विचारकों की दृष्टि से काव्य स्वरूप के विषय में जाना। हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में आधुनिक काल में गद्यविधाओं का सर्वतोमुखी विकास होने के साथ साथ साहित्यविषयक गम्भीर चिन्तन भी आरम्भ हुआ और अब साहित्य विषयक सिद्धान्तों को नई दृष्टि से परखा गया। हिन्दी के साहित्यचिन्तकों के सामने भारतीय काव्यशास्त्र की एक सुदीर्घ परम्परा थी और पश्चिम की भी। यह बडी स्वाभाविक बात है कि इस परम्परा का प्रभाव आधुनिक काल के चिन्तकों पर पडा और हिन्दीगद्य के आरम्भिक आचार्यों के काव्यविषयक अभिमत संस्कृत के आचार्यों के मतों से प्रभावित रहा। कुछ परिभाषाओं का उल्लेख करते हैं। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने अपनी रचना 'रसज्ञरंजन में काव्य की परिभाषा इस रूप में दी -'कविता प्रभावशाली रचना है, जो पाठक या श्रोता के मन पर आनन्ददायी प्रभाव डालती है।.... मनोभाव कल्पना का रूप धारण करते हैं, वही कविता है, चाहे वह पद्यात्मक हो चाहे गद्यात्मक .. अन्त:करण की वृत्तियों के चित्र का नाम कविता है'(रसज्ञरंजन)। द्विवेदी जी की दृष्टि में काव्य आनन्दात्मक है। पर इस आनन्द के सम्पादनकारी अवयवों का उल्लेख उन्होंने नहीं किया है, दूसरे चित्त का प्रत्येक मनोभाव कवित नहीं हो सकता अत: यह परिभाषा उपयुक्त नहीं है। इस परिभाषा पर विश्वनाथ का प्रभाव स्पष्टत: दिखाइ देता है। आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी मानवीय अनुभूति, कल्पना और सुनदरता के समन्वित रूप को काव्य कहते हैं-'.. काव्य तो प्रकृत मानव-अनुभूतियों का नैसर्गिककल्पना के सहारे ऐसा सौन्दर्यमय चित्रण है, जो मनुष्यमात्र में स्वभावत: अनुरूप भावोच्छवास और सौन्दर्य-संवेदन उत्पन्न करता है (हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली) । यह कथन

काव्यनिर्माण प्रक्रिया और उसके भावात्मक प्रभाव पर प्रकाश डालती है, पर यहाँ काव्यभाषा का उल्लेख नहीं है।

श्यामसुन्दरदास काव्य को 'हृदय में अलौकिक चमत्कार की सृष्टि करने वाला'; गुलाबराय रसप्रधान साहित्य को काव्य तथा जयशंकर प्रसाद आत्मा की अनुभूति को कविता कहते हैं। महादेवी वर्मा की नजर में :'कविता कवि विशेष की भावनाओं का चित्रण है; और यह चित्रण इतना ठीक है कि उससे वैसी ही भावनाएं किसी दूसरे के हृदय में आविर्भूत होती हैं। आप ध्यान से इन परिभाषाओं को परखेंगे तो आपको ज्ञात होगा कि इन परिभाषाओं को आप काव्य की निर्दुष्ट परिभाषा नहीं मान सकते क्योंकि इनमें भी काव्यभाषा की चर्चा नहीं है।

काव्यविषयक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की परिभाषा प्रामाणिक है, सार्थक है; उन्होंने काव्य को सम्पूर्णत: पारिभाषित करने का प्रयास किया है-'जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञानदशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था रसदशा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्दविधान करती आई है, उसे कविता कहते हैं (रसमीमांसा,कविता क्या है)। शुक्ल जी यहाँ रस दशा को ज्ञानदशा के समकक्ष मानकर काव्य की अलौकिकता सिद्ध करते हैं, इस रसदशा तक पहुँचाने वाली कवि की विशिष्ट वाणी की चर्चा करते हैं। उन्होंने काव्य के भाव और कला दोनों पक्षों का उल्लेख यहाँ कर दिया है। काव्य के अन्यान्य लक्षण भी हैं, विषय विस्तार के भय से अब हम उनके विषय में विचार नहीं कर रहे हैं।

कुल मिलाकर काव्य के विषय में अनन्त अभिमत हैं, फिर भी कावय की कोई सर्वांगपूर्ण परिभाषा नहीं दी जा सकती है, किन्तु काव्य के विषय में हम एक निश्चित अवधारणा कर सकते हैं कि काव्य शब्दार्थ का साहित्य है। ये शब्दार्थ लोकसामान्य शब्दार्थों से भिन्न हैं, इनमें सहृदय को अपनी ओर आकर्षित करने की पूरी क्षमता है, कवि का यह अलौकिक व्यापार है जिसके द्वारा वह अनेकानेक विषयों को अत्यन्त प्रभावशाली रूप में अभिव्यक्त करता है।

15.5 सारांश

इस पूरी इकाई के माध्यम से हमने काव्य के विषय में पूरी भारतीय एवं पाश्चात्य परम्परा का अवलोकन किया है और अब तक प्राप्त काव्यलक्षणों का विश्लेषण करने पर पाया है कि आरम्भिक काल से लेकर अब तक काव्य की ऐसी कोई भी परिभाषा हमें नहीं मिलती, जिससे काव्य को पूरी तरह से पारिभाषित किया जा सके। इस सन्दर्भ में हमें यह ध्यान रखना होगा कि काव्य को सम्पूर्णत: परिभाषा के दायरे में बॉंधना सम्भव भी नहीं है क्योंकि उसमें नित नूतन नूतन विषयादि का समावेश होता रहता है। इसलिए काव्य को 'नूतनं नूतनं पदे पदे' कह सकते हैं।

15.7 शब्दावली

नवनवोन्मेषशाली - कवि में ऐसी प्रतिभा होती है जिससे वह प्रत्येक विषय को अपने मौलिक विचारों से नया नया रूप देता रहता है। इसीके परिणाम स्वरूप उसके वर्णन में हर बार कुछ नया होता है। तभी हम काव्य के लिए कहते हैं- लागे नित नयो नयो। इस प्रतिभा को ही कवि की प्रज्ञा या नवनवोन्मेषशाली प्रतिभा कहा जाता है।

लोकोत्तर वर्णन निपुणता- प्रतिभा सम्पन्न कवि अपनी कल्पना से ऐसे विषयों का वर्णन करता है, जो अलौकिक रस की अनुभूति कराते हैं। संसार में प्रत्येक संवेदनशील प्राणी हर विषय, वस्तु को देखकर उसके विषय में कुछ महसूस करता है, पर कवि में ही वह नैपुण्य होता है, जो उस विषय या वस्तु का चमत्कारिक वर्णन करने में समर्थ होता है।

भावन व्यापार- भावन से अभिप्राय है अनुभूति से। किसी रचना को पढते समय हम जो महसूस करते हैं, वह भावन व्यापार है।

ध्वनन व्यापार -ध्वनिसिद्धान्त में इस शब्द का प्राय: प्रयोग किया जाता है। इसे व्यंजना व्यापार भी कहते हैं। आचार्यों का अभिमत है कि काव्य में प्रयुक्त याब्द और अर्थ अपना सामान्य अर्थ छोड़कर विशिष्ट बन जाते हैं, ये विशिष्ट शब्दार्थ ऐसे अर्थ का द्योतन करते हैं, जो सहृदय के हृदय को अपनी ओर अनायास ही आकर्षित कर लेते हैं, यह द्योतन ही ध्वनन या व्यंजन व्यापार है।

विबुधा-जानकार, विद्वान्

पिष्टपेषण - दोहराव

अन्योन्याश्रित - एक दूसरे पर आश्रित, एक दूसरे से जुडे

लोकवृत्तानुकरण : लोक में प्रचलित वृत्त: अर्थात् लोक से जुडे विविध विषयों का अनुकरण

सर्वतोमुखी-सब प्रकार से ।

15.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(क) बोध प्रश्नों के उत्तर

1. काव्य और साहित्य के विषय में अपने विचार कुछ पंक्तियों में दीजिए।

काव्य वाणी का सर्वोत्तम व्यापार है और कवि की सर्वोत्कृष्ट कृति है। व्यापक अर्थ में कवि शब्द का प्रयोग साहित्यकार के लिए और काव्य का प्रयोग साहित्य के लिए होता है। भारतीय काव्यशास्त्र में प्राय: साहित्य के लिए काव्य शब्द का ही व्यवहार हुआ है। बाद मे साहित्य व्यापक अर्थ में प्रयुक्त होने लगा और काव्य पद्यबद्ध रचना के लिए

2. काव्य में शब्द और अर्थ का महत्त्व बताइए।

शब्द और अर्थ काव्य के अपरिहार्य अवयव हैं।यदि भाषा नहीं होती तो काव्यरचना सम्भव ही नहीं होती। हमारे मनीषियों ने बार बार इसीलिए वाणी की वन्दना की है। शब्द और अर्थ दोनों के योग से काव्य का स्वरूप संगठित होता है।

रिक्त स्थान भरिए-

1. *नाट्यशास्त्र*

2. है, क्योंकि वह अमूर्त

सत्य असत्य बताइए-

1. (सत्य)

2. (असत्य)

(ख) अभ्यासार्थ प्रश्नों के उत्तर

1. काव्य के विषय में मम्मट के विचार कुछ पंक्तियों में दीजिए।

आचार्य *मम्मट ने अपनी रचना काव्यपकाश में काव्य का लक्षण दिया है कि वे शब्दार्थ जो दोषरहित हों, गुणयुक्त हों और कहीं कहीं अलंकारों के प्रयोग से युक्त हों काव्य हैं। अदोषौ से उनका अभिप्राय है कि काव्य ऐसे दोषों से रहित होना चाहिए जो काव्यत्व को हानि पहुँचाते हैं। सगुणौ का अर्थ है कि काव्य में सदैव विशय के अनुरूप भाषा का प्रयोग होना चाहिए, तभी रस की अनुभूति हो सकती है और अलंकारों के विषय में उनका मानना है कि अलंकार काव्य के लिए अपरिहार्य नहीं हैं। यदि अलंकारों के प्रयोग से रस भंग नहीं होता तो उनका प्रयोग ठीक है, यदि अलंकार चमत्कार प्रदर्शन मात्र के लिए प्रयुक्त हुए हों, तो कावयत्व को हानि पहुँचाते हैं, अत: अलंकार काव्य के लिए अनिवार्य नहीं हैं।*

2. वाक्यं रसात्मकं वाक्यम् और रमणीयार्थ: प्रतिपादक: शब्द: काव्यम् की व्याख्या कीजिए।

आचार्य *विश्वनाथ रसात्मक वाक्य को काव्य की संज्ञा देते हैं। उनका मानना है कि जो भी वाक्य रस उत्पन्न करता है, वह काव्य की श्रेणी में आ जाता है। पण्डितराज जगन्नाथ का मानना है कि यदि विश्वनाथ का यह काव्यलक्षण स्वीकार किया जाता है तो काव्य के ऐसे स्थल जो सरस नहीं होते हैं या रस से सीधे सम्बद्ध नहीं होते हैं,-जैसे प्रकृति वर्णन, उन्हें अकाव्य कहना पडेगा और काव्य का दायरा सीमित हो जाएगा। पण्डितराज जगन्नाथ ने काव्यलक्षण दिया- 'रमणीयार्थ: प्रतिपादक: शब्द: काव्यम्'- रमणीय अर्थ का प्रतिपादक शब्द काव्य है। यहाँ रमणीय शब्द सौन्दर्य, इष्टार्थ, लोकोत्तरता, रसनीयता सभी आ जाता है और इस दृष्टि से पण्डितराज का काव्यलक्षण काफी व्यापक है किन्तु जगन्नाथ केवल शब्द में ही काव्यत्व मानते*

हैं, अर्थ में नहीं, जबकि यह बात तो स्वत: और सर्वस्वीकृत है कि शब्द और अर्थ में अभिन्न सम्बन्ध है, शब्द के विना अर्थ अस्त्विहीन है और अर्थ के बिना शब्द शव के समान है।

रिक्त स्थान भरिए-

1. *नाट्य*

2. को और कुछ...*व्यंजन,ध्वनन,भावन व्यापार*

3.काव्य का एक उपयुक्त लक्षण बताइए।

काव्य उस शब्दार्थ को कहते हैं, जिसमें मन:प्रसादन की क्षमता हो, विविध विषयों का समावेश हो और जो लोकोत्तर आनंद की प्राप्ति कराए।

सत्य असत्य बताइए-

1. (सत्य)

2. (असत्य)

(ग) बोध प्रश्न

निम्नलिखित बहुविकल्पी प्रश्नों में सही विकल्प चुनिए-

1. (ख)श्रीपति

2.(क) भिखारीदास

(घ) बोध प्रश्न

1. काव्य को आप अनुकरण मानेंगे अथवा सृजन ?

पश्चिम में काव्य को अनुकरण कहा गया है। भारतीय चिन्तन में दृश्यकाव्य के सन्दर्भ में अनुकरण की बात की गई है श्रव्य में नहीं। भारतीय मनीषा तो काव्य को कवि की सृष्टि मानती है। लेकिन यह भी स्वीकार्य है कि काव्य की विषयवस्तु लोक की ही विषयवस्तु होती है। भरतमुनि का कहना है कि ऐसी कोई विद्या नहीं है, ऐसी कोई कला नहीं है, ऐसा कोई शिल्प नहीं है, ऐसा कोई शास्त्र नहीं है, अर्थात् ऐसा कोई विषय नहीं है, जिसे काव्य में प्रयुक्त न किया जाता हो। इस दृष्टि से काव्य को अनुकरण कह सकते हैं और लोक का अनुकरण करके कवि अपनी कल्पना से अपने विचारों को जब रूपाकार देता है, तो वह उसकी सृष्टि ही कही जाएगी।

2.काव्य में कल्पना का क्या योगदान है ?

कल्पना काव्य में सौन्दर्य का आधान करती है। कल्पना ही वह तत्त्व है जो काव्य के यथार्थ को आभिव्यक्तिक सौन्दर्य से सम्पन्न करता है, उसके आदर्श रूप को प्रस्तुत करता है।

सत्य/ असत्य बताइए-

3. (असत्य)

4.(सत्य)

5.(ख)अरस्तू

6.(घ) वर्डसवर्थ

15.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- आनन्दवर्धन, ध्वन्यालोक, तृतीय और चतुर्थ उद्योत,व्याख्याकार डॉ,रामसागर त्रिपाठी,मोतीलाल बनारसीदास,दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 1981
- मम्मट, काव्यप्रकाश, व्याख्याकार डॉ. सत्यव्रत सिंह,चौखम्बा विद्याभवन,चौक, बनारस-1,संस्करण-1955
- अमरनाथ, हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2009
- गुप्त, राकेश एवं चतुर्वेदी,ऋषिकुमार, साहित्यानुशीलन, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1972
- सहाय, राजवंश हीरा, भारतीय-आलोचना-शास्त्र , बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, 2003
- दीक्षित,हरिनारायण एवं टण्डन किरण, भारतीयकाव्यशास्त्रमीमांसा, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली-7, प्रथम सं; 1995

15.10सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1 भरतमुनि , नाट्यशास्त्र, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी

2.भामह, काव्यालंकार, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी

3.भिखारीदास, काव्यनिर्णय, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

4.मम्माट , काव्यप्रकाश, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

15.11निबन्धात्मक प्रश्न

1. काव्य क्या है विषय पर एक निबन्ध लिखिए। काव्य और साहित्य के विषय में बताइए।

2. लक्षण का अर्थ स्पष्ट करते हुए काव्यलक्षण के ऐतिहासिक विकास के विषय में बताइए .

3. मम्मट, विश्वनाथ और पण्डितराज जगन्नाथ की काव्यविषयक मान्यताओं की समीक्षा कीजिए

4 हिन्दी के आधुनिक समीक्षकों की दृष्टि से काव्य के स्वरूप के विषय में बताइए।

इकाई 16 काव्य की प्रेरणा एवं काव्य और हेतु

16.1 प्रस्तावना
16.2 उद्देश्य
16.3 काव्य के हेतु तथा काव्य की प्रेरणा से अभिप्राय
16.4 काव्य के हेतु विषयक भारतीय काव्यशास्त्रीय परम्परा
16.4.1 प्रतिभा
16.4.2 व्युत्पत्ति
16.4.3 अभ्यास
16.5 काव्य प्रेरणा के विषय में आचार्यों की दृष्टि
16.5.1 काव्य प्रेरणा विषयक भारतीय दृष्टि
16.5.2 काव्य प्रेरणा विषयक पाश्चात्य दृष्टि
16.6 हिन्दी काव्यशास्त्र में काव्य प्रेरणा और काव्यहेतु
16.7 सारांश
16.8 शब्दावली
16.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
16.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
16.11 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
16.12 निबन्धात्मक प्रश्न

16.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई स्नातक पाठ्यक्रम के अंतर्गत सम्मिलित है । इस इकाई के माध्यम से आप यह समझ सकते हैं कि साहित्य कैसे लिखा जाता है। साहित्य की निर्मिति कैसे होती है। साहित्य लिखने की प्रेरणा कहाँ से प्राप्त होती है।

किसी घड़े का निर्माण जैसे मिट्टी से होता है, वस्त्र बनाने के लिए कपास कारण होता है, इसी तरह काव्य जिसे हम कवि का कर्म कहते हैं, उसके निर्माण के लिए भी कोई न कोई कारण होता है, इस कारण को ही साहित्यशास्त्र की शब्दावली में काव्यहेतु कहा जाता है। मिट्टी है, पानी है, चाक है लेकिन कुम्हार का मन घडे का निर्माण करने के लिए तत्पर नहीं है, तो क्या घड़ा बन जाएगा ? नहीं। इसी तरह कवि मे प्रतिभा है, उसे विविध विषयों का ज्ञान है, उसने काव्यलेखन का निरन्तर अभ्यास भी किया है, किन्तु उसका मन नहीं है तो क्या वह काव्य

लिखेगा? नहीं। काव्यलेखन की प्रेरणा मिलने पर ही वह रचना लिखेगा। अत: काव्य प्रेरणा भी काव्यलेखन का कारण है। प्रस्तुत इकाई द्वारा काव्य की प्रेरणा तथा काव्य के हेतु के विषय में हम विचार करेंगे।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जान सकेंगे कि काव्य की रचना की प्रेरणा क्या है तथा काव्य के वे कौन से कारण हैं, जो काव्यसृजन करने में कवि के लिए आवश्यक होते हैं। काव्य की प्रेरणा तथा हेतुओं के विषय में भारतीय और पाश्चात्य परम्परा से परिचित हो सकेंगे।

16.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप...

- बता सकेंगे कि साहित्यकार में ऐसी क्या विशेषता है, जिसकी सहायता से वह काव्यरचना करने में समर्थ होता है।
- काव्यहेतु तथा काव्यप्रेरणा के विषय में भारतीय और पाश्चात्य चिन्तन से परिचित हो सकेंगे।
- समझ सकेंगे कि साहित्य सर्जना के लिए कवि को प्रेरणा कहाँ से मिलती है।

16.3 काव्य हेतु तथा काव्य की प्रेरणा से अभिप्राय

आश्चर्य होता है यह सोचकर कि कवि के पास वो कौन सा जादू है, जिसके बल पर वह किसी भी विषय को बडे आकर्षक रूप में अभिव्यक्त कर देता है, जबकि वही रोज की परिचित भाषा होती है, वे ही प्राकृतिक दृश्य होते हैं, वही उषा की लालिमा, शाम का झुटपुटा, कलियों का खिलना, पक्षियों का चहचहाना, पर कवि के चयनित शब्दों में वो सामर्थ्य न जाने कहाँ से आती है कि हर बार कवि नये रूप में अपनी बात कह देता है। आपने प्राय: सुना होगा कि रामकथा बहुत छोटी है

- एक राम एक रावन्ना, एक क्षत्रिय एक वामन्ना।
वाने वाकी नार हरी, वाने वाके प्राण हरे, तुलसी लिख गए पोथन्ना।

लेकिन इस छोटी सी कथा को वाल्मीकि से लेकर आज तक अनेक रचनाकारों ने अपनी अभिव्यक्ति का विषय बनाया है। अभिव्यक्ति का विषय ही नहीं बनाया है अपितु हर बार बिल्कुल नये रूप में प्रस्तुत किया है। रचनाकार की मौलिक सूझबूझ से एक ही विषय पुनर्नवता को प्राप्त होकर सहृदय को प्रभावित करता है। और हर बार वही पुराना विषय नया लगने लगता है। आचार्यों का मानना है कि कवि की प्रतिभा काव्यरचना के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण है, जिसके बल पर कवि काव्यरचना में समर्थ होता है। प्रतिभा के साथ-साथ व्युत्पत्ति तथा अभ्यास को भी काव्यहेतु के रूप में स्वीकार किया जाता है। कवि में प्रतिभा है, विविध

विषयों का उसे ज्ञान है और उसने बार-बार अभ्यास से अपनी रचनाओं को परिमार्जित भी कर लिया है, लेकिन उसके अन्तर्मन में काव्य रचने के लिए रुचि नहीं है, तो भी काव्यरचना सम्भव नहीं है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि काव्य रचने की प्रेरणा के बिना काव्य नहीं रचा जा सकता। कवि की चेतना जब किसी घटना, किसी परिस्थिति, किसी व्यक्ति, किसी गुण या किसी विचार से व्याप्त हो जाती है, तब साहित्य का जन्म होता है । इस सन्दर्भ में आदिकवि वाल्मीकि की काव्यरचना में प्रवृत्त होने की कथा का यहाँ उल्लेख किया जा सकता है। कहते हैं कि आदि कवि वाल्मीकि ने एक दिन नारद से पूछा कि आजकल इस लोक में सौन्दर्य सम्पन्न और वीर, परोपकारी, पराक्रमी, सदाचारी, सत्यनिष्ठ, सत्यवादी कौन है, जिसके संग्राम में कुपित होने पर देवता भी भयभीत हो जाते हैं। नारद ने उन्हें इस विषय में इक्ष्वाकुवंशी राम के सन्दर्भ में बताया। इसके उपरानत वाल्मीकी अपने शिष्यों के साथ तमसा नदी के तट पर स्नान करने गए। रास्ते में उन्होंने क्रोंच पक्षियों के युगल को विहार करते हुए देखा। उसी समय एक बहेलिए ने क्रोंच को मार दिया और वाल्मीकि ने देखा कि उसके वियोग में क्रोंची ने करुण स्वर से आर्तनाद किया। मुनि की चेतना क्रोंची के शोक से शोकाकुल हो गई और उनके मुँह से यह श्लोक निकल गया- हे निषाद! तुमने काममोहित क्रोंचमिथुन में से एक का वध कर दिया है, तुम वर्षों तक प्रतिष्ठा को प्राप्त नहीं होओगे-

'मा निषाद प्रतिष्ठां त्वंगम: शाश्वतीष्ः◌ाम:, यत्क्रोंचमिथुनादेकमवधीकाम मोहित:।

तमसा मे स्नान करते हुए, वहाँ से लौटते हुए, आश्रम में उठते बैठते मुनि की चेतना में क्रोंची का आतर्नाद निरन्तर गूँजता रहा, साथ ही उनके मन में यह विचार भी आया कि क्रोंची के शोक से उनका अपना मन इतना व्यथित हो गया है कि उस व्यथा को व्यक्त करना उनके लिए अपरिहार्य हो गया है। और इसके लिए उनके हृदय से अनायास रोज की परिचित बोली से अलग वाणी प्रस्फुटित हो गई । यह अलग वाणी 'श्लोक' के रूप में प्रस्फुटित हुई और मुनि ने अपने शिष्य से कहा कि ' शोक में प्रवृत्त मेरे हृदय से जो वाणी प्रस्फुटित हुई, वह श्लोक ही है-'शोकार्तस्य प्रवृत्तो मे श्लोको भवतु नान्यथा'। इसी तरह महाकवि कालिदास, तुलसीदास अपनी पत्नियों से प्रताडित होने पर साहित्यरचना के लिए प्रेरित हुए।

स्पष्ट है कि काव्यरचना की प्रेरणा में संवेग और बोद्धिक चिन्तन का महत्वपूर्ण योगदान है। कोई घटना, कोई परिस्थिति, कोई विचार, कोई व्यक्ति या कोई गुण जब कवि की चेतना में इतनी व्याप्त हो जाती है कि वह उस घटना आदि से तदाकार अनुभूति करता है, तब साहित्य की सर्जना हो जाती है। यह तदाकार अनुभूति केवल रचनाकार को ही नहीं होती अपितु किसी भी संवेदनशील व्यक्ति को होती है, हाँ रचनाकार की प्रतिभा, निपुणता और अभ्यास उसकी इस अनुभूति को अनायास व्यक्त करने की सामर्थ्य से सम्पन्न बना देते हैं।

काव्यसृजन की प्रेरणा में जीवन की घटनाओं का महत्व बहुत अधिक है। डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त का कहना है-'घटना के अभाव में अनुभूति का उद्रेक नहीं होता और बिना अनुभूति के उद्रेक के घटना प्रभावशून्य सिद्ध होती है अत: दोनों का ही महत्त्व हैा जीवन में घटनाएं तो बहुत होती हैं, किन्तु वे सभी ऐसी अनुभूति प्रदान नहीं करतीं कि जिससे काव्य रचना की प्रेरणा मिले।

अत: इन दोनों में समन्वय स्थापित करते हुएकहा जा सकता है कि मार्मिक घटनाओं की अनुभूति काव्यरचना की प्रेरणा प्रदान करती है।
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा, एम ए एच डी-04, काव्यशास्त्र व समालोचना, पृ. 38 से उद्धृत

आपने अक्सर महसूस किया होगा कि किसी घटना को देखकर, सुनकर हमारे मन में विभिन्न विचार आते हैं और हम उन विचारों को बॉटना भी चाहते हैं, बस वह घटना हमें कुछ रचने के लिए प्रेरित करती है और हमारी अभिव्यक्ति की क्षमता और योग्यता उसके सन्दर्भ में हमें कुछ रचने के लिए समर्थ बनाती है। काव्यशास्त्र की शब्दावली में घटना का प्रभाव काव्य-प्रेरणा और रचने की ताकत काव्यहेतु है।

(क) बोध प्रश्न-

1. काव्य हेतु तथा काव्यप्रेरणा में अन्तर बताइए।
2. वाल्मीकि को काव्य रचने की प्रेरणा कैसे मिली- संक्षेप में बताइए।

16.4 काव्य के हेतु विषयक भारतीय काव्यशास्त्र परम्परा

यह बात हम पहले कह चुके हैं कि इस संसार में कोई भी कार्य कारण के बिना नहीं होता है। काव्य भी कवि का कार्य है और उसकी रचना में भी कुछ कारण हैं, जिनके बिना काव्यरचना सम्भव नहीं है। इन कारणों को काव्यहेतु कहा जाता है। हिन्दी साहित्य कोश में काव्य हेतु को इस रूप में पारिभाषित किया गया है- 'कवि शिक्षा के अन्तर्गत कवि में काव्य निर्माण की सामर्थ्य उत्पन्न करने वाले साधनों को 'काव्य हेतु' अथवा 'काव्य के कारण' कहा जाता है। भारतीय काव्यशास्त्र की सुदीर्घ परम्परा में आचार्यों ने विस्तार से काव्यहेतुओं की चर्चा की है। पश्चिम में भी इस बात पर चिन्तकों ने विचार किया है कि कवि में आखिर ऐसी कौन सी बात होती है, जो अन्य लोगों में नहीं होती और जिसके बल पर वह काव्यरचना में समर्थ होता है। प्राय: सभी चिन्तक यह मानते हैं कि काव्यरचना के लिए कवि की प्रतिभा सर्वप्रमुख कारण होती है। इस प्रतिभा के साथ साथ विविध विषयों का ज्ञान पाकर रचनाकार रचना करने में समर्थ होता है और निरन्तर अभ्यास उसकी लेखनी को निरन्तर परिमार्जित करता है।

काव्यहेतु विषयक हमारे काव्यशास्त्रियों के चिन्तन पर अब हम विचार करेंगे। सर्वप्रथम अग्निपुराण में काव्यहेतुओं के विषय में कहा गया है कि 'संसार में नरत्व दुर्लभ है, उसमें भी विद्या दुर्लभ है, विद्या में भी कवित्व दुर्लभ है और कवित्व में शक्ति अर्थात् प्रतिभा दुर्लभ है, व्युत्पत्ति दुर्लभ है और फिर विवेक भी दुर्लभ है-

नरत्वं दुर्लभं लोके विद्या तत्र च दुर्लभा।
कवित्वं दुर्लभं तत्र शक्तिस्तत्र च दुर्लभा।।
व्युत्पत्तिर्दुर्लभा तत्र विवेकस्तत्र दुर्लभ:।। -अग्निपुराण, 337/4-5

काव्यनिर्माण के साधनों-शक्ति, व्युत्पत्ति और विवेक का उल्लेख अग्निपुराण में हुआ है,इसके उपरान्त आचार्य भामह ने सर्वप्रथम स्पष्ट रूप से काव्यहेतुओं की चर्चा करते हुए प्रतिभा को काव्य का प्रमुख कारण माना है। उनका कहना है कि गुरु के उपदेश से जड़बुद्धि या अल्पबुद्धि वाला व्यक्ति शास्त्रज्ञ हो सकता है, लेकिन काव्यरचना तो कुछ प्रतिभासम्पन्न लोग ही कर सकते हैं। प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति को शब्दशास्त्र, छन्दशास्त्र, कोषग्रन्थ, इतिहासाश्रित कथाओं, लोकव्यवहार और विभिन्न कलाओं का ज्ञान प्राप्त करके काव्यरचना करनी चाहिए। उसे शब्द और उसके अभिप्रेत को जानकर काव्यमर्मज्ञों की सेवा करके और अन्यान्य कृतियों के अध्ययन के उपरान्त ही काव्य के लिए प्रवृत्त होना चाहिए. भामह प्रतिभा को काव्य का मुख्य कारण और काव्यज्ञशिक्षा और शास्त्रज्ञान को उसके सहायक कारण मानते हैं।

आचार्य दण्डी नैसर्गिक प्रतिभा, विविध शास्त्रों का परिशीलन और निरन्तर काव्यनिर्माण का अभ्यास - इन तीनों का काव्य निर्माण के लिए कारण रूपी सम्पदा मानते हैं-

नैसर्गिकी च प्रतिभा श्रुतं च बहुनिर्मलम् ।

अमन्दश्चाभियोगोस्या: कारणं काव्यसम्पद:।।- -दण्डी, काव्यादर्श,प्रथम परिच्छेद, कारिका- 103

वामन हेतु के लिए काव्यांग शब्द का प्रयोग करते हैं और लोक, विद्या और प्रकीर्ण को काव्य के अंग मानते हैं। लोक के अन्तर्गत लोकवृत्त और विद्या के अन्तर्गत शब्दशास्त्र, कोश, छन्दशास्त्र, कला, नीतिशास्त्र आदि विविध शास्त्र आते हैं। वामन द्वारा उल्लिखित काव्यहेतु अन्य आचार्यों से भिन्न अवश्य हैं, लेकिन विश्लेषण करने पर हम पाते हैं कि इन काव्यांगों का समाहार ऊपर वर्णित तीनों हेतुओं में ही हो जाता है। लोकवृत्त और शास्त्रज्ञान व्युत्पत्ति में सन्निविष्ट हो जाते हैं और लक्ष्यतत्व भी। अभियोग, वृद्धसेवा, अवेक्षण और अवधान रचनाभ्यास के ही विविध रूप हैं।

वामन के बाद रुद्रट ने काव्यनिर्माण के लिए शक्ति(प्रतिभा), व्युत्पत्ति और अभ्यास-तीनों को काव्यहेतु के रूप में स्वीकार किया है।(त्रितयमिदं व्याप्रियते-शक्तिर्व्युत्पत्तिरभ्यास: ।-काव्यालंकार, 1/4)। आनन्दवर्धन के अनुसार प्रतिभा ही काव्य का मुख्य कारण है। वे मानते हैं कि व्युत्पत्ति की कमी को भी शक्ति ढक लेती है और यदि कवि सशक्त है तो वह काव्यरचना में समर्थ होता ही है, भले ही वह काव्य बहुत उत्कृष्ट न हो। काव्यहेतुओं पर सबसे ज्यादा विस्तार से राजशेखर ने चर्चा की है। उन्होंने शक्ति और प्रतिभा दोनों को अलग मानते हुए शक्ति के क्षेत्र को व्यापक और प्रतिभा के क्षेत्र को शब्दसमूहों, विभिन्न अर्थों, अलंकार, तन्त्र, उक्तिमार्ग तक सीमित माना और शक्ति को काव्य का हेतु कहा।

काव्यहेतुओं के विषय में आचार्य मम्मट ने शक्ति, निपुणता और अभ्यास तीनों के सम्मिलित रूप को काव्यहेतु माना-

'शक्तिर्निपुणता लोकशास्त्रकाव्याद्यवेक्षणात्।

काव्यज्ञशिक्षयाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे।।-काव्यप्रकाश, 1/3

मम्मट की दृष्टि में काव्य के निर्माण में शक्ति प्रमुख कारण है। वह काव्यत्व की सिद्धि के लिए

बीजरूप संस्कार विशेष है,जिसके अभाव में काव्य का निर्माण नहीं हो सकता है। शक्ति के साथ व्याकरण,अभिधान, कोश,कला,महाकवियों के काव्य और इतिहास-पुराणादि के परिशीलन से उत्पन्न ज्ञान अर्थात् व्युत्पत्ति और काव्यरचना को जानने वालों के उपदेश से काव्ययोजना में बार बार प्रवृत्त होना- अर्थात् अभ्यास-भी काव्यरचना के हेतु हैं लेकिन ये तीनों अलग अलग कावयहेतु नहीं हैं, बल्कि तीनों मिलकर काव्यहेतु होते हैं।

मम्मट द्वारा काव्यहेतुओं की व्याख्या के उपरान्त संस्क़त काव्यशास्त्रियों ने काव्यहेतुओं पर जो भी विचार किया है, वह पूर्ववर्ती आचार्यों की दृष्टि का ही पिष्टपेषण है। वाग्भट, हेमचन्द्र, पण्डितराज जगन्नाथ आदि ने प्रतिभा को काव्य का प्रमुख हेतु माना है। हमारे रीतिकालीन आचार्यों ने भी संस्क़त के आचायों की ही तरह प्रतिभा,व्युत्पत्ति और अभ्यास को काव्यहेतुओं के रूप में उल्लिखित किया है। यहाँ एक उदाहरण से हम अपनी बात की पुष्टि करेंगे। रीतिकालीन आचार्य भिखारीदास ने अपनी कृति 'काव्यनिर्णय' में काव्यहेतुओं के विषय में लिखा है-

सक्ति कबित्त बनाइबे की जिहि जन्मनछत्र में दीनी विधातैं।
काव्य की रीति सिख्यो सुकबीन सों देखी सुनी बहुलोक की बातैं।
दासजू जामे एकत्र ये तीनों बनै कबिता मनरोचक तातैं।
एक बिना न चलै रथ जैसे धुरंदर सूत की चक्र निपातैं।

भिखारीदास का काव्यहेतु विषयक मत मम्मट के मत के अनुसार ही है। भिखारीदास शक्ति को ईश्वरप्रदत्त मानकर उसे काव्य का हेतु कहते हैं। शक्ति के अतिरिक्त सुकवियों से काव्य की शिक्षा और लोकानुभव को भी काव्य का हेतु कहा है।

काव्यहेतु विषयक इस ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को देखने से यह स्पष्ट होता है कि आनन्दवर्धन, पण्डितराज जगन्नाथ आदि केवल प्रतिभा को काव्यहेतु मानते हैं और भामह, दण्डी, रुद्रट, मम्मट आदि ने प्रतिभा, व्युत्पत्ति और अभ्यास तीनो का समन्वय करते हुए तीनों को एक साथ काव्य का हेतु स्वीकार किया है। और यह सम्यक् भी है। प्रतिभा, व्युत्पत्ति और अभ्यास- ये तीनों ही काव्य के हेतु हैं और तीनों अलग-अलग नहीं, अपितु कवि व्यक्तित्व के विभिन्न पक्ष और परस्पर आश्रित हैं। प्रतिभा के अभाव में व्युत्पत्ति और अभ्यास का कोई महत्व नहीं है और व्युत्पत्ति और अभ्यास के अभाव में प्रतिभा का कोई महत्व नहीं। एक कहावत आपने अक्सर सुनी होगी- पूत के पॉव पालने में ही पहचान लिए जाते हैं, यानी शैशव काल से ही व्यक्ति की प्रतिभा का पता चल जाता है, लेकिन यदि उसकी प्रतिभा को सही दिशा निर्देश नहीं मिलता, उसकी प्रतिभा को परिमार्जित नहीं किया जाता तो वह ठीक वैसे ही धारहीन हो जाती है जैसे किसी अस्त्र का प्रयोग न किए जाने की स्थिति में उसमें जंग लग जाती है। सिद्ध है कि प्रतिभा, व्युत्पत्ति और अभ्यास काव्य के हेतु हैं। इन हेतुओं में एक हेतु और कहा गया है- समाधि या अवधान। यह बात सत्य है कि कवि में प्रतिभा है, उसने विविध विषयों का अध्ययन भी किया है और निरन्तर अभ्यास से अपनी प्रतिभा को मॉजा भी है लेकिन उसका मन एकाग्र नहीं है, तो भी काव्यरचना नहीं हो सकती। किन्तु मन की एकाग्रता तो प्रत्येक कार्य के लिए आवश्यक है अत: उसे काव्यहेतुओं में शामिल करने की आवश्यकता

नहीं है। आगे हम काव्य के इन तीन हेतुओं के विषय में समझने का प्रयास करेंगे।

(ख)बोध प्रश्न -

1.वामन काव्यहेतु के लिए किस शब्द का व्यवहार करते हैं?

2. प्रतिभा काव्य का मुख्य हेतु है ,सिद्ध कीजिए।

रिक्त स्थान भरिए-

1. व्युत्पत्ति के लिए .....शब्द का भी प्रयोग होता है।
2.शक्ति ही .....कहलाती है।
3.काव्य के सुप्रसिद्ध तीन हेतुओं के अलावा.....को भी काव्यहेतु माना जाता है।

सत्य/असत्य बताइए-

1.काव्यनिर्णयभिखारीदास की रचना है- (सत्य)/ (असत्य)

2.वृद्धसेवा से अभिप्राय है बुजुर्गों की सेवा करना - (सत्य)/ (असत्य)

16.4.1 प्रतिभा

आचार्यों का यह मानना है कि प्रतिभा काव्य का वह हेतु है, जिसके बिना काव्यरचना हो ही नहीं सकती और यदि हो जाती है, तो उपहास्यता को प्राप्त होती है। यह प्रतिभा कवित्व का बीज है, और यह कवि को पूर्व पूर्व जन्मों के संस्कारों से प्राप्त होती है। यह नवनवोन्मेषशालिनि अर्थात् नई नई उद्भावना करने वाली होती है। यह कवियों के प्रत्युत्पन्नमतित्व (जिसे 'Presence of mind कहा जाता है)की द्योतक होती है। संस्कृत के आचार्य भट्टतौत ने लिखा है-

बुद्धिस्तात्कालिकी ज्ञेया मतिरागाभिगोचरा।

'प्रज्ञा नवनवोन्मेषशालिनि प्रतिभा मता''- काव्यकौतुक, पृ 212

नवनवोन्मेषशाली प्रज्ञा को प्रतिभा कहा जाता है। मनुष्य की जन्मजात दैवी-शक्ति ,जिससे उसके अन्दर नवीन वस्तुओं की रचना करने की स्फूर्ति पैदा होती है, प्रतिभा है। भामह के अनुसार यह प्रतिभा किसी किसी को ही प्राप्त होती है। वामन के अनुसार प्रतिभा प्राक्तन जन्मों के संस्कार से युक्त होती है। रुद्रट का मानना है कि मन की एकाग्र अवस्था, जिसमें अभिधेय का अनेक रूपों में विस्फुरण होता है और जिसमें अक्लिष्ट पद सूझ पडते हैं, उसे शक्ति कहते हैं। यह शक्ति दो प्रकार की हाती है- सहजा और उत्पाद्या। कवि में स्वाभाविक रूप में विद्यमान प्रतिभा सहजा है और साधनों के उपयोग से उत्पन्न की जाने वाली उत्पाद्या। राजशेखर ने बुद्धि के तीन प्रकार बताए हैं- स्मृति, मति और प्रज्ञा। स्मृति वह बुद्धि है, जो अतीत का स्मरण कराती है, मति वर्तमान काल से जुडी है और प्रज्ञा भविष्य अर्थ को प्रकृष्ट रूप में ज्ञात करने वाली होती है। ये तीनों प्रकार की बुद्धिकवियों का उपकार करती हैं और दो प्रकार से कवियों में स्थित रहती हैं।

जन्मजात रूप में और आहार्य रूप में। इस प्रकार कवि भी दो प्रकार के होते हैं- बुद्धिमान और आहार्य बुद्धि।

पश्चिम में भी काव्यरचना के लिए प्रतिभा के महत्व को विद्वानों ने स्वीकार किया है। इस सन्दर्भ में सुप्रसिद्ध चिन्तक प्लेटो को याद किया जा सकता है। प्लेटो का मानना है कि 'यदि कोई व्यक्ति कविता की देवी 'म्यूज' से से प्राप्त होने वाली प्रेरणा के अभाव में काव्यमन्दिर में प्रवेश पाना चाहता है और सोचता है कि वह वहाँ अपनी कला के बल पर प्रवेश पा लेगा, तो मैं कहता हूँ कि उसे और उसकी कविता को काव्य के पवित्र मन्दिर में प्रवेश नहीं मिलेगा क्योंकि वह उस व्यक्ति की तुलना में कहीं भी नहीं ठहरता, जिसे कविता की देवी से प्रतिभा रूपी प्राकृतिक शक्ति (Muse's madness, or Natural gift) की प्राप्ति है। प्लेटो की मान्यता है कि यदि तुम्हारे पास प्राकृतिक शक्ति है और उसे तुमने आवश्यक वस्तुओं के ज्ञान तथा अभ्यास द्वारा मांज लिया है, तो तुम श्रेष्ठ कवि हो सकते हो। स्पष्ट है कि पश्चिमी चिन्तक भी प्रतिभा,व्युत्पत्ति, और अभ्यास से परिचित हैं। पश्चिम के अनेक चिन्तकों ने इस बात पर विचार किया है कि कवि में ऐसी कौन सी बात होती है, जिसके बल पर वह काव्यरचना में समर्थ हो जाता है। वर्डस्वर्थ के अनुसार 'कवि कौन होता है? ..... वह मानव होता है, मानवों से ही अपनी बात कहता है: हाँ उसकी संवेदनशक्ति अधिक जीवन्त होती है, उसे मानवस्वभाव का अधिक गम्भीर ज्ञान होता है, उसकी आत्मा अधिक विशाल होती है.....अभ्यासवश वह जो कुछ सोचता और अनुभव करता है, उसे अभिव्यक्त करने की अधिक तत्परता उसने अर्जित कर ली है। (पाश्चात्य काव्यशास्त्र की परम्परा, सं., डॉ; नगेन्द्र)

पश्चिम में प्रतिभा को जीनियस अर्थात् दुनिया के छिपे हुए सौन्दर्य को अनावृत्त करने में समर्थ कहा गया है। कल्पना के रूप में भी प्रतिभा को स्वीकार किया गया है और कल्पना को विस्तार से विवेचित भी किया गया है। प्लेटो की दृष्टि में कल्पना फैंटेसिया है, अरस्तू का मानना है कि रचनाकार अपनी कल्पना के बल पर नाटक के विभिन्न पात्रों में प्रविष्ट होकर यह जानने की कोशिश करता है कि दर्शकों या पाठकों पर उसके नाटक का क्या पभाव पडेगा? कॉलरिज कवि-शक्ति को कल्पना मानते हैं,और उसके दो भेद करते हैं- प्रारम्भिक और दूसरी। दूसरी कल्पना भारतीय कारयित्री प्रतिभा है, जिसके बल पर कवि नूतन निर्माण करता है। क्रोचे की सहजानुभूति का आधार भी कल्पना ही है, फ्रायड के अनुसार दिवास्वप्नों या कल्पनाचित्रों की सृष्टि करना अतृप्त मानव का स्वभाव है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि पश्चिमी चिन्तकों का मानना है कि कवि में अन्य लोगों की अपेक्षा संवेदना अधिक प्रखर होती है। उसमें एक शक्ति ऐसी होती है, जो सामान्य जन में नहीं होती। इसी शक्ति के सहारे वह अप्रत्यक्ष वस्तुओं को प्रत्यक्ष कर लेता है।

16.4.2 व्युत्पत्ति

काव्य का दूसरा हेतु है व्युत्पत्ति। लोकहृदय का ज्ञान प्राप्त करने के लिए व्युत्पत्ति अत्यावयक है। राजशेखर के अनुसार औचित्यानौचित्य का विवेक और बहुज्ञता ही व्युत्पत्ति है। व्युत्पत्ति के अन्तर्गत सभी प्रकार का लौकिक, शास्त्रीयज्ञान, लक्षण तथा लक्ष्य

ग्रन्थों की जानकारी, छन्दशास्त्र, अलंकारशास्त्र का ज्ञान, विविध कलाओं की जानकारी, कोश, व्याकरण आदि की जानकारी आदि आ जाते हैं। इस बात को आप इस तरह समझ सकते हैं- यदि आपसे कहा जाय कि बागेश्वर में लगने वाले बग्वाल मेले का या नैनीताल में लगने वाले नन्दादेवी के मेले का वर्णन कीजिए और आपको उस मेले से सन्दर्भित यथेष्ट जानकारियाँ नहीं हैं, तो आपमें लिखने की क्षमता होने पर भी क्या आप ठीक ठीक वर्णन कर पाएंगे? नहीं। उसका सुन्दर, ठीक ठीक वर्णन आप तभी कर सकेंगे जब उसके विषय में आपको पूरी पूरी जानकारी हो। हमारे आचार्यों का भी यह मानना है कि काव्यपरम्परा का अध्ययन करके कवि अपनी रचना को सुन्दर, यथार्थ से सम्पन्न बना सकता है। शास्त्रज्ञान द्वारा कवि के कथन में सौन्दर्य और व्यवस्था आती है, लोकज्ञान द्वारा वह अपनी विषयवस्तु को सम्यक् रूप से व्यक्त कर सकता है, अपने अनुभवजन्य ज्ञान से कवि लोक की प्रस्तुति करने में सफल होता है। व्यवहारज्ञान द्वारा वह जीवन और जगत् से जुडी विभिन्न स्थितियों, समस्याओं पर विचार करके उनका समाधान कर सकता है। काव्यदोषों के निराकरण के लिए भी व्युत्पत्ति आवश्यक है। व्युत्पत्ति को ही आचार्य मम्मट ने निपुणता कहा है। यह निपुणता शास्त्रज्ञान, लोकज्ञान, विद्याज्ञानादि से तो प्राप्त होती ही है, काव्यमर्मज्ञों की निकटता से भी प्राप्त होती है। पश्चिम के सुप्रसिद्ध विचारक मैथ्यू आर्नल्ड कहते हैं कि रचनाकार को चाहिए कि वह श्रेष्ठ कवियों की रचना की कुछ पंक्तियों को कसौटी के रूप में चुने और फिर उनके आधार पर अपनी रचना करे। काव्यरचना का नैपुण्य प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि श्रेष्ठ साहित्यिक कृतियों का निरन्तर अध्ययन हो, अपनी रचना को आलोचक की दृष्टि से परखा जाय और विविध विषयों की जानकारी लेते रहा जाय। पश्चिम के नव्यशास्त्रवादी चिन्तकों ने भी व्युत्पत्ति, लोकशास्त्र के निरीक्षण पर और औचित्यानौचित्य के ज्ञान पर बल दिया है।

16.4.3 अभ्यास

आपने यह कहावत बार-बार सुनी होगी- 'करत-करत अभ्यास के जडमति होत सुजान, रसरी आवत घाट ते सिल पर परत निसान'। अर्थात् अभ्यास द्वारा जड़बुद्धि वाला व्यक्ति भी ज्ञानवान् हो जाता है जैसे पत्थर पर निरन्तर पानी गिरने से पत्थर में भी निशान बन जाते हैं। अभ्यास से आशय है निरन्तर प्रयास करना। हमारे चिन्तकों का मानना है कि काव्य को सुचारु रूप से सम्पन्न करने के लिए अभ्यास भी आवश्यक है। काव्यज्ञों या काव्यनिर्माण के तत्वों को जाननेवाले व्यक्तियों का साहचर्य प्राप्त करके उनके निर्देशन में निरन्तर अभ्यास करना कवि का कर्तव्य होना चाहिए। इससे रचना व्यवस्थित होकर निखर जाती है (भारतीय साहित्यशास्त्र कोश, राजवंश सहाय हीरा,)। अभ्यास प्रतिभा का पोषक हैा अभ्यास से ही काव्यरचना में सौष्ठव और प्रौढता आती है। अभ्यास के अभाव में प्रतिभा भी कुंठित हो जाती है। आचार्य दण्डी का कहना है कि 'पूर्व वासनाजन्य अद्भुत प्रतिभा के न रहने पर भी शास्त्राध्ययन और अभ्यास से वाणी की उपासना करने पर वाणी अवश्य ही अनुग्रह करती है(हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, पृ.)।

काव्यहेतु विषयक इस विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय तथा पश्चिमी

काव्यशास्त्रियों ने प्रतिभा,व्युत्पत्ति और अभ्यास तीनों का वर्णन काव्यहेतु के सन्दर्भ में किया है। हाँ, आचार्यों में इस बात को लेकर अवश्य मतभेद है कि इन तीनों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण कौन सा उपकरण है। ध्यान से देखें तो हमारे सामने यह स्पष्ट है कि ये तीनों अलग-अलग नहीं हैं, अपितु तीनों कवि व्यक्तित्व के ही विभिन्न पक्ष हैं। ये तीनों परस्पर आश्रित हैं। जैसे केवल मिट्टी से घडा नहीं बन सकता, उसे बनाने के लिए पानी, चाक, कुम्हार, आग आदि भी आवश्यक होते हैं, वैसे ही केवल प्रतिभा से काव्य का सृजन नहीं हो सकता। इसी तरह प्रतिभा के अभाव में व्युत्पत्ति और अभ्यास का कोई महत्व नहीं है और व्युत्पत्ति और अभ्यास के अभाव में प्रतिभा की सार्थकता नहीं। हम इन तीनों काव्यकारणों को मम्मट की तरह तीन नहीं अपितु एक ही कारण कह सकते हैं और मान सकते हैं कि इनकारणों के तीन रूप हैं-1;प्रेरक कारण,2; निमित्त कारण तथा 3;उपादान कारण। प्रेरककारण रचनाकार की वह प्रकृति है, जो उसे काव्यरचने की प्रेरणा देती है, निमित्तकारण कवि की प्रतिभा है और उपादान कारण लोकादिशास्त्रों का मनन और अभ्यास है और ये तीनों मिलकर काव्यका हेतु कहलाता है।

(ग) बोध प्रश्न

1. काव्य के हेतु के रूप में प्रतिभा का महत्व बताइए।
2. क्या प्रतिभा,व्युत्पत्ति और अभ्यास काव्य के अलग अलग कारण है, बताइए।

रिक्त स्थान भरिए-

1.प्लेटो ने कविता की देवी.....को कहा है।

2. कारयित्री प्रतिभा कवि से सम्बद्ध है तो भावयित्री.....से। सत्य असत्य बताइए-

1. समाधि काव्य का हेतु है।(सत्य)/ (असत्य)

2.काव्यहेतु और काव्यप्रेरणा में अन्तर नहीं है। (सत्य)/ (असत्य)

16.5 काव्य प्रेरणा के विषय में आचार्यों की दृष्टि

16.5.1 काव्य प्रेरणा विषयक भारतीय दृष्टि

इस इकाई के आरम्भ में हमने वाल्मीकि द्वारा काव्यप्रेरणा के सन्दर्भ में क्रोंचवध के प्रसंग की चर्चा की थी और उसके आधार पर यह जाना था कि कवि किसी घटना, किसी व्यक्ति , किसी वस्तु से जब बहुत अधिक प्रभावित हो जाता है और उसकी चेतना से वह घटना, परिस्थिति, व्यक्ति या वस्तु इतनी व्याप्त हो जाती है कि उसके मनोमस्तिष्क से वह हटती ही नहीं है, तब साहित्य का जन्म होता है। आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी का कहना है कि काव्य की प्रेरणा अनुभूति से मिलती है, यह एक स्वत: अनुभूत तथ्य है। यह अनुभूत तथ्य एक ओर रचनाकार को आविष्ट सा कर देता है, उस समय उसकी संवेदना उस घटना आदि के साथ तदाकार हो जाती है, जैसे आदि कवि की चेतना क्रोंची की ही तरह व्यथा से आविष्ट हो गई थी: दूसरी ओर कवि का चिन्तनपक्ष प्रबल हो जाता है और वह विभिन्न सामाजिक मूल्यों की खोज करने लगता है। इस प्रकार 'काव्यप्रेरणा दो प्रकार की हो सकती है- एक तो भावना के दबाब से अनजाने फूट पडने वाली और दूसरे जीवन-मूल्यों की खोज और प्रतिष्ठा की चिन्ता से उत्पन्न होने वाली। एक में संवेग की प्रधानता है , दूसरे में बौद्धिक चिन्तन की।'(साहित्यानुशीलन, साहित्य की प्रेरणा, पृ. 33)।

16.4.2 काव्य प्रेरणा विषयक पश्चिम की दृष्टि

पश्चिम में काव्यप्रेरणा के विषय में विस्तार से विचार किया गया है। सर्वप्रथम हमें काव्य-प्रेरणा विषयक दो सिद्धान्त प्राचीन यूनान में मिलते हैं। 1.दैवी प्रेरणा का सिद्धान्त और 2. अनुकरण का सिद्धान्त। यूनान के प्राचीन चिन्तक यह मानते हैं कि कवि का काव्यरचना की प्रेरणा काव्य-देवी (द म्यूज) से प्राप्त होती है। यूनान के आदि कवि होमर इस दैवी प्रेरणा पर विश्वास रखते थे। प्लेटो का मत है कि 'जैसे चुम्बक अपने चारों ओर बिखरे हुए लोहे के कणों को आकर्षित करता है और लोहे के कण बहुत से लौह कणों को अपनी ओर खींचते हैं, इसी प्रकार कला की देवी जिनको प्रेरित करती है, वे अन्य बहुत से लोगों को प्रेरणा प्रदान करते हैं। वास्तव में जो सुकवि महाकाव्यों की रचना करते हैं वे अपनी खुद की कला का जरा भी उपयोग नहीं करते, जब वे अपनी सुन्दर रचना का प्रणयन करते हैं तो दैवी प्रेरणा से ही करते हैं। ....उस समय ईश्वर कवियों को मस्तिष्क विहीन करके अपना अनुचर बना लेता है। कवि तब तक रचना नहीं कर सकता जब तक कि वह अनुप्रेरित होकर इन्द्रियज्ञान शून्य न हो जाए'(साहित्यानुशीलन, साहित्य की प्रेरणा)। यूनान तथा रोम के अनेक चिन्तक काव्य की देवी म्यूज के वरदान के परिणाम स्वरूप ही काव्यरचना होती है, यह मानते थे। भारमीय समीक्षक भी यह मानते हैं कि काव्यरचना की प्रेरणा ईश्वरीय देन ही है। अरस्तू की दृष्टि में सफल काव्य की सृष्टि अन्त:प्रेरणा की अवस्था में ही सम्भव है। अरस्तू जीवन की मूल प्रवृत्ति अनुकरण को मानते हैं और उसे पकृति का अनुकरण मानते हैं।क्रोचे ने आत्माभिव्यंजना को काव्य का मूल प्रेरणास्रोत मानते हुए उसे सहजानुभूति के रूप में व्यक्त किया है। स्वच्छन्दतावादी कवि वर्डस्वर्थ

के अनुसार मानवमन की वासनाएं-वैचारिक और सांवेगिक आवश्यकताएं काव्रचना के लिए कवि को प्रेरित करती हैं । शैली काव्यसृष्टि को दिव्यशक्ति मानते हैं-'कविता सचमुच एक दिव्यशक्ति है(इन डिफेन्स ऑव पोयट)। मनोविश्लेषण-शास्त्र के जन्मदाता फ्रायड के अनुसार बालक क्रीडा में अपनी इच्छानुसार संसार का निर्माण करता है और बडा होकर दिवास्वप्नों में अपनी इच्छाओं की पूर्ति करने लगता है। फ्रायड का मत था कि 'हमारी अभुक्त या अतृप्त कामवासना स्वप्न या अचेतनावस्था में और काव्यसृजन की अर्धचेनावस्था में परितृप्त होती है। यह अतृप्त कामना ही काव्य के मूलाधार भावचित्रों की जननी है। अत: हृदय की दबी हुई वासनाएं अपने विकास का मार्ग खोजती हुई काव्य, कला तथा स्वपन आदि की सृष्टि करती है'(काव्यशास्त्र व समालोचना, एम.ए.एच.डी; वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा, पृ. 39)। वस्तुत: कला या साहित्य दिवास्वप्न का उन्नयन है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि व्यक्ति की कौतुहल प्रियता, सौन्दर्याभिलाषा, स्वाभाविक आकर्षण, मानव के क्रियाव्यापारो में अनुराग और आत्माभिव्यक्ति की कामना उसके काव्यसृजन का मूल स्रोत है। आचायभरतमुनि ने काव्य के प्रयोजनों की चर्चा के प्रसंग में लिखा है कि 'ऐसी कोई कला नहीं है, ऐसा कोई शास्त्र नहीं है, ऐसी कोई विद्या नहीं है, ऐसा कोई शिल्प नहीं है, जो काव्य का विषय न बन सके। काव्यप्रेरणा के पीछे भी यही भाव है। जब रचनाकार किसी घटना, विषय, वस्तु आदि से प्रभावित होता है, तब आवेश की स्थिति में काव्यसृजन के लिए तत्पर होता है, उस समय रचनाकार की चेतना के मूल में किसी अभाव की प्रखर अनुभूति रहती है, यह अनुभूति कवि की सर्जनाशक्ति जागरित करने में प्रेरक का काम करती है। पश्चिम के प्रतिभास, आत्माभिव्यक्ति, इच्छापूर्ति, अधिकार भावना आदि से सम्बन्धित काव्यप्रेरणा विषयक सिद्धान्तों के मूल मे भी यही भाव है।

16.6 हिन्दी काव्यशास्त्र में काव्यप्रेरणा और काव्यहेतु

इस इकाई में काव्य के हेतु विषयक भारतीय कव्यशास्त्र परम्परा के अन्तर्गत हम रीतिकालीन आचायों के काव्यहेतु के सन्दर्भ मे विचारों की चर्चा कर चुके हैं, और हमने यह पाया है कि रीतिकालीन आचार्य संस्कृताचार्यों के ही विचारों से साम्य रखते हैं। हाँ यहाँ हम यह जरूर उल्लिखित करना चाहेंगे कि हमारे रचनाकार प्राय: अपनी रचनाओं में यह इंगित करते रहते हैं कि काव्य रचने की प्रेरणा उन्हें कहाँ से मिली है। इस सन्दर्भ में संस्कृत के सुप्रसिद्ध आचार्य, कवि पण्डितराज जगन्नाथ के सन्दर्भ में प्रचलित एक कथा का जिक्र करके हम अपनी बात स्पष्ट करते हैं। पंडितराज जगन्नाथ ने शाहजहाँ के राजपरिवार की एक कन्या लवंगी से विवाह किया जिसके कारण काशी के पण्डितों ने काशी के घाटों पर उनका प्रवेश निषेध कर दिया। इस पर वे काशी के बाहर घाट के ऊपर बैठ गए और उन्होंने गंगा की स्तुति में श्लोक लिखने आरम्भ कर दिये। कहते हैं कि उनके एक-एक श्लोक लिखने के साथ-साथ गंगा एक एक सीढ़ी ऊपर चढ़ने लगीं और गंगा लहरी के पूरा होते ही गंगा उन्हें स्वयं अपने साथ ले गईं। पण्डितराज को इस गंगालहरी को लिखने की प्रेरणा अपने समाज के लोगों द्वारा किए गए तिरस्कार और आस्था के माध्यम से हुई। हमारे महाकवि तुलसीदास के विशय में भी कहा जाता

है कि रामचरित लिखने की प्रेरणा उन्हें हनुमान ने दी। रीतिकालीन कवि घनानन्द का कहना है 'लोग हैं लागि कवित्त बनावत, मोंहि तो मेरे कवित बनावत।

आधुनिक काल में हिन्दी के आचार्यों ने काव्यप्रेरणा और काव्य हेतुओं के विषय में यत्र-तत्र अपने विचार व्यक्त किए हैं। अपनी सुप्रसिद्ध कृति 'साहित्यालोचन' में बाबू श्यामसुन्दरदास ने आत्माभिव्यक्ति की इच्छा, मानव व्यापारों में अनुराग, नित्य और काल्पनिक संसार में अनुराग और सौन्दर्यप्रियता की चर्चा काव्यप्रेरणा के सन्दर्भ में की। जिस तरह वाल्मीकि के सन्दर्भ में कहा गया कि वहाँ शोक से श्लोक की प्राप्ति हुई, इसी तरह सुमित्रानन्दन पन्त ने भी वेदना को काव्य की मूल प्रेरणा के रूप में स्वीकार किया। कीट्स द्वारा लिखित- Our sweetest songs are those,That tells our sadest thoughts की भाँति 'वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान। उमडकर आँखों से चुपचाप, बही होगी कविता अनजान' के द्वारा पन्त ने इस बात की पुष्टि की है। जयशंकर प्रसाद की दृष्टि में कावयानुभूति अखण्ड, आत्मिक व्यापार है और दिनकर की दृष्टि में आत्मानुभूति। मुक्तिबोध के अनुसार अविरल साधना और श्रम के फलस्वरूप सुन्दर अभिव्यक्ति होती है। अज्ञेय भी काव्य प्रेरणा को काव्य का आभ्यन्तरिक उपादान मानते हैं।

16.7 सारांश

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद हम काव्य के उन कारणों के विषय में जान चुके हैं, जो काव्य रचना के हेतु कहलाते हैं। काव्यरचना के मर्म को जानने के लिए काव्य के हेतु -प्रतिभा,व्युत्पत्ति और अभ्यास तथा काव्य की प्रेरणा के विषय में हमने विभिन्न आचार्यों के मतों को परखा और पाया कि भारतीय तथा पाश्चात्य काव्यचिन्तन परम्परा में काव्यहेतुओं और काव्य की प्रेरणा के सन्दर्भ में गम्भीर, विस्तृत और सारगर्भित विवेचन किया गया है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि एक ओर प्रतिभा,व्युत्पत्ति और अभ्यास के बिना काव्यरचना नहीं हो सकती और दूसरी ओर काव्य रचने की प्रेरणा के बिना भी काव्यरचना सम्भव नहीं है। तुलसीदास को उनकी पत्नी रत्नावली ने यदि यह कहकर -अस्थि चर्ममय देह मम, तापर ऐसी प्रीति।जो होती श्रीराम में क्यों होती भवभीति' उकसाया नहीं होता तो रामचरितमानस जैसी रचना की निर्मिति शायद नहीं होती।

16.8 शब्दावली

औचित्यानौचित्य का विवेक- उचित और अनुचित को परखने की क्षमता।

बहुज्ञता- विविध विषयों का ज्ञान बहुज्ञता है।

पिष्टपेषण- पिष्टपेषण का अर्थ है, जो बात पहले कही जा चुकी है, उसे ही बार बार दोहराना।

काव्यमर्मज्ञ- काव्य के मर्म को जानने वाला।

काव्यज्ञ- काव्यज्ञ से तात्पर्य है ऐसे व्यक्ति जो काव्य रचना जानते हों अथवा जो काव्य का अनुशीलन करने वाले हों।

स्वत: अनुभूत- जिसका अनुभव स्वयं हो।

16.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(क) बोध प्रश्न-

1. काव्य हेतु तथा काव्यप्रेरणा में अन्तर बताइए।

किसी घटना को देखकर, सुनकर हमारे मन में विभिन्न विचार आते हैं और हम उन विचारों को बांटना भी चाहते हैं, बस वह घटना हमें कुछ रचने के लिए प्रेरित करती है और हमारी अभिव्यक्ति की क्षमता और योग्यता उसके सन्दर्भ में हमें कुछ रचने के लिए समर्थ बनाती है। काव्यशास्त्र की शब्दावली में घटना का प्रभाव काव्य-प्रेरणा और रचने की ताकत काव्यहेतु है।

2. वाल्मीकि को काव्य रचने की प्रेरणा कैसे मिली- संक्षेप में बताइए।

किसी बहेलिए द्वारा क्रीडा मे लीन क्रोचपक्षियों के जोडे में से क्रोंच का वध करने पर महर्षि के मुँह से अनायास श्लोक की उत्पत्ति हो गई। इसके उपरान्त उनके व्यथित हृदय में रामकाव्य लिखने की प्रेरणा जागरित हुई।

(ख)बोध प्रश्न -

1.वामन काव्यहेतु के लिए काव्यांग शब्द का व्यवहार करते हैं?

2. प्रतिभा काव्य का मुख्य हेतु है ,सिद्ध कीजिए।

रिक्त स्थान भरिए-

1. निपुणता

2. प्रतिभा

3समाधि

सत्य/असत्य बताइए-

1. (सत्य)

2. (असत्य)

(ग) बोध प्रश्न

1. काव्य के हेतु के रूप में प्रतिभा का महत्व बताइए।
2. क्या प्रतिभा,व्युत्पत्ति और अभ्यास काव्य के अलग अलग कारण है, बताइए।

रिक्त स्थान भरिए-

1. म्यूज

2. सहृदय

सत्य असत्य बताइए-

1. (सत्य) 2. (असत्य)

16.10सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- आनन्दवर्धन, ध्वन्यालोक, तृतीय और चतुर्थ उद्योत,व्याख्याकार डॉ,रामसागर त्रिपाठी, (द्वितीय संस्करण, 1981) *मोतीलाल बनारसीदास,दिल्ली*,
- मम्मट, काव्यप्रकाश, व्याख्याकार डॉ. सत्यव्रत सिंह, (1955)*चौखम्बा विद्याभवन,चौक, बनारस-1,*
- अमरनाथ, हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली,(प्रथम संस्करण, 2009)*राजकमल प्रकाशन, दिल्ली,*
- गुप्त, राकेश एवं चतुर्वेदी,ऋषिकुमार, साहित्यानुशीलन, (प्रथम संस्करण, 1972)*सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद*,
- सहाय, राजवंश हीरा, भारतीय-आलोचना-शास्त्र ,(2003)बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना,
- दीक्षित,हरिनारायण एवं टण्डन किरण, भारतीयकाव्यशास्त्रमीमांसा, (प्रथम सं; 1995)*ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली-7,*
- कालेलकर,काका एवं नगेन्द्र(सम्पादक), भारतीय काव्य-सिद्धान्त,(1969) *लोकभारती प्र., इलाहाबाद,*
- मिश्र, भगीरथ, काव्यशास्त्र (1966), *विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी*

16.11सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1 भरतमुनि , नाट्यशास्त्र, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी

2.भामह, काव्यालंकार, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी

3.भिखारीदास, काव्यनिर्णय, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

4.मम्माट , काव्यप्रकाश, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

16.12निबन्धात्मक प्रश्न

1.भारतीय काव्यशास्त्र परम्परा में काव्यहेतुओं के विषय में बताइए।

2.काव्यप्रेरणा से आप क्या समझते हैं, विस्तार से बताइए।

इकाई - 17 भारतीय काव्य शास्त्र के प्रमुख सम्प्रदायः अलंकार सम्प्रदाय

17.1 प्रस्तावना
17.2 उद्धेश्य
17.3 अलंकार सिद्धान्त (अलंकार सम्प्रदाय)
17.3.1 अलंकार: से आप क्या समझते हैं
17.3.2 अलंकार संबंधी अलंकार वादी मत
17.3.3 अलंकार सम्प्रदाय क्या है
17.3.4 काव्य में अलंकारों का महत्व
17.3.5 अलंकारों का वर्गीकरण
17.4 अलंकारों का प्रमुख भेद
3.4.1 शब्दालंकार
17.4.2 अर्थालंकार
17.4.3 उभयालंकार
17.5 सारांश
17.6 शब्दावली
17.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
17.8 उपयोगी पाठ्य सामग्री
17.9 निबंधात्मक प्रश्न

17.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई स्नातक पाठ्यक्रम के अंतर्गत सम्मिलित है .इससे पूर्व की इकाईयों में आपने भारतीय काव्यशास्त्र के उद्भव एवं विकास के साथ-साथ काव्य के स्वरुप , लक्षण , हेतु और प्रयोजन के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त किया .

प्रस्तुत इकाई में आप जानेंगे काव्य की आत्मा संबंधी भारतीय दृष्टि ने अलंकार को महत्वपूर्ण तत्व मानकर काव्य के क्षेत्र में उसका कितना विस्तृत और बहुविध विवेचन किया .

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप अलंकार सम्प्रदाय का विस्तृत ऐतिहासिकविवेचन कर सकेंगे तथा अलंकारों के भेदाभेद को समझ सकेंगे

17.2 उद्देश्य

इस ईकाई को पढ़ने के पश्चात आपः

- अलंकार का अर्थ तथा परिभाषा के संबंध में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- भारतीय काव्यशास्त्र के अलंकार सम्प्रदाय और उसकी परम्परा के बारे में बता सकेंगे।
- काव्य में अलंकारों के महत्व तथा उनके विशेष स्थान के बारे में बता सकेंगे।
- अलंकारों के वर्गीकरण और उनके प्रमुख भेद शब्दालंकार, अर्थालंकार एवं उभयालंकार के बारे में जान सकेंगे।
- अलंकारों से और अधिक परिचित हो सेंकेगे।

17.3 अलंकार सिद्धान्त (अलंकार सम्प्रदाय)

17.3.1 अलंकार से आप क्या समझते हैं

अलंकार शब्द की व्युत्पत्ति अलं शब्द से हुई है. आचार्य दण्डी के शब्दों में कहें तो- ‘‘काव्य शोभाकारान धर्मानलंकार प्रचक्षते।’’ (आचार्य दण्डी) अर्थात काव्य की शोभा बढ़ाने वाले धर्मों को अलंकार कहते हैं । अलंकार को और अधिक स्पष्ट रूप में परिभाषित करें तो हम इस दो रूपों में जान सकते हैं।

(एक) साधन परक रूप में- इस रूप में दो प्रकार से जाना जा सकता है

प्रथम- अलंक्रियतेऽनेन इति अलंकारः अर्थात जो अलंकृत करे या काव्य की शोभा में वृद्धि करे।

द्वितीय- ‘‘अलंकरोति इति अलंकारः।’’ अर्थात् अलंकृत करे या शोभित करे।

(दो) भाव परक रूप में - ''अलंकृति अलंकारः।'' अर्थात् अलंकरण ही अलंकार है। अब आप जानना चाहेंगे कि '' अलंकरण करना क्या है? इसका तात्पर्य है शोभित करना, सौन्दर्य बढ़ाना। दरअसल सुन्दरता सभी प्राणियों की प्रिय वस्तु है जिस प्रकार उचित रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा आदि मनुष्य के सौन्दर्य में वृद्धि करते हैं उसी प्रकार अलंकारों के उचित प्रयोग से काव्य के सौन्दर्य में वृद्धि होती है।

अलंकार का मूल अर्थ तो अब आप समझ गए होंगे आइए आगे अलंकार के संबंध में और अधिक जानकारी प्राप्त करें।

अलंकार मूलतः साहित्य के सौन्दर्य में वृद्धि करने वाले कारक हैं उसकी आत्मा नहीं। वे साधन है साध्य नहीं। उनके उचित प्रयोग से ही काव्य की शोभा में बृद्धि होती है। यह भी स्मरणीय है कि काव्य में अलंकारों का अतिशय प्रयोग उसके मूल सौन्दर्य को नष्ट कर देता है मसलन जब कोई सुन्दर नारी आभूषण पहनती है तो उसकी सुन्दरता में चार-चाँद लग जाते हैं इसके विपरीत वह आभूषणों से ही लद जाए तो वह सुन्दर के बजाय कुरूप ही अधिक लगेगी।

17.3.2 अलंकार संबंधी अलंकारवादी मत-

अलंकार शास्त्र के जन्म के कई शताब्दी पहले भारतीय साहित्य में अलंकारों का प्रयोग होता रहा है . ऋग्वेद की हम बात करें तो उसमें 'अरंकृति' शब्द का प्रयोग मिलता है-

''का तेऽस्त्यरंकृतिः सूक्तै कदा नूनं ने महावन दाश्मे।'' (ऋग्वेद 7129131)

लेकिन सर्वप्रथम भारतीय काव्य शास्त्र का उपलब्ध प्रामाणिक एवं प्राचीन ग्रन्थ आचार्य भरतमुनि प्रणीत नाट्य शास्त्र है जिसमें इन्होंने उपमा, रूपक, दीपक एवं यमक इन चार अलंकारों का उल्लेख किया है। तत्पश्चात आचार्य मेहाविन का नाम केवल परवर्ती ग्रन्थों में मिलता इनका कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है।वास्तविक अर्थों में अलंकार संबंधी शास्त्रीय मत-परम्परा की असल शुरूआत छठीं शताब्दी में हुई इसे प्रतिष्ठित करने में आचार्य भामह का नाम उल्लेखनीय है इन्होंने अपने ग्रन्थ 'काव्यालंकार' में अऽचालीस अलंकारों का उल्लेख किया है साथ ही अलंकारों को काव्य का अनिवार्य तत्व माना है-न कान्तमपि निर्भूसं विभति वनिता मुखम् (काव्यालंकार 1.13) (जिस प्रकार कमनीय नारी का सुन्दर मुख भी बिना आभूषणों के शोभा नहीं देता उसी प्रकार अलंकारों के अभाव में काव्य सुन्दरता को प्राप्त नहीं करता)।

आचार्य भामह के बाद अलंकारवादियों में आचार्य दण्डी का प्रमुख स्थान है अपने ग्रन्थ काव्यदर्श में इन्होंने इकतीस अलंकारों का विवेचन किया है और समस्त शोभादायक धर्मो को अलंकार कहा है-

''काव्य शोभाकारान धर्मानलंकार प्रचक्षते।'' (काव्यादर्श 2.1)

दण्डी के बाद लगभग आठवीं शताब्दी के साहित्यशास्त्रियों उद्भट और वामन का नाम उल्लेखनीय है। इनके ग्रन्थ क्रमशः **काव्यालंकार सार संग्रह** और **काव्यालंकारसूत्रवृत्ति** है

उद्भट ने 48 अलंकारों को अपने ग्रन्थ में विवेचित किया है। आचार्य वामन अलंकारों को काव्य में महत्वपूर्ण स्थान देते है। काव्य सौन्दर्य की प्रतिष्ठा अलंकारों में निहित मानते हैं इनके विचार से 'सौन्दर्य' ही अलंकार है सौन्दर्य के समावेश से ही काव्य ग्रहण करने योग्य है-

काव्यं ग्राह्यमलंकारात। सौन्दर्यमलंकारः (काव्यालंकारसूत्रवृत्ति)

वामन के उपरान्त अलंकार सम्प्रदाय के समर्थन में मत व्यक्त करने वाले आचार्यों में कमी आती दिखाई पड़ती है वह इसलिए कि नवीं सदी के आरम्भ में ध्वनि सिद्धान्त का प्रवर्तन हो चुका था जिसके प्रतिपादक आचार्य आनन्दवर्धन थे। जिसमें रस, अलंकार आदि सिद्धान्त ध्वनि के अन्तर्गत विवेचित किए जाने लगे थे। इसके बावजूद भी महिम भट्ट, कुन्तक, नामिसाधु ने अलंकारों पर अपने मत व्यक्त किए।

महिम भट्ट अलंकारों को काव्य में अभिधा रूप में स्वीकार करते हैं और इन्हें भणिति की भंगिमा का रूप मानते हैं। कुन्तक की दृष्टि में कथ्य की विशेष शैली ही अलंकार है साथ ही ये शैली में वक्रता का होना अपरिहार्य मानते हैं।नामि साधु सभी हृदय जीतने वाले अर्थ प्रकारों को अलंकार की सीमा में संनिहित मानते हैं।

उपरोक्त अलंकारवादियों के मतों से ज्ञात होता है कि-

- इन्होंने अलंकार शब्द का प्रयोग एवं ग्रहण व्यापक अर्थों में किया है इनकी दृष्टि में अलंकार काव्य सौन्दर्य के सभी साधनों को अपने में समाहित करता हैं
- इनकी दृष्टि में अलंकार काव्य का सर्वस्व है इन्होंने इसे काव्य की आत्मा कहा है किन्तु रस , ध्वनि, रीति, वक्रोक्ति, आदि सम्प्रदायों की तरह इसे स्पष्ट रूप में काव्य की आत्मा घोषित नहीं किया इसे काव्य की प्राणधारा जरूर माना है।
- अग्निपुराण में तो रस को काव्य की आत्मा मानते हुए भी अलंकार को काव्य की प्राणधारा माना है और साथ ही यह भी कहा है कि- अलंकार रहिता विधवैव सरस्वती'' अर्थात्-अलंकारों के अभाव में वाणी विधवा के समान है।

17.3.3 अलंकार सम्प्रदाय क्या है

आप अलंकार संबंधी विभिन्न साहित्याचार्यों के मतों को जान चुके हैं आइए अब अलंकार सम्प्रदाय के स्वरूप के बारे में जानकारी प्राप्त करते हैं-

आप जान चुके हैं कि अलंकार सम्प्रदाय के प्रतिपादक आचार्य भामह हैं . इन्होंने अलंकारों के स्वरूप के बारे में कहा है , ''अलंकार काव्य का अन्तरंग तत्व है और उसका सर्वस्व वक्रोक्ति है अर्थात् इन्होंने अलंकार का मूल ही वक्रोक्ति यानी वचन के टेढ़ेपन को माना है इनकी दृष्टि में साधारण शब्द अर्थ नहीं वल्कि वक्र शब्द अर्थ (अलंकृत शब्द और अर्थ) ही काव्य है।आचार्य दण्डी ने भी रस, भाव आदि को स्वतंत्र न मानकर इन्हें अलंकार के अन्तर्गत

मान है इन्होंने सभी शोभा कारक उपकरणों को अलंकार के अन्तर्गत समाहित करने का प्रयास किया है।आचार्य वामन अलंकारों की स्वतंत्र सत्ता को नकारते हुए उन्हें गुणों के माध्यम से काव्य सौन्दर्य के विधायक धर्म मानते हैं। इन्होंने गुणों को काव्य का नित्य धर्म बताया है और अलंकार को उसका सहायक तत्व माना है। नौवीं शताब्दी के आरम्भ में ध्वनि सम्प्रदाय के अविर्भाव से अलंकार सम्प्रदाय की प्रतिष्ठ में कमी होती नजर आती है। आचार्य आनन्दवर्धन ने अलंकारवादी आचार्यों की मान्यताओं का खण्डन करते हुए कहा है, अलंकारों का विधान रसादि के अंग के रूप में होना चाहिए न कि अंगी के रूप में- ''**विवक्षा तत्परत्वेन लाँगित्वेन कदाचन्**।''(ध्वन्यालोक 2/1)इनकी दृष्टि से अलंकार काव्य का प्राण तत्व नहीं बल्कि रस को प्रकाशित करने वाला धर्म है जो अपने धर्म ,द्वारा साधारणीकृत होने में सहयोग करता है। यों तो आचार्य मम्मट रसवादी हैं लेकिन इन्होंने अपने समय (11वीं सदी) तक प्रचलित सभी काव्य सिद्धान्तों का अपने ग्रन्थ 'काव्य प्रकाश' में समन्वय किया है इनकी दृष्टि में अलंकारों का मुख्य उद्देश्य रस को पुष्ट करना है. ये मानते हैं कि हार, आभूषण आदि अलंकार के प्रकार हैं जो रस के उपकारक हैं।

आचार्य मम्ट तो स्पष्ट शब्दों में 'अनलंकृति पुनः क्वापि' कहकर काव्य में अलंकारों की अनिवार्य उपयोगिता को ही समाप्त कर देते हैं। किन्तु 13 वीं शताब्दी के आचार्य जयदेव को मम्मट की मान्यता स्वीकार नहीं है। मम्मट की मान्यताओं का खण्डन करते हुए वे कहते हैं- जिसे काव्य में अलंकार स्वीकार नहीं वह अग्नि को उष्णता रहित क्यों नहीं मानता- ''अंगीकरोति यः काव्यं शब्दार्थालंकृति। असौ न मन्यते कस्मादनुस्णमनलंकृति।।'' (चंद्रलोक 1/8) आचार्य विश्वनाथ (चौदहवीं शताब्दी) ध्वनिवादी आनन्दवर्धन और रसवादी मम्मट से प्रेरणा लेकर अलंकार को शब्द और अर्थ का अस्थि धर्म मानते हैं।

अलंकारों के स्वरूप के संबंध में विभिन्न आचार्यों के मतों की विवेचना का जो सार है उसे हम निम्न बिन्दुओं के रूप में ग्रहण कर सकते हैं-

- काव्य में अलंकारों की उपस्थिति अनिवार्य है अलंकारों के अभाव में काव्य सौन्दर्य को प्राप्त नहीं कर सकता । जैसे सुन्दर स्त्री की सुन्दरता आभूषणों के अभाव में फीकी लगती है।
- काव्य का सम्पूर्ण सौन्दर्य मूलतः- गुण,रस, रीति, आदि अलंकार पर आश्रित है। अलंकारों के अन्तर्गत गुण,दोष आदि सभी काव्यांगों की गणना की जाती है।
- अलंकार रस या काव्य का प्राणतत्व नहीं बल्कि रस को प्रकाशित करने वाला धर्म है .
- अलंकार काव्य में सीधे सौन्दर्य प्रदान करने वाले साधन मात्र नहीं बल्कि गुणों को उत्कर्ष प्रदान करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं. गुण ही हैं जो काव्य को शोभा प्रदान करते हैं।

उपरोक्त विवेचना से निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि अलंकार काव्य का अनिवार्य तत्व नहीं है वह शब्दार्थ के साधन द्वारा रस का उपकारक है। 'अनलंकृति पुनः क्वापि' के माध्यम से आचार्य मम्मट ने मूलतः यही सिद्ध करने का प्रयास किया है. कहना न होगा कि अलंकार काव्य के बाह्य शोभा कारक धर्म हैं । आचार्य विश्वनाथ और मम्मट के विचारों से यही पुष्ट होता है। भामह, दण्डी, उद्भट भी केवल अलंकारों को काव्य का अनिवार्य साधन मानते हैं। आन्तरिक धर्म नहीं। यह दृष्टिकोण मूलतः ध्वनिवादियों का है। अलंकार वादी तो अलंकार को काव्य का सर्वस्व मानते हैं।

17.3.4 काव्य में अलंकारों का महत्व-

विभिन्न आचार्यों के अलंकारों के स्वरूप से संबंधित विवेचना से हम जान चुके हैं कि अलंकार मूलतः काव्य के बाह्य साधन हैं. हम जानते हैं कि काव्य में अलंकारों द्वारा चमत्कार और आनन्द उत्पन्न किया जाता है जिससे काव्य और अधिक रोचक और ग्राह्य बनता है। प्राचीन से अर्वाचीन तक के सभी साहित्याचार्यों की अलंकार संबंधी विवेचना पर गौर किया जाए तो कहना न होगा कि अलंकार काव्य के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण नहीं तो आवश्यक जरूर हैं वे काव्य में उस गुण की सृष्टि करने में समर्थ होते हैं. जिसके कारण पाठक बार-बार काव्य की ओर आकर्षित होता है। काव्य का कुशल कलाकार अलंकारों के प्रयोग के समय सचेत रहता है कि कहीं काव्य में अलंकार हावी न हो जाए और कविता की मूल संवेदना में बाधा न पहुँचे इसलिए वह सन्तुलित होकर चलता है. यह सन्तुलन संवेदना और सौन्दर्य का होता है तात्पर्य यह कि जब कोई पाठक कविता का रसास्वादन करे तो संवेदना तक पहुँचे इन्द्रधनुषी रंगो के साथ। न कि रूखे-सूखे धुन्ध भरे आकाश की तरह। कविता में इन्द्रधनुषी रंग अलंकारों के माध्यम से ही भरे जा सकते हैं। कहना न होगा कि काव्य में नीरसता को दूर करने के लिए अलंकारों का समुचित प्रयोग आवश्यक जान पड़ता है।

इससे पहले भी आप जान चुके हैं कि स्त्री में प्राकृतिक सुन्दरता होने पर भी वह अपने सौन्दर्य में वृद्धि के निमित्त आभूषणों का प्रयोग करती है। कारण साफ है कि वह बाह्य सौन्दर्य वृद्धि के साथ-साथ अपनी आन्तरिक तुष्टि चाहती है यह तुष्टि उसके प्रसन्नचित चेहरे से प्रकट होकर उसके प्राकृतिक सौन्दर्य में चार चाँद लगा देती है। ठीक इसी सन्दर्भ में हम अलंकारों को देखें तो मूलतः अलंकार काव्य में वाह्य शोभा वृद्धि के कारक है, किन्तु यह कहने में अति न होगी कि इनके समावेश से काव्य की आन्तरिक ध्वन्यात्मकता भी आकर्षक एवं हृदय ग्राही रूप धारण कर सहृदय को चरमोल्लास की स्थिति तक पहुँचाती है। काव्य में अलंकारों के महत्व पर विचार करते समय इस सन्दर्भ में भी विचार करना महत्वूपर्ण लगता है कि क्या अलंकारों के अतिशय प्रयोग से काव्य के सौन्दर्य में वृद्धि हो सकती है? आप सभी जानते हैं कि सुन्दर नारी यदि आभूषणों से ही लद जाए तो वह सुन्दर के बजाए कुरूप ही अधिक लगेगी, उसका भड़कीलापन सहृदय में कुरूचि ही उत्पन्न करेगा। ठीक यही बात कविता पर भी लागू होती है। अभिव्यक्ति के समय कवि को अलंकारों के संयमित प्रयोग के लिए सचेत रहना चाहिए क्योंकि किसी भी काव्यांग की अधिकता काव्य के लिए उचित नहीं जान पड़तीं. शब्दों के माध्यम से अत्यधिक

चमत्कार उत्पन्न कर देना और जटिल अर्थों की अत्यधिक योजना के कारण कहीं ऐसा न हो कि 'बात सीधी थी पर भाषा के चक्कर में टेढ़ी हो गई।' तात्पर्य यह कि अलंकारों की अधिकता से कवि की मूल संवेदना सहृदय तक पहुँचे ही नहीं। इसलिए अलंकार पर अपने मत व्यक्त करने वाले सभी आचार्य इस तथ्य पर एकतम हैं कि अलंकार न केवल चमत्कार और कौतुहल उत्पन्न करने के लिए प्रयुक्त न हों अपितु उनका प्रयोग मूल संवेदना की रक्षा तथा सहृदय के मनोरंजन के लिए हो।

17.3.5 अलंकारों का वर्गीकरण

आप काव्य में अलंकारों के महत्व को जान चुक हैं. आइए अब उनके वर्गीकरण के बारे में जानकारी प्राप्त करें।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है- अलंकार वर्णन करने की चमत्कार पूर्ण शैलियाँ हैं ..... ये शैलियाँ न जाने कितनी हो सकती हैं अलंकारों के वर्गीकरण व संख्या के संबंध में इनकी यह टिप्पणी अक्षरसः सही है। भारतीय साहित्यशास्त्र के पहले प्रथम उपलब्ध एवं प्रामाणिक ग्रन्थ 'नाट्यशास्त्र' के रचानाकार भरतमुनि ने अलंकारों की संख्या चार निर्धारित की थी बाद में इस संख्या में उतरोत्तर वृद्धि होती गई जहाँ तक अलंकारों के सर्वप्रथम वर्गीकरण का प्रश्न है इसे आधार दिया है राजानक रुय्यक ने । इन्होंने जो मान्यताएँ दी उनके आधार पर अलंकारों के वर्गीकरण से संबंधित दो सिद्धान्त उभरकर सामने आते हैं-

पहला- आश्रयाश्रित सिद्धान्त। दूसरा- अन्वय व्यतिरेक सिद्धान्त।

आश्रयाश्रित सिद्धान्त- 12 वीं शताब्दी के अन्त में आचार्य रूय्यक ने अपने ग्रन्थ '**अलंकार सर्वस्व**' में इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया इनके अनुसार जो अलंकार शब्द पर आश्रित है वे शब्दालंकार है और जो अर्थ पर आश्रित हैं वे अर्थालंकार है।

अन्वय व्यतिरेक सिद्धान्त- इस सिद्धान्त के संबंध में आचार्य मम्मट ने कहा है कि - विशिष्ट शब्द होने पर अलंकार विशेष हों तो शब्दालंकार होगा और विशिष्ट शब्द के न रहने पर शब्दालंकार अलंकारत्व में कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। अन्वय व्यतिरेक तर्क का आधार है- पूर्ववर्ती आधार के रहने पर आधृत का रहना। इसके लिए 'प्रवृत्ति सहत्व' साक्ष्य है। उदाहरणार्थ बन्दहु गुरू पद पदुम परागा' को लें तो यहाँ पर 'प' वर्ण की आवृत्ति बार-बार होनेपर अनुप्रास अलंकार है इसके स्थान पर यदि यही अर्थ ध्वनित करने वाले पद 'चरण-कमल-मकरन्द' करे रख दें तो अर्थ तो वही रहेगा लेकिन अनुप्रास अलंकार नहीं रहेगा। इसी सन्दर्भ में आगे चलकर अग्निपुराण के रचयिता ने अलंकारों के तीन स्पष्ट विभाजन किए जो बहुप्रचलित हैं-

1. शब्दालंकार
2. अर्थालंकार
3. उभयालंकार

तत्पश्चात् आचार्य भोज ने दण्डी के वर्गीकरण को केन्द्र में रखकर सभी अलंकारों को शब्दालंकार,अर्थालंकार, उभयालंकार में विभाजित किया साथ ही इन तीनों वर्गों के अन्तर्गत आने वाले अलंकारों की सूची भी दी जिसका विवरण निम्न प्रकार है-

शब्दालंकार- जाति, रीति, गति, वृति, छाया, उक्ति, मुद्रा , भणति, गुम्फन, शय्या, पठिति, यमक, श्लेष, अनुप्रास, चित्र, वक्रोवाक्य, प्रहेलिका, गूढ़ प्रश्नोतर, अध्येय, श्रव्य, प्रेक्ष्य, अभिनय।

उभयलंकार- उपमा, रूपक, साक्य, संशयोक्ति, समाधि, युक्ति, अपहन्हुति, उत्प्रेक्षा, तुल्ययोगिता, उल्लेख, सहोक्ति, समुच्चय, आक्षेप, अर्थान्तरन्यास, विशेष, दीपक, क्रम, परिकर, अतिशय, पर्याय, संतुष्टि, भाविक एवं श्लेष।

आधुनिक काल में भी बहुविद्य समालोचकों ने उनमें सर्वाधिक मान्यता डॉ0 नगेन्द्र के वर्गीगकरण को मिली अपने ग्रन्थ 'रीति काव्य की भूमिका' में इन्होंने व्यक्ति की मानसिक दशाओं को आधार बनाकर अलंकारों को छः वर्गो में विभाजित किया है-

1. साधर्म्य प्रधान (मानसिक स्पष्टता)
2. अतिशय मूलक (विस्तार)
3. वैसम्य मूलक (आश्चर्य)
4. औचित्य मूलक (अन्विति)
5. वक्रता मूलक (जिज्ञासा)
6. चमत्कार मूलक (कोतुहल)

बोध प्रश्न- क

1. अलंकार से क्या तात्पर्य है? संक्षेप में उत्तर दीजिए?

2. आचार्य दण्डी द्वारा अलंकारों के संबंध में दी गई परिभाषा लिखिए?

3. भामह ने अपने ग्रन्थ 'काव्यालंकार' में कितने अलंकारों का उल्लेख किया है?

4. ''कथ्य विशेष की शैली ही अलंकार है।'' यह कथन किसका हैं

अ-भामह

ब- दण्डी

स-वामन

द-कुन्तक

बोध प्रश्न -ख

1. आचार्य भामह ने अलंकार का सर्वस्व किसे माना है?

2. आचार्य दण्डी ने किन-किन उपकरणों को अलंकार के अन्तर्गत समाहित करने का प्रयास किया है?

3. 'अनलंकृति पुनः क्वापि' किसने कहा है?

अ-भामह

ब-दण्डी

स-वामन

द-मम्मट

4. 'अलंकार शब्द और अर्थ का अस्थि धर्म है' किसने कहा है?

अ-आनन्दवर्धन

ब-विश्वनाथ

स-मम्मट

द-दण्डी

बोध प्रश्न - ग

1. अलंकारों के वर्गीकरण को सर्वप्रथम आधार किसने दिया?

2. आश्रयाश्रित सिद्धान्त के प्रतिपादक कौन है

अ- विश्वनाथ

ब- रूय्यक

स- भोज

द- नगेन्द्र

3.अलंकारों का बहुप्रचलित वर्गीकरण शब्दालंकार , अर्थालंकार, उभयालंकार को सर्वप्रथम आधार किसने दिया?

4. आधुनिक काल के किस समालोचक के अलंकारों से संबंधित वर्गीकरण को सर्वाधिक मान्या मिली?

17.4 अलंकारों के प्रमुख भेद

आप अलंकारों के वर्गीकरण की परम्परा और विभिन्न आचार्यों द्वारा किए गए उनके वर्गीकरण के बारे में जान चकें हैं। आइए अब अलंकारों के बहुप्रचलित वर्गीकरण शब्दालंकार, अर्थालंकार, और उभयालंकार के साथ ही इनके अन्तर्गत आने वाले प्रमुख अलंकारों के बारे में जानकारी प्राप्त करें।

17.4.1 शब्दालंकार-

जहाँ काव्य में शब्दों के माधम से चमत्कार उत्पन्न होता है वहँ शब्दालंकार होता है। जैसा कि नाम और परिभाषा से ही जाहिर है कि इसमें शब्दों का सौन्दर्य ही प्रमुख होता है ये शब्द पर आधारित होते हैं। इनमें कुछ विशेष शब्दों द्वारा काव्य सौन्दर्य में वृद्धि होती है ये विशेष शब्द जिस काव्य सौन्दर्य का प्रतिपादन करते हैं उनके स्थान पर यदि उनके पर्यायवाची शब्दों को रख दिया जाए तो काव्य सौन्दर्य में वृद्धि असम्भव है। मसलन हम कहें कि- **चारू चन्द्र की चंचल किरणे खेल रही थी जल, थल में** यहाँ चारू, चन्द, और चंचल शब्दों में सौन्दर्य है इनके स्थान पर यदि इनके पर्यायवाची शब्द सुन्दर, मयंक, और अस्थिर रख दें तो काव्य में न ही नादात्मक सौन्दर्य आ पाएगा और न ही संगीतात्मकता कहना न होगा कि शब्दालंकार में विशिष्ट शब्दों का विशेष महत्व होता है।

यह शब्दालंकार काव्य में मूलतः दो प्रकार से आ सकता है। 1- वर्ण सौन्दर्य के द्वारा 2- वाक्य सौन्दर्य के द्वारा।

आचार्य मम्मट ने मूलतः छः शब्दालंकार माने हैं- अनुप्रसा, यमक, श्लेष, वक्रोवित्त, पुनरूक्तवदाभास तथा चित्र।

यहाँ हम प्रमुख शब्दालंकारों की विवेचना करेंगे- अनुप्रास, यमक, श्लेष, वक्रोक्ति, पुनरूक्तवदाभास, वीप्सा, तथा पुनरूक्ति प्रकाश।

अनुप्रास- वर्णों की आवृत्ति को अनुप्रास कहते हैं तात्पर्य यह कि जब एक वर्ण या वर्ण समूह की दो या उससे अधिक बार आवृति हो वहाँ अनुप्रास अलंकार होता है। जैसे-

''कल-कल कोमल कुसुम कुंज पर।
मधु बरसाने वाला कौन।''

नोट- व्यंजनों की बार-बार आवृति होने पर ही अनुप्रास अलंकार होता है स्वरों की नहीं अनुप्रास मूलतः दो प्रकार का होता है- वर्णानुप्रास और पदानुसार। वर्णानुप्रास के भी दो भेद होते हें- छेकानुप्रास और वृत्यानुप्रास।

छेकानुप्रास- छेक का अर्थ है चतुर! जहाँ अनेक वर्णों की एक बार स्वरूप और क्रम से आवृति (सादृश्य) हो वहाँ छेकानुप्रास होता है चतुरों को अधिक प्रिय होने के कारण इसका नाम छेकानुप्रास पडा़।

'सर-सर हँस न होत बाजि गजराज न दर-दर।
तरू-तरू सुफल न होत नारि पतिव्रता धर-धर।।''

इन पंक्तियों में 'सर-सर', 'दर-दर', 'तरू-तरू', में छेकानुप्रास है क्योंकि यहाँ अनेक वर्णों की एक बार स्वरूप और क्रम से आवृति हुई है।

वृत्यानुप्रास- जब एक साथ अनेक वर्णों की अनेक बार आवृति हो वहाँ वृत्यानुप्रास होता हैं जैसे-

'सम सुवरन सुखमाकर सुखद न थोर।
सीय अंग सखि कोमल कनक कठोर।।''

इन पंक्तियों में 'स' वर्ण की अनेक बार आवृति क्रमशः हई है अतः वृत्यानुप्रास अलंकार है।

लाटानुप्रास- छेकानुप्रास और वृत्यानुप्रास में आप देख चुके हैं कि दानेां में वर्ण या समूह की आवृति होती है लेकिन लाटानुप्रास में एक शब्द या वाक्य दो या उससे अधिक बार आता है किन्तु अन्वय करने पर उसका अर्थ भिन्न हो जाता है। लाट देश यानी गुजरात के विदग्ध लोगों को विशेष रूप से प्रिय होने के कारण इसे लाटानुप्रास कहते हैं. जैसे-

'पराधीन जो जन नहीं स्वर्ग नरक ता हेतु।
पराधीन जो जन, नहीं स्वर्ग नरक ता हेतु।''

इस दोहे का अर्थ अन्वय करने पर इस प्रकार होगा- जो मनुष्य गुलाम नहीं, उसके लिए नरक भी स्वर्ग है। जो मनुष्य गुलाम है उसके लिए स्वर्ग ,स्वर्ग नहीं नरक है।

एक बहुप्रचलित उदाहरण और देखिए-

पूत सपूत तो का धन संचय? पूत कपूत तो का धन संचय?

यमक: जब एक या एक से अधिक शब्द एक से अधिक बार प्रयुक्त हों एवं उनका प्रत्येक बार अर्थ अलग-अलग हो वहाँ यमक अलंकार होता है। जैसे-

'तों पर वारौं उरवसी सुनि राधिके सुजान।
तू मोहन के उस वसी है, उसवसी समान।।''

यहाँ पहली पंक्ति में उरवसी का अर्थ उर्वशी है दूसरी में उर वसी यानी हृदय में वसी के अर्थ में है।

श्लेष- श्लेष का अर्थ है चिपकना। जहाँ किसी एक शब्द में कई अर्थ चिपके हों वहाँ श्लेष अलंकार होता है तात्पर्य यह
कि जहाँ कवि एक से अधिक अर्थ वाले शब्दों का प्रयोग करके काव्य में चमत्कार उत्पन्न करता है वहाँ श्लेष अलंकार होता है उदाहरण के लिए-

'चरन धरत शंका करत भावत नीद न शोर'

सुबरन को ढूढ़त फिरत कवि, व्यमिचारी चोर।।''

यहाँ सुबरन शब्द से काव्य में चमत्कार उत्पन्न हुआ है और उसके विभिन्न संदर्भों में तीन अर्थ हैं- कवि के संदर्भ में सुन्दर वर्ण, व्यभिचारी के संदर्भ में सुन्दर रूप रंग या शरीर, चोर के सन्दर्भ में सोना। अतः उपरोक्त में श्लेष अलंकार है।

एक और उदाहरण देखिए-'रहिमन पानी राखिए बिन पानी सब सून।

पानी गए न उबरे मोती मानस चून।।''

यहाँ भी पानी शब्द तीन विभिन्न अर्थ संदर्भों में प्रयुक्त हुआ है। मोती के सन्दर्भ में कान्ति, मनुष्य के संदर्भ में प्रतिष्ठा और चूने के संदर्भ में पानी। अतः श्लेष अलंकार है।

वक्रोक्ति- वक्रोक्ति का अर्थ है 'वक्र या टेढ़ी उक्ति' अर्थात् किसी वक्ता द्वारा कही गई उक्ति का अर्थ घुमा-फिरा कर दूसरा ही ग्रहण करना। कहना न होगा कि जहाँ किसी उक्ति में वक्ता के अभिप्रेत आश्य से भिन्न अर्थ की कल्पना की जाए वहाँ वक्रोक्ति अलंकार होता है- इसके दो भेद हैं-

1- श्लेष वक्रोक्ति

2- काकु वक्रोक्ति-

उदाहरण के लिए रावण - अंगद का संवाद देखिए-

'सो भुजबल राख्यो उर घाली

तीतेउ सहसबाहु बलि, बाली।'

यहाँ जीतेउ का अर्थ हारेउ हो गया है अर्थात् उपरोक्त पंक्ति का अर्थ इस प्रकार होगा- सहस्रार्जुन,बलि बालि से आप हारे थे। अतः वक्रोक्ति अलंकार है।

पुनरूक्तिवदाभास- जहाँ दो शब्दों के अर्थ में पुनरूक्ति का अभास हो किन्तु वास्तविक अर्थों में दोनों एक ही अर्थ के द्योतक न होकर भिन्न-भिन्न अर्थों के द्योतक हों वहाँ पुनरूक्तिवदाभास अलंकार होता है। जैसे-

समय जा रहा है काल है आ रहा ।
सचमुच उल्टा भाव भुवन में छा रहा ।।

उपरोक्त पंक्तियों में 'समय' और 'काल' शब्दों से प्रतीत हो रहा है कि दोनों के अर्थ समान हैं किन्तु गौर करें तो यहाँ काल का अर्थ 'मृत्यु है न कि समय । अतः यहाँ पुनरूक्ति न होकर पुनरूक्ति का आभास हो रहा है अतः यहाँ पनरूक्तिवदाभास अलंकार है।

पुनरूक्ति प्रकाश- जहाँ काव्य में एक शब्द की एक या एक से अधिक बार आवृति हो उनका अर्थ भी समान हो वहाँ पुनरूक्ति प्रकाश अलंकार होता है। जैसे-

छिल-छिल कर छाले फोड़े, मल-मल कर मृदुल चरण से ।

घुल-घुल कर वह रह जाते, आँसू करूणा के कण से ।।

उपरोक्त काव्यांश में 'छिल-छिल,' 'मल-मल,' 'घुल-घुल', शब्दों में पुनरूक्ति प्रकाश है।

नोट- पुनरूक्ति प्रकाश अलंकार काव्य में अर्थ की रूचिरता बढ़ाने के लिए प्रयुक्त होता है।

वीप्सा- पुनरूक्ति प्रकाश की तरह ही इस अलंकार में भी शब्दों की पुनरावृत्ति होती है किन्तु यह आवृति अर्थ की रूचिरता या सौन्दर्य वर्धन के लिए नहीं अपितु मनोवेगों मसलन आदर, उत्साह, आश्चर्य , शोक ,घृणा आदि की तीव्रता प्रकट करने के लिए होती है। काव्य में जहाँ ऐसा हो वहाँ वीप्सा अलंकार होता है।

'राम कहत चलु, राम कहत चलु, राम कहत चलु भाई।'

यहाँ राम कहत चलु की बार-बार आवृति मूलतः भक्ति का आवेग प्रकट करने के लिए हुई है। अतः यहाँ वीप्सा अलंकार है।

17.4.2 अर्थालंकारः

आप शब्दालंकार एवं उसके अन्तर्गत आने वाले महत्वपूर्ण अलंकारों के संबंध में जान चुके हैं। आइए अब हम अर्थालंकार और इसके अन्तर्गत आने वाले कुछ महत्वपूर्ण अलंकारों के बारे में जानकारी प्राप्त करें। जब काव्य में सौन्दर्य शब्द के बजाय उसके अर्थ द्वारा आता है वहाँ अर्थालंकार होता है अब आप अर्थालंकार के स्वरुप को समझ गए होंगे। शब्दालंकार में जहाँ काव्य में चमत्कार शब्द में निहित होता है वहीं अर्थालंकार में चमत्कार अर्थ में निहित होता है। आइए अब कुछ महत्वपूर्ण अर्थालंकारों उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, भ्रान्तिमान, संदेह, मानवीकरण और विरोधाभास की परिभाषा सहित व्याख्या करते हैं।

उपमा- उपमा का शाब्दिक अर्थ है 'उप' (समीप) 'मा' (मापना तौलना) अर्थात् जहाँ दो भिन्न पदार्थों की आपस में तुलना कर उनकी समानता व्यक्त की जाए वहाँ उपमा अलंकार होता है. यह सभी सादृश्यमूलक अलंकारों का मूलाधार माना जाता है। इसके चार अंग हैं।

1. उपमेय- जिसको उपमा दी जाए।

2. उपमान- जिससे उपमा दी जाए।

3. साधारण धर्म- उपमेय तथा उपमान में उपस्थित वह गुण जो दानों में समान रूप से पाया जाता है जैसे 'मुख चन्द्रमा सा सुन्दर' है. इस वाक्य में मुख (उपमेय) चन्द्रमा (उपमान) और दोनों में समान रूप से पाया जाने वाला साधारण धर्म यानी गुण सुन्दर है।

4. वाचक शब्द- उपमेय तथा उपमान में सादृश्य बताने वाला शब्द (समान, सा,सदृश्य) वाचक कहलाता है। जैसे मुख चन्द्रमा के सा सुन्दर है वाक्य में 'सा' शब्द वाचक है।

उपमा के प्रमुख दो भेद होते हैं-

1. पूर्णोपमा 2. लुप्तोपमा

रूपक - जहाँ उपमेय और उपमान का निषेध रहित आरोप हो वहाँ रूपक अलंकार होता है। आरोप से आशय है - एक वस्तु से दूसरी वस्तु को साथ इस प्रकार रखना कि दोनों में अभेद हो जाए अर्थात् कोई अन्तर न रहे।

जैसे- 'अधर-लता के फूल सुनहले, लाज-अनिल से झर जाते।' इसकी प्रथम पंक्ति में अधर (उपमेय) का लता (उपमान) का दूसरी पंक्ति में लाज (उपमेय) का अनिल (उपमा) का निषेध रहित आरोप है अतः यहाँ रूपक अलंकार है।

उत्प्रेक्षा - उत्प्रेक्षा का शाब्दिक अर्थ है- उत्कृष्ट रूप में प्रकष्ट (उपमान) को देखना अर्थात् सम्भावना करना। यानी जहाँ उपमेय और उपमान भिन्न होते हुए भी इनमें समानता की सम्भावना मानी जाए वहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार होता है। जैसे-

'सोहत ओढ़े पीत-पट श्याम सलोने गात।'
मनहूँ नीलमनि शैल पर आतप परयो प्रभात।''

उपरोक्त दोहे में पीताम्बर धारी श्याम कृष्ण- बिहारी (उपमेय) में नीलमणि पर्वत पर प्रातः कालीन धूप (उपमान) की सम्भावना व्यक्त की गई है अतः यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार है।

भ्रान्तिमान - जहाँ सादृश्य के कारण उपमेय में उपमान का भ्रम हो, साथ ही उपमेय को उपमान समझ लिया जाए वहाँ भ्रान्तिमान अलंकार होता है। जैसे-

बिल विचार कर नाग सूँड में घुसने लगा विषैला साँप ।
काली ईख समझ विषधर को उठा लिया गज ने झट आप ।।

उपरोक्त पंक्तियों में भ्रम के कारण हाथी के सूँड का छिद्र साँप् को बिल प्रतीत हो रहा है तथा हाथी को बिषैले साँप् में काली ईख का भ्रम हो रहा है अतः यहाँ भ्रान्तिमान अलंकार है।

संदेह - जहाँ उपमेय और उपमान में अत्यधिक समानता देखकर यह निश्चय नहीं हो पाता कि इनमें कौन उपमेय है? कौन उपमान। अर्थात् संदेह बना रहता है वहाँ संदेह अलंकार होता है। जैसे-

सारी बीच नारी है कि नारी बीच सारी है।
कि सारी ही कि नारी है कि नारी ही कि सारी है?

उपरोक्त पंक्तियों में द्रापदी के चीर हरण के समय चीर का ढेर देखकर संदेह हो रहा है कि साडी़ के बीच में नारी है कि नारी के बीच में साडी़ है अतः यहाँ संदेह अलंकार है।

मानवीकरण - जहाँ प्रकृति, पशु-पक्षी, एवं निर्जीव पदार्थों अर्थात् मानव से इतर पदार्थों में मानवीय गुण आरोपित किए जाएँ वहाँ मानवीकरण अलंकार होता है । जैस-

बीती विभावरी जाग री'
अम्बर-पनघट में डुबो रही तारा-घट उषा-नगरी।।''

यहाँ रात्रि बीतने और उषा काल का वर्णन करते समय कवि ने उषा को युवती के रूप में चित्रित किया है जो आकाश रूपी पनघट में तारे रूपी घड़े को डुबो रही है। अतः यहाँ मानवीकरण अलंकार है।

विरोधाभास - जहाँ वास्तव में दो वस्तुओं में विरोध न हो केवल विरोध का आभास हो वहाँ विराधाभास अलंकार होता है। जैसे'

तंत्री नाद कविता रस, सरस राग, रति रंग ।
अनबूढ़े तिरे जे बूढ़े सब अंग ।।

उपरोक्त दोहे में 'जो नही डूबे थे वे डूबे गए' ओर जो अच्छी तरह डूब गए वे तर गए ' में विरोध प्रतीत हो रहा है। लेकिन वास्तव में विचार किया जाए तो यहाँ कवि का तात्पर्य यह है कि जो संगीत, काव्य और प्रेम में लीन नहीं होते वे असफल हो जाते हें जो पूरी तरह तल्लीन हो जाते हैं वे सफल हो जाते हैं अतः यहाँ विरोध का आभास मात्र है विरोध नहीं। इसलिए यहाँ विरोधाभास अलंकार है।

17.4.3 उभयालंकार:

आइए अब उभयालंकार के बारे में जानकारी प्राप्त करते हैं। काव्य में अनेक बार एक ही स्थान पर दो या दो से अधिक अलंकार विद्यमान होते हैं ऐसे स्थान पर उभयालंकार होता है। जैसे-

सम सुबरन सषमाकर सुखद न थोर ।
सीय अंग सखि कोमल कनक कठोर ।।

उपरोक्त पंक्तियों में पहली पंक्ति में पहली पंक्ति में अनुप्रास और दूसरी पंक्ति में व्यतिरेक अलंकार है। अतः यहाँ पर उभयालंकार है।

17.5 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- भारतीय काव्य शास्त्र में वर्णित अलंकार सम्प्रदाय और उसकी परम्परा की विवेचना कर सकते हैं।
- अलंकार से आशय एवं उसके स्वरूप के बारे में बता सकते हैं।
- अलंकार संबंधी अलंकार वादी मतों के बारे में बता सकते हैं।
- अलंकारों का बहुप्रचलित वर्गीकरण शब्दालंकार , अर्थालंकार एवं उभयलंकार तथा इनके अन्तर्गत आने वाले प्रमुख अलंकारों को बता सकते हैं।

17.6 शब्दावली

अलंकृत	-	सजा हुआ
प्रणीत	-	बना हुआ , निर्मित
उपरान्त	-	बाद में
तुष्टि	-	संतोष
निषेध	-	अभाव

17.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न- क

1. देखिए इकाई भाग 3.3.1
2. काव्य शोभाकारान धर्मानलंकार प्रचक्षते।
3. अड़चालीस
4. द- कुन्तक

बोध प्रश्न - ख

1. वक्रोक्ति
2. सभी शोभाकारक उपकरणों को
3. द- मम्मट
4. आचार्य विश्वनाथ

बोध प्रश्न- ग

1. राजानक रुय्यक ने
2. रुय्यक
3. आचार्य दण्डी ने
4. डॉ0 नगेन्द्र को

17.2.11 उपयोगी पाठ्य सामग्री

विश्वम्भर नाथ त्रिपाठी, चन्द्रलोक सुधा, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, 1961।

राम बिहारी शुक्ल,काव्य प्रदीप, हिन्दी भवन जालन्धर और इलाहाबाद।

डॉ0 नगेन्द्र,रीति काव्य की भूमिका-नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली, 1977

डॉ0 नगेद्र,भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका- नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली, 1977

डॉ0 रामचन्द्र तिवारी,भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य शास्त्र की लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद, 2007।

डॉ0 तारक नाथ वाली,भारतीय काव्य शास्त्र, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, 2010

गणेश यम्बक देशपाण्डे,भारतीय साहित्य शास्त्र, राजपाल एण्ड संस नई दिल्ली, 1958।

डॉ0 भगीरथ मिश्र एवं डॉ0 बलभद्र तिवारी,काव्यांग विवेचन, स्मृति प्रकाशन इलाहाबाद।

17.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. अलंकार से आप क्या समझते हैं ? काव्य मैं अलंकारों का महत्व बताते हुए अलंकार सम्प्रदाय की विस्तृत विवेचना कीजिये .
2. अलंकारों की परिभाषा देते हुए अलंकारों के प्रमुख वर्गीकरण एवं भेदों की विस्तार से विवेचना कीजिये .

इकाई 18 भारतीय काव्यशास्त्र के प्रमुख सम्प्रदाय : ध्वनि

18.1 प्रस्तावना
18.2 उद्देश्य
18.3 ध्वनि का अभिप्राय
18.4 ध्वनि और शब्दशक्तियाँ
18.4.1 अभिधा
18.4.2 लक्षणा
18.4.3 व्यंजना
18.5 ध्वनिसिद्धान्त का प्रवर्तन
18.6 ध्वनिकाव्य के भेद
18.7 हिन्दीसाहित्यशास्त्रियों का ध्वनिचिन्तन
18.8 पश्चिम के साहित्यशास्त्रियों का ध्वनिचिन्तन
18.9 सारांश
18.10 शब्दावली
18.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
18.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
18.13 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
18.14 निबन्धात्मक प्रश्न

18.1 प्रस्तावना

भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परा में ध्वनि सिद्धान्त का बहुत महत्व है। इसके प्रवर्तन का श्रेय आचार्य आनन्दवर्धन को जाता है। इस सिद्धान्त से पहले भारतीय काव्यशास्त्र के

क्षेत्र में तीन सिद्धान्तों को आचार्यों ने अत्यधिक विस्तार और गहराई से विवेचन किया था। आचार्य भामह, दण्डी, उद्भट, रुद्रट आदि आचार्यों ने अलंकार सम्प्रदाय को प्रतिष्ठित किया था, भारतीय काव्यशास्त्र के आद्याचार्य भरतमुनि ने रस को महत्वपूर्ण स्थान का अधिकारी सिद्ध किया था और आचार्य वामन ने रीति सम्प्रदाय का विश्लेषण विवेचन करके रीति के लिए काव्यात्मा शब्द का व्यवहार किया।

आचार्य वामन ने भारतीय काव्यशास्त्र के क्षेत्र में काव्यशास्त्रियों को काव्य के जीवनाधायक सूक्ष्म तत्व के विषय में विचार करने के लिए एक पृष्ठभूमि तैयार कर दी थी, जिसके परिणामस्वरूप अन्य सिद्धान्तों- ध्वनि, वक्रोक्ति, औचित्य का आचार्यों ने काव्यात्मा के रूप में प्रतिपादन किया। ध्वनि सिद्धान्त इन सभी सिद्धान्तों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण काव्यसिद्धान्त बना। इस सिद्धान्त का स्रोत वैयाकरणों के 'स्फोट' सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त की स्थापना के लिए ध्वनिवादियों को काव्यशास्त्रियों के बहुत विरोध का सामना करना पड़ा था, लेकिन प्रतिष्ठित होने के बाद यह सिद्धान्त काव्यशास्त्रियों के विवेचन का विषय शताब्दियों तक रहा। आज भी उत्तर-आधुनिकतावादी चिन्तन के सूत्र ध्वनि सिद्धान्त में खोजे जा सकते हैं।

इस इकाई के अध्ययन से आप ध्वनिसिद्धान्त के विषय में समग्रत: परिचित हो सकेंगे कि ध्वनि क्या है? ध्वनि के आधार पर काव्य के कौन कौन से भेद हैं। काव्य में शब्दशक्तियों का क्या महत्व है? पश्चिम में कल्पना विषयक विचार और ध्वनिसिद्धांत में परस्पर क्या समानताएं हैं.

18.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप...

* बता सकेंगे कि ध्वनि क्या है।
* समझा सकेंगे कि ध्वनि और शब्दशक्तियों का काव्य में क्या महत्व है।
* समझा सकेंगे कि क्या ध्वनि काव्य की आत्मा है।

18.3 ध्वनि का अभिप्राय

ध्वनि से पूर्व जो तीन काव्यसिद्धान्त काव्यशास्त्रियों की विवेचना का विषय बने, उन पर यदि हम विचार करें तो सामान्यत: हम कह सकते हैं कि रससिद्धान्त यदि काव्य के भावपक्ष पर विशेष प्रकाश डालता है, तो अलंकार सिद्धान्त काव्य के अभिव्यक्ति पक्ष पर। हालॉंकि अलंकारवादियों ने रसवदादि अलंकारों के द्वारा काव्य के वस्तुपक्ष पर भी विचार किया, लेकिन काव्य के बाह्य रूपाकार पर विशेष ध्यान रखने के कारण इस सिद्धान्त द्वारा काव्य का पूरा पूरा विवेचन नहीं किया जा सकता है। इस बात को ध्यान में रखते हुए रीतिसिद्धान्त के प्रवर्तक वामन ने गुणाधारित रीति व्यवस्था का निर्देश किया और गुणों के द्वारा काव्य की शैली को समझने का प्रयास किया, उन्होंने रस को 'कान्ति' नामक गुण का विषय माना और अलंकारों को काव्योत्कर्ष का साधन मानकर रस और अलंकार को व्यवस्थित करने का प्रयास

किया। पर कतिपय दोषों के कारण यह सिद्धान्त बहुत स्वीकृत नहीं हो सका। परिणामत: परवर्ती आचार्यों ने ऐसे तत्वों की खोज करनी शुरु की, जो काव्य में गुणों से परे हो, जो काव्य में व्याप्त हो और जो शब्द और अर्थ से परे हो, और इस खोज के परिणामस्वरूप ध्वनि सिद्धान्त का उदय हुआ। यह सिद्धान्त इस तथ्य पर आधारित है कि काव्य में सामान्य शब्दार्थ के अतिरिक्त कोई अन्य अर्थ छिपा होता है, जो शब्द और अर्थ में नहीं होता है, पर रचनाकार का अभिप्रेत होता है।

ध्वनि शब्द काव्यशास्त्र में वैयाकरणों के स्फोट सिद्धान्त से काव्यशास्त्र के क्षेत्र में आया है, जिसका सामान्यत: अर्थ है आवाज़, दो वस्तुओं के परस्पर टकराने से उत्पन्न आवाज़, कानों को सुनाई पड़ने वाला नाद। 'स्फुटति अर्थो अस्मादिति स्फोट:- यानी जिस शब्द से अर्थ फूटता है, अभिव्यक्त होता है, वह स्फोट है। यह नित्य एक और अखण्ड है। यह स्फोट शब्द का होता है, वाक्य का होता है, पूरे प्रबन्ध का होता है। वैयाकरणों की दृष्टि में स्फोट का अर्थ है- 'पूर्ववर्ती वर्णों के उच्चारण के संस्कार के साथ अन्तिम वर्ण के उच्चारण के अनुभव से अर्थ की अभिव्यक्ति' । अर्थात् व्याकरण के अनुसार कोई भी शब्द ध्वनियों का समूह है। जब हम किसी शब्द का उच्चारण करते हैं तो क्रमश: कई ध्वनियाँ हमारे कानों तक पहुँचती हैं, लेकिन शब्द की अन्तिम ध्वनि कानों तक पहुँचते पहुँचते आरम्भ की सभी ध्वनियाँ तिरोहित हो जाती हैं। यहाँ सवाल उठता है कि हमें शब्द के अर्थ का बोध किस ध्वनि से होता है? यदि हम संगीत शब्द का उच्चारण करते हैं, तो सं उच्चारण के समय ग्, ई, त् और अ ध्वनियाँ तो हैं ही नहीं, यदि हम यह मानते हैं कि त ध्वनि अर्थ का बोध कराती है, तो स् अ ग् ई त् और अ ध्वनियों की क्या जरूरत? इसके लिए वैयाकरण एक नित्य शब्द की कल्पना करते हैं और उसे स्फोट कहते हैं। वे कहते हैं कि पृथक् पृथक् वर्णों से अर्थबोध न होकर स्फोट से होता है। तीनों ध्वनियों का उच्चारण एकसाथ हो नहीं सकता। इसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि ठीक है कि तीनों ध्वनियाँ एक साथ उच्चरित नहीं हो सकतीं, लेकिन पूर्व पूर्व वर्ण संस्कार रूप में तो हमारे मानस में स्थित हो जाते हैं, ये संस्कार अन्तिम वर्ण के उच्चारण के साथ अर्थबोध कराते हैं। किसी भी शब्द में वर्णों के संयोग-वियोग से (जैसे संगीत शब्द में स्+अ+अनुस्वार+ग्+ई+त्+अ इन सात वणों का उपयोग होता है, ये सभी वर्ण अनित्य हैं और इनसे उच्चरित किए जाने वाले शब्द से नित्य ध्वनिरूप शब्द प्रकट होता है और इससे) जो स्फोट उत्पन्न होता है, उसे ध्वनि कहते हैं-

य: संयोगवियोगाभ्यां करणैरुपजायते।
स स्फोट: शब्दज: शब्दोध्वनिरित्युच्यते बुधै:। -भर्तृहरि , वाक्यपदीयम्

स्पष्ट है कि स्फोट के व्यंजक अर्थ को ध्वनि कहते हैं। ध्वनि सिद्धान्त के आचार्यों ने यह पाया कि शब्द के कोशगत, व्यवहार में प्रयुक्त अर्थ सामान्यत: स्वीकृत होते हैं, शास्त्रादि विषयों के विवेचन में भी समर्थ होते हैं लेकिन साहित्य में कोशगत अर्थ से काम नहीं चलता। वहाँ तो कवि का अभिप्रेत अर्थ मुख्य हो जाता है। उदाहरणत: यदि कवि यह कहता है कि -

'कितना चौड़ा पाट नदी का कितनी भारी शाम,
कितने खोये खोये से हम कितना तट निष्काम'-सर्वेश्वर दयाल सक्सेना,

तो कवि नदी के चौड़े पाट के विषय में नहीं बता रहा होता है, वह अपनी अन्यमनस्कता, अपनी उदासी के विषय में भी बता रहा होता है। वह जो बताना चाहता है, वह शब्दों में नहीं कह रहा है, पर शब्दों से जो अर्थ निकल रहा है, वही अभिप्रेत अर्थ ध्वनिवादियों के अनुसार ध्वनि है। यह ध्वनि काव्य की आत्मा है। स्पष्ट है कि ध्वनिवादियों ने जिस ध्वनि की व्याख्या की है, उसका सम्बन्ध शब्द की व्यंजना शक्ति से है अत: ध्वनि को जानने से पहले शब्दशक्तियों के विषय में जानना जरूरी है।

18.4 ध्वनि और शब्द-शक्तियाँ

संस्कृत में शब्द को ब्रह्म की संज्ञा दी गई है- शब्दं ब्रह्म:। इसका आशय यह है कि शब्द में अपार क्षमता होती है। यह क्षमता उसकी अर्थ सामर्थ्य से आती है। इस सामर्थ्य को शक्ति कहा जाता है। हम जब से भाषा सीखते हैं, शब्द और उसके अर्थ के विषय में जानते हैं और यह भी जानते हैं कि शब्द और अर्थ का शाश्वत सम्बन्ध है। अर्थ के बिना शब्द शव के समान है और शब्द के बिना अर्थ अस्तित्वहीन है। तुलसीदास का कहना है कि शब्द और अर्थ जल और जल में उठनेवाली लहर के समान हैं, जिन्हें पृथक् नहीं किया जा सकता है- 'गिरा अरथ जल बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न'। शब्द का उच्चारण करते ही हमारे मन में, कल्पना में और अनुभूति में शब्द का अर्थज्ञात हो जाता है। स्वादिष्ट व्यंजन का नाम लेते ही मुँह में पानी आ जाता है, गुलाब शब्द का उच्चारण करते ही फूल के रंग और गंध का बोध होने लगता है, स्पष्ट है कि शब्द का अर्थबोध किसी शक्ति के द्वारा होता है, अत: शब्द का अर्थगत व्यवहार ही शब्दशक्ति है।

हम अपने परिवेश से, शब्दकोशों से, लोकव्यवहार से, वृद्धजनों के अनुभव से शब्दों के अर्थादि के विषय में जानते हैं। हम यह भी पाते हैं कि प्रत्येक शब्द का एक निश्चित अर्थ निर्धारित है। सामान्य तौर पर हम उसी अर्थ का व्यवहार करते हैं, किन्तु शब्द के सामान्य अर्थ की अपनी सीमा होती है और कभी कभी हम अपने विचार उससे अभिव्यक्त कर पाने में असमर्थ हो जाते हैं, तब हम कुछ प्रतीकों का या बिम्बों का या कल्पना का सहारा लेकर अपनी बात स्पष्ट करने की कोशिश करते हैं, शब्दके इस व्यापार को साहित्यशास्त्री शब्द का लक्षणा व्यापार या व्यंजना व्यापार कहते हैं। इस तरह से शब्द के तीन व्यापार दृष्टिगत होते हैं- अभिधा- अर्थात् शब्दादि के निर्धारित अर्थ को बताने वाला व्यापार, लक्षणा- अर्थात् शब्द के लाक्षणिक अर्थ को बताने वाला व्यापार और व्यंजना- अर्थात् शब्द से व्यंजित होने वाले अर्थ को बताने वाला व्यापार । सामान्य बोलचाल में भी हम अक्सर प्रतीकात्मक भाषा का प्रयोग करते हैं, ताकि अपनी अनुभूतियों को अधिकाधिक स्पष्ट तरीके से अभिव्यक्त कर सकें। जैसे -यह सड़क दिल्ली जाती है, पेट में चूहे कूद रहे हैं, आँखों में रात कट गई, वह हाथ पर हाथ रखकर बैठा है, मुँह में दही जमा है, वह घोड़े बेच कर सोया है- जैसे वाक्यों को हम व्याकरण की दृष्टि से देखें तो ये सभी वाक्य गलत हैं, लेकिन इनका हम अक्सर व्यवहार करते हैं और इनकी अभिव्यंजना की शक्ति से हम अच्छी तरह से परिचित हैं। ऐसे भाषिक प्रयोग साहित्य में निरन्तर प्रयुक्त होते हैं। इसीसे काव्यभाषा और सामान्यभाषा का अन्तर भी स्पष्ट होता है। रोज के परिचित विषयों, घटनाओं आदि का वर्णन जब सामान्य व्यक्ति करता है, तो वह सुनने वालों पर उतना प्रभाव नहीं

छोड़ता, पर जब कवि वही वर्णन करता है, तो अनेकानेक पाठक, श्रोता विस्मित हो जाते हैं। सन्ध्याकाल में जब सूर्यास्त होता है, सूर्य की रक्तिम किरणें पेड़ों की चोटियों पर पड़ती हैं, तो प्रत्येक संवेदनशील उस दृश्य से प्रभावित होता ही है, पर जब कवि वर्णन करता है-

दिवस का अवसान समीप था, गगन था कुछ लोहित हो उठा,
तरुशिखा पर थी अवराजती, कमलिनी कुल वल्लभ की प्रभा (प्रियप्रवास, हरिऔध)

तो उसका प्रभाव पाठकों पर अक्षुण्ण रूप से पड़ता है। स्पष्ट है, शब्दार्थ की यही सामर्थ्य साहित्यजगत् में शब्दशक्ति कहलाती है।

आचार्यों का मानना है कि शब्द तीन प्रकार के होते हैं- वाचक, लक्षक और व्यंजक और इन शब्दों के अर्थ वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ कहलाते हैं। इन तीन प्रकार के शब्दों से सम्बन्धित शक्तियाँ भी तीन हैं- अभिधा, लक्षणा और व्यंजना। कुछ आचार्य तात्पर्या नामक चौथी शक्ति भी मानते हैं और उसको इस रूप में पारिभाषित करते हैं- जो वृत्ति अभिधा द्वारा प्रतिपादित अर्थों को अन्वित कर एक विशेष या अभिनव अर्थ का बोध कराए और वह अर्थ वाच्यार्थों का योग मात्र ही न होकर कुछ विलक्षण प्रकार का वाक्यार्थ हो, उसे तात्पर्यावृत्ति कहते हैं। लेकिन अधिकांश आचार्यों का यह मानना है कि तात्पर्या शक्ति अभिधा, लक्षणा और व्यंजना से पृथक् नहीं है, अत: अलग से उसका उल्लेख आवश्यक नहीं है। आचार्य विश्वनाथ ने इन शब्दशक्तियों का उल्लेख इस रूप में किया है-

वाच्योSर्थोSभिधया बोध्यो लक्ष्यो लक्षणया मत:।
व्यंङ्ग्यो व्यंजनया तास्स्युस्तिस्र: शब्दस्य शक्तय:। -साहित्यदर्पण

आइए, इन तीनों शब्दशक्तियों के विषय में जानें।

18.4.1 अभिधा-

यह हम सब जानते हैं कि शब्द और अर्थ का अनादि सम्बन्ध है और प्रत्येक शब्द के लिए अर्थ और अर्थ के लिए शब्द नियत है। जो शब्द साक्षात्संकेतित अर्थ को यानी कोशगत, व्यवहार में प्रयुक्त अर्थ को बताता है, वह वाचक शब्द है-
साक्षात्संकेतितमर्थमभिधत्ते स वाचक:। इस वाचक शब्द से व्याकरण, कोश, व्यवहार, वाक्यशेष, आप्तवाक्य, विवृत्ति(विवरण), सिद्धपद सान्निध आदि के द्वारा जो मुख्य अर्थ अभिव्यक्त होता है, वह अभिधा है। यानी शब्द की जिस शक्ति द्वारा मुख्यार्थ, वाच्यार्थ, साक्षात्संकेतित अर्थ का बोध हो, उसे अभिधा कहते हैं-

स मुख्योSर्थस्तस्य मुख्यव्यापारोSस्याभिधोच्यते ।

-शब्द का वह मुख्य व्यापार जो शब्द के मुख्य अर्थ, साक्षात्संकेतित अर्थ, वाच्यार्थ का बोधक है, अभिधा है। अभिधा शब्द की मुख्य शक्ति है। लक्षणा और व्यंजना का बोध होने से पहले अभिधा शक्ति से अर्थबोध होता है। यद्यपि साहित्यजगत् में व्यंजना शक्ति को सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण माना जाता है, पर लक्षणाशक्ति या व्यंजनाशक्ति भी वाच्यार्थ के उपरान्त प्रकट होती हैं, इसीसे हमारे रीतिकालीन आचार्य कवि देव का कहना है-

अभिधा उत्तम काव्य है, मध्य लक्षणा हीन
अधम व्यंजना रस कुटिल उलटी कहत नवीन।

18.4.2 लक्षणा

जैसा कि हमने पहले देखा कि कभी-कभी शब्दों के सामान्य अर्थ से कहने वाले का अभिप्राय प्रकट नहीं होता है और फिर वक्ता कहने के नये-नये तरीके खोजता है। तब श्रोता वक्ता की प्रयोग सामर्थ्य को समझकर अर्थबोध कर लेता है। भावों में जब अधिक तीव्रता हो, वक्ता कथन में रमणीयता लाना चाहे, तब वाच्यार्थ के अशक्त होने पर जिस दूसरी शब्द शक्ति से काम लिया जाता है, वह लक्षणा है। लक्षणा की परिभाषा है-

मुख्यार्थबाधे तद्योगे रूढितोऽथ प्रयोजनात् अन्योऽर्थो लक्ष्यते यत् सा लक्षणाऽऽरोपिता क्रिया।

-मुख्यार्थ के बाधित होने पर रूढ़ि अथवा प्रयोजन के आधार पर मुख्यार्थ से सम्बन्धित दूसरा अर्थ जहाँ आरोपित किया जाता है, वहाँ लक्षणा शब्दशक्ति होती है। आचार्यों ने लक्षणा की तीन शर्तें बताई हैं- 1. शब्द के मुख्यार्थ से अर्थ की सम्यक् प्रतीति न हो, यह मुख्यार्थबाध है, 2. मुख्यार्थ के स्थान पर कोई ऐसा अर्थ ले लिया जाए, जो मुख्यार्थ से सम्बन्धित हो और जिससे वक्ता का अभिप्रेत सिद्ध हो जाए और 3.मुख्यार्थ से सम्बन्धित जो अन्यार्थ लिया जाए, वह या तो परम्परा से किसी अर्थ में रूढ़ हो गया हो या किसी प्रयोजन की सिद्धि करता हो। लक्षणा को पारिभाषित करते हुए आचार्यों ने यह भी माना है कि लक्षणा में जो मुख्यार्थ से सम्बन्धित अन्य अर्थ लिया जाता है, वह 'आरोपित' किया जाता है। उदाहरणस्वरूप यदि हम वाक्य प्रयोग करते हैं कि- वहाँ तो लाठियां चल रही हैं, तो इस वाक्य में मुख्यार्थ बाधित है, क्योंकि लाठियां स्वत: नहीं चल सकतीं, पर लाठियां चलाई जा सकती हैं, यह मुख्यार्थ से योग है। मुख्यार्थ से सम्बन्धित जो दूसरा अर्थ लिया गया है, वह प्रयोजन के सहारे लिया गया है और इस अर्थ को आरोपित किया गया है। अत: यहाँ लक्षणा शब्दशक्ति है। इसी तरह यदि कहा जाय कि 'वह कविता लिखने में प्रवीण है' तो भी मुख्यार्थ बाधित होगा क्योंकि प्रवीण शब्द का व्युत्पत्तिपरक अर्थ है- वीणा बजाने में कुशल। लेकिन प्रवीण शब्द कुशल, चतुर के अर्थ में रूढ़ हो चुका है अत: यहाँ रूढ़ से मुख्यार्थ से सम्बद्ध अन्यार्थ ग्रहण करने पर भी लक्षणा शक्ति है। लक्षणा शक्ति या तो रूढ़ि पर आधारित होती है या प्रयोजन पर, अत: इस दृष्टि से लक्षणा के दो भेद हैं- रूढ़ा लक्षणा और प्रयोजनवती लक्षणा। प्रयोजनवती लक्षणा दो प्रकार की है- गौणी और शुद्धा। गौणी लक्षणा में बाधित मुख्यार्थ से लक्ष्यार्थ का सम्बन्ध गुणों का होता है। उदाहरण के लिए किसी व्यक्ति के लिए कहा जाय कि वह बैल है, तो इसका आशय यह होता है कि उसमें बैल के समान गुण हैं, अत: यहाँ गौणी लक्षणा मानी जाएगी। जहाँ मुख्यार्थ से लक्ष्यार्थ का सम्बन्ध गुणों के अतिरिक्त किसी अन्य सम्बन्ध पर आधारित हो, वहाँ शुद्धा लक्षणा है। जैसे यह सडक दिल्ली जा रही है- यहाँ क्योंकि सड़क जड़ है, वह दिल्ली नहीं जा सकती, तो मुख्यार्थ बाधित हो गया। सड़क दिल्ली नहीं जा सकती, लेकिन उस पर चल कर व्यक्ति दिल्ली पहुँच सकता है, यह दूसरा अर्थ गुणेतर सम्बन्धों पर आधारित है। इसके बाद लक्षणा के अनेक

अर्थ किए गये हैं, किन्तु आचार्य मम्मट द्वारा निर्धारित छ: भेद स्वीकार किए गए। ये छ: भेद निम्नांकित हैं-

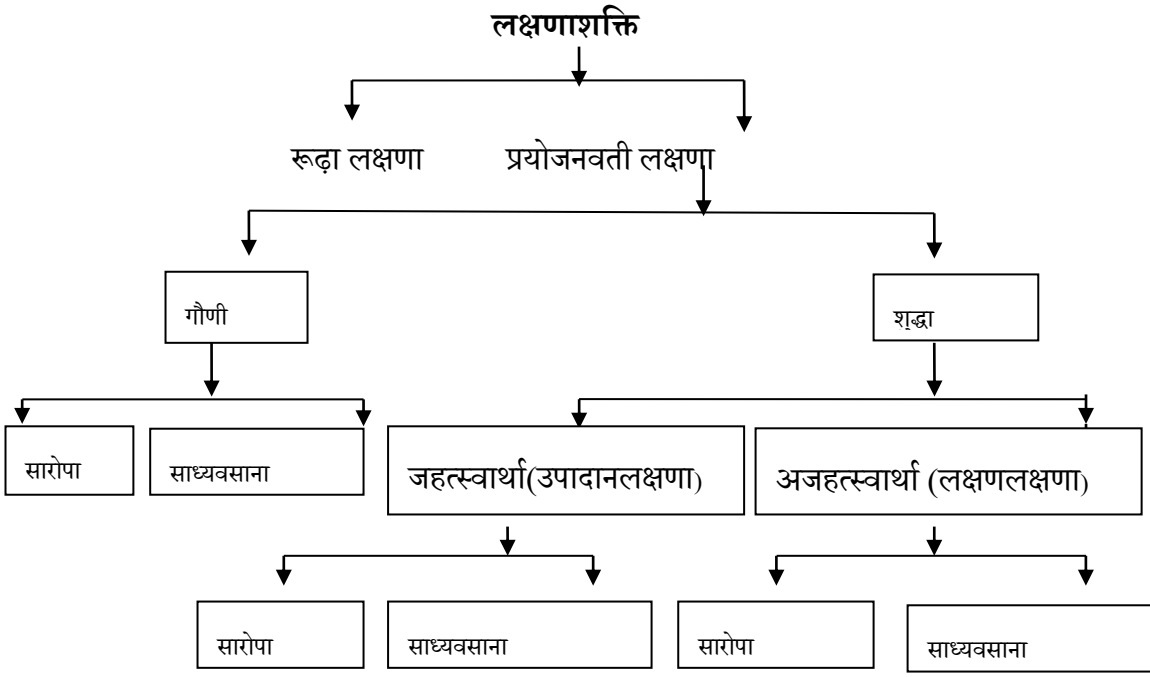

18.4.3 व्यंजना-

शब्द की अभिधा और लक्षणा शक्तियों द्वारा भी कभी कभी वक्ता का अभिप्रेत स्पष्ट नहीं हो पाता है, तब वक्ता के कहने के ढंग से, परिवेश की दृष्टि से स्थान की दृष्टि से, वक्ता की भावभंगिमा से, श्रोता किसी अन्य अर्थ को ग्रहण करता है। साहित्यशास्त्रियों की दृष्टि में यह अन्य अर्थ व्यंजना है। जब अभिधा शक्ति शब्द का अर्थ बताने में असमर्थ हो जाती है, तो लक्षणा द्वारा उसका अर्थ निकलता है। पर कुछ ऐसे भी अर्थ होते हैं, जिनकी प्रतीति अभिधा या लक्षणा द्वारा नहीं होती और ऐसी स्थिति में एक अन्य शक्ति की परिकल्पना करनी पड़ती है, यह शक्ति ही व्यंजना है। आचार्य विश्वनाथ ने व्यंजना को इस रूप में पारिभाषित किया है-

विरतास्वभिधाद्यासु यथार्थो बोध्यते पर:। सा वृत्तिर्व्यञ्जना नाम शब्दस्यार्थादिकस्य च।। - साहित्यदर्पण, 2/12-13

हमने देखा कि लक्षणा में भी अन्य अर्थ लक्षित होता है, और व्यंजना में भी। पर लक्षणा में किसी न किसी रूढ़ि या प्रयोजन से ही अन्यार्थ की प्रतीति होती है, जबकि व्यंजना में किसी प्रकार की शर्त नहीं होती। व्यंजनाशक्ति का शाब्दिक अर्थ है' वह शब्दशक्ति, जो अर्थ को स्पष्ट करे, चित्रित करे, चमका दे और सजा दे। यह शक्ति नवीन अर्थ को द्योतित करने वाली शक्ति है। इस शक्ति के विषय में हम इस तरह से समझ सकते हैं - मान लीजिए हम एक वाक्य का प्रयोग करते हैं कि - 'अब तो रात हो गई है'- इस वाक्य का अभिधा से अर्थ निकलता है - कि दिन समाप्त हो गया है, वक्ता का प्रयोजन यदि यह बताना है कि अब देर हो गई है, तो लक्षणा शक्ति

से यह अर्थ निकलता है, किन्तु वक्ता का अभिप्राय कुछ और हो सकता है, कोई श्रोता उसका यह अर्थ कर सकता है कि घर जल्दी पहुँचना चाहिए, किसी मुमुर्षु के लिए इसका अर्थ हो सकता है कि अब जीवन का अन्तिम पड़ाव आ गया है, किसी को किसी से मिलना है तो अर्थ निकलता है कि जल्दी- जल्दी जाना चाहिए। कहने का अभिप्राय यह है कि वक्ता की विशेषता से, संबोध्य (जिससे कोई बात कही जा रही हो उसकी), उच्चारण का ढंग, वाक्यरचना की विशेषता, वाच्यार्थ की विशेषता, अन्य व्यक्ति के निकट होने की विशेषता, प्रस्ताव की विशेषता, देश, काल, चेष्टा आदि की विशेषता, शारीरिक भंगिमा, दृष्टि निक्षेप आदि के कारण जो अभिप्रेत व्यक्त होता है, उसे ही व्यंजना कहा जाता है। ध्यातव्य है कि वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ में स्वरूप, काल, आश्रय, निमित्त, प्रभाव, संख्या, विषय आदि की दष्टि से भेद होता है। जैसे वाच्यार्थ एक होता है, ओर उसके व्यंग्यार्थ अनेक हो सकते हैं। सूर्यास्त हो गया का वाच्यार्थ एक होगा पर व्यंग्यार्थ अनेक होंगे। युद्ध के अवसर पर इसका अर्थ होगा युद्ध रोकने का समय आ गया, किसी भक्त के लिए इसका अर्थ होगा- पूजा का समय हो गया, कोई शाम को घूमने जाता है तो उसके लिए इसका अर्थ होगा कि घूमने का समय हो गया। शब्द और अर्थ दोनों पर आधारित होने से व्यंजना के दो भेद हैं- शाब्दी व्यंजना और आर्थी व्यंजना। शाब्दी व्यंजना अभिधा पर भी आधारित होती है और लक्षणा पर भी। इस दृष्टि से शाब्दी व्यंजना के दो भेद हैं- अभिधामूला व्यंजना और लक्षणामूला व्यंजना। अभिधाशक्ति द्वारा अनेकार्थी शब्दों में एक अर्थ निश्चित हो जाने पर जिस शक्ति के द्वारा अन्यार्थ का ज्ञान होता है, उसे अभिधामूला व्यंजना कहते हैं, और जहाँ मुख्यार्थ की बाधा होने पर लक्षणाशक्ति से अन्यार्थ निकलता है, वहाँ लक्षणामूला व्यंजना होती है। कि यह जोड़ी बिल्कुल एक दूसरे के उपयुक्त है, यह शाब्दी व्यंजना का व्यापार है। इसी तरह जो शब्दशक्ति वक्ता, बोधव्य, काकु, वाक्य, वाच्य, प्रकरण, देश, काल, चेष्टा आदि की विशेषता के कारण व्यंग्यार्थ की प्रतीति कराती है, वह आर्थी व्यंजना है।आचार्य आनन्दवर्धन ध्वनि को काव्य की आत्मा कहते हैं और व्यंजना को उसका प्राण मानते हैं- 'व्यंजकत्वैकमूलस्य ध्वने:(ध्वन्यालोक, 1/18)। अब हम ध्वनि के विषय में विचार करेंगे।

क.बोध प्रश्न

1.ध्वनि शब्द का अर्थ बताइए।

2.शब्द की लक्षणा शक्ति के विषय में बताइए।

रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए -

1.वैयाकरण ध्वनि के लिए .....शब्द का प्रयोग करते हैं।

2.शब्दशक्तियों की बहुस्वीकृत संख्या..... है।

सत्य/ असत्य बताइए-

1.लक्षणा शक्ति को आरोपिता शक्ति कहा जाता है। (सत्य/असत्य)

2.ध्वनि सिद्धान्त के प्रवर्तक आनन्दवर्धन हैं।(सत्य/असत्य)

निम्न लिखित में सही विकल्प बताइए-

1.रूढ़ि अथवा प्रयोजन के आधार पर किस शब्द शक्ति में अर्थ ग्रहण किया जाता है-
क.अभिधा ख्र;लक्षणा ग.तात्पर्या घ. व्यंजना।

2.काव्यशास्त्र के इन ग्रन्थों को सुमेलित कीजिए -

सम्प्रदाय का नाम	प्रवर्तक आचार्य का नाम
1.ध्वनि सम्प्रदाय	(अ)आचार्य क्षेमेन्द्र
2.रस सम्प्रदाय	(ब)आनन्दवर्धन
3.औचित्य सम्प्रदाय	(स)आचार्य वामन
4.रीति सम्प्रदाय	(द)भरतमुनि

18.5 ध्वनिसिद्धान्त का प्रवर्तन

ध्वनि को काव्य की आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित करने के लिए 'ध्वन्यालोक' नामक अनुपम गन्थरत्न का प्रणयन करने वाले आचार्य आनन्दवर्धन भरतीय काव्यशास्त्रियों में विशिष्ट स्थान रखते हैं। उनके ग्रन्थ का अनुशीलन करने पर ज्ञात होता है कि उन्हें 'ध्वनि' नामक इस अद्भुत तत्व की स्थापना के लिए पर्याप्त संषर्घ करना पड़ा था। दरअसल आनन्दवर्धन स्वयं को ध्वनिसिद्धान्त का प्रवर्तक नहीं मानते हैं। उनका कहना है कि चिर अतीत में यह सिद्धान्त प्रतिष्ठित था लेकिन कालक्रम से लुप्त हो गया। उन्होंने यह कहा कि आचार्यों ने पहले ही ध्वनि के विषय में कहा है। ध्वनिकार की ध्वनिविषयक मान्यताओं का अनेक आचार्यों ने विरोध किया। भट्टनायक, कुन्तक, महिमभट्ट आदि आचार्यों का इस सन्दर्भ में उल्लेख किया जा सकता है। ध्वनिसिद्धान्त ध्वन्यालोक की पहली कारिका में ही आन्दवर्धन ने अपने विरोधियों के सन्दर्भ में उल्लेख किया है। उनका कहना है-

काव्यस्यात्माध्वनिर्बुधैर्य: समाम्नात्पूर्व-
स्तस्याभावं जगदुरपरे भाक्तमाहुस्तमन्यै:।
केचिद् वाचां स्थितमविषये तŸवमूचुस्तदीयं।
तेन ब्रूम: सहृदय मन:प्रीतये तत्स्वरूपम्।। (ध्वन्यालोक, 1/1)

(-काव्य की आत्मा ध्वनि है, ऐसा विद्वानों ने पहले भी कहा है लेकिन कुछ लोग 1.उस ध्वनि का अभाव कहते हैं, 2. कुछ उसे भाक्त (लक्षणा से सम्बद्ध) कहते हैं, 3.कुछ उसे वाणी का अविषय (अर्थात् जिसको शब्दों से नहीं कहा जा सकता है) मानते हैं, इसीलिए सहृदयों के मन की प्रसन्नता के लिए हम (ध्वनिवादी) उसके स्वरूप के विषय में बताते हैं।) यह बड़ी प्रसन्नता की बात है कि उन्होंने इस तत्व की प्रतिष्ठा में अद्भुत सफलता प्राप्त की और इससे भी अधिक प्रसन्नता की बात यह है कि इस प्रतिष्ठा को बनाने में उन्हें ध्वन्यालोक पर लोचन टीका प्रस्तुत करने वाले आचार्य अभिनवगुप्त, काव्यप्रकाशकार मम्मट, साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ, रसगंगाधरकार पण्डितराज जगन्नाथ आदि आचार्यों का प्रबल और हार्दिक समर्थन भी मिला।

उपर्युक्त कारिका प्रस्तुत करने के बाद आचार्य आनन्दवर्धन ने ध्वनि का स्वरूप इस प्रकार बताया है-**यत्रार्थ: शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनी कृत्स्वार्थौ , व्यंङ्क्त: काव्यविशेष: स ध्वनिरिति सूरिभि: कथित:। (ध्वन्यालोक, 1/13)**-जहाँ शब्द और अर्थ अपने उसी (अर्थात्) मूल अर्थ को छोड़कर किसी अन्य व्यंजित होने वाले अर्थ को ग्रहण करते हैं, उसे विद्वान् ध्वनि कहते हैं।आचार्य मम्मट ने ध्वनिकाव्य को उत्तम काव्य की संज्ञा देते हुए उसका लक्षण किया है-**इदमुत्तममतिशयिनि व्यंग्ये वाच्याद् ध्वनिर्बुधै: कथित:।** -काव्यप्रकाश . आचार्य विश्वनाथ ने भी ध्वनिकाव्य को उत्तम काव्य माना है- **वाच्यातिशयिनी व्यंग्ये ध्वनिस्तत्काव्यमुत्त्मम** -साहित्यदर्पण, पण्डितराज जगन्नाथ का भी मत है- **-शब्दार्थौ यत्र गुणीभावितात्मानौ कमप्यर्थमभिव्यंक्तस्तदाद्यम्**- रसगंगाधर .

स्पष्ट है कि आचार्य मम्मट, आचार्य विश्वनाथ तथा पण्डितराज जगन्नाथ ने ध्वनि को उÙkम काव्य की कोटि में रखते हुए उसका जो स्वरूप बताया है, वह आनन्दवर्धन के ध्वनिलक्षण की ही प्रतिच्छाया है। तदनुसार जहाँ शब्द तथा/ अथवा अर्थ अपने आप को गुणीभूत करके उस (प्रतीयमान) अर्थ को अभिव्यक्त करते हैं, उस काव्यविशेष को विद्वान् लोग 'ध्वनि' कहते हैं। अर्थात् काव्य में वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ की प्रधानता होने पर 'ध्वनि' होती है। आचार्य आनन्दवर्धन ने इस कारिका में 'बुधैर्य: समाम्नात्पूर्व:' इस कथन से यह भी स्पष्ट किया है कि ध्वनि कोई काल्पनिक वस्तु नहीं है, जैसा कि ध्वनिविरोधी कहते हैं। ध्वनि का स्वरूप बताते हुए आनन्दवर्धन ने 'सूरिभि:' शब्द का प्रयोग किया है और सूरिभि: का अर्थ 'विद्वान्' बताया है और विद्वानों मे भी सर्वप्रथम स्थान का अधिकारी वैयाकरणों को माना है। आगे चलकर आचार्य मम्मट ने भी ध्वनि को पारिभाषित करते हुए यह माना है कि वैयाकरणों ने ध्वनि शब्द का व्यवहार किया है। दोनों आचार्य यह मानते हैं कि उन्होंने ध्वनि का व्यवहार वैयाकरणों में देखा है। और वैयाकरण श्रूयमाण वर्णों में तथा स्फोटरूप व्यंग्य के व्यंजक शब्द में ध्वनि का व्यवहार करते हैं।

आनन्दवर्धन के ध्वनिलक्षण की व्याख्या करते हुए अभिनवगुप्त ने भी वैयाकरणों के स्फोटसिद्धान्त के आधार पर ध्वनि के पाँच अर्थ किए हैं-

(क) ध्वनति इति ध्वनि: (वाचक शब्द)
(ख) ध्वनति इति ध्वनि: (वाच्यार्थ)
(ग) ध्वन्यते इति ध्वनि: (व्यंग्यार्थ)
(घ) ध्वननमिति इति ध्वनि: (व्यंजनाव्यापार)तथा
(ड़)काव्यमिति व्यपदेश्यश्च योऽर्थ: सोऽपि ध्वनि:।उक्त प्रकार-ध्वनिचतुष्टयमयत्वात्। (व्यंजनाव्यापार)

इस ध्वनितत्व की स्थापना के लिए आनन्दवर्धन ने पहले ध्वनिविषयक अभाववादियों, भाक्तवादियों और अलक्षणीयतावादियों- तीन विरोधियों के मतों को उद्धृत किया है। उनका कहना है कि अभाववादी मानते हैं कि शब्द और अर्थ काव्य के शरीर हैं। अनुप्रासादि अलंकार शब्द की चारुता में हेतु हैं, उपमादि अलंकार अर्थ की चारुता के कारण हैं। वर्णसंघटना के धर्म

माधुर्यादि गुण भी देखने को मिलते हैं, उपनागरिका आदि वृत्तियाँ और वैदर्भी आदि रीतियाँ भी सुनी गई हैं। इन सबके अतिरिक्त ध्वनि नाम की कोई वस्तु नहीं है। यदि ध्वनि में काव्य की कल्पना कर भी ली जाए तो भी यह सिद्धान्त सभी विद्वानो को मान्य नहीं हो सकता, क्योंकि विद्वान् अलंकार, गुण, रीति, वृत्ति आदि को ही काव्य का तत्त्व मानते हैं और इन तत्वों से सम्पन्न शब्दार्थयुगल को काव्य मानते हैं, ध्वनि को नहीं (ध्वन्यालोक, 1/1 कारिका का व्याख्याभाग)। ध्वनि को रमणीयता का ही कारण मानने पर उसका अन्तर्भाव रमणीयता के उपर्युक्त हेतुओं- अलंकारों, गुणों इत्यादि में ही कर दिया जाना चाहिए। अलग से ध्वनि शब्द की चर्चा करने की जरूरत नहीं है।

स्पष्ट है कि अभाववादी ध्वनि नामक पृथक् तत्त्व को नही मानते, भाक्तवादी उसे मानकर उसका अन्तर्भाव लक्षणा में कर देते हैं और अलक्षणीयतावादी ध्वनि को मानते तो हैं, पर उसका लक्षण करने में स्वयं को असमर्थ मानते हैं। इन विरोधों का खण्डन करते हुए आनन्दवर्धन का कहना है कि-

1.वाच्यविशेष अथवा वाचक विशेष से अभिव्यक्त अर्थ ध्वनि है। अतएव ध्वनि वाच्यवाचक के चारुत्व हेतु अर्थात् अलंकारों से भिन्न सत्ता रखनेवाला तत्त्व है। ध्वनि में प्रतीमानार्थ प्रमुख है, अलंकारों का सम्बन्ध वाच्यवाचक से है। अलंकारों में ध्वनि का अन्तर्भाव नहीं किया जा सकता अत: अभाववादियों का विरोध अनुचित है।

2.ध्वनि और लक्षणा में अभेद नहीं हो सकता, क्योंकि लक्षणा मुख्यार्थ से भिन्न लेकिन रूढि या प्रयोजन के कारण अन्यार्थ की अभिव्यक्ति करती है, जबकि ध्वनि में रूढ़ि या प्रयोजन की बाध्यता नहीं होती, वहाँ तो वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ की प्रधानता होती है। अत: भाक्तवादियों का विरोध भी गलत है।

3. भाक्तवादियों ने ध्वनि का लक्षण तो किया ही है और ध्वनिवादियों ने भी अनेक प्रकार से ध्वनि का लक्षण कर दिया है अत: अलक्षणीयतावादियों का विरोध स्वत: ही समाप्त हो जाता है। आनन्दवर्धन ने उपर्युक्त विरोधों का खण्डन करते हुए ध्वनि को काव्य की आत्मा मानकर कहा कि सहृदयों द्वारा प्रशंसित जो अर्थ काव्य की आत्मा के रूप में पतिष्ठित है, उसके दो भेद हैं- वाच्य और प्रतीयमान।

योअर्थ : सहृदयश्लाघ्य: काव्यात्मेति व्यवस्थित:।
वाच्यप्रतीमानाख्यौ तस्य भेदाबुभौ स्मृतौ।। (ध्वन्यालोक, 1/2)

वाच्य अर्थ उपमा आदि अलंकारों से प्रसिद्ध है और प्रतीयमान अर्थ सुन्दरी ललना के प्रसिद्ध अवयवों से भिन्न लावण्य के समान महाकवियों की वाणी में सन्निहित रहता है-

प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्त्वस्तु वाणीषु महाकवीनाम्
यत्तत्प्रसिद्धावयवातिरिक्तं विभाति लावण्यमिवांगनासु।(ध्वन्यालोक, 1/4)

काव्य की आत्मा यही अर्थ है। इस प्रतीयमान अर्थ को और उसकी अभिव्यक्ति में समर्थ शब्द विशेष को पहचानने का यत्न महाकवियों को करना चाहिए। जैसे आलोकार्थी दीपक के लिए

यत्नवान् होता है, वैसे ही आदरवान् कवि कविप्रतीयमान अर्थ के लिए वाच्यार्थ का उपादान करता है। वाच्य, वाचक, व्यंग्यार्थ, व्यंजनाव्यापार और काव्य इन पॉचों को ध्वनि कहते हैं। उक्त्यन्तर से जो चारुत्व प्रकाशित नहीं किया जा सकता, उसे प्रकाशित करने वाला व्यंजना व्यापार युक्त शब्द ही ध्वनि कहलाता है। ध्वनिसिद्धान्त यह मानता है कि काव्य में जो कुछ कह दिया गया है, महत्त्व उसका नहीं है, महत्त्व उसका है जो नहीं कहा गया, जो अनकहा रह गया, ध्वनिसिद्धान्त उस अनकहे की व्याख्या करता है।

ख. बोध प्रश्न-

1.ध्वनिविरोधी कौन हैं?

2.वाच्य और प्रतीयमान अर्थ में भेद बताइए।

3.अलंकार और ध्वनि का काव्य में क्या काम है?

4. ध्वनि के पांच अर्थ कौन कौन से हैं?

सत्य/असत्य बताइए-

1.ध्वनि व्यंजना पर आधारित है- (सत्य/असत्य)

2.ध्वनि अभिधा और लक्षणा पर आधारित है। (सत्य/असत्य)

रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए -

1. ध्वन्यालोक के रचनाकार ..... है।

18.6 ध्वनिकाव्य के भेद

ध्वनि सिद्धान्त एक सार्वजनीन सिद्धान्त है और काव्य के मूल तत्त्व को आत्मसात् किए हुए है। इस सिद्धान्त के सन्दर्भ में संक्षेप में कहा जा सकता है कि काव्य की चरम सिद्धि रस है और उस रस का अनिवार्य वाहक है ध्वनि। आचार्यों ने ध्वनि के अनेक भेद किए हैं। विषयवस्तु की दृष्टि से ध्वनि के तीन भेद हैं- रसादिध्वनि, वस्तुध्वनि और अलंकारध्वनि। ध्वनि की प्रधानता-अप्रधानता की दृष्टि से काव्य के तीन भेद हैं-ध्वनिप्रधान काव्य(उत्तम काव्य), गुणीभूतव्यंग्य काव्य(मध्यम काव्य) और चित्रकाव्य (अवर काव्य)। जिस काव्य में वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ प्रधान होता है, वह ध्वनिप्रधान उत्तम काव्य है। जिस काव्य में वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ गौण या कम चमत्कारक होता है, वह गुणीभूतव्यंग्य नामक मध्यम काव्य है और जिस काव्य में व्यंग्यार्थ नहीं होता, वह चित्रकाव्य नामक अवर या अधम काव्य है। व्यंग्यार्थ वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ पर आश्रित रहता है अत: ध्वनि भी अभिधा और लक्षणा पर आधारित है। इस तरह ध्वनि के मुख्य दो भेद हैं- लक्षणामूला(अविवक्षितवाच्यध्वनि) तथा अभिधामूला (विवक्षितवाच्यध्वनि)। जहाँ वाच्यार्थ की विवक्षा या प्रयोजन नहीं होता, वहाँ लक्षणामूला ध्वनि है और जहाँ वाच्यार्थ भी प्रयोजनीय हो वहाँ अभिधामूला ध्वनि है। लक्षणामूलाध्वनि के अर्थान्तरसंक्रमित (जिस ध्वनि में वाच्यार्थ अपना पूरा तिरोभाव न करके अपना अर्थ रखते हुए अन्य अर्थ में संक्रमण करता है) तथा अत्यन्त तिरस्कृत (जहाँ वाच्यार्थ का सर्वथा त्याग हो जाता है) दो भेद हैं। अभिधामूला ध्वनि के भी संलक्ष्यक्रमध्वनि (जहाँ वाच्यार्थ का स्पष्ट बोध

होने के बाद व्यंग्यार्थ प्रकट हो), तथा असंलक्ष्यक्रमध्वनि (जहाँ वाच्यार्थ ग्रहण करने का क्रम लक्षित नहीं होता)। आचार्य मम्मट ने ध्वनि के शुद्ध 51 भेद बताए हैं . ध्वनि के इन भेदोपभेदों के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि रस, अलंकार और वस्तु- ये तीन वस्तुएँ जहाँ ध्वनित होकर व्यक्त होती हैं, वहाँ ध्वनि का विषय होता है। इन तीनों को ध्वनित करने वाला वाचक अर्थ अप्रधान होता है और ध्वन्यर्थ मुख्य होता है। पर कहीं कहीं ऐसा भी होता है कि ध्वनि प्रधान न होकर गौण होती है। ऐसे स्थान पर आनन्दवर्धन के अनुसार काव्य का दूसरा भेद- गुणीभूतव्यंग्यकाव्य होता है। गुणीभूतव्यंग्यकाव्य के आठ भेद हैं-

1.अगूढ़(जिसमें व्यंग्य की प्रतीति सहजता से हो जाती है), 2.अपरांग(जहाँ वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ एक दूसरे के अंग हों), 3.वाच्यसिद्ध्यंग (जहॉ व्यंग्यार्थ वाच्यार्थ की सिद्धि में अंग बन जाए), 4.अस्फुट(जहाँ व्यंग्य गूढ. हो),5.सन्दिग्धप्रधान(वाच्यार्थ प्रधान है या व्यंग्यार्थ-यह सन्देह हो),6.तुल्यप्रधान(वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ का समान महत्व हो),7.काक्वाक्षिप्त(कण्ठध्वनि से व्यंग्यार्थ प्रकट हो) और 8.असुन्दर(जहाँ व्यंग्य में सौन्दर्य न हो)। एक तीसरे प्रकार के काव्य की भी कल्पना की गई है, जिसमें व्यंग्यार्थ की अपेक्षा वाच्यार्थ प्रधान होता है, वह अवर या चित्रकाव्य है। इसके दो भेद हैं- शब्दचित्र और अर्थचित्र। प्राय: शब्दालंकार शब्दचित्र और अर्थालंकार अर्थचित्र के अन्तर्गत आ जाते हैं।

ग. **अभ्यासार्थ प्रश्न**

1.ध्वनि के कुल कितने भेद हैं ?

2.ध्वनि के आधार पर काव्य के भेदों के विषय में बताइए।

सत्य/असत्य बताइए-

1.अवर काव्य में ध्वनि की प्रधानता होती है। (सत्य/असत्य)

2.गुणीभूतव्यंग्यकाव्य के कुल आठ भेद हैं। (सत्य/असत्य)

रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए -

1.ध्वनि के विषय वस्तु की दृष्टि से .....भेद हैं।

2.मम्मट के अनुसार ध्वनि के कुल .....भेद हैं।

18.7 हिन्दी साहित्यशास्त्रियों का ध्वनिचिन्तन

हिन्दी के रीतिकालीन आचार्यों ने प्राय: सभी काव्यसिद्धान्तों के विषय में विचार किया है। हालांकि रीतिकाल में रस और अलंकार की प्रधानता रही है पर ध्वनिसिद्धान्त का भी सैद्धान्तिक विवेचन आचार्यों ने किया है। इन आचार्यों ने विशेषत: मम्मट के काव्यप्रकाश के आधार पर ध्वनि-सिद्धान्त का निरूपण किया है। चिन्तामणि, कुलपति, भिखारीदास, आदि अनेक आचार्यों ने ध्वनि-सिद्धान्त का निरूपण किया है। केशव और देव ध्वनिविरोधी हैं पर सेनापति ने अपने काव्य में -जामे धुनि है' कहा है तो कुलपति ने रसरहस्य में ध्वनि को काव्य की आत्मा माना है। भिखारीदास ने काव्यनिर्णय के छठे अध्याय में 74 छन्दों में ध्वनि का विवेचन किया। उन्होंने काव्य की आत्मा रस को माना है, पर ध्वनिवादियों की तरह रसध्वनि को महत्व दिया है। प्रतापसाहि की व्यंग्यार्थकौमुदी भी ध्वनि की प्रतिष्ठा करती है। कन्हैयालाल पोद्दार ने संस्कृत काव्यशास्त्र के विभिन्न विषयों को सरल हिन्दी में अवतरित करने का स्तुत्य प्रयास किया। रामदहिन मिश्र ने ध्वनि विषयक सैद्धान्तिक विवेचन संस्कृत काव्यशास्त्र के आधार पर किया और आधुनिक हिन्दी काव्य के उदाहरणों द्वारा उसे समसामयिक दृष्टि से व्याख्यात करने का यत्न किया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'रसमीमांसा' तथा डॉ. नगेन्द्र ने अपने शोधप्रबन्ध के प्रथम भाग 'रीतिकाव्य की भूमिका' में ध्वनि विषयक विवेचन किया है। डॉ. जगन्नाथ पाठक, डॉ रामसागर त्रिपाठी, भोलाशंकर व्यास आदि अनेक विद्वानों ने विस्तारपूर्वक ध्वनि विवेचन किया है।

18.8 पश्चिम के साहित्यशास्त्रियों का ध्वनिचिन्तन

पश्चिम में भी शब्द और अर्थ के पारस्परिक सम्बन्ध की चर्चा बहुत पहले से होती रही है। वहाँ 'एल्यूजन', 'डबलसेन्स', आइरनी, एलीगरी, मेटाफर, आदि को व्यंग्यार्थ के एक रूप में देख सकते हैं। वाच्यार्थ से भिन्न सूक्ष्म अर्थ की चर्चा करते हुए पश्चिम में वाणी के चारुत्व के रूप में विट(Wit) की चर्चा की गई है। इसी तरह रिचडर्स की अर्थमीमांसापद्धति में भी ध्वनि के सूत्र मिलते हैं। ध्वनिवादी आचार्य मानते हैं कि कवि अपनी रचना द्वारा अपनी अनुभूति को सहृदय के प्रति भाषा के द्वारा संवेद्य बनाता है और पाठक उस रचना को पढ़ते हुए केवल अर्थबोध ही नहीं करता अपितु कवि जैसी रागात्मक अनुभूति से भी सम्पन्न होता है। इसके लिए कवि भाषा का विशिष्ट प्रयोग करता है। आज के मनोवैज्ञानिक भी यही मानते हैं और रिचडर्स भी भाषा के वैज्ञानिक और रागात्मक (Scientific and Imotive) दो रूपों की चर्चा करते हुए कहते हैं कि वैज्ञानिक भाषा का प्रयोग किसी वस्तु या तथ्य का बोध कराने के लिए होता है, तो रागात्मक

प्रयोग भाव जगाने के लिए। रिचर्डस यह मानते हैं कि उक्ति वह है जिसमें वक्ता के कथ्य का अर्थबोध ही अधिक महत्व का होता है। इसी तरह रिचर्डस अर्थ के -अभिधेयार्थ, भावनात्मक,पाठक के प्रति वक्ता की अभिवृत्ति और उद्देशात्मक -इन चार रूपों के प्रयोग की बात करते हैं और उनके द्वारा वर्णित सैन्स-अभिधेयार्थ का अभिप्राय वाच्यार्थ से और फीलिंग, टोन और इन्टेन्शन का अभिप्राय व्यंग्यार्थ से है। पश्चिम की नई समीक्षा, संरचनावादी समीक्षा, उत्तरआधुनिकतावादी समीक्षा शब्द और अर्थ की जिस विलक्षणता की बात करते हैं, वह ध्वनिसिद्धान्त के पर्याप्त निकट है। ध्वनि में जिस 'अनकहे' के महत्व को स्वीकार किया गया है, उत्तरआधुनिकतावादी चिन्तकों के द्वारा वर्णित 'ट्रेस' और 'स्पेस' भी उसी अनकहे के महत्व को स्वीकार करता है। एम्प्सन के द्वारा उल्लिखित 'एम्बिग्युटी' भी ध्वन्यार्थ की प्रतीति कराती है। संरचनावादी समीक्षा में टेंशन और स्ट्रक्चर के द्वारा रचना की बनावट और बुनावट के सन्दर्भ में जो विचार किया गया है, उसमें भी ध्वन्यार्थ के तत्त्व मिलते हैं।

यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि ध्वनि और कल्पना में भी परस्पर सम्बन्ध है। ध्वनि कल्पना के द्वारा ही सच्ची अनुभूति प्रदान कर सकती है और कल्पना ध्वनित होने पर ही व्यंजिक हो सकती है। डॉ. नगेन्द्र का मानना है कि कल्पना का एक मुख्य कार्य है रिक्त स्थानों को भरना, जगत् में जो वस्तुएं पूर्ण नहीं हैं, न्यूनता या दोष से युक्त हैं, हमारी कल्पना उन्हें भरने का यत्न करने लगती है। उक्ति वैचित्र्य के द्वारा हमारी कल्पना उन न्यूनताओं को भरती है और ध्वन्यार्थ की प्रतीति कराती है। स्पष्ट है कि भारतीय काव्यशास्त्र के सिद्धान्तों में आज भी जो सिद्धान्त सर्वाधिक प्रासंगिक है, वह ध्वनि सिद्धान्त ही है और इससे सिद्ध हो जाता है कि ध्वनि सिद्धान्त काव्यशास्त्र के क्षेत्र में एक सार्वजनीन और महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त के रूप में मान्य है।

18.9 सारांश

ध्वनिसिद्धान्त एक व्यापक सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त से पहले के अलंकार और रीतिसिद्धान्त काव्य के एक पक्ष- उक्तिचारुता या पदरचना पर ही प्रकाश डालते हैं , पर ध्वनि की सत्ता उपसर्ग और प्रत्यय से लेकर महाकाव्य तक है। एक कविता की पंक्ति है-'वह चितवन औरे कछु, जेहि बस होत सुजान' सुजान को मन्त्रमुग्ध करने वाली चितवन तो कुछ और ही है, जो सौन्दर्य के प्रसिद्ध उपादानों से अलग है, जिसे लावण्य के नाम से जाना जाता है, जिसे हम सामान्य बोलचाल में कहते हैं कि देखो यद्यपि वह सुन्दर नहीं है, पर उसमें कितना नमक है, जिसे साहित्य में हम प्रतीयमान अर्थ के रूप में जानते हैं और इस प्रतीयमान अर्थ को व्यंजित करने वाली शक्ति ही ध्वनि है। व्यंजना शब्दशक्ति ा ध्वनि का प्राण है।

आचार्यों की दृष्टि में रस और ध्वनि परस्पर सम्बद्ध हैं। रस का सम्बन्ध अनुभूति के साथ है, ध्वनि का कल्पना के साथ। हालाँकि रस की परिधि ध्वनि से अधिक विस्तृत है, पर रसात्मक बोध के लिए ध्वनि की महत्ता को भी नकारा नहीं जा सकता। इसलिए हम कह सकते हैं कि काव्य की चरम सिद्धि आस्वाद रूप रस है और ध्वनि उस रस का अनिवार्य वाहक है। इसीसे

ध्वनिवादी आचार्य रसध्वनि को काव्यात्मा के रूप में स्वीकार करते हैं।

18.10शब्दावली

भाक्तवादी-आचार्य लक्षणा को भक्ति भी कहते हैं।अत: भाक्तवादी से अभिप्राय लक्षणावादियों से है।

बोधव्य - पाठक,श्रोता,दर्शक-जो वक्ता की बात सुनते और समझते हैं।

काकु-कण्ठध्वनि। कण्ठध्वनि यानी 'टोन' से वाक्यादि का अर्थ निर्धारित होता है।

अन्यसन्निधि-वाक्य में प्रयुक्त शब्द के साथ वाक्य के अन्य शब्दों की संगति से अर्थबोध होता है।

वाच्य- शब्द का कोशगत, व्यवहार में प्रयुक्त होने वाला अर्थ।

18.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क.बोध प्रश्न

रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए -

1. स्फोट

2. तीन

सत्य/ असत्य बताइए-

1.(सत्य)

2.(सत्य)

निम्न लिखित में सही विकल्प बताइए-

1.ख;लक्षणा

2.काव्यशास्त्र के इन ग्रन्थों को सुमेलित कीजिए

सम्प्रदाय का नाम	प्रवर्तक आचार्य का नाम
1.ध्वनि सम्प्रदाय	(अ) आनन्दवर्धन
2.रस सम्प्रदाय	(ब) भरतमुनि
3.औचित्य सम्प्रदाय	(स) आचार्य क्षेमेन्द्र
4.रीति सम्प्रदाय	(द) आचार्य वामन

बोध प्रश्न ख.

1.मुकुलभट्ट,प्रतिहारेन्दुराज,भट्टनायक,कुन्तक,महिमभट्ट,केशव,देव।

2.वाच्य शब्द का मुख्य अर्थ, जिसे साक्षात्संकेतित अर्थ, वाच्यार्थ कहते हैं। प्रत्येक शब्द का एक अर्थ निर्धारित है, उसी अर्थ को वाच्यार्थ कहते हैं। प्रतीयमानार्थ वह अर्थ है, जो शब्द का

मुख्यार्थ नहीं है बल्कि प्रतीत होने वाला अर्थ है, जो व्यंजित होने वाला अर्थ है। जैसे - शाम हो गई का वाच्यार्थ है दिन ढल गया है और प्रतीयमानार्थ हो सकता है- देर हो गई, घूमने जाना है, काम पूरा करना है, अब कुछ करना सम्भव नहीं है आदि आदि। यह प्रतीयमानार्थ व्यक्ति, समय, स्थान, कहने की शैली, शारीरिक भंगिमा आदि के आधार पर निर्धारित होता है।

सत्य/असत्य बताइए-

1. (सत्य)
2. (सत्य)

रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए -

1. ध्वन्यालोक के रचनाकार ...आनन्दवर्धन ..... है।

ग. बोध प्रश्न1.विषयवस्तु की दृष्टि से ध्वनि के तीन भेद हैं-रसध्वनि, वस्तुध्वनि और अलंकारध्वनि। ध्वनि की प्रधानता-अप्रधानता की दृष्टि से काव्य के तीन भेद हैं-ध्वनिप्रधान काव्य(उत्तम काव्य), गुणीभूतव्यंग्य काव्य(मध्यम काव्य) और चित्रकाव्य (अवर काव्य)।2.ध्वनि के आधार पर काव्य के भेदों के विषय में बताइए।

सत्य/असत्य बताइए-

1.(असत्य)

2.(सत्य)

18.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- आनन्दवर्धन, ध्वन्यालोक,
- मम्मट, काव्यप्रकाश, व्याख्याकार डॉ. सत्यव्रत सिंह, (1955)*चौखम्बा विद्याभवन,चौक, बनारस-1,*
- अमरनाथ, हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली,(प्रथम संस्करण, 2009)*राजकमल प्रकाशन, दिल्ली,*
- गुप्त, राकेश एवं चतुर्वेदी, ऋषिकुमार, साहित्यानुशीलन, (प्रथम संस्करण, 1972)*सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद*,
- सहाय, राजवंश हीरा, भारतीय-आलोचना-शास्त्र ,(2003)बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना,
- मिश्र, भगीरथ, काव्यशास्त्र (1966), *विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी*
- शर्मा, राममूर्ति,ध्वनिसिद्धान्त(1980), *अजन्ता पब्लिकेशन्स, जवाहरनगर, दिल्ली*
- डॉ. नगेन्द्र , आस्था के चरण (1968),*नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।*

18.13 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.काव्यालंकार,

2. काव्यादर्श

3.ध्वन्यालोक

4.काव्यालंकारसूत्रवृत्ति

5.काव्यप्रकाश

18.13निबन्धात्मक प्रश्न

1. शब्दशक्तियों के विषय में एक निबन्ध लिखिए।

2. क्या ध्वनि को काव्य की आत्मा माना जा सकता है? तथा ध्वनि के स्वरूप के विषय में बताइए।

इकाई - 19 भारतीय काव्य शास्त्र के प्रमुख सम्प्रदायः रीति सम्प्रदाय

19.1 प्रस्तावना
19.2 उद्देश्य
19.3 रीति का अभिप्राय
    19.3.1 रीति
    19.3.2 वृत्ति
    19.3.3 प्रवृत्ति
    19.3.4 मार्ग
19.4 भारतीय काव्यशास्त्र में रीति का स्वरूप
19.5 आचार्य वामन और रीति सिद्धान्त
    19.5.1 काव्यगुण
    19.5.2 शब्दगुण
    19.5.3 अर्थगुण
    19.5.4 रीतियाँ
19.6 काव्यात्मा और रीतिसिद्धान्त
19.7 रीति और पाश्चात्य साहित्यशास्त्र
19.8 सारांश
19.9 शब्दावली
19.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
19.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
19.12 उपयोगी पाठ्य सामग्री
19.13 निबन्धात्मक प्रश्न

19.1 प्रस्तावना

भारतीय साहित्यशास्त्र से सम्बन्धित इस इकाई से पूर्व की इकाईयों के अध्ययन के बाद आप यह बता सकते हैं कि साहित्य क्या है, साहित्य कैसे रचा जाता है, साहित्य क्यों लिखा, पढ़ा, सुना जाता है, रस क्या है ? और अलंकारों के विषय में हमारी शास्त्रीय मान्यताएं क्या हैं?

भारतीय काव्यशास्त्र में काव्य के स्वरूप, काव्य के हेतु और काव्य के प्रयोजनों के विषय में चर्चा करने के साथ ही आचार्यों ने इस विषय में गम्भीर चिन्तन किया है कि काव्य में वह कौन सा तत्त्व है, जो काव्य की समस्त वस्तुसत्ता और प्रक्रिया में व्याप्त है, जिसके अन्दर काव्य के सभी तत्त्व सफलतापूर्वक समाविष्ट हो जाते हैं, जिसके उच्चारण से काव्य की सभी विशेषताओं का परिचय मिल जाता है और जिसके अभाव में काव्य में जीवन्तता नहीं होती है। इस सन्दर्भ में आत्मा शब्द का प्रयोग किया जाने लगा और रीति सिद्धान्त की तो नींव ही काव्यात्मा के प्रसंग में रखी गई। प्रस्तुत इकाई में रीतिसिद्धान्त के विषय में विस्तार से विवेचन प्रस्तुत है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप रीति तथा रीतिसिद्धान्त के विषय में भारतीय चिन्तकों की अवस्थापनाओं के विषय में जान सकेंगे और रीति के विषय में पश्चिम की शैली तथा शैलीवैज्ञानिक आदि अवधारणाओं का विश्लेषण कर सकेंगे।

19.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप...

* बता सकेंगे कि रीति क्या है?
* समझा सकेंगे कि रीति के विषय में भारतीय तथा पश्चिम के विचारकों का अभिमत समझ सकेंगे।
* रीतिसिद्धान्त के विषय में जानते हुए समझा सकेंगे कि क्या रीति काव्य की आत्मा है?

19.3 रीति का अभिप्राय

रीति सिद्धान्त भारतीय साहित्यशास्त्र का एक प्रसिद्ध सिद्धान्त है, जिसके अनुसार रीति 'काव्य की आत्मा' या मूलतत्त्व है। आचार्य वामन ने 'काव्यालंकारसूत्रवृत्ति' नामक अपनी रचना में रीति को काव्य का जीवनाधायक तत्व मानकर रीतिसिद्धान्त की स्थापना की। इस सिद्धान्त को जानने से पहले रीति शब्द के विषय में जानना जरूरी है।

रीति शब्द का कोशगत अर्थ है- 'गमन प्रणाली'- अर्थात् जिससे जाया जाय या गतिशील हुआ जाय, वह रीति है। रीयते गम्यतेSनेन इति रीति:। मार्ग, पन्थ, पद्धति, प्रणाली, शैली, ढंग, प्रकार, तरीका आदि इसके प्रयोगमूलक अर्थ हैं। अंग्रेजी का 'स्टाइल' शब्द भी रीति

के अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। स्टाइल का कोशगत अर्थ है-तरीका, काम करने का ढंग, अभिव्यक्ति का एक प्रकार, आचरण, प्रणाली, ढब, तर्ज, रीति, प्रथा, रिवाज, फैशन, बनावट,डिजाइन, वाक्यरचना का वह ढंग जो लेखक की भाषा सम्बन्धी निजी विशेषताओं का सूचक होता है।

ऋग्वेद में रीति शब्द धारा-महावरीति: शवसासारत् पृथक् (ऋ.1/28/14), गति -वातेवाजुर्यानद्येवरीति:(ऋ.2/39/5)के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। आचार्य भरत रीति को प्रवृत्ति, भामह ,दण्डी, कुन्तक आदि- मार्ग, मम्मट तथा पण्डितराज जगन्नाथ वृत्ति आनन्दवर्धन रीति को संघटना कहते हैं। राजशेखर रीति,प्रवृत्ति और वृत्ति में घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करते हुए वेषविन्यासक्रम को प्रवृत्ति, विलासविन्यासक्रम को वृत्ति और वचनविन्यासक्रम को रीति कहते हैं (भारतीय साहित्यशास्त्र कोश)।

आइए, रीति के विषय में स्पष्टत: जानने के लिए काव्य की शैली के सन्दर्भ में आचार्यों द्वारा वर्णित प्रवृत्ति, वृत्ति, मार्ग आदि के विषय में जानें।

19.3.1 रीति

आचार्य वामन ने रीति शब्द का प्रयोग विशिष्ट पदरचना के अर्थ में किया है- विशिष्टपदरचनारीति: (काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, 3/2/15)। उनकी दृष्टि में रीति काव्य का सर्वोच्च तत्व है। वामन ने शब्द गुम्फ को रीति का बहिरंग तत्व और गुण, रस, अलंकार तथा दोषाभाव को उसका अन्तरंग तत्त्व माना है। इसीलिए रीति को विशिष्ट पदरचना और पदरचना में गुणों की अनिवार्यता को स्वीकार किया और रीति का विभाजन देशभेद के आधार पर किया है। वैसे पदरचना के वर्गीकरण का प्रयास आरम्भ से ही आचार्यों ने भिन्न -भिन्न रूपों में किया है। पदरचना के अतिरिक्त विभिन्न प्रदेशों के आचार-विचार तथा रहन-सहन के वर्गीकरण का प्रयास भी मिलता है। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में प्रवृत्ति के नाम से यह वर्गीकरण प्राप्त होता है। उन्होंने आवन्ती, दाक्षिणात्य, पांचाली और औड्रमागधी - ये चार प्रकार की प्रवृत्तियाँ मानी थीं और इनके द्वारा यह निर्देश किया था कि इन-इन प्रदेशों के लोग किस प्रकार का आचार-व्यवहार करते हैं।

नाट्यशास्त्र में भरतमुनि ने नाट्यवृत्तियों का निर्देश नाट्य की माता के रूप में किया है। ये नाट्यवृत्तियाँ विविधप्रकार की नाट्यशैलियाँ ही हैं। आगे चलकर इसी आधार पर काव्य-वृत्तियों का आविष्कार हुआ। काव्यवृत्तियों के वर्गीकरण का आधार शैली ही है। काव्यशास्त्र के आदि आचार्य भामह के समय में काव्यप्रकारों का वर्गीकरण प्रदेशों के आधार पर किया जाता था। उनके समय में वैदर्भ और गौड दो प्रकार के काव्य प्रचलित थे। वैदर्भ को गौड़ की अपेक्षा श्रेष्ठ माना जाता था। भामह ने इस प्रकार का भेद नहीं माना और स्पष्ट कहा कि वैदर्भी काव्य स्पष्ट, लघु और कोमल होते हुए भी यदि पुष्टार्थ और वक्रोक्ति से युक्त नहीं है तो वह मात्र श्रुतिमधुर होगा। इसके विपरीत अलंकारयुक्त ग्राम्यता रहित अर्थवान्,न्याय्य और जटिलतारहित गौडीय काव्य भी श्रेष्ठ होगा ।

दण्डी ने वैदर्भ और गौड़ को मार्ग नाम दिया है और गौडी़ की अपेक्षा वेदर्भी को श्रेष्ठ माना है।

आचार्य कुन्तक ने काव्यमार्गों का उललेख किया है, किन्तु उनका वर्गीकरण प्रदेशों के आधार पर नहीं है। उनके अनुसार केवल तीन मार्ग हैं- सुकुमार, विचित्र और मध्यम। उनका मानना है कि देशभेद के आधार पर मार्गभेद उचित नहीं। उसका आधार कवियों का स्वभावभेद ही होना चाहिए। यद्यपि कवियों का स्वभाव अलग-अलग होता है, इसलिए मार्ग भी अनन्त हो सकते हैं, लेकिन उनकी गणना असम्भव होने से तीन प्रकार के मार्ग ही मानना श्रेयस्कर है।

यहाँ यह बात साफ है कि काव्यरचना की शैली का वर्गीकरण विभिन्न प्रकार से किया जाता रहा है। देशभेद के आधार पर, कवि स्वभाव के आधार पर। रचनाकार अपने परिवेश, अपने संस्कारों से सदैव प्रभावित होता है, उसकी भाषा पर उसके देशकाल का प्रभाव निश्चित रूप से पढ़ता है और इसी आधार पर उसकी शैली में भी वैशिष्ट्य होता है और इसीलिए हम उसकी भाषा शैली से उसके स्थानादि से परिचित हो जाते हैं। इस वैशिष्ट्य को स्पष्ट करने के लिए ही संस्कृत के आचार्यों ने रीति, वृत्ति, प्रवृत्ति, मार्ग, संघटना आदि शब्दों का प्रयोग किया है।

19.3.2 वृत्ति

वृत्ति शब्द का सामान्य अर्थ जीविका का व्यापार है। पर काव्यशास्त्र में यह विशिष्ट अर्थ का वाचक है। वहाँ यह तीन विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त होती है- 1.शब्दशक्तिके रूप में, 2. अनुप्रास अलंकार के उपनागरिका, परुषा तथा कोमला नामक प्रकारों के लिए और 3.नाट्यवृत्तियों के लिए। नाटक की वृत्तियों की कल्पना का मूल आधार वाचिक तथा आंगिक अभिनय है। समाज में प्राणियों के भाव या चेष्टाओं का अनुकरण काव्य में किया जाता है। इसीलिए भरतमुनि ने वृत्तियों को समस्त काव्यों की माता माना है- 'सर्वेषामिति काव्यानां काव्यस्य मातृका इति'। उन्होंने नायकादि की मन, वाणी और शरीर की विभिन्न प्रकार की चेष्टाओं को ही वृत्ति कहा है। वृत्तियाँ मुख्य रूप से चार हैं- भारती, सात्वती, कैशिकी तथा आरभटी। ये वृत्तियाँ नाट्यरचना में उपयोगी होती थीं(नाट्यशास्त्र,6/24-25)। दरअसल कवि का अभिप्रेत नाटक के माध्यम से रसोन्मीलन करना होता है और इस कार्य की साधिका वृत्तियाँ होती हैं। श्रंगार और हास्य रस में कैशिकी, वीर, रौद्र तथा अद्भुत रसों में सात्त्वती, करुण और अद्भुत रसों में भारती और भयानक और वीभत्स रसों में आरभटी का प्रयोग किया जाता है(भारतीय साहित्यशास्त्र कोश)। इसीलिए इन वृत्तियों को संघटना के धर्म विशेष माधुर्य, ओज आदि गुणों से अभिन्न कहा गया अत: इनकी स्वतन्त्र सत्ता समाप्त हो गई। आगे चलकर प्रतिहारेन्दुराज ने कहा कि भामह द्वारा अनुप्रास नामक भेद के रूप में उपनागरिका तथा ग्राम्या नामक दो वृत्तियों की उद्भावना की गई थी (भामहो हि ग्राम्योपनागरिका वृत्तिभेदेन द्विप्रकारमेवानुप्रास व्याख्यातवान्- उद्भट के टीकाकार प्रतिहारेन्दुराज द्वारा 1/2 की लघुवृत्ति)। आचार्य रुद्रट ने पॉंच वृत्तियाँ मानी-मधुरा, प्रौढा, परुषा, ललिता तथा भद्रा। किन्तु ये वृत्तियाँ मुख्यत: अनुप्रास से ही सम्बन्धित हैं। इन सभी वृत्तियों में रुद्रट ने विविध प्रकार के अक्षरों का विधान बताया है। मधुरा वैदर्भी रीति के या उपनागरिका वृत्ति के सदृश मानी जाएगी, भद्रा कोमला या ग्राम्या के सदृश और शेष तीनों वृत्तियाँ परुषा वृत्ति के समकक्ष मानी जाएंगी। इससे स्पष्ट है कि वृतियां दो प्रकार की हैं-1. नाट्यसम्बन्धी और 2. अनुप्राससम्बन्धी। प्रथम प्रकार

की भारती आदि चार नाट्यवृत्तियाँ रसानुकूल अर्थ का सन्निवेश करती हैं और द्वितीय प्रकार की परुषा, उपनागरिका, ग्राम्या आदि रसानुरूप शब्दयोजना में सहायक होती हैं। वामन द्वारा वर्णित रीति वृत्ति ही है। हम कह सकते हैं कि रीति और वृत्ति में विशेष अन्तर नहीं है। वृत्तियों में अर्थयोजना पर अधिक महत्व दिया जाता है और रीतियों में शब्दयोजना पर। जिस प्रकार शब्द से अर्थ और अर्थ से शब्द पृथक् नहीं किए जा सकते, उसी प्रकार रीति और वृत्ति भी संयुक्त हैं।

19.3.3 प्रवृत्ति

प्रवृत्ति का प्रयोग सर्वप्रथम आचार्य भरतमुनि ने किया। भरत के अनुसार नाना देशों के वेश, भाषा तथा आचार का बखान करने वाली प्रवृत्ति है। इस प्रकार प्रवृत्ति केवल भाषा से ही सम्बन्धित न होकर वेश तथा आचार से भी सम्बन्धित है, जबकि रीति का सम्बन्ध केवल भाषा से ही है। प्रवृत्ति आचार-विचार से सम्बन्ध रखती है और रीति बोलने तथा लिखने से सम्बन्धित है। इस तरह प्रवृत्ति का आधार बाह्य है और रीति का आन्तरिक। प्रवृत्ति का आधार भौगोलिक है, रीति कविस्वभाव पर आधारित है। इसीलिए राजशेखर ने प्रवृत्ति को वेशविन्यास से सम्बन्धित-'वेशविन्यासक्रम: प्रवृत्ति:' कहा और रीति को वचन विन्यास से सम्बन्धित - 'वचनविन्यासक्रमो रीति:' माना। राजशेखर ने काव्यमीमांसा के तीसरे अध्याय मे काव्यपुरुष की उत्पत्ति के प्रसंग में प्रवृत्ति,वृत्ति और रीतियों से सम्बन्धित एक रोचक कथा दी है। उनके अनुसार ब्रह्मलोक में किसी विषय पर ऋषियों और देवताओं में विवाद हो जाने पर ब्रह्मा ने निर्णयार्थ सरस्वती को ब्रह्मलोक भेज दिया। फिर सरस्वती को खोजने के लिए सरस्वती का पुत्र काव्यपुरुष चारों दिशाओं में गया। सर्वप्रथम वह पूर्वदेश में अर्थात् गोड़देश में गया, वहाँ गौड़ मागधी प्रवृत्ति, भारती वृत्ति और गौड़ीया रीति का प्रयोग काव्यरचना में होता है। फिर वह पांचाल देश में गया, जहाँ मध्यमा प्रवृत्ति, सात्वती या आरभटी वृत्ति और पांचाली रीति काव्य रचना में विशेषरूप से प्रयुक्त होती है। पांचाल देश से वह अवन्तिदेश में पहुँचा, जहाँ आवन्ती प्रवृत्ति, कैशिकी वृत्ति प्रयुक्त होती है, इसके बाद दक्षिण दिशा में जाने पर काव्यपुरुष ने पाया कि वहाँ दाक्षिणात्या प्रवृत्ति, कैशिकी वृत्ति और वैदर्भी रीति में काव्यरचना होती है। काव्यपुरुष को साहित्यवधू पूर्व दिशाओं में उतना आकृष्ट नही कर पायी, जितना धीरे-धीरे पांचाल देश में और उससे कुछ अधिक और अन्त में दक्षिण दिशा में काव्यपुरुष साहित्यवधू के मोहपाश में आसक्त हो गया और उसने जिस वाणी का प्रयोग किया, वह वैदर्भी रीति ही है।

राजशेखर के रूपक के इस प्रसंग में वामन का यह मत पुष्ट होता है कि रीतियों का नामकरण उन उन देशों में इसी प्रकार की रचना की प्रधानता से हुआ। इसका आशय यह नहीं है कि जिस प्रकार विशिष्ट द्रव्य देश विशेष में उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार ये रीतियाँ भी देश विशेष में ही प्रयुक्त होती हैं। ये रीतियाँ किसी भी स्थान में प्रयुक्त हो सकती हैं, हाँ इनके नामकरण का आधार यह है कि जो जो काव्यगुण जिस स्थान की कविता में पाये जाते हैं, उन्हीं के आधार पर रीतियों का नामकरण कर दिया गया।

19.3.4 मार्ग

आचार्य कुन्तक का कहना है कि रीति का सम्बन्ध साक्षात् कवि से है, देश विशेष से नहीं। इसलिए उन्होंने रीति, वृत्ति या प्रवृत्ति के स्थान पर मार्ग शब्द का व्यवहार किया। उनके अनुसार काव्य में सुकुमार मार्ग, विचित्र मार्ग और मध्यम मार्ग- ये तीन मार्ग होते हैं। इन तीनों मार्गों की व्याख्या कुन्तक ने इस प्रकार की है- कवि की अम्लान प्रतिभा से उद्भिन्न, नवीन शब्द और अर्थ से मनोहर, अयत्नविहीन स्वल्प अलंकारों से युक्त पदार्थ के स्वभाव की रक्षा के लिए आहार्यकौशल की उपेक्षा करने वाला, रसादि परमार्थज्ञ, मन:संवाद सुन्दर सुकुमार मार्ग है। इस मार्ग से कविगण उसी प्रकार जाते हैं, जैसे फूलों से खिले वन में होकर भ्रमर। कहने का आशय यह है कि सुकुमार मार्ग वह मार्ग है, जो कवि की प्रतिभाशक्ति से सम्पन्न होने के कारण नये नये शब्दों और अर्थों से युक्त होता है, जिसमें अलंकारों का प्रयोग अनायास किया जाता है, प्रयत्नपूर्वक अलंकारों का प्रयोग नहीं किया जाता। यह मार्ग सहृदय के मन को मोहने वाला है। इसके विपरीत जहाँ कवि एक ही अलंकार से सन्तुष्ट न होकर मणियों के जड़ाव के समान एक के बाद एक अलंकार जोडते जाते हैं, वहाँ विचित्र मार्ग होता है। और जहाँ पुराने कवियों द्वारा वर्णित वस्तु भी केवल उक्तिवैचित्र्य मात्र से सौन्दर्य को प्राप्त कराई जाती है, वहाँ मध्यम मार्ग होता है। मध्यम मार्ग में सुकुमार और विचित्र दोनों मार्गों की सम्पत्ति समान रूप से होती है। इन तीनों मार्गों में सौभाग्य और औचित्य नामक दोनों गुण पद, वाक्य और प्रबन्ध तीनों में स्पष्ट और व्यापक रूप से रहते हैं।

कुन्तक ने वामन के द्वारा देशाश्रित रूप में विभाजित रीतियों के स्थान पर काव्याश्रित मार्गनिर्देश करके एक वैज्ञानिक विवेचन का स्तुत्य प्रयास किया है। उन्होंने एक तो देशों के आधार पर रीति या मार्ग के वर्गीकरण का विरोध किया है और दूसरे इस प्रकार वर्गीकृत की गई रीतियों में जो विभेद किया गया है कि वैदर्भी रीति सबसे श्रेष्ठ है और गौडी सबसे कमतर है- का भी विरोध किया है। उनका कहना है कि वैदर्भी रीति को श्रेष्ठ मानने पर अन्य रीतियाँ व्यर्थ हो जायेंगी और ऐसा कौन मनुष्य होगा जो उत्तम वस्तु को छोड़कर अधम या मध्यम को ग्रहण करेगा, क्योंकि काव्यरचना कोई दरिद्र का दान नहीं है।

स्पष्ट ही कुन्तक का वर्गीकरण वामन की अपेक्षा अधिक वैज्ञानिक है। उनके अनुसार तीन प्रकार की काव्यशैलियाँ हो सकती हैं। एक में वस्तु में सहज सौन्दर्य का उन्मेष होता है तो दूसरे में अलंकारों द्वारा सामान्य वस्तु को भी खराद पर चढ़ा कर चमकीला बनाया जाता है और तीसरी में सहज एवं यत्नसाध्य दोनों प्रकार के सौंदर्य का समन्वय होता है। इस प्रकार कुन्तक के अनुसार सहज, अलंकृत और सहजालंकृत ये तीन प्रकार की शैलियाँ हो सकती हैं। निश्चय ही वामन इतनी स्पष्टता के साथ वैदर्भी, गौड़ी और पांचाली रीतियों के स्वरूप का उद्घाटन ही कर सके हैं, फिर भी इतना तो कहा ही जा सकता है कि वामन ने अपने पूर्ववर्ती भरत, भामह और दण्डी की शैलीविभाजन की परम्परा को अधिक व्यवस्थित स्वरूप प्रदान किया और आगे आने वाले कुन्तक जैसे आचार्यों के लिए मार्ग प्रशस्त किया, जिस पर चलकर वे अपने मार्गों की स्थापना कर सके।

क.बोध प्रश्न

1.रीति शब्द का कोशगत अर्थ बताइए।
2.रचना शैली के सन्दर्भ प्रयोग किए गये अन्य कौन कौन से शब्द हैं, संक्षेप में बताइए।
रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए -
1.कुन्तक रीति के लिए .....शब्द का प्रयोग करते हैं।
2.वामन के अनुसार रीतियों की संख्या..... है।
सत्य/ असत्य बताइए-
1.आचार्य भरतमुनि ने रीति के स्थान पर प्रवृत्तियों का उल्लेख किया है। (सत्य/असत्य)
2.रीति को काव्यात्मा के रूप में भामह ने प्रतिष्ठित किया। (सत्य/असत्य)
निम्न लिखित में सही विकल्प बताइए-
1.विशिष्ट पदरचना रीति है, यह कथन है-
क.आचार्य भरत ख्र;आचार्य वामन ग.आचार्य कुन्तक घ. आचार्य दण्डी
2.काव्यालंकारसूत्रवृत्ति के रचनाकार हैं-
क.आचार्य भरत ख.आचार्य दण्डी ग. आचार्य मम्मट घ. उपर्युक्त में से कोई नहीं।
3.**निम्नांकित प्रवृत्तियों का सही क्रम बताइए-**
क.पांचाली 1. पूर्व
ख.आवन्ती 2. पश्चिम
ग.दाक्षिणात्य 3. दक्षिण
घ.गौड़ मागधी 4.उत्तर

19.4 भारतीय काव्यशास्त्र में रीति का स्वरूप

उपर्युक्त वर्णन के आधार पर हम यह समझ चुके हैं कि वामन के द्वारा रीतिसिद्धान्त की स्थापना करने से पहले भारतीय काव्यशास्त्र में रीति विषयक चिन्तन प्रवृत्ति, मार्ग, वृत्ति आदि के रूप में हो चुका था। वामन की रीति विषयक मान्यताओं को समझने से पहले वामन के पूर्ववर्ती आचार्यों की मान्यताओं पर दृष्टि डालना जरूरी है।

भारतीय काव्यशास्त्र के आदि ग्रन्थ नाट्यशास्त्र में रीति का उल्लेख स्पष्ट रूप से तो नहीं है, किन्तु उसमें चार प्रवृत्तियों का उल्लेख अवश्य मिलता है, जिसमें रीति का पूर्वाभास खोजा जा सकता है। भरत के अनुसार नाट्यप्रयोगों के लिए आवन्ती, दाक्षिणात्य, पांचाली तथा गौड़मागधी - ये चार प्रवृतियाँ हैं। आवन्ती पश्चिम से, दाक्षिणात्य दक्षिण से, पांचाली उत्तर से और गौड़ मागधी पूर्व से सम्बन्धित है।प्रवृत्ति की परिभाषा देते हुए भरत ने कहा है कि पृथ्वी के नाना देशों के वेश, भाषा, आचार और वार्त्ता का जो कथन करती है, उसे प्रवृत्ति कहते हैं - 'पृथिव्यां नानादेशवेशभाषाचारवार्त्ता: प्रवृत्ति:'। इस प्रकार भरतोक्त प्रवृत्ति के अन्तर्गत अनेक देशों के आचार, विचार, रहन-सहन इत्यादि का ज्ञान आ जाता है। इसके साथ ही भरत ने गुण,

दोष, लक्षण आदि के विवेचन में उन सभी तत्त्वों को अन्तर्हित कर लिया है, जो आगे चलकर रीति के आधारभूत तत्त्व सिद्ध हुए। यद्यपि वामन के द्वारा वर्णित रीति केवल भाषा से सम्बन्ध रखती है, फिर भी ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है कि रीति की परिकल्पना प्रवृत्ति के आधार पर ही की गई होगी। अर्थात् हो सकता है कि भरत के नाट्यशास्त्र में प्रवृत्तियों का उल्लेख देखकर परवर्ती विद्वानों के मन में यह विचार आया हो कि काव्यभाषा और शैली का विवेचन ही प्रदेशगत आधार पर किया जा सकता है। यद्यपि कुन्तक ने यह कहकर कि यह मातुलेय भगिनि से विवाह की जैसी प्रथा नही है,जो देशाचार के रूप में स्वीकार की जा सके' देशभेद के आधार पर रीतियों के वर्गीकरण को अस्वीकार किया है, किन्तु हम देशभेद के आधार पर किए गए वर्गीकरण के महत्व को नकार नहीं सकते हैं।

आज भी हम अंग्रेजी कविता की विशेषताएं, बंगला साहित्य की विशेषताएं आदि कहकर देशभेद को स्वीकार करते हैं। बाणभट्ट ने हर्षचरित के प्राक्कथन में देशभेद पर आधारित रीतियों की विशेषता बताई। उनका कहना है कि उत्तर के लोग श्लेषमयी रचना करते हैं, पश्चिम के लोग साधारण अर्थ तक ही अपने को सीमित रखते हैं, दाक्षिणात्यों की शैली उत्प्रेक्षा प्रधान है और गौड(बंगाली) लोग आडम्बरपूर्ण शैली को पसन्द करते हैं किन्तु बाण इनमें से किसी एक को पसन्द करने के पक्षपाती नहीं हैं, उनको सभी गुणों का समन्वय अच्छा लगता है और ऐसी शैली को वे दुर्लभ कहकर कवि की कसौटी मानने का संकेत देते हैं।(हर्षचरितम् 1/7-8)

भामह के काव्यलंकार में रीतियों का स्पष्ट उल्लेख मिलता है, किन्तु उन्होंने रीति शब्द का प्रयोग न करके काव्य शब्द का प्रयोग किया है। उन्होंने काव्यभेदों के अन्तर्गत वैदर्भ और गौड़ की चर्चा की और कहा कि अन्यों के मत से वैदर्भ और गोड़ में अन्तर है , किन्तु हमारे मत में वैदर्भ ही गौडीय है। दोनों को अलग-अलग मानना गड्डलिकाप्रवाह है। भामह ने इस प्रकार श्रेष्ठ काव्य को ही महत्ता प्रदान ही है। उनका निर्भ्रान्त मत है कि अलंकारयुक्त, अग्राम्या, अर्थवान्, न्याय्य, अनाकुल गौडीय मार्ग भी श्रेष्ठ है और इन गुणों से रहित वैदर्भ मार्ग भी श्रेष्ठ नहीं है। भामह के सम्बन्ध में एक बात उल्लेखनीय है कि उन्होंने गुणों की स्वतन्त्र रूप से विवेचना ही है। उनकी दृष्टि में गुणों का सम्बन्ध वैदर्भ और गौड़ काव्यों से नहीं , अपितु सत्काव्य मात्र से है।

रीति का सबसे व्यवस्थित विवेचन दण्डी से मिलता है। यद्यपि रीति शब्द का प्रयोग उन्होंने भी नहीं किया है। दण्डी के अनुसार परस्पर अत्यन्त सूक्ष्म भेद वाले वाणी के अनेक मार्ग हैं। इनमें से वैदर्भी और गोड़ीय मार्गों का अन्तर स्पष्ट है। श्लेष, प्रसाद, समता, माधुर्य, सौकुमार्य, अर्थव्यक्ति, उदारत्व, ओज, कान्ति और समाधि-ये दशगुण वैदर्भमार्ग के प्राण हैं। गोड़ मार्ग में प्राय: इनका विपर्यय लक्षित होता है।(काव्यादर्श,1/40-42)।

रीति विषयक इस ऐतिहासिक क्रम का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि संस्कृत काव्यशास्त्र में रीति के विकास की चार अवस्थाएं दिखाई पड़ती हैं। सबसे आरम्भ में रीति का सम्बन्ध भौगोलिक आधार पर किया गया। आचार्य भरतमुनि, बाणभट्ट आदि के समय

में रीतियों का आधार भौगोलिक परिक्षेत्र ही है। इसके उपरान्त रीतिनिर्धारण की भौगोलिक सीमाओं की अपेक्षा काव्य विषय और अन्य काव्यगुणों के आधार पर रीतियों का निर्धारण किया जाने लगा। तीसरी अवस्था में कुन्तक आदि के समय में काव्य की शैलियों का निर्धारण कविस्वभाव के आधार पर हुआ और वामन, आनन्दवर्धन, रुद्रट आदि के समय तक आते-आते रीति का मूलाधार समास, गुण, रस आदि ठहराए गए। वामन ने रीति को काव्य की आत्मा कहा। किन्तु वामन ने इसे आत्मतत्व के रूप में जो प्रतिष्ठा दी, वह आनन्दवर्धन आदि को स्वीकार्य नहीं हुई और उन्होंने तथा अन्य रस-ध्वनिवादियों ने रीति को रस का उपकारक मानकर रसाभिव्यक्ति के साधन के रूप में स्वीकार किया गया।

ख. बोध प्रश्न

1.संस्कृत काव्यशास्त्र में रीति के चार आधार कौन कौन से हैं, बताइए।
2.देशभेद के आधार पर रीतियों का विभाजन करना उचित है या कवि स्वभाव के आधार पर।

19.5 आचार्य वामन और रीति सिद्धान्त

आचार्य वामन का स्थान काव्यशास्त्र के क्षेत्र में केवल रीति सम्प्रदाय की दृष्टि से ही नहीं, अपितु अन्यान्य सम्प्रदायों की दृष्टि से भी अत्यन्त महत्पूर्ण है, क्योंकि सर्वप्रथम वामन ने ही काव्यात्मा के अनुसन्धान का सूत्रपात किया और भारतीय काव्यशास्त्र में काव्य के आत्मतत्त्व के रूप में रस, अलंकार, रीति, वक्रोक्ति, ध्वनि और औचित्य सिद्धान्त और सम्प्रदायों का अनुसन्धान हुआ। रीति शब्द की परिभाषा और स्वरूप की व्याख्या करने के कारण ही वामन को रीति सम्प्रदाय का संस्थापक माना जाता है। यद्यपि इससे पूर्व भी भामह और दण्डी ने रीति की चर्चा अवश्य की है। पर रीति को काव्य की आत्मा के रूप में वामन ने ही प्रतिष्ठित किया । रीति के सन्दर्भ में वामन का कहना है कि -

रीतिरात्मा काव्यस्य (काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, 1/2/6)- काव्य की आत्मा रीति है।

विशिष्ट पदरचना रीति:(का.सू.वृ.,1/2/7)- वह रीति विशिष्ट पदरचना है।

विशेषो गुणात्मा (का.सू.वृ.,1/2/8)-विशिष्ट का अर्थ गुणों की सम्पन्नता से है।

काव्यशोभाया: कर्त्तारौ धर्मा गुणा: (का.सू.वृ.,3/11)-गुण काव्य में शोभा को उत्पन्न करने वाले हैं।

इन गुणों को वामन ने शब्द गुण और अर्थगुण के रूप में विभक्त किया है। अत: वामन के मत में शब्द तथा अर्थ के चमत्कार या सौन्दर्य से युक्त पदरचना ही रीति है। इसीलिए गुण काव्य में नित्य हैं। अलंकार अनित्य। अतएव नित्य गुणों को ही वामन रीति का प्रधान तत्त्व स्वीकार करते हैं।

वामन का मानना है कि कवि का उपास्य तत्त्व है- रमणीयता। और रमणीयता को ध्यान में रखकर वह काव्यरचना करता है। यह रमणीयता शब्द में भी है और अर्थ में भी। वामन के अनुसार शब्दगुण शब्द की रमणीयता को प्रकट करते हैं और अर्थगुण अर्थ की रमणीयता को। इन्हें शब्द चमत्कार और अर्थ चमत्कार भी कहा जा सकता है।

स्पष्ट है कि रीतियों का आधार गुण हैं अत: रीति को जानने से पहले गुणों के विषय में जानना आवश्यक है।

19.5.1 काव्यगुण-

भारतीय काव्यशास्त्र में काव्यगुणों पर काव्यशास्त्रीय चिन्तन के आरम्भ से ही विचार किया जाने लगा था। सामान्यत: गुण का अर्थ है- विशेषता, श्रेष्ठता, दोषाभाव, उत्तमता स्वभाव, आकर्षक तथा शोभाकारक धर्म। काव्य के सन्दर्भ में गुण काव्यसौन्दर्य के आवश्यक उपादान हैं। वामन अलंकारों और गुणों को पृथक् पृथक् मानते हुए गुणों को काव्यशोभा को करने वाले उत्पादक धर्म और अलंकारों को काव्यशोभा को बढ़ाने वाले तत्त्व कहकर यह मानते हैं कि अलंकारों के बिना काम चल जाएगा क्योंकि अलंकार काव्य के अनित्य धर्म हैं, किन्तु गुणों के बिना काव्य में शोभाधान नहीं हो सकता-

'काव्यशोभाया: कर्त्तारो धर्मा: गुणा: तदतिशयहेतवस्त्वलंकारा:। ये खलु शब्दार्थयो: धर्मा: काव्यशोभां कुर्वन्ति ते गुणा:। ते चौज: प्रसादय: ..... ओज: प्रसादादीनां तु केवलानामस्ति काव्यशोभाकरत्वमिति। पूर्वे नित्या:। पूर्वेगुणा: नित्या:। तैर्विना काव्यशोभानुपपत्ते। (का.सू.वृ. 3/1/1-3)। वामन ने गुणों को रस का धर्म नहीं, शब्दार्थ का धर्म मानते हुए काव्य में उसकी स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार की। हालॉकि बाद में ध्वनिवादी आचार्यों ने रस को काव्य की आत्मा मानकर गुणों को रस का अपरिहार्य और उत्कर्षाधायक धर्म माना। मम्मट ने काव्यप्रकाश में गुण को इस रूप में पारिभाषित किया-

'ये रसस्यांगिनो धर्मा: शौर्यादय: इवात्मन:।
उत्कर्षहेतवस्ते स्युरचलस्थितयो: गुणा:।।(काव्यप्रकाश, 8/66)

जैसे शौर्य आदि आत्मा के धर्म हैं, इसी तरह गुण काव्य के अंगी रस के धर्म हैं और काव्य के उत्कर्षाधायक ये धर्म सदैव रस में रहते हैं।आचार्य भरतमुनि से लेकर आधुनिक काल तक गुण विषयक अनेक उद्भावनाएं हुई हैं और यह बात सर्वस्वीकार्य है कि काव्यगुण काव्यसौन्दर्य के आवश्यक उपादान हैं और काव्य के नित्य धर्म हैं। यह हम पहले ही जान चुके हैं कि वामन की रीति का आधार ये गुण ही हैं। इन रीतियों को समझने के लिए काव्यगुणो के भेदों पर विचार करना भी आवश्यक है। इस विषय मे आचार्यों में मतभेद है। आचार्य भरतमुनि ने काव्यगुणों की संख्या दस निर्धारित की। ये दस गुण हैं- श्लेष, प्रसाद, समता, समाधि, माधुर्य, ओज, सुकुमारता, अर्थव्यक्ति और उदारता।

'श्लेष: प्रसाद: समता समाधि माधुर्यमोज: पदसौकुमार्यम्।
अर्थस्य च व्यक्तिरुदारता च कान्तिश्च कायार्थगुणा: दशैते।। - नाट्यशास्त्र,17/69

आचार्य मम्मट द्वारा वर्णित इन दस गुणों को वामन ने शब्द ओर अर्थ के आधार पर बीस भेद कर दिये। भामह, आनन्दवर्धन, मम्मट, विश्वनाथ पण्डितराज जगन्नाथ ने इन दस गुणों का अन्तर्भाव प्रसाद, माधुर्य और ओज- इन तीन गुणों में कर दिया। दूसरी ओर अग्निपुराणकार ने काव्यगुणों के शब्दगत (श्लेष, लालित्य,गाम्भीर्य, सुकुमारता, उदारता, सत्य, यौगिकी), अर्थगत(माधुर्य(संविधान, कोमलता, उदारता, प्रौढ़ि, सामयिकता) तथा शब्दार्थगत(प्रसाद, सौभाग्य, यथासंख्य, उदारता, पाक तथा राग) - अर्थात् उन्नीस काव्यगुणों की चर्चा की है। कुन्तक औचित्य तथा सौभाग्य नामक दो साधारण गुणों और माधुर्य, प्रसाद, लावण्य और आभिजात्य नामक चार विशेष गुणों का उल्लेख करते हैं। भोज के अनुसार गुण 24 हैं और इनके बाह्य, आभ्यन्तर और वैशेषिक रूप से विभाजन करने पर काव्यगुणों की संख्या 72 ठहरती है। गुणों की संख्या के विषय में इस वैभिन्न्य से यह सिद्ध होता है कि काव्यशास्त्रियों ने गुणों के विषय में अत्यन्त विस्तार से विचार किया है। भरतोक्त दस गुण ओर ध्वनिवादियों के द्वारा वर्णित तीन-प्रसाद, ओज ओर माधुर्य की विशेष चर्चा हुई अत: वामन द्वारा वर्णित बीस गुणों का यहाँ परिचय दिया जा सकता है। वामन द्वारा वर्णित गुणों के प्रकार ये हैं:

काव्य के गुण

शब्दगुण	अर्थगुण
1.ओज	1.ओज
2.प्रसाद	2.प्रसाद
3.श्लेष	3.श्लेष
4.समता	4.समता
5.समाधि	5.समाधि
6.माधुर्य	6.माधुर्य
7.सौकुमार्य	7.सौकुमार्य
8.उदारता	8.उदारता
9.अर्थव्यक्ति	9.अर्थव्यक्ति
10.कान्ति	10.कान्ति

19.5.2 शब्दगुण

वे गुण, जो शब्दों पर आधारित हों, शब्दगुण हैं। दस शब्दगुणों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है- रचना की गाढ़बन्धता ओज है। इसमें संयुक्त, रेफबहुल वर्णों का प्राधान्य रहता है। जहाँ ओज के साथ शिथिलता मिली हो, वहाँ प्रसाद गुण होता है। श्लेष गुण वहाँ होता है, जहाँ अनेक पद एकदूसरे से जुड़े प्रतीत हों। जिस शैली मे काव्यरचना आरम्भ की जाय, अन्त तक उसका निर्वाह हो, वहाँ समता है। उतार-चढ़ाव के ठीक ठीक नियमों का पालन होने पर समाधि गुण होता है। जहाँ समास रहित पदों का प्रयोग हो, वहाँ माधुर्य और जहाँ अक्षर-विन्यासादि में परुषता का अभाव हो, वहाँ सौकुमार्य गुण होता है। अर्थ स्पष्ट हो और उसकी तुरन्त प्रतीति हो, तो अर्थव्यक्ति और रचनाशैली की नवीनता होने पर कान्ति नामक शब्दगुण होता है।

19.5.3 अर्थगुण

वे गुण, जो अर्थ से सम्बन्धित हों, अर्थगुण हैं। अर्थ प्रौढ़ी ओजगुण है। यानी कवि को यह मालूम होना चाहिए कि बात को कहाँ विस्तार से कहना है ओर कहाँ संक्षेप में, यह कला ही अर्थ प्रौढ़ी है। अर्थ की निर्मलता को प्रसाद गुण कहा जाता है। विशिष्ट प्रकार की संघटना यानी क्रम, कुटिलता, प्रसिद्ध वर्णन की शैली और युक्त विन्यास के योग में श्लेष तथा अवैषम्य समता अर्थात् सुगमता नामक अर्थगुण है। नवीन अर्थ के अवलोकन की शक्ति समाधि है। उक्तिवैचित्र्य माधुर्य और कठोरता का अभाव सौकुमार्य है। अग्राम्यत्व या वाग्वैदग्ध्य में उदारता है और पदार्थों का स्पष्ट वर्णन अर्थव्यक्ति है। भरतोक्त श्रृंगारादि रसों का जहाँ पूर्ण परिपाक हो, वहाँ कान्ति गुण कहलाता है। इन शब्द और अर्थगुणों तथा रीति का अविभाज्य सम्बन्ध भारतीय काव्यशास्त्र में माना गया है। काव्य में गुणों की महत्ता अक्षुण्ण है। वे काव्य में अनिवार्यत: शोभा का आधान करने वाले हैं, शब्दार्थ की शोभा के हेतु हैं, रस के उत्कर्षाधायक हैं अत: काव्य की उत्कृष्टता के भी हेतु हैं।

19.5.4 रीतियॉ

- काव्यगुणों के आधार पर वामन ने तीन रीतियाँ मानी हैं-**वैदर्भी , गौड़ी , पांचाली**

इन रीतियों में से वैदर्भी को वामन समग्रगुणा और सब गुणों में श्रेष्ठ मानते हैं। गौड़ी में ओज और कान्ति- दो गुण होते हैं ओर पांचाली में माधुर्य और सौकुमार्य। वामन का मानना है कि समग्रगुणा वैदर्भी रीति की प्रशंसा कवियों के द्वारा की गई है। प्रशंसा का कारण यह है कि इस रीति में काव्यदोषों का अभाव और वीणा के स्वर के सदृश श्रवण मनोहरता होती है-

अस्पृष्टा दोषमात्राभि: समग्रगुणगुम्फिता।
विपंचीस्वरसौभाग्या वैदर्भीरीतिरिष्यते।। (काव्यालंकारसूत्रवृत्ति,1/2/11)

वैदर्भी रीति में सुकुमार वर्णयोजना होती है। ट, ठ, ड, ढ जैसे कठोर वर्णों का प्रयोग वैदर्भी रीति में वर्जित है। श्रृंगार, करुण, आदि कोमल रसों के लिए यह रीति सर्वथा उपयुक्त है। यथा-

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि, कहत लखन सम राम हृदय गुनि।

तुलसीदास की इन पंक्तियों में समासरहित पदयोजना है, कोमल पदावली का प्रयोग है, कठोर वर्णों का प्रयोग नहीं किया गया है, अत: यहाँ वैदर्भी रीति है। गौडी रीति में ओज और कान्ति ये दो ही गुण पाये जाते हैं। वामन के अनुसार इस रीति में माधुर्य और सौकुमार्य गुणों का अभाव होने के कारण समासबहुलता होती है और कठोर वर्णों का प्रयोग होता है (का.सू.वृ.,1/2/12)। जैसे-

आज का तीक्ष्ण-शर-विधृत शिप्रकर वेग प्रखर।
शतशेल सम्वरण शील नील नभ गर्जित स्वर।। -निराला, राम की शक्तिपूजा

इस उदाहरण से स्पष्ट है कि गौडी रीति का प्रयोग वीर, रौद्र, भयानक आदि रसों की अभिव्यक्ति के लिए उत्तम है। इसमें माधुर्य गुण का पूर्णत: अभाव होता है ।पांचाली रीति में माधुर्य और सौकुमार्य गुणों का विधान रहता है। छोटे छोटे समास होते हैं। (का.सू.वृ.,1/2/13)।यह मध्यम स्तर की रीति मानी गई है। उदाहरणत:-

विजन वन वल्लरी पर
सोती थी सुहाग भरी स्नेह स्वप्न मग्न
अमल कोमल तरुणी जूही की कली। -निराला, जूही की कली

वामन के अनुसार इन तीन रीतियों में काव्य उसी प्रकार समाविष्ट हो जाता है जैसे रेखाओं भीतर चित्र प्रतिष्ठित होता है- 'एतासु तिसृषु रीतिषु रेखास्विव, चित्रं काव्यं प्रतिष्ठितमिति'(का.सू.वृ.,1/2/13)। वामन के अनुसार वैदर्भी, गौड़ी और पांचाली- इन तीनों रीतियों में से सर्वगुणसम्पन्न होने के कारण कवियों को वैदर्भी रीति में ही रचना करनी चाहिए। अन्य रीतियों में कुछ ही गुण पाये जाते हैं, अत: इन रीतियों से युक्त काव्य आह्लादकारी नहीं होता, जितना वैदर्भी के प्रयोग से आनन्दित होता है। कुछ विद्वानों के अनुसार गोड़ी और पांचाली रीतियों का प्रयोग वैदर्भी रीति तक पहुँचने में सहायक होता है। वामन इस मत का दृढता से खण्डन करते हुए कहते हैं -जिस प्रकार सन की सुतली बॉंटने वाला अभ्यासी तसर या रेशम के सूत को बुनने में दक्षता प्राप्त नहीं कर सकता है, उसी प्रकार ये दोनों रीतियाँ वैदर्भी रीति के प्रयोग में सहायक नहीं हो सकती हैं, क्योंकि अतत्त्व का अभ्यासी व्यक्ति तत्त्व को कभी प्राप्त नहीं कर सकता। वामन के मत में वैदर्भी के माध्यम से सामान्य अर्थ भी सुस्वाद्य हो जाता है और अर्थगुण सम्पदा से युक्त वैदर्भी रीति के प्रयोग में तो अतिविशिष्टता आ ही जाती है। वामन के रीति विषयक विचारों का विश्लेषण करने पर हम कह सकते हैं कि वामन की दृष्टि कवि को काव्यरचना का मर्म समझाने की रही है, जिसके तहत वे रीति को काव्य की आत्मा मानते हैं। कहने का आशय यह है कि काव्यशिल्प के विषय में जानकर ही कवि श्रेष्ठ रचना कर सकता है। उसकी कथनपद्धति ही काव्य में रस का समावेश कर सकती है, अत: रीति के विषय में जानना अत्यावश्यक है। इस सन्दर्भ में यह भी ध्यातव्य है कि वामन ने काव्यांग विवेचन करते हुए लोक, विद्या और प्रकीर्ण के विषय में जो चर्चा की है, उसके द्वारा वे यह स्पष्ट करते हैं कि विविध विषयों का ज्ञान पाकर जब रचनाकार विभिन्न शास्त्रों का अभ्यास कर लेता है और गुरुजनों की सेवा में रहकर काव्य रचना के लिए अभ्यास कर लेता है, तब रीति की सहायता से

या यों कहें कि 'कवित विवेक' से काव्यरचना में समर्थ होता है। अत: रीति काव्य का अनिवार्य तत्त्व है।

ग.बोध प्रश्न

1.रीति और गुण में अन्तर बताइए।

2.रीतियाँ कितने प्रकार की हैं, वामनोक्त रीतियों के विषय में बताइए।

सत्य/असत्य बताइए-

1.रीतिसिद्धान्त के प्रवर्तक वामन हैं।
(क)सत्य (ख)असत्य

2निम्नलिखित में से असत्य कथन छॉटिए-

क.नियत वर्ण व्यापार को वृत्ति कहा जाता है।
ख.वैदर्भी रीति का मूल आधार ओज गुण होता है।
ग.पांचाली रीति में माधुर्य और सौकुमार्य गुण होते हैं।
घ.कवियों को वैदर्भी रीति में रचना करनी चाहिए।

3. गौडी रीति सम्पन्न है-
क. सभी शब्द और अर्थ गुणों से ख.ओज और कान्ति गुण से
ग.प्रसाद, माधुर्य और ओज गुण से घ.सौकुमार्य गुण से।

4.गुणों का सम्बन्ध है-
क.रीति से ख.अलंकार से ग.रस से घ.उपर्युक्त तीनों से।

19.6 काव्यात्मा और रीतिसिद्धान्त

काव्य के अनिवार्य सारतत्त्व के अनुसंधान के लिए आचार्य आरम्भ से ही यत्नशील रहे थे, किन्तु काव्यात्मा की स्फुट रूप से प्रतिष्ठा आचार्य वामन ने की और रीति को काव्य की आत्मा कहा। वामन के उपरान्त रुद्रट, आनन्दवर्धन, कुन्तक, राजशेखर आदि आचार्यों ने रीति सिद्धान्त के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। हिन्दी के रीतिकालीन आचार्यों में केशवदास ने रस की दृष्टि से भरत की चार वृत्तियों का निरूपण किया। चिन्तामणि ने कविकल्पतरु में रीति को काव्यपुरुष का स्वभाव ओर वृत्ति को उसका व्यवहार कहा। कुलपतिमिश्र ने रसरहस्य में गुणों और वृत्तियों का उल्लेख किया है। आधुनिक युग में महावीर प्रसाद द्विवेदी, श्यामसुन्दरदास, आचार्य रामचन्द्रशुक्ल, बाबू गुलाबराय, डॉ. नगेन्द्र आदि ने रीति के सन्दर्भ में विचार किए हैं। पर रीति को बाद के आचार्यों ने काव्य की आत्मा नहीं माना और यह कहा कि रीति काव्य का अनिवार्य तत्व तो है, लेकिन वह काव्य का साधन है, साध्य तो रस ही हो सकता है।

19.7 रीति और पाश्चात्य साहित्यशास्त्र

पश्चिम में विषयानुरूप शैली के प्रयोग के सन्दर्भ में समय समय पर विद्वानों ने विचार किए हैं। अरस्तू ने स्तुति, करुणा, प्रोत्साहन आदि भावों के आधार पर शैली में परिवर्तन का निर्देश किया है। डेमेट्रियस ने शैली के सन्दर्भ में लिखा है कि कुछ ऐसे विषय होते हैं, जिनमें ओजस्विनी शैली अधिक उपयुक्त होती है। लांजाइनस महान शैली को आत्मा की प्रतिध्वनि मानते हैं। शॉपेनहावर स्पष्टता, सुन्दरता और शक्ति सम्पन्न शैली को काव्य के लिए अनिवार्य मानते हैं।

ध्यातव्य है कि पश्चिम में रिचर्डस की अर्थमीमांसा पद्धति, नयी समीक्षा, शैलीविज्ञान और उत्तर आधुनिक विचारधारा में शैली के सन्दर्भ में विस्तार से चर्चा निरन्तर होती रही है। पश्चिम की नव्य आलोचना का सिद्धान्त सूत्र है -'Poetry is a language in different form' वामन के सूत्र -विशिष्ट पदरचनारीति: के पर्याप्त सन्निकट है। शैलीविज्ञान और रीतिविज्ञान में समानता को परिलक्षित करते हुए ही विद्यानिवास मिश्र ने शैलीविज्ञान विषयक अपनी रचना का नाम ही रीतिविज्ञान रखा है।

19.8 सारांश

रीति सिद्धान्त का इतिहास वामन के द्वारा रीति को काव्यात्मा के रूप में प्रतिष्ठित करने से बहुत पहले से आरम्भ होता है। यद्यपि वामन बाद के आचार्यों ने रीति को काव्य की आत्मा के रूप में स्वीकार नहीं किया ओर उसे काव्य के साधन के रूप में ही स्वीकृति दी, लेकिन काव्य के सन्दर्भ में रचना वैशिष्ट्य के विषय में प्राचीन काल से अब तक विचार होता आया है, इससे रीति की महत्ता स्वत: स्पष्ट हो जाती है।

19.9 शब्दावली

शब्दगुम्फ -शब्दों का समूह

गड्डलिकाप्रवाह -भेड़चाल

समग्रगुणा- वामन के द्वारा वर्णित दस शब्दगुण तथा दस अर्थगुणों से सम्पन्न।

अतत्त्व का अभ्यासी- जिसका काज उसी को साजे।

7.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क.बोध प्रश्न के उत्तर

रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए -

1.कुन्तक रीति के लिए ...मार्ग.....शब्द का प्रयोग करते हैं।
2.वामन के अनुसार रीतियों की संख्या..बीस..... है।

सत्य/ असत्य बताइए-

1. (सत्य)
2. (असत्य)

निम्न लिखित में सही विकल्प बताइए-

1.ख.आचार्य वामन

2. घ. उपर्युक्त में से कोई नहीं।

3.निम्नांकित प्रवृत्तियों का सही क्रम बताइए-
क.पांचाली 1. मध्यदेश
ख.आवन्ती 2. पश्चिम
ग.दाक्षिणात्य 3. दक्षिण
घ.गौड़ मागधी 4.पूर्व

ख. बोध प्रश्न के उत्तर

1.संस्कृत काव्यशास्त्र में रीति के चार आधार 1.भौगालिक,2.काव्यविषय, 3.कविस्वभाव और4.समास, गुण, रस आदि

ग.बोध प्रश्न के उत्तर सत्य/असत्य बताइए-

1.(क)सत्य

2.ख.वैदर्भी रीति का मूल आधार ओज गुण होता है।
3. ख.ओज और कान्ति गुण से
4. क.रीति से

19.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- मम्मट, काव्यप्रकाश, व्याख्याकार डॉ. सत्यव्रत सिंह, (1955)*चौखम्बा विद्याभवन,चौक, बनारस-1,*
- अमरनाथ, हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली,(प्रथम संस्करण, 2009)*राजकमल प्रकाशन, दिल्ली,*
- गुप्त, राकेश एवं चतुर्वेदी,ऋषिकुमार, साहित्यानुशीलन, (प्रथम संस्करण, 1972)*सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद*,
- सहाय, राजवंश हीरा, भारतीय-आलोचना-शास्त्र ,(2003)बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना,
- मिश्र, भगीरथ, काव्यशास्त्र (1966), *विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी*

- ज़ैदी,शैलेश,शर्मा,गोपालबाबू, उपाध्याय, पशुपतिनाथ, अमिताभ,वेदप्रकाश (सम्पादक मण्डल), भारतीय काव्यचिन्तन (प्रथम संस्करण,2001), *ग्रन्थायन, अलीगढ.*
- वामन, काव्यालंकारसूत्रवृत्ति,
- टण्डन, नीरजा, शैलीविज्ञान, (1996),ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली-7

19.12 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.काव्यालंकार,

2. काव्यादर्श

3.ध्वन्यालोक

4.काव्यालंकारसूत्रवृत्ति

5.काव्यप्रकाश

19.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. क्या रीति को काव्य की आत्मा माना जा सकता है? विस्तृत विवेचन कीजिए
2. रीतिसिद्धान्त के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में प्रकाश डालिए तथा बीस गुणों के विषय में विस्तार से बताइए।

इकाई 20 पाश्चात्य साहित्यशास्त्र की परंपरा

20.1 प्रस्तावना
20.2 उद्देश्य
20.3 पाश्चात्य साहित्यशास्त्र का प्रथम चरण
    20.3.1 आरंभिक रूप
    20.3.2 होमर के परवर्ती समीक्षक
    20.3.3 यूरोपीय समीक्षा के आदि प्रवर्तक प्लेटो
    20.3.4 अरस्तू
    20.3.5 लौंजायनस
    20.3.6 प्रमुख लैटिन समीक्षक
20.4 पाश्चात्य साहित्यशास्त्र का मध्य युग
    20.4.1 अंधकार युग
    20.4.2 मध्ययुग/पुनर्जागरण युग
    20.4.3 सत्रहवीं शताब्दी की यूरोपीय समीक्षा
20.5 आधुनिक युग
    20.5.1 अठारहवीं शताब्दी की यूरोपीय समीक्षा
    20.5.2 उन्नीसवीं सदी की यूरोपीय समीक्षा
    20.5.3 बीसवीं सदी की यूरोपीय समीक्षा
20.6 सारांश
20.7 शब्दावली
20.8 अभ्यासों के उत्तर
20.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री
20.10 निबंधात्मक प्रश्न

20.1 प्रस्तावना

जैसा कि आप जानते हैं; काव्यशास्त्र के अंतर्गत काव्य अथवा साहित्य के विभिन्न तत्त्वों से लेकर उसके उद्देश्य एवं प्रभाव तक सभी पक्षों पर विचार किया जाता है। विचार-विश्लेषण और समीक्षा के दृष्टिकोणों में प्रत्येक देश, भाषा और काल के अनुसार अंतर भी आता रहता है। भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से की जाती आलोचनाओं से ही साहित्य का स्वरूप निर्धारित एवं विकसित होता है।

सौंदर्य का दार्शनिक विवेचन ही पाश्चात्य काव्यशास्त्र का आधार बना। सौंदर्य क्या है? उसके मूल तत्व कौन-कौन से हैं? उसका प्रभाव क्या है? सौंदर्य वस्तुपरक है या व्यक्तिपरक? आदि प्रश्नों पर पाश्चात्य सौंदर्य-दर्शन या ऐस्थिटिक्स में गहराई से विचार किया गया। दर्शन से जुड़े होने के कारण परम सत्य, गोचर सत्य और अनुकृत सत्य पाश्चात्य काव्यशास्त्रीय इतिहास के विचार सूत्र बने रहे- चाहे वह यूनानी इतिहास हो, चाहे रोमन, फ्रेंच, जर्मन, स्पेनी या रूसी काव्य चिंतन हो; सभी में विभिन्न चिंतकों द्वारा काव्य या कला को प्रकृति की अनुकृति माना गया।

कुछ ने कला को यथावत् अनुकृति माना, कुछ ने कला और काव्य को प्रकृति की पुनःसर्जना के रूप में स्वीकार किया। किसी ने कला के समाजोपयोगी नैतिक पक्ष को महत्वपूर्ण माना, तो किसी ने उसके आनंददायी कलात्मक पक्ष को। इन्हीं सब विचार-मंथनों से पाश्चात्य साहित्यशास्त्र का विकास हुआ।

20.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ कर आप जानेंगे कि:

- पाश्चात्य साहित्यशास्त्र का प्रारंभ कब, किन परिस्थितियों में और किनके द्वारा हुआ।
- इतिहास के विभिन्न युगों में साहित्य के विकास में साहित्यशास्त्र की क्या भूमिका रही।
- मध्यकाल में नवजागरण के पश्चात् किस प्रकार यूरोपीय साहित्यशास्त्र में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए।
- पश्चिमी देशों के आधुनिक चिंतकों और दार्शनिकों ने किस प्रकार वहाँ के साहित्य और समालोचना को प्रभावित किया।
- बीसवीं शताब्दी में यूरोप में किन-किन सिद्धांतों का प्रतिपादन हुआ; जिनके प्रभाव से साहित्य में विविध वाद जन्मे तथा समालोचना की विभिन्न शैलियाँ विकसित हुईं।

20.3 पाश्चात्य साहित्यशास्त्र का प्रथम चरण:

प्राचीन युग (ई0पू0 पाँचवी शताब्दी से पाँचवी सदी ईसवी तक)

पाश्चात्य काव्यशास्त्र के इतिहास को निम्नलिखित चार कालखंडों में विभाजित किया गया है:

प्रथम - प्राचीन युग; ई0पू0 पाँचवी शताब्दी से ईसा की पाँचवी शताब्दी तक।

द्वितीय - अंधकार युग; पाँचवी सदी से पन्द्रहवीं सदी ईसवी तक।

तृतीय - मध्ययुग; 15वीं से 19वीं सदी ई0 तक, इसके दो खंड हैं:

(अ) नवजागरण काल (15वी शताब्दी) तथा

(आ) नव्य शास्त्रीय युग (16वीं से 18वीं शताब्दी)

चतुर्थ - आधुनिक युग (18वीं से 20वीं सदी तक)

(अ) स्वच्छंदतावादी युग (19वीं शताब्दी)

(आ) बीसवीं शताब्दी की विभिन्न समीक्षा धाराएं

20.3.1 प्रारंभिक रूप: यूनानी समीक्षक

(ई0पू0 पाँचवी शताब्दी से ईसा की पाँचवी शताब्दी तक)

पाश्चात्य काव्यशास्त्र का प्रारंभ ईसा से लगभग चौथी-पाँचवी शताब्दी पूर्व यूनान (ग्रीस) में हुआ माना जाता है। काव्य-विषयक प्रथम विश्लेषण यूनानी चिंतक प्लेटो (ई0पू0 428-347) के संवादों में ही मिलता है।

यूरोपीय साहित्य का प्राचीनतम रूप यूनान के विश्व प्रसिद्ध कवि होमर के काव्य में मिलता है। होमर ने ग्रीक भाषा में साहित्य रचना की थी। उनका समय ईसा पूर्व सातवीं-आठवीं शताब्दी माना जाता है। होमर के उपरांत वहाँ का दूसरा प्रसिद्ध कवि हेसिऑड था। इन दोनों के काव्य में हमें तत्कालीन साहित्यिक मान्यताओं का आरंभिक रूप मिल जाता है। होमर काव्य का लक्ष्य आनंद प्रदान करना मानता था। उसका कहना था कि काव्य का मूल प्रयोजन 'चमत्कार द्वारा आनंद प्रदान करना है।' वह कलात्मक भ्रम से ही चमत्कार और आनंद का प्रादुर्भाव मानता था। इसके विपरीत हेसिऑड काव्य का प्रयोजन शिक्षा देना या दैवी संदेश का वहन करना घोषित करता है। इस प्रकार यूरोप के ये दोनों प्राचीनतम कवि उस ऐतिहासिक विवाद को जन्म दे गए जो आज भी काव्यशास्त्रीय-चर्चा का एक अत्यंत महत्वपूर्ण विषय बना हुआ है।

यूरोप का आरंभिक काव्य, जीवन और समाज से घनिष्ठ रूप से संबद्ध था। होमर और हेसिऑड दोनों ही कला की अधिष्ठात्री देवी म्यूज़ से यह प्रार्थना करते हैं कि वह उनहें वस्तुगत सत्य को प्रकट करने की प्रेरणा और शक्ति प्रदान करे। इस युग में काव्य रचना का उद्देश्य मनुष्य जीवन को सभ्य और उदात्त बनाना माना जाता था। इसी कारण काव्य का मूल्यांकन सामाजिक

उपयोगिता के आधार पर ही होता था। होमर ने अपने काव्यग्रंथों 'इलियड' और 'ओडेसी' में प्राचीन कथाओं के आधार पर देवताओं की अनैतिक और ईर्ष्यालु प्रवृत्ति का खुलकर चित्रण किया था।

20.3.2 होमर के परवर्ती समीक्षक

सामान्यतः प्लेटो (पाँचवीं सदी ईसा पूर्व) को पाश्चात्य काव्यशास्त्र का जनक माना जाता है। परंतु होमर और प्लेटो के मध्यवर्ती युग में भी यूनान (ग्रीस) में कुछ विद्वान हुए; जिन्होंने काव्य की व्याख्या की थी। इन विद्वानों में पिंजर, गार्जियस तथा अरिस्टोफेनिस के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। पिंडर काव्य-सृजन में प्रेरणा की अपेक्षा प्रतिभा को अधिक महत्वपूर्ण मानता था; जबकि गार्जियस एक प्रकार से होमर के कलात्मक भ्रम वाले सिद्धांत का समर्थक था। आगे चलकर अरस्तू द्वारा किए गए त्रासदी संबंधी विवेचन पर गार्जियस का गहरा प्रभाव माना जाता है। गार्जियस की मान्यता थी कि त्रासदी श्रोताओं पर गहरा मनोवैज्ञानिक प्रभाव डालती है। यूनान के नगरों में जनतंत्र की स्थापना के बाद वहाँ वक्तृक्त कला का महत्व बढ़ने लगा था। इसी कारण 'क्या बात कही जा रही है?' की अपेक्षा 'बात कैसे कही जा रही है'- का महत्व बढ़ गया था। बात को प्रभावशाली ढंग से कहकर जनता को प्रभावित करना भाषण कला का प्रधान लक्ष्य था। साहित्य में भी इस प्रवृत्ति का प्रभाव परिलक्षित होने लगा था। काव्य का लक्ष्य आनंद और शिक्षा देना माना जाता था। प्लेटो पूर्व यूरोपीय काव्य समीक्षा के मतों को संक्षेप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है -

1. काव्य का मूल तत्त्व प्रेरणा है और कवि एक विशिष्ट प्राणी।
2. काव्य का प्रयोजन आनंद प्रदान करना और शिक्षा देना- दोनों स्वीकार्य थे।
3. काव्य का विषय प्राचीन वीरों की कथा कहने तक ही निर्धारित था।
4. कवि -हृदय का निर्मल और संवेदनशील होना अनिवार्य माना जाता था।

20.3.3 यूरोपीय समीक्षा का आदि प्रवर्तक प्लेटो (429 ई0 पू0 347)

प्लेटो के गुरु सुकरात (469 ई0 पू0 से 389 ई0 पू0) एक संत महात्मा, दार्शनिक, चिंतक और तार्किक व्यक्ति थे। काव्यशास्त्र के विषय में उनके विचार प्राप्त नहीं होते, परंतु उनका चिंतन उनके पटु शिष्य प्लेटो के माध्यम से सामने आया; जो एक आदर्शवादी विचारक, राजनीतिक तथा दार्शनिक था। प्लेटो के आदर्श राज्य की कल्पना सुप्रसिद्ध है।

प्लेटो

उनका ग्रन्थ 'रिपब्लिक' राजनीतिक चिंतन और आदर्श राज्य का एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है। उनके अधिकांश ग्रंथ संवादों के रूप में हैं। इन संवादों में राजनीति आदि अन्य विषयों की चर्चा के मध्य प्लेटो के कला तथा काव्य संबंधी मत प्रकट हुए हैं।

प्लेटो के काव्यशास्त्रीय विचारों को संक्षेप में हम इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं-

1. कवि दैवी प्रेरणा से अथवा आवेश में आकर काव्य की रचना करता है। उसकी वाणी ईश्वर की वाणी है। परंतु उसके वर्णन सच्चे और तर्क पर आधृत नहीं होते । अधिकांशतः वह मानव-वासनाओं को उभार कर लोगों को अनैतिक बनाता है।

2. कवि का वर्णन काल्पनिक और अज्ञानजन्य होता है; जो समाज को गलत दिशा देता है। अतः वह त्याज्य है। उसने कवियों को आदर्श राज्य से बहिष्कृत करने का सुझाव दिया।

3. प्लेटो के विचार से वस्तु के तीन रूप होते हैं- 1. आदर्श, 2. वास्तविक और 3. अनुकृत। प्रकृति और सृष्टि भी ईश्वर के किसी आदर्श के आधार पर रची गई अपूर्व सृष्टि है। कला और काव्य उसकी भी अनुकृति होने से सत्य से तिगुने दूर हैं।

4. कविता और कला में वस्तु के साथ-साथ रूप भी महत्वपूर्ण होता है। काव्य में लय और छंद का भी विशेष महत्व है। प्लेटो की काव्यशास्त्रीय दृष्टि समाज परक एवं नैतिक है।

20.3.4 अरस्तू (384-322 ई0पू0)

प्लेटो के बाद उनके शिष्य अरस्तू ने अपने विरेचन सिद्धांत की स्थापना कर प्लेटो के आक्षेपों का उत्तर देते हुए कहा-

1. साहित्य प्रकृति का अनुकरण मात्र न होकर एक नवीन सृष्टि होता है।

2. साहित्य सत्य से दूर न होकर एक अधिक व्यापक और संभाव्य सत्य का अंकन करता है।

3. साहित्य वासनाओं को उभारकर उनका संवर्धन और संप्रोषण नहीं करता; बल्कि उनका विरेचन या शुद्धिकरण करता है। इसलिए साहित्य समाज के लिए कल्याणप्रद होता है। अतः वह त्याज्य न होकर स्पृहणीय है।

अरस्तू ने अपने दो प्रसिद्ध सिद्धांतों- 1. अनुकृति सिद्धांत तथा 2. विरेचन सिद्धांत की स्थापना करके विस्तृत काव्यशास्त्रीय विवेचन किया। काव्यशास्त्र पर उनके दो ही ग्रन्थ उपलब्ध हैं, परंतु वे भी खंडित रूप में।

1. काव्यशास्त्र , 2. अलंकारशास्त्र । अरस्तू ने काव्य के पाँच मुख्य रूप माने थे- महाकाव्य, त्रासदी, कामदी, रौद्र स्रोत्र और गीतिकाव्य। इनमें से वे महाकाव्य को श्रेष्ठ मानते थे। वे सुखांत नाटकों की अपेक्षा दुखांत नाटकों को श्रेष्ठ मानते थे। वस्तुतः अरस्तू ने काव्य संबंधी इतना विस्तृत, गंभीर और मौलिक विवेचन किया है कि उसे प्राचीन काव्यशास्त्र का मेरुदंड एवं सर्वाधिक प्रभावशाली समीक्षक माना जाता है। होमर और हेसिऑड आदि की काव्य रचनाएं संकेत देती हैं कि प्लेटो से काफी पहले से ग्रीस में काव्य-रचनाएं हो रही थीं, उनमें से अनेक

रचनाएं लोकप्रिय थीं तथा उन पर तत्कालीन काव्यप्रेमियों एवं बुद्धिजीवियों में चर्चाएं भी होती थीं; विशेषकर होमर की 'इलियड एडं ओडीसी' पर। तत्कालीन ग्रीक दार्शनिकों, चिंतकों और कवियों ने अपने दर्शनशास्त्र, भाषणशास्त्र, नाटक, काव्य तथा इतिहास विषयक ग्रंथों में साहित्य के आदर्शों और आलोचना सिद्धांतों के साथ काव्य की उत्पत्ति, रचना-पद्धति और उद्देश्य इत्यादि के विषय में भी अपने निर्णय दिए हैं, लेकिन काव्य तथा अन्य कलाओं पर व्यवस्थित चिंतन और टिप्पणियाँ प्लेटो से ही आरंभ होती हैं। अनेक विद्वान यह भी मानते हैं कि यूरोपीय शास्त्रीय समीक्षा का विधिवत् प्रारंभ अरस्तू से ही होता है, क्योंकि उसके बाद के अन्य यूनानी चिंतकों ने एक प्रकार से उसी के मत को आगे बढ़ाया। परवर्ती समीक्षक शताब्दियों तक उनके अनुकृति एवं विरेचन के सिद्धांतों की भिन्न-भिन्न व्याख्याएँ करते रहे।

20.3.5 लोन्जायनस

यूनानी समीक्षा के तीसरे और अंतिम विचारक लोन्जायनस का आविर्भाव प्रथम या द्वितीय शताब्दी ई0 में हुआ। उसने काव्य का चरम लक्ष्य पाठक या श्रोता को 'अपूर्व समाधि' में निमग्न कर देना माना। उसे यूरोप का पहला स्वछंदतावादी (सौंदर्यवादी) समीक्षक माना जाता है। वह उदात्तता को काव्य और कला का सबसे महान् और प्रधान गुण मानता था। उसके अनुसार औदात्य या भव्यता एक भव्य आत्मा का गुण है। चित्तवृत्ति की भव्यता महान काव्य को जन्म देती है। यह प्रकृति प्रदत्त प्रतिभा होती है और कला से अनुपूरित होकर महान काव्य का सृजन करती है। काव्य अपनी इसी उदात्तता के कारण पाठक या श्रोता के हृदय का स्पर्श करता है। उसने काव्य की उत्कृष्टता के लिए पाँच गुण आवश्यक माने थे- 1. वस्तुबोध या विचार की भव्यता, 2. भाव की उत्कृष्ठता, 3. अलंकारों का अधिक प्रयोग, 4. शब्द शिल्प की उदारता और 5. शब्द व्यवस्था की उत्कृष्टता। इस प्रकार वह काव्य के भाव पक्ष और कला पक्ष के परस्पर संबद्ध, संतुलित और व्यवस्थित होने पर बल देता है। आगे चलकर अठारहवीं शताब्दी का यूरोपीय स्वछंदतावादी काव्य लोंजायनस के इन सिद्धांतों से अत्यधिक प्रभावित रहा था। उसे स्वछंदतावाद और अभिव्यंजनावाद का मूल प्रवर्तक माना जाता है। यूनानी (ग्रीक) समीक्षाशास्त्र के आधार स्तंभ उपर्युक्त तीन आचार्य प्लेटो, अरस्तू और लोन्जायनस ही माने जाते हैं। इनके काव्यशास्त्रीय सिद्धांत लगभग दो हजार वर्षों तक यूरोपीय साहित्य और समीक्षा को प्रभावित करते रहे हैं। आज के अनेक साहित्यिक वादों और समीक्षा सिद्धांतों का मूल उत्स इन्हीं के सिद्धांतों में समाहित है।

20.3.6 लैटिन समीक्षक

प्राचीन काल में यूरोप में दो ही भाषाएं प्रचलित थीं- ग्रीक और लैटिन। ग्रीक यूनान की तथा लैटिन रोम साम्राज्य की भाषा थी। यूरोपीय राजनीति से जब यूनान का प्रभुत्व समाप्त हो गया और रोम नई राजनीति का केंद्र बन गया तो साहित्य में इटली की भाषा लैटिन का प्रभुत्व बढ़ना प्रारंभ हो गया। तथा यूरोपीय साहित्य और कला का चिंतन केंद्र यूनान से हटकर रोम बन गया। परिणाम स्वरूप लैटिन भाषा की भी अभिवृद्धि हुई। लैटिन काव्यशास्त्र यूनानी काव्यशास्त्र से प्रभावित रहा।

लैटिन समीक्षकों में तीन प्रमुख विचारक

(1) सिसिरो, (2) होरेस तथा (3) क्विन्टीलियन माने जाते हैं।

सिसिरो- सिसिरों ने अपनी रचनाओं में साहित्य के सैद्धांतिक पक्ष पर अधिक बल देते हुए साहित्य-तत्वों का सूक्ष्म विवेचन किया। वे यूनानी समीक्षकों से प्रभावित थे।

होरेस- होरेस का समय ईसा पूर्व पहली शताब्दी माना जाता है। संपूर्ण यूरोप की समीक्षा के इतिहास में होरेस का ऐतिहासिक महत्व माना गया है। उन्होंने अरस्तू के काव्य सिद्धांतों का समर्थन किया। 'आर्स-पोइटिका' उनकी समीक्षा संबंधी प्रसिद्ध कृति है। साथ ही उन्होंने काव्य प्रयोजन, काव्य हेतु, कला साहित्य, साहित्यिक औचित्य, काव्य शिल्प, बुद्धि तत्व समीक्षा आदि का भी विशद विवेचन किया। अंग्रेजी तथा लैटिन के परवर्ती समीक्षाशास्त्र पर उनका गहरा प्रभाव पड़ा।

क्विन्टीलियन- लैटिन भाषा और साहित्य का तीसरा प्रसिद्ध समीक्षक क्विन्टीलियन अपने समय का प्रसिद्ध अलंकारवादी आचार्य और शैली विशेषज्ञ था। उसने रूढ़िवादी विचारधारा और शास्त्रीयता का विरोध करते हुए इस बात पर बल दिया था कि साहित्य समकालीन सामाजिक समस्याओं की उपेक्षा कर जीवित नहीं रह सकता। उसने कला और शैली, शब्द चयन, शब्द संघटना, अलंकरण, मूर्ति विधान, उपमा, वस्तु और शैली, शैली की विशिष्टता, शैली का औचित्य, भाषा शक्ति, शैली-भेद और लोकरुचि आदि तत्त्वों का विशद् विवेचन किया।

बोध प्रश्न

1. निम्नलिखित वाक्यों में रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:

   यूरोपीय साहित्य का प्राचीनतम रूप.....के प्रसिद्ध कवि.....के काव्य में मिलता है।

   यूरोपीय साहित्यशास्त्र का प्रथम चिंतक.....था।

   यूनानी समीक्षा के तीसरे और अंतिम विचारक.....थे।

   यूनानी प्रभुत्व समाप्त होने के बाद साहित्य का केंद्र.....बना और ------भाषा का प्रभुत्त्व बढ़ा।

2. लौंजायनस ने काव्य की उत्कृष्टता के लिए कौन-से पाँच गुण आवश्यक माने?

.....
.....
.....

.....

.....

20.4 पाश्चात्य साहित्यशास्त्र का मध्ययुग

यूरोपीय काव्यशास्त्र की प्रारंभिक स्थिति पर विचार करने के पश्चात् हम देखेंगे कि मध्यकाल में उसकी क्या स्थिति रही।

20.4.1 अंधकार युग

ग्रीक-रोमन साम्राज्य के पतन के बाद पाँचवी सदी ई0 से लेकर लगभग 15वीं सदी ई0 तक यूरोप में अराजकता की स्थिति छाई रही , साथ ही साहित्य के क्षेत्र में भी पूर्ण विराम लग गया। ऐसा प्रतीत होता है कि इस बीच यूरोप में काव्य-सृजन की गति मंद पड़ गई थी और काव्यशास्त्र के चिंतन के प्रति उदासीनता छा गई थी। इस बीच काव्यशास्त्रीय दृष्टि से कुछ भी घटित न होने के कारण इसे अंधकार युग कहा जाता है।

20.4.2 मध्ययुग/पुनर्जागरण का आरंभ

पाश्चात्य साहित्य के 15वीं और 16वीं शताब्दी के काल को पुनर्जागरण काल भी कहा जाता है। पन्द्रहवीं शताब्दी में रोमन साम्राज्य के प्राचीन केंद्र इटली में वैचारिक जागरण का नवोदय मानववाद के रूप में हुआ। इसके साथ ही यूरोप ने महसूस किया कि उसने प्राचीन यूनानी और लैटिन वैचारिक संपदा, साहित्य और संस्कृति की उपेक्षा कर अपने पैरों में कुल्हाड़ी मारने का काम किया है। इस अनुभूति के उदय होते ही इटली आदि देशों में ग्रीक और लैटिन के प्राचीन ग्रंथों की खोज और उनके अनुवाद का कार्य प्रारंभ हो गया और यूरोप में पुनर्जागरण का उदय हुआ। इस नवीन वैचारिक जागृति का मूलाधार वही प्राचीन चिंतन रहा और यूरोप में उस वैचारिक क्रांति का श्रीगणेश हुआ; जिसने चार-पाँच शताब्दियों में ही यूरोपीय चिंतन और साहित्य को उत्कर्ष के चरम बिंदु तक पहुँचा दिया। 15वीं-16वीं शताब्दी में काव्य की शैली और भावपक्ष दोनों का पर्याप्त विवेचन हुआ। अरस्तू के अनुकरण सिद्धांत तथा विरेचन सिद्धांत का महत्व स्वीकार किया गया। अनुकरण, कल्पना, शिक्षा एवं आनंद के आधार पर काव्य-परिभाषाएं बनाई गईं। काव्य का विभाजन श्रव्य और दृश्य दो रूपों में किया गया। शैली विषयक नियमों तथा उदात्त भाषा के प्रयोग पर बल दिया गया। सोलहवीं शताब्दी को मध्यशास्त्रीय युग भी कहा जाता है।

अंग्रेजी समीक्षा का आरंभ सोलहवीं शताब्दी के प्रारंभ से माना जाता है। आरंभ में जान कॉलेट, इरास्मस और जुआन लुई विवेस नामक तीन विद्वानों ने इटली के 'मानवतावाद' को अपनाते हुए प्राचीन रूढ़ परंपराओं और पूर्वजों के अंधानुकरण का विरोध कर यह कहा कि हमें अपने युग की नई परिस्थितियों के अनुरूप नई मान्यताओं को प्रश्रय देना चाहिए। परिणामस्वरूप नए काव्य सिद्धांतों की रचना का प्रारंभ हुआ। उनके इस प्रयास के साथ ही अलंकार-शास्त्र की नई परंपरा विकसित होने लगी। 19 वीं शताब्दी के रोमांटिक आंदोलन की

भूमिका तैयार करने वाले एडीसन तथा लेसिंग भी इसी युग में हुए। ड्राइडन 17वीं सदी का सबसे महत्वपूर्ण आलोचक माना जाता है। उसका झुकाव स्वछंदतावाद की ओर होते हुए भी वह प्राचीन सिद्धांतों के महत्व को स्वीकार करता है। एडीसन ने कल्पना की मनोवैज्ञानिक व्याख्या की तथा नाटकों में परिष्कृत हास्य और व्यंग्य को आवश्यक बताया। इसी काल में एलेक्जेंडर पोप ने अपनी बौद्धिकता एवं व्यंग्यप्रियता का परिचय दिया। 18वीं सदी के उल्लेखनीय आलोचक डॉक्टर जोनसन ने संकलन त्रय को उपेक्षित करते हुए अपने ढंग से नाटक का विवेचन किया। जर्मनी के काव्यशास्त्री लेसिंग की समीक्षा ग्रीक आदर्शों को स्वछंदतावादी आदर्शों तक जोड़ने में प्रवृत्त हुई।

गंभीर और मनोवैज्ञानिक समीक्षा- सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हम अंग्रेजी समीक्षकों को गंभीर और मनोवैज्ञानिक चिंतन करते देखते हैं। इस समय धार्मिक सुधारवादी दृष्टिकोण वाले लोग साहित्य और कला पर अनैतिकता का आरोप लगाने लगे थे। अंग्रेजी के नए समीक्षकों ने साहित्य और कला का गंभीर विवेचन करते हुए उन आरोपों का दृढ़ता के साथ खंडन किया और कहा कि साहित्य सर्वोत्कृष्ट आनंदप्रद और उपयोगी होता है। उनका कहना था कि काव्य ऐतिहासिक, दार्शनिक, सामाजिक या नैतिक सत्य को प्रकट करने का सर्वोत्तम साधन है। परंतु अंग्रेजी के प्रसिद्ध निबंधकार फ्रांसिस बेकन ने साहित्य को समाज से पूर्णतः असम्पृक्त और काल्पनिक घोषित करते हुए काव्य को जीवन से पलायन माना। इस समय बेन जॉनसन ने शेक्सपियर के नाटकों की विस्तृत समीक्षा करते हुए अंग्रेजी में गंभीर समीक्षा की नींव डाली।

अन्य यूरोपीय समीक्षक- इटली के मानवतावाद ने फ्रांस और स्पेन को भी प्रभावित किया। इटली में दांते तथा पैटार्क जैसे श्रेष्ठ साहित्यकारों ने समीक्षा के नए मानदंड बनाए। वहाँ लैटिन और ग्रीक साहित्य पर भी खूब विवेचन किया गया। स्पेन में समीक्षा का प्रवर्तन छठी शताब्दी के आस-पास हो चुका था। संत इसिडोर स्पेन के पहले प्रभावशाली समीक्षक माने जाते हैं, जिन्होंने काव्य और धर्म में परस्पर अटूट संबंध माना था। इसके उपरांत समीक्षा क्षेत्र में धर्म के साथ दर्शन का प्रवेश भी मान्य हो गया। बारहवीं शताब्दी में स्पेनी विद्वानों ने काव्य को धर्म और दर्शन के चंगुल से मुक्त करके विशुद्ध काव्यशास्त्रीय समीक्षा का आरंभ किया और काव्य को सर्वश्रेष्ठ कला माना। सोलहवीं शताब्दी में लुई विवे ने यूरोप के नवजागरण से प्रेरित होकर स्पेनी साहित्य में नए युग की स्थापना की। स्पेन के नए साहित्य समीक्षकों ने अंधानुकरण की प्रवृत्ति का विरोध करते हुए नव युग का आह्वान किया।

20.4.3 सत्रहवीं शताब्दी की यूरोपीय समीक्षा: नव्य शास्त्रीय युग

सोलहवीं शताब्दी के अंत तक नवीन यूरोपीय समीक्षा का एक सुदृढ़ आधार बन चुका था। सत्रहवीं शताब्दी में फ्रांसीसी समीक्षा का उल्लेखनीय विकास हुआ। इस शताब्दी का सर्वश्रेष्ठ युग प्रवर्तक फ्रांसीसी समीक्षक वोयलो माना जाता है। उसने काव्य में विवेक का स्थान सर्वोपरि माना तथा प्राचीन यूनानी और लैटिन काव्यशास्त्र की दार्शनिक व्याख्या भी प्रस्तुत की। उसने ऐतिहासिक दृष्टिकोण से साहित्यिक प्रवृत्तियों का अध्ययन करने की परंपरा डाली। अन्य

फ्रांसीसी समक्षकों ने भी काव्य के तत्त्वों और समस्याओं पर गंभीर विचार करते हुए फ्रांसीसी समीक्षा को आगे बढ़ाया और यूरोप में नव-क्लासिकवाद (नवीन सौंदर्यवाद) को जन्म दिया। तत्कालीन स्पेनी समीक्षा का रूप भी लगभग ऐसा ही रहा। सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हम अंग्रेजी काव्य में रहस्यवादी प्रवृत्ति का उदय होते देखते हैं। डॉ0 जॉन्सन ने गूढ़ और अस्पष्ट काव्य रचकर काव्य क्षेत्र में रहस्यवाद का प्रवेश कराया। समीक्षकों ने इस काव्य को श्रेष्ठ तो माना, परंतु इसकी अस्पष्टता की निंदा भी की।

नव क्लासिकवाद - सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में फ्रांस में नव क्लासिकवाद की एक नई लहर फैली। फ्रांसीसी विचारकों ने साहित्य के क्षेत्र में व्याप्त स्वछंदता का विरोध करते हुए साहित्य को नियमों द्वारा अनुशासित करने का प्रयत्न आरंभ किया। प्रसिद्ध फ्रांसीसी समीक्षक वोयली ने साहित्यकारों के लिए एक आचार संहिता का निर्माण किया; जिसका आदर्श प्राचीन यूरोपीय साहित्य को माना। उसने कहा कि कवियों को प्राचीन कवियों के नियमों का अनुसरण करना चाहिए। इसका अंग्रेजी साहित्य पर भी गहरा प्रभाव पड़ा; जिससे फ्रांस और इंग्लैण्ड में काव्यशास्त्र के प्राचीन नियमों के अनुसार ही काव्य रचना होने लगी। किंतु नव क्लासिकवाद का यह जादू अधिक समय तक अपना प्रभाव बनाए रखने में समर्थ न रह सका। फ्रांस और इंग्लैण्ड दोनों ही देशों के अनेक समीक्षकों ने इसका विरोध करना शुरू कर दिया। इंग्लैण्ड के डॉ0 जान्सन और मैथ्यू आर्नल्ड जैसे प्रभावशाली साहित्यकारों और विचारकों ने कहा कि- ''काव्य का लक्ष्य जीवन का आनंद लेने और उसे सहने में हमारी सहायता करना है।''

बोध प्रश्न

3. नीचे दी गई उक्तियाँ सत्य हैं या असत्य; चिन्हित कीजिए:

यूरोपीय साहित्य में पाँचवी से पन्द्रहवीं सदी ई0 का समय अंधकार युग के नाम से जाना जाता है। (सत्य/असत्य)

चौदहवीं शताब्दी से नवजागरण काल आरंभ हुआ। (सत्य/असत्य)

नव क्लासिकवाद का आरंभ फ्रांस से हुआ। (सत्य/असत्य)

4. यूरोपीय साहित्यशास्त्र के नवजागरण काल की पाँच विशेषताएं बताइए

.....
.....
.....
.....
.....
.....

20.5 आधुनिक युग

20.5.1 अठारहवीं शताब्दी की यूरोपीय समीक्षा

यूरोपीय काव्यशास्त्र के इतिहास में 18वीं शताब्दी का बहुत महत्व है। इस युग में आधुनिक प्रवृत्तियों के उदय के साथ यूरोपीय समीक्षा का बहुमुखी विकास हुआ। इस शताब्दी में समीक्षा की प्राचीनतावादी और स्वछंदतावादी दो धाराएं सक्रिय हुई। दोनों में गहरा वाद-विवाद होता रहा। इससे यूरोपीय समीक्षा अधिक समृद्ध और व्यापक बनी। अंग्रेजी के पोव और डॉ0 सैमुअल जान्सन जैसे समीक्षकों ने साहित्य में कल्पना से बुद्धि को अधिक महत्व प्रदान करते हुए स्पष्टता, सरलता और प्रबोधता पर विशेष बल दिया तथा समीक्षा को एक वैज्ञानिक और सुव्यवस्थित रूप प्रदान किया। ये लोग प्राचीनतावादी कहलाए। इसी के साथ-साथ बुद्धि की अपेक्षा कल्पना को अधिक महत्व देने वाली स्वछंदतावादी समीक्षा भी विकसित हो रही थी। इसका समर्थन अंग्रेजी के प्रसिद्ध समीक्षक एडीसन ने भी किया। इन सभी की विचारधारा प्रसिद्ध यूनानी समीक्षक लोन्जायनस के कल्पनावादी सिद्धांत से प्रभावित थी। इस समय यूरोपीय साहित्य पर फ्रांस के प्रसिद्ध दार्शनिक रूसो के प्रकृतिवाद का भी प्रभाव पड़ रहा था। रूसो की मान्यता थी कि मनुष्य इस कारण दुखी है कि उसने प्रकृति का साथ छोड़ दिया है और कृत्रिम जीवन अपना लिया है। मानव प्रकृति मूलतः कल्याणकारी है, इसलिए उस पर प्रेम को छोड़ अन्य प्रकार के नैतिक बंधन लगाना अहितकर है।

रूसो के अतिरिक्त अनेक जर्मन दार्शनिक भी इस समय यूरोपीय साहित्य को प्रभावित कर रहे थे। लेसिग, शीलर, गेटे, कांट, युंग, आदि अनेक जर्मन विचारकों ने एक प्रकार से स्वछंदतावादी विचारधारा का ही समर्थन किया। कुंजे ने सौंदर्यप्रियता पर बल दिया और कांट ने सौंदर्यशास्त्रीय सिद्धांतों का विवेचन करते हुए स्वछंदता और सौंदर्य में समन्वय स्थापित किया। युंग ने प्राचीन और नवीन के विवाद का विरोध करते हुए साहित्यकारों को ''स्वयं को समझो'' और 'स्वयं का सम्मान करो' का परामर्श देकर उनमें स्वाभिमान की भावना जागृत की।

अठारहवीं सदी में यूरोपीय समीक्षा के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए। इस काल में समीक्षक प्राचीन मतों को ही एक मात्र आदर्श न मानकर साहित्य के विभिन्न रूपों का मूल्यांकन करने के लिए नए-नए समीक्षा सिद्धांत निर्मित कर रहे थे। यह यूरोपीय समीक्षा का बहुमुखी क्रांतिकारी युग था।

20.5.2 उन्नीसवीं सदी: स्वछंदतावाद का उत्कर्ष

उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में यूरोपीय साहित्य में स्वछंदतावादी प्रवृत्ति अपने चरम पर थी। मानव को सर्वोपरि मानते हुए प्राचीन परंपरा के प्रति मोह का घोर विरोध किया जा रहा था। साहित्यकार के व्यक्तित्व और मौलिकता को ही सर्वोपरि माना जाने लगा। 'प्रकृति-प्रेम' और 'सौंदर्य के प्रति जिज्ञासा' प्रधान कविकर्म बन गया। वर्डस्वर्थ, कॉलसिज, शेली, कीट्स, वाहाम आदि अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवियों ने काव्य का लक्ष्य 'आनंद देना' माना। इनकी रचनाओं में

प्रकृति प्रेम को प्रमुख स्थान प्राप्त हुआ, जिसने सूक्ष्म रहस्यात्मकता को जन्म दिया। समष्टि रूप में मानव जीवन के प्रति इनका दृष्टिकोण पवित्र, महान और आदर्शवादी था। नैतिकतापरक और उपदेश पूर्ण साहित्य का विरोध किया जाने लगा। इस नवीन काव्य प्रवृत्ति ने शिल्प विन्यास का परिष्कार कर भाषा, छंद, शैली तथा अलंकार आदि के क्षेत्र में नवीनता का प्रवर्त्तन किया। इसके समर्थक समीक्षकों ने काव्य-समीक्षा को काव्य के गुण-दोष-दर्शन की परिधि से ऊपर उठाकर उसे सौंदर्य-दर्शन का भव्य और उदात्त रूप प्रदान करते हुए समीक्षा के महत्व को बढ़ाया।

दूसरी ओर अनेक यथार्थवादी समीक्षकों ने स्वछंदतावाद को जीवन और समाज से पलायन करने वाला घोषित करके इसका उग्र विरोध भी किया। एवर क्रोम्बो, वाल्टर पेटर, कालरिज, मैथ्यू आर्नल्ड आदि इस युग के प्रसिद्ध समीक्षक माने जाते हैं। समीक्षकों का एक दल भौतिकवाद का समर्थन करता रहा और दूसरा दल साहित्य पर नैतिक और सामाजिक अंकुश रखने की बात करता रहा। दूसरे दल के आदर्शवादी समीक्षक कवि को समाज सुधारक और भविष्य द्रष्टा मानते थे।

19वीं शताब्दी के प्रसिद्ध कवियों और काव्यशास्त्रियों में विलियम ब्लेक, वर्डस्वर्थ, कौलरिज, कीट्स तथा शैले आदि प्रमुख हैं। इनमें भी वर्ड्स्वर्थ और कौलरिज के सिद्धांत अधिक महत्वपूर्ण हैं। कौलरिज ने कल्पना सिद्धांत का प्रतिपादन करते हुए काव्य में संगीत माधुरी, व्यक्तित्व की अभिव्यंजना, कविकल्पना और खंड के स्थान पर अखंड की श्रेष्ठता का प्रचार किया। वर्डस्वर्थ ने कविता के शिल्प के विषय में महत्वपूर्ण स्थापनाएं कीं। वे मानते थे कि गद्य और पद्य की भाषा एक जैसी होनी चाहिए। इस सदी के अन्य महत्वपूर्ण आलोचकों में मैथ्यू आरनोल्ड, टॉल्स्टॉय तथा रसकिन के नाम उल्लेखनीय हैं। मैथ्यू आर्नोल्ड (1822-1188ई0) ने आधुनिक अंग्रेजी आलोचना का सूत्रपात किया। वे प्राचीन यूरोपीय साहित्य के अरस्तू तथा हिंदी के आचार्य रामचंद्र शुक्ल की भाँति महान युग प्रवर्तक आलोचक माने जाते हैं।

कलावाद का उदय- उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में यूरोप में 'कला कला के लिए' सिद्धांत के समर्थकों ने आदर्श और नैतिकता का तीव्र विरोध करना आरंभ कर दिया। फ्रांस में बोदलेयर इस कलावादी सिद्धांत की स्थापना पहले ही कर चुका था। इंग्लैण्ड में वाल्टर पेटर आदि ने इसका व्यापक प्रचार किया। उमर खय्याम की रुबाइयों के अनुवाद ने वहाँ 'खाओ पीओ मौज करो' की प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया। इससे साहित्य के क्षेत्र में अव्यवस्था की स्थिति उत्पन्न हो गई। सब लोग स्वयं को ही प्रमाण मानकर मनमाना साहित्य रचने लगे।

20.5.3 बीसवीं शताब्दी: विभिन्न समीक्षा धाराएं

बीसवीं शताब्दी के आरंभिक चरण में यूरोप के दो विचारकों ने यूरोपीय साहित्य और समीक्षा को सर्वाधिक प्रभावित किया। ये दो विचारक थे- फ्राइड और मार्क्स। फ्रायड ने मनोविश्लेषण सिद्धांत का प्रवर्त्तन किया और मार्क्स ने साम्यवादी विचारधारा की नींव डाली। मनोविश्लेषण पर आधारित चेतना धारा ने यूरोपीय साहित्य में एक नए युग का आरंभ किया। मार्क्स ने 'द्वंद्वात्मक भौतिकवाद' नामक सिद्धांत की स्थापना करके साहित्यिक मूल्यांकन का

एक सर्वथा नूतन दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। बीसवीं सदी के आरंभ में इन दोनों दृष्टिकोणों से भिन्न भी साहित्य रचना और समीक्षा होती रही। यीट्स नामक अंग्रेजी के एक कवि ने रहस्यवाद को पुनः आगे बढ़ाया। इसके साथ ही फ्रांस में यथार्थवाद का एक नया रूप उभरा। इसके समर्थकों ने मानव की सहज प्रवृत्तियों को ही मानवीय व्यवहार का प्रमुख कारण स्वीकार करते हुए अतियथार्थवादी साहित्य का निर्माण किया। यह नया यथार्थवाद स्वछंदतावाद का ही एक नया और निकृष्ट रूप था। एमिल नोला आदि ने पहले ही यथार्थवाद का विरोध करते हुए ऐसे साहित्य को अस्वस्थ, निराशावादी, अश्लील और हानिकर घोषित किया था।

प्रमुख समीक्षक- बीसवीं शताब्दी के तीन समीक्षकों ने यूरोपीय समीक्षा को सर्वाधिक प्रभावित किया। ये तीन समीक्षक हैं - 1. बेनेदेतो क्रोचे 2. आई0ए0 रिचर्ड्स तथा 3. टी0एस0 इलियट। क्रोचे ने परंपरा से हटकर अभिव्यंजनावाद की मौलिक व्याख्या प्रस्तुत की। परिणामस्वरूप बीसवीं सदी में अन्तश्चेतनावाद, प्रकृतिवाद, प्रभाववाद, बिंबवाद, प्रतीकवाद, दादावाद, अतियथार्थवाद, निर्वैयक्तितावाद और मनोवैज्ञानिक मूल्यवाद जैसे सिद्धांत यूरोप में प्रतिपादित होकर पूरे विश्व में फैले। इनमें फ्रायड का अन्तश्चेतनावाद तथा इलियट का निर्वैयक्तिकतावाद सबसे महत्वपूर्ण हैं। इलियट ने वस्तुगत समीक्षा सिद्धांत प्रस्तुत करने के साथ ही परंपरा और निर्वैयक्तिकता का विवेचन करते हुए काव्य तथा काव्य-भाषा के विषय में अपने विचार प्रस्तुत किए। इसी अवधि में रिचर्ड्स के सिद्धांत भी सामने आए। बीसवीं शताब्दी में काव्यालोचना विषयक इतने अधिक मत और सिद्धांतों का प्रतिपादन हुआ कि उनके आधार पर सर्वमान्य सिद्धांतों की स्थापना करना कठिन हो गया। फलतः काव्य-शैलियों की भाँति आलोचना की भी अनेक धाराएं और शैलियाँ विकसित हुईं। इनके अतिरिक्त रस्किन, ज्यां पाल सार्त्र, कीर्के गार्द, अलबर्ट कामू, हर्बर्ट रीड, जेम्स ज्वायस, हेनरी जेम्स, एजिरा पाउड तथा के0 रैम्सम आदि पाश्चात्य जगत के ऐसे साहित्यकार, विचारक और समीक्षक हैं; जिन्होंने समीक्षा को नई-नई दिशाएं प्रदान की हैं। आधुनिक पाश्चात्य काव्यशास्त्र में शास्त्रीयता और स्वछंदता का द्वंद्व देखा जा सकता है। इटैलियन कवि दांते से काव्य और कला को शास्त्रीयता से मुक्त करने का कार्य आरंभ हुआ, जिन्होंनें रचना में जनभाषा को महत्व प्रदान किया। प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक कान्ट की इस मान्यता और स्थापना से कि ''प्रतिभा, नियम या शास्त्र का अनुगमन नहीं करती''; यूरोप में स्वछंदतावादी आंदोलन का आरंभ हुआ। उससे रोमांटिक या स्वछंदतावादी मान्यताओं को बल मिला। स्वछंदतावाद के साथ-साथ ही कलावाद, अभिव्यंजनावाद और अस्तित्ववाद के मतों का विकास भी हुआ। अस्तित्ववाद एक प्रकार से स्वछंदतावाद के व्यक्ति-स्वातंत्र्य तथा मनोविश्लेषण के अहंवाद का परिणाम ही है। मार्क्सवादी विचारधारा के प्रभाव से व्यक्तिवाद तथा समाजवाद का द्वंद्व आरंभ हुआ। व्यक्तिवाद का एक रूप यथार्थवाद के अंतर्गत देखा जाता है; जो अस्तित्ववादी साहित्य का प्रधान तत्त्व बना। इससे काव्य में कुंठा, निराशा आदि का यथार्थ चित्रण होने लगा। इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप मूल्य-सिद्धांत, निर्वैयक्तिकता का मत, इतिहास और परंपरा बोध तथा संप्रेषणीयता के सिद्धांतों का प्रतिपादन हुआ। इसमें कवि और कलाकार के जीवन और मनोवृत्तियों के विश्लेषण के स्थान पर कृति को महत्व दिया जाने लगा; जिसमें शब्द-विन्यास, प्रतीक विधान एवं बिंब योजना को प्रमुख आधार माना गया। बाद में धीरे-धीरे काव्य

का विवेचन शैली विज्ञानिक दृष्टि से होने लगा; जिसमें कभी मनोतत्त्व पर बल दिया जाता है; तो कभी भाषा तत्व पर।

20.6 सारांश

पाश्चात्य काव्यशास्त्र के प्लेटो से लेकर टी0एस0 इलियट तक के ढाई हजार वर्ष के इतिहास का आरंभिक रूप आदर्शवादी और वस्तुपरक था। बीच में लगभग एक हजार वर्षों तक इस क्षेत्र में कोई महत्वपूर्ण काम नहीं हो पाया। परंतु पन्द्रहवीं शताब्दी में नव-जागरण की जो नई लहर फैली उसके साथ ही यूरोपीय साहित्य और समीक्षा द्रुत गति से विकास करते हुए मानव के चिंतन को गूढ़ और व्यापक बनाते गए। यूरोपीय समीक्षा ने आज संपूर्ण सभ्य संसार को प्रभावित कर रखा है।

यूरोपीय समीक्षा के मूल उद्गम स्थान ग्रीस (यूनान) और रोम हैं। उसके बाद फ्रांस के आलोचकों ने इंग्लैंड तथा अन्य देशों के आलोचकों को प्रभावित किया। फ्रांस में जितने वादों और आंदोलनों का जन्म हुआ, उतना किसी अन्य देश में नहीं हुआ। फ्रांसीसी आलोचना पद्धतियों में एक सूक्ष्म और गंभीर अंतर्दृष्टि उपस्थित रहती है। सत्रहवीं तथा उन्नीसवीं सदी की फ्रांसीसी आलोचना सर्वाधिक प्रभावशाली है, क्योंकि इसमें आलोचना के दार्शनिक आधार विद्यमान हैं।

प्लेटो (चौथी-पाँचवी सदी ई0पू0) से आज तक के पाश्चात्य काव्यशास्त्र के विकास में अनेक देशों, अनेक भाषाओं , संस्कृतियों, परिस्थितियों एवं विद्वानों का योगदान सम्मिलित है। पाँचवी से पन्द्रहवीं सदी तक इसकी गति में शिथिलता आने के पश्चात् पन्द्रहवीं सदी के बाद यह द्रुत गति से आगे बढ़ा और 19वीं-बीसवीं सदी की पश्चिमी समीक्षा ने पूरे विश्व की सैकड़ों भाषाओं की समालोचना ही नहीं; रचनात्मकता को भी प्रभावित किया।

20.7 शब्दावली

प्रादुर्भाव	उत्पत्ति
बहिष्कृतत्र	बाहर निकालना
संवर्द्धन	बढ़ना
विशद	व्यापक/बड़ा
प्रश्रय	आश्रय
प्रवर्तन	कार्य आरंभ करना
प्रतिपादन	भली-भाँति समझना
स्पृहणीय	अभिलषित

20.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. (अ) यूनान (आ) प्लेटो

प्लेटो

लौंजायनस

(अ) रोम (आ) लैटिन

3. सत्य

असत्य

सत्य

5. 18 वीं

(अ) फ्रांस (आ) रूसो

उन्नीसवीं

6. 'कला कला के लिए' सिद्धांत के समर्थकों ने।

7. मार्क्स और युंग

20.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. पश्चिमी आलोचनाशास्त्र; लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय; सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश।

2. साहित्यशास्त्र; रामशरणदास गुप्ता एवं राजकुमार शर्मा; कॉलेज बुक डिपो, जयपुर।

3. सौंदर्यशास्त्र की पाश्चात्य परंपरा; नीलकांत; देशभूमि प्रकाशन, इलाहाबाद।

4. पाश्चात्य काव्यशास्त्र; विजयपाल सिंह; जयभारती प्रकाशन, मुट्ठीगंज, इलाहाबाद।

5. पाश्चात्य काव्यशास्त्र; देवेन्द्रनाथ शर्मा;

20.10निबंधात्मक प्रश्न

1. पाश्चात्य साहित्य शास्त्र के उद्भव एवं विकास पर एक विस्तृत निबंध लिखिए .

2. पाश्चात्य साहित्य शास्त्र से आप क्या समझते हैं ? पाश्चात्य साहित्यशास्त्र के आधुनिक युग का समीक्षात्मक विवेचन कीजिए